डॉ० रामनाथ शर्मा
मेरठ कॉलिज, मेरठ विश्वविद्यालय।

औद्योगिक मनोविज्ञान

प्रकाशक :
केदारनाथ रामनाथ।
मेरठ।

मनोविज्ञान में लेखक की कुछ रचनायें

१. सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, पाँचवाँ संस्करण
२. सामान्य मनोविज्ञान, तेरहवाँ संस्करण
३. व्यावहारिक मनोविज्ञान, छठा संस्करण
४. व्यावहारिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, द्वितीय संस्करण
५. समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, चतुर्थ संस्करण
६. मनोविज्ञान के आधार
७. असामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, द्वितीय संस्करण
८. मनोविज्ञान के मूल तत्व, द्वितीय संस्करण
९. प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की रूपरेखा
१०. समाज मनोविज्ञान, तृतीय संस्करण
११. औद्योगिक मनोविज्ञान
१२. बाल मनोविज्ञान की रूपरेखा
१३. मनोविज्ञान का इतिहास, द्वितीय संस्करण
१४. शिक्षा मनोविज्ञान, तृतीय संस्करण
१५. व्यक्तित्व और व्यावहारिक मनोविज्ञान भाग १ व २
१६. Outlines of General Psychology.

औद्योगिक मनोविज्ञान

प्रथम संस्करण

मूल्य रु० १२·५०

प्रकाशक :
केदार नाथ राम नाथ एण्ड कम्पनी,
मेरठ।

मुद्रक :
एम० आर०, प्रिंटर्स,
मेरठ।

दो शब्द

ज्ञान के क्षेत्र में मनोविज्ञान विषय का विकास विशेष रूप से बीसवी शताब्दी में हुआ और क्रमशः जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे इसका प्रयोग किया जाने लगा। चूंकि आधुनिक मनोविज्ञान का विकास विशेष रूप से सयुक्त राष्ट्र अमरीका और योरुप के प्रगतिशील देशों मे हुआ इसीलिये वही पर इसका सबसे पहले जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रयोग किया गया। आधुनिक युग उद्योग का युग कहलाता है। पश्चिम के देशो मे उद्योग के क्षेत्र मे अभूतपूर्व विकास हुआ है। अस्तु, इस क्षेत्र मे भी मनोविज्ञान का प्रयोग बढ़ा क्योंकि उद्योगपतियो ने यह अनुभव किया कि मशीनों की उन्नति के साथ-साथ मालिक मजदूर के सम्बन्धो की उन्नति भी आवश्यक है। मजदूरों के प्रति व्यवहार करने मे और उनके संतोष के साधन जुटाने मे उद्योग-पतियों को मनोवैज्ञानिक से बडी भारी सहायता मिली। इतना ही नही बल्कि कम से कम थकान उत्पन्न करते हुये अधिक से अधिक और अच्छा काम करने के साधनों के विषय मे सफल मनोवैज्ञानिक प्रयोग किये गये। अस्तु, पश्चिम मे उद्योग के क्षेत्र मे मनोविज्ञान का प्रयोग बढता गया। इसका एक कारण यह भी था कि पश्चिम के लोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने के हामी रहे है दूसरी ओर भारतवर्ष मे इस दृष्टिकोण का बहुत कुछ अभाव दिखलाई पडता है तथा इसके स्थान पर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे धार्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण ही अधिक दिखलाई पड़ता है। इसी कारण देश मे औद्योगिक प्रगति बढने के साथ-साथ उद्योग के क्षेत्रो में मनोविज्ञान का प्रयोग अभी नही बढा है। अधिकतर कारखानो मे मालिक-मजदूर के सम्बन्धों को बेहतर करने, कर्मचारियो के मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने और काम करने की परिस्थितियो मे सुधार करने की ओर कोई ध्यान नही दिया जाता। सार्वजनिक और निजी सभी प्रकार के उद्योगो मे मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का नितान्त अभाव है। यही कारण है कि देश आज भी उद्योग के क्षेत्र मे अत्यधिक पिछड़ा हुआ है।

देश को स्वतन्त्रता मिलने के बाद से नयी पीढी के कुछ उद्योगपति, विशेष-तया समाजवादी विचारधारा के प्रभाव से, श्रमिको के विचारो और भावनाओं की ओर ध्यान देने लगे है और उनको सुलझाने के लिए मनोवैज्ञानिक उपायो पर विचार करते हैं। किन्तु यह अधिकतर सामान्य बुद्धि के आधारपर ही किया जाता है। बहुत ही कम उद्योगो मे विशेषज्ञ के रूप मे मनोवैज्ञानिक की सलाह ली जाती है। अस्तु, भारत में औद्योगिक मनोविज्ञान का प्रचार बहुत कम है।

भारतीय विश्वविद्यालयो मे मनोविज्ञान का अध्यापन होने के साथ-साथ औद्योगिक मनोविज्ञान का भी अध्यापन शुरू हुआ, किन्तु इस क्षेत्र मे अनुसन्धान लगभग नही के बराबर है क्योकि अभी इसकी आवश्यकता को पूरी तरह अनुभव नही किया जाता। देश मे हिन्दी भाषा का प्रसार बढने के साथ-साथ विविध वैज्ञानिक विषयो पर हिन्दी मे पुस्तकें प्रकाशित हुयी है। औद्योगिक मनोविज्ञान पर कुछ पुस्तकें पिछले कुछ वर्षों मे प्रकाशित हुयी किन्तु देश की आवश्यकता को देखते हुए उनकी संख्या पर्याप्त नही कही जा सकती। प्रस्तुत पुस्तक भी इसी दिशा मे एक प्रयास है।

लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक को विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिये सब प्रकार से आदर्श पाठ्यपुस्तक बनाने का प्रयास किया है। सम्पूर्ण विषय वस्तु प्रामाणिक श्रोतो से ली गयी हैं। पुस्तक को मनोरजक बनाने के लिए स्थान-स्थान पर चित्र दिये गए है। तालिकाओं से विषय को समझाने का प्रयास किया गया है। प्रत्येक अध्याय के अन्त मे सारांश और विभिन्न विश्वविद्यालयों मे पूछे गये परीक्षा प्रश्न लेखक की सभी पाठ्य पुस्तको की एक विशेषता हैं। विषय के विवेचन मे प्रत्येक बात को अलग-अलग पैराग्राफ मे समझाया गया है और विवादास्पद विषयो पर वैज्ञानिक अनुसन्धानों के निष्कर्ष ही अन्तिम निर्णायक माने गये है। सम्पूर्ण पुस्तक मे शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखा गया है और इसमें किसी भी प्रकार की राजनैतिक विचारधारा की छाप नही है। यह ठीक है कि श्रमिक के बारे मे बात करते समय अनेक लोग स्वभावतया ही साम्यवादी विचार ले आते हैं। किन्तु वैज्ञानिक पुस्तको में राजनैतिक विचारधाराओं का प्रभाव सर्वथा अवाछनीय है। इस दृष्टि से पिछले वर्षों मे औद्योगिक मनोविज्ञान पर हिन्दी मे लिखी हुयी कुछ पुस्तको में भारी दोष पाया जाता है।

उपरोक्त विशेषताओ के साथ यदि यह पुस्तक मनोविज्ञान के विद्यार्थियों, शिक्षको और सामान्य पाठकों को औद्योगिक मनोविज्ञान से सम्बन्धित जीवन के पहलुओ और मानव सम्बन्धो मे उन्नति करने मे कुछ भी अन्तर्दृष्टि और प्रोत्साहन दे सकी तो लेखक अपने प्रयत्न को सफल समझेगा। आगामी सस्करण को बेहतर बनाने के लिये पाठको से सुझाव मिलने पर लेखक आभारी होगा।

रामनाथ शर्मा

अर्चना
सिविल लाईन्स, मेरठ।

विषय-सूची

१

सामान्य सिद्धान्त

(General Principles)

मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे जहाँ भी कुछ मानव सम्बन्ध अथवा मानव व्यवहार दिखलाई पडते हैं वहाँ मनोविज्ञान का भी प्रवेश है। उद्योग के क्षेत्र मे मालिक और मजदूर के तरह-तरह के सम्बन्ध आते है और उनमे

उद्योग में मनोविज्ञान

तरह-तरह के व्यवहार दिखलाई पडते हैं। उद्योग के क्षेत्र की अनेक समस्यायें हैं। उनमें मानव व्यवहार की समस्यायें है। उदाहरण के लिए कही पर मजदूरो मे असन्तोष दिखलाई पडता है। अनेक कारणो से वे मालिक के साथ सहयोग नहीं करना चाहते। वे अधिक से अधिक मजदूरी लेकर कम से कम काम करना चाहते हैं। वे समय-समय पर हडताल करते रहते हैं जिससे कारखाने बन्द हो जाते हैं और मालिक के साथ-साथ देश को भी भारी हानि होती है। दूसरी ओर, मालिक भी मजदूरो का कोई ध्यान नही रखते। तनिक सी गडबड होते ही वे कारखानो मे ताले लगा देते है। इससे हजारो मजदूर बेकार हो जाते है और देश की भी भारी हानि होती है। मूलरूप में ये सब समस्यायें मानव व्यवहार की समस्यायें है, अत इनको सुलझाने के लिये मनोविज्ञान की आवश्यकता पड़ती है।

उद्योग मे अधिक और अच्छे उत्पादन के लिये कई बातो की जरूरत है। मशीनें तो अच्छी होनी ही चाहियें परन्तु साथ ही साथ यह भी जरूरी है कि उन पर काम करने वाले भी योग्य हो। इस योग्यता की परख कैसे

उत्पादन मे समस्यायें

हो ? कारखाने मे सैकडो तरह के काम होते है। यह कैसे जाना जाय कि किस काम के लिये कौन-सा व्यक्ति उपयुक्त होगा ? कारखाने मे काम तलाश करने के लिये सैंकडो लोग आते है। उनकी योग्यता की परीक्षा कैसे की जाय ? कारखाने मे उत्पादन अधिक होने के लिये यह भी जरूरी है कि मशीनें ऐसी बनी हो जिनको चलाने मे थकान कम हो। प्रकाश का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिये कि काम करने मे असुविधा न हो, दुर्घटनायें कम हो और आंखो पर जोर भी न पडे। प्राय. लोग काम से ऊबने लगते हैं। उनको किस तरह फिर से प्रोत्साहित किया जाय ? कारखाने की व्यवस्था किस प्रकार की जाय जिससे कि

कारखाने मे दुर्घटनायें कम से कम हो ? उद्योग के क्षेत्र मे इन सभी समस्याओं को सुलझाने मे मनोविज्ञान की आवश्यकता है ।

विक्रय की समस्यायें

केवल चीजो का उत्पादन करने के बाद ही उद्योग का काम पूरा नही हो जाता । असली बात है इन चीजो को बेचना । यदि इसमे सफलता न हुई तो उत्पादन कितना भी अधिक और अच्छा होने पर भी बेकार है । चीजो को बेचने के लिये यह जरूरी है कि लोग उनसे परिचित हो, उनके गुणो को जानें और लोगो मे उनको खरीदने की इच्छा उत्पन्न हो । इसके लिये विज्ञापन की आवश्यकता होगी । सफल विज्ञापन मनोवैज्ञानिक अपील पर आधारित है । स्पष्ट है कि विक्रय के क्षेत्र में मनोविज्ञान का कितना महत्व है ।

काम करने की परिस्थितियाँ

उद्योग मे काम करने की परिस्थितियो का मजदूरो पर बडा प्रभाव पडता है । यदि काम करने की परिस्थितिया अच्छी हुई तो मजदूर स्वस्थ और सन्तुष्ट रहते है । यदि काम करने की परिस्थितियाँ अच्छी न हुई तो कारखानो मे दुर्घटनायें बढ जाती है और मजदूरो मे असतोष फैलने लगता है । काम करने की परिस्थितियो मे अनेक बातें आती है, जैसे—शुद्ध हवा और पानी का प्रबन्ध, आवश्यक विश्राम का प्रबन्ध, कम शोर, अच्छा वातावरण, अच्छा प्रकाश तथा मालिक मजदूर के अच्छे सम्बन्ध । इन सभी मे मनोवैज्ञानिक के निर्देशन की आवश्यकता पडती है । उदाहरण के लिये प्रकाश किस ओर से आना चाहिए और कितना आना चाहिए, इस बारे मे मनोवैज्ञानिक की राय लेना जरूरी है । कारखाने की दीवारो, फर्शों, छतो और मशीनों के रग का भी मजदूरो पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है । प्रयोगों से यह देखा गया है कि रगो की अच्छी व्यवस्था होने पर दुर्घटनायें कम होती है और कारखाने का वातावरण अधिक स्वस्थ रहता है । कारखाने की मशीनो, दीवारो, फर्शों और छतो की रगाई किस मौसम मे कैसी होनी चाहिये यह मनोविज्ञान का विषय है ।

मानवीय कठिनाइयाँ

कारखाने मे हर एक काम के लिये उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव करने के बाद ही समस्या खत्म नही हो जाती । अच्छे और अधिक उत्पादन के लिये कर्मचारियो की क्षमता को बनाये रखना पडता है और उसको बढाने की कोशिश करनी पडती है । इसके लिये मनोविज्ञान की सहायता की जरूरत है । श्रमिक एक मनुष्य है, वह मशीन का पुर्जा नही है । उससे काम लेने मे मानव प्रेरणाओं और मानव मनोविज्ञान पर ध्यान रखना जरूरी है । उद्योग में मानवीय कठिनाइयो को मनोविज्ञान की सहायता से बडी आसानी से सुलझाया जा सकता है ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि उद्योग के क्षेत्र के हर एक पहलू मे मनोविज्ञान का कितना महत्व है । आजकल तो वह महत्व इतना बढ गया है कि उद्योग के क्षेत्र मे

मनोविज्ञान को लेकर औद्योगिक मनोविज्ञान के नाम से मनोविज्ञान की एक प्रथम शाखा ही बन गई है ।

औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास

(Development of Industrial Psychology)

मनोविज्ञान का इतिहास

ईसा के लगभग पाँच सौ वर्ष पहले ग्रीक दार्शनिकों ने आत्मा के स्वरूप, व्यवहार तथा अनुभव को समझने का प्रयत्न किया । इस अध्ययन में उनको जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ उसका नाम मानसिक दर्शन रखा गया । यह मानसिक दर्शन ही मनोविज्ञान का प्रारम्भिक रूप था जिसमें उसका अर्थ मन के विज्ञान से लिया गया । परन्तु अभी वह विज्ञान न होकर दर्शन मात्र था । मन के स्वरूप के विषय में ग्रीक दार्शनिकों में मतभेद था । कुछ लोग उसको एक अन्तर्ज्योति समझते थे अन्य लोग एक प्रकार का जन्तु या किसी प्रकार की गति समझते थे । प्लेटो ने मन और विचारों को एक समझा, अरस्तू ने मन को शारीरिक व्यापार बतलाया ।

अरस्तू के बाद आठ शताब्दियों तक मन के अध्ययन के विषय में कुछ मालूम नहीं पड़ता । सोलहवीं शताब्दी में फ्रेंच दार्शनिक डेकार्ते ने मन को शरीर से अलग माना और उसका कार्य बौद्धिक क्रिया माना । स्पीनोजा ने मन और शरीर को एक ही तत्व के दो रूप माना । लाइबनीज के अनुसार मन और शरीर में समानान्तर क्रिया होती है यद्यपि शारीरिक क्रियायें यान्त्रिक नियमों से और मानसिक क्रियायें मानसिक नियमों से समझाई जायेंगी ।

सत्रहवीं शताब्दी में मन के अध्ययन की दिशा में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त उपस्थित किया गया जो साहचर्यवाद कहलाया । इस सिद्धान्त के अनुसार एक के बाद एक दो उत्तेजनाओं के मस्तिष्क में पहुँचने पर उनके स्पन्दन आपस में इस प्रकार जुड़ जाते हैं कि एक के प्रकट होने पर दूसरा भी प्रकट होता है । नारंगी नाम के साथ एक विशेष रंग का स्पन्दन जुड़ा है जो कि नारंगी नाम लेते ही मन में उपस्थित हो जाता है । लॉक, बर्कले आदि ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । ह्यूम ने साहचर्य के नियमों का भी वर्णन किया ।

वोल्फ ने शक्ति मनोविज्ञान का सूत्रपात किया । इसके अनुसार हमारे मन अथवा आत्मा में इच्छा, स्मरण, तर्क आदि विभिन्न व्यापारों की भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं । आधुनिक काल में प्रयोगों द्वारा इस शक्ति मनोविज्ञान को असिद्ध कर दिया गया है ।

परन्तु वैज्ञानिक रूप में मनोविज्ञान का प्रारम्भ सन् १८७९ ई० हुआ जबकि जर्मनी के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वुण्ट ने लाइपजिग में पहली मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला स्थापित की । अमेरिका, इंगलैंड तथा योरुप के अन्य प्रगतिशील देशों से मनोविज्ञान वेत्ता वुण्ट के पास एकत्रित हुए और उससे दीक्षा लेकर उन्होंने अपने देशों में जाकर

उनके अपनाये हुये तरीकों से मनोविज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ किया। वुण्ट के शिष्यों में टिचनर और कैटेल ने महत्वपूर्ण काम किया।

इसी उन्नीसवी शताब्दी मे इगलैंड मे गाल्टन ने व्यक्तिगत अन्तर के मनोविज्ञान की सृष्टि की। उसने स्मृति पर भी काम किया जिस पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण काम एबिंगहॉस का है। इसी काल मे अमेरिका मे विलियम जेम्स ने मनोविज्ञान के लगभग प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया।

बीसवी शताब्दी मे पैवलोव नामक रूसी शरीरशास्त्री के प्रतिबद्ध अनुक्रिया के सम्बन्ध मे किये गये प्रयोगों ने मनोविज्ञान के क्षेत्र मे इस विषय मे प्रयोगों को प्रोत्साहित किया। पैवलोव के प्रभाव से इसी समय वाटसन ने मनोविज्ञान के क्षेत्र से मन अथवा चेतना शब्द को बिल्कुल निकाल देने का प्रस्ताव रखा। अब तक मनोविज्ञान का अर्थ मन अथवा चेतना का विज्ञान था। वाटसन ने उसको व्यवहार का विज्ञान कहा। मनोविज्ञान को वैज्ञानिक स्तर पर लाने की ओर यह एक महत्वपूर्ण कदम था। इसी काल मे वर्दाइमर, कोफ्का और कोहलर नामक मनोवैज्ञानिको ने प्रत्यक्ष की प्रक्रिया का अध्ययन किया और गेस्टाल्टवाद की स्थापना की। दूसरी ओर वियाना के सिगमड फ्रॉयड ने मनोविश्लेषण की स्थापना करके मनोविज्ञान मे बिल्कुल नया क्षेत्र खोल दिया। बीसवी शताब्दी से मनोविज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि समकालीन प्रमुख मनोवैज्ञानिकों के नाम तक गिनाना भी सम्भव नही है।

औद्योगिक मनोविज्ञान का जन्म

मनोविज्ञान के इतिहास की उपरोक्त संक्षिप्त रूपरेखा से यह स्पष्ट होता है कि एक विज्ञान के रूप मे मनोविज्ञान का विकास विशेष रूप से उन्नीसवी शताब्दी मे प्रारम्भ हुआ था। बीसवी शताब्दी मे मनोविज्ञान का क्षेत्र इतना अधिक बढ गया कि क्रमशः उसकी अलग-अलग स्वतन्त्र शाखाये विकसित होने लगी। उद्योग के क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक अध्ययनो को लेकर क्रमश औद्योगिक मनोविज्ञान नाम से एक स्वतन्त्र शाखा का विकास हुआ। इस प्रकार औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास बीसवी शताब्दी से माना जाना चाहिए।

बीसवी शताब्दी से पहले भी कुछ ऐसे अनुसन्धान किये गये जिनका औद्योगिक मनोविज्ञान की दृष्टि से कुछ महत्व हो सकता है। उदाहरण के लिये सोलहवी, सत्रहवी और अठारहवी शताब्दियो मे गति के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये गये जिनमे गैलीलियो (Galileo), बोरेली (Borelli), कोलूम्ब (Columb) और मैरी के अनुसन्धान महत्वपूर्ण है। उन्नीसवी शताब्दी मे फ्रास मे मैरी (Marey) और मोजो (Mosso) ने शारीरिक कार्य और थकान की समस्याओ पर अनुसन्धान किये। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे आेटिको (Ioteyko) और इम्बर्ट (Imbert) ने औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण विधियो का अनुसन्धान किया। क्रैपलिन (Kraepelin) ने शिक्षण वक्र और कर्मचारियो के प्रशिक्षण तथा चुनाव के विषय

मे महत्वपूर्ण अध्ययन किये। लेह (Lahy) ने टाइप करने में कुशलता प्राप्त करने के लिये महत्वपूर्ण मनोदैहिक लक्षणों की खोज की।

इन अनुसन्धानों के अतिरिक्त लेह, बुक (Book)[1], इम्वर्ट और स्काट (Scott)[2] इत्यादि वैज्ञानिकों ने औद्योगिक मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की।

मुन्स्टरवर्ग का योगदान

किन्तु औद्योगिक मनोविज्ञान के विकास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण योगदान ह्यूगो मुस्टरवर्ग (Hugo Munsterberg) का था। मुंस्टरवर्ग जर्मन मनोवैज्ञानिक था। वह हार्वर्ड विश्वविद्यालय में मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला का निर्देशक था। यही से उसने अवकाश प्राप्त किया। मुन्स्टरवर्ग व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अध्ययन में विशेष रुचि रखता था। उसने व्यक्तिगत विभिन्नताओं से मनोवैज्ञानिक प्रयोगों का सहसम्बन्ध (Correlation) स्थापित किया। अपनी पुस्तक On the Witness Stand (1908) में मुंस्टरवर्ग ने अपराध के कारणों का पता लगाने में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो की व्याख्या की। अपनी एक अन्य पुस्तक Psychology and the Teacher (1909) में मुंस्टरवर्ग ने शिक्षा के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का महत्व दिखलाया। सन् १९१०–११ में उसने उद्योगों के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक खोजो का वर्णन किया। औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में उसके अध्ययन बर्लिन में प्रवक्ता के रूप में कार्य करते समय ही प्रारम्भ हो चुके थे। इस विषय पर उसने सन् १९१२ में अपनी एक पुस्तक Psychologie and Wirtschaftsleben जर्मन भाषा में प्रकाशित की। यह पुस्तक १९१३ में अमरीका में Psychology and Industrial Efficiency नाम से प्रकाशित हुयी। सन् १९१४ में मुंस्टरवर्ग ने तकनीकी विषयो के मनोविज्ञान पर अपनी एक अन्य पुस्तक Grundzuge de Psychotechnik जर्मन भाषा में प्रकाशित की।

औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में मुंस्टरवर्ग ने उद्योगो के क्षेत्र में समायोजन और दक्षता बढाने के विषय में अनुसन्धान किये। उसने यह दिखलाया कि इन क्षेत्रो में मनोविज्ञान से कितनी अधिक सहायता मिल सकती है।

उद्योग में मनोविज्ञान मनोविज्ञान द्वारा यह सहायता तीन प्रकार से मिल सकती है। एक तो उसकी सहायता से विभिन्न कार्यों के लिये सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्तियो का चुनाव किया जा सकता है। दूसरे, मनोवैज्ञानिक के परामर्श से विभिन्न उद्योगो में ऐसी मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ उत्पन्न की जा सकती है जिनमे प्रत्येक कर्मचारी अधिक से अधिक उत्पादन करे। तीसरे, उद्योग के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक के सुझावों से ऐसे कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जा सकता है जो उद्योगो में महत्वपूर्ण योगदान दें। अपने इन अध्ययनो के आधार पर मुन्स्टरवर्ग ने औद्योगिक परिस्थितियो में मनोविज्ञान के प्रयोग के विषय

1. Book, W F., *The Psychology of Skill*, University of Montanna, 1908, p. 211.

2. Scott, W D., *Influencing Men in Business*, New York, (1911), p 186.

में महत्वपूर्ण सुझाव दिये। उसने कर्मचारियों के चुनाव के लिये मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में सहायता लेने का सुझाव दिया। उसने बतलाया कि औद्योगिक प्रशिक्षण से सीखने की क्रिया में प्रगति की जा सकती है। उसने उद्योगों में कार्य करने की दशाओं, कर्मचारियों की नैतिमता और थकान की परिस्थितियों का महत्व दिखलाया। मुन्स्टरवर्ग ने कोरे मौखिक सुझाव ही नहीं दिये वल्कि अपने सिद्धान्तों के आधार पर मोटरमैन, टेलीफून ऑपरेटर तथा जहाज के अफसरों के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर चुनाव के सफल परिणामों को दिखलाया। इस प्रकार उसने यह स्पष्ट कर दिया कि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर अमल करके उद्योग के क्षेत्र में लाभ उठाया जा सकता है।

इसी समय औद्योगिक प्रवन्ध के क्षेत्र में टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्ध की योजना का शोर था। मुन्स्टरवर्ग ने अपनी योजना को टेलर की योजना से सम्बद्ध कर दिया और इस बात पर जोर दिया कि आर्थिक उन्नति करने के लिये उद्योगों में मानव शक्ति का सही प्रकार से प्रयोग किया जाना चाहिये। उसने यह दिखलाया कि उद्योगों में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग करने में उद्योगपतियों और कर्मचारियों दोनों को ही लाभ होता है। मनोवैज्ञानिक खोजों का प्रयोग करके उत्पादन में कार्यावधि घटाई जा सकती है, कर्मचारियों की मजदूरी बढाई जा सकती है और इस प्रकार उनके रहन-सहन के स्तर को ऊँचा किया जा सकता है। संक्षेप में, मुन्स्टरवर्ग ने यह स्पष्ट किया कि उद्योग के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग करके प्रत्येक कर्मचारी को उसकी अपनी रुचि और कार्य शक्ति के अनुसार कार्य दिये जाने से सम्पूर्ण देश का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर ऊंचा उठ सकेगा। मुन्स्टरवर्ग की पुस्तकों का उद्योग के क्षेत्र में व्यापक प्रभाव पड़ा। प्रगतिशील देशों में उसकी योजना पर अमल किया जाने लगा। केवल जर्मनी ही नहीं किन्तु योरुप के सभी देशों में और अमरीका में भी उद्योगों के क्षेत्र में अनुसन्धान की लहर सी दौड़ गई। इन्हीं सब कारणों से मुन्स्टरवर्ग को औद्योगिक मनोविज्ञान का जनक माना जाता है।

वैज्ञानिक प्रवन्ध

मुन्स्टरवर्ग की योजना की व्यापक सफलता का एक अन्य कारण विश्व युद्ध छिड़ जाने से मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की आवश्यकता बढ़ जाना भी था। मुन्स्टरवर्ग की योजना प्रकाशित होने के कुछ ही दिनों बाद विश्व युद्ध छिड़ गया और जगह-जगह पर सेना में भर्ती होने लगी। इस समय जिन प्रगतिशील देशों में मुन्स्टरवर्ग की योजना पर अमल किया गया वहाँ यह अनुभव हुआ कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से नौसेना, वायु सेना और स्थल सेना में उपयुक्त व्यक्तियों का चुनाव किया जा सकता है। इङ्गलैंड में इस चुनाव में मनोवैज्ञानिकों की विशेष सहायता ली गयी और भर्ती करने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की रचना की गयी। जर्मनी और फ्रान्स में एण्डरसन (Anderson)[3], मोइडे (Moede), वैनरी (Benary)

3. Anderson, H. G., *The Selection of Candidates for the Air Service*, Reports of the British Medical Society, 3 (1918), p. 11.

और गैमेली (Gamelli) ने मनोवैज्ञानिक परीक्षणो के प्रयोग का अपनी पुस्तकों के माध्यम से व्यापक प्रचार किया। मनोवैज्ञानिक परीक्षणो का व्यावसायिक चुनाव मे भी व्यापक प्रयोग किया गया। इनके आधार पर कर्मचारियो के चुनाव मे भी बडी सहायता मिली।

अमरीका में औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास

सन् १९१७ मे सयुक्त राज्य अमरीका भी विश्व युद्ध मे शामिल हो गया। अमरीका मे सेना मे भर्ती करने के लिये कर्मचारियो के मनोवैज्ञानिक परीक्षणो के हेतु एक मनोवैज्ञानिक संघ की स्थापना की गई और बड़े पैमाने पर मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से सेना, नौसेना और वायु-सेना मे भर्ती मे सहायता ली गई। इससे अमरीका मे औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र मे शोध कार्य को प्रोत्साहन मिला और इससे सम्बन्धित साहित्य तेजी से बढने लगा। सन् १९१६-१८ मे डब्लू० डी० स्काट (W. D Scott), एच० एल० होलिंगवर्थ (H L Hollingworth) और ए० टी० पोफेनबरजर (A. T Poffenberger) ,तथा ए० डब्लु कौर्नहौजर (A. W. Kornhauser) ने औद्योगिक क्षेत्र मे महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये। ये सब विश्वविद्यालयो मे प्राध्यापक थे। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोगों ने भी महत्वपूर्ण अनुसन्धान कार्य किये जो विश्वविद्यालयों से नही बल्कि स्वय उद्योगो से ही सम्बन्धित थे। सन् १९१९ मे एच० सी० लिक (H C Link) ने कर्मचारियो के मनोविज्ञान Employment Psychology नामक पुस्तक की रचना की। इसमें व्यावसायिक प्रशिक्षण, दुर्घटनाओ की रोकथाम, कार्य की विधियो का विश्लेषण और अरोचकता दूर करने के उपायो आदि के विषय मे महत्वपूर्ण अनुसधान हुये। इस काल मे प्रकाशित पुस्तकों मे निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

अनुसन्धान कार्य

नवीन साहित्य का प्रकाशन

1 Hollingworth H L, **Vocational Psychology, 1916**

2 Hollingworth and Poffenberger, **Applied Psychology 1917**

3 Kornhauser A W and F A Kingsbury, **Psychlogical Tests in Business, 1924**

4. Kitson, H D, **The Psychology of Vocational Adjustment, 1925.**

5 Laird, D A, **The Psychology of selecting Men, 1927.**

6. Bingham, W V. and M Freyd, **Procedures in Employment Psychology, 1926**

7. Moore, B. V. and G W. Hartmann, **Readings in Industrial Psychology, 1931.**

सन् १९२२ मे डब्लू० वी० बिंघम (W. V Bingham) ने कर्मचारी

वरण के विषय में एक पत्रिका Journal of Personnel Research प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। विघम ने दुर्घटनाओं के विभिन्न पहलुओं के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक Personality and Public Accidents प्रकाशित की।

अमरीका में केवल भिन्न-भिन्न विद्वानों के शोध कार्य और पुस्तकें ही प्रकाशित नहीं हुई, बल्कि कुछ ऐसे औद्योगिक संघों की भी स्थापना हुई जिन्होंने उद्योगों के विभिन्न क्षेत्रों में अनुसन्धान को प्रोत्साहन दिया। सन् १९१६ में विक्रय सम्बन्धी अनुसन्धान के लिये The Bureau of Salesmanship Research की स्थापना हुई। सन् १९१७ में विक्रय सम्बन्धी प्रशिक्षण के अनुसंधान के लिये Research Bureau for Retail Training की स्थापना हुई। सन् १९२१ में मनोवैज्ञानिक निगम (The Psychological Corporation) बना। सन् १९२२ में विंघम के नेतृत्व में कर्मचारी अनुसन्धान परिषद (Personal Research Corporation) की स्थापना हुई। इस परिषद को राष्ट्रीय अनुसन्धान कौंसिल (National Research Council) इन्जीनियरिंग फाऊण्डेशन (The Engineering Foundation) और लन्दन के अमरीकन फैडरेशन (American Federation of London) का सहयोग प्राप्त हुआ। अमरीका में औद्योगिक मनोविज्ञान के बहुमुखी विकास की इस संक्षिप्त रूप रेखा से यह पता चलता है कि मनोविज्ञान की इस शाखा के विकास में अमरीकन मनोवैज्ञानिकों ने कितना अधिक योगदान दिया है।

औद्योगिक संघों की स्थापना

जर्मनी में औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास

मनोविज्ञान के विकास में जर्मन विद्वान मुन्स्टरवर्ग के योगदान का पीछे जिक्र किया जा चुका है। इन्होंने अमरीका में रहकर कार्य किया था। किन्तु जर्मनी में भी अनेक विद्वानों ने औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सन् १९१६ में मोटर चालकों के चुनाव में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रयोग के विषय में मोइडे (W Moede) और पोर्कोवस्की (Piorkowski) नामक वैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण अनुसन्धान किया। इनके अनुसन्धान से प्रेरणा लेकर इसी वर्ष में जर्मनी में लगभग चौदह अनुसन्धान केन्द्र खोले गये। १९१७ में सैक्सन रेलवे कम्पनी ने लोकोमोटिव इन्जीनियरों और अन्य कर्मचारियों के चुनाव में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रयोग के विषय में अनुसन्धान करने के लिये ड्रेसडन में एक प्रयोगशाला की स्थापना की। जनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी ने यांत्रिक कार्य सीखने वालों के चुनाव के लिये मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया। ग्रेटर बर्लिन ट्राम्वेज कम्पनी ने मोटरमैनों के चुनाव में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसन्धान के लिये प्रयोगशाला स्थापित की। महायुद्ध के पश्चात देश में औद्योगिक प्रगति के होने के साथ-साथ औद्योगिक संस्थानों से लगी हुई अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं की स्थापना हुई।

सन् १९२२ में २२ औद्योगिक संस्थानों की अपनी निजी मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालायें थीं। अगले ४ वर्षों में यह संख्या बढ़कर १०० तक पहुंच गई। केवल औद्योगिक संस्थानों में ही नहीं बल्कि विश्वविद्यालयों की प्रयोगशाला में भी औद्योगिक मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अनुसन्धान होने लगे। मनोविज्ञान की इस शाखा में जर्मनी में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुये और कुछ औद्योगिक पत्रिकायें भी निकलने लगीं।

इंगलैंड में औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास

इङ्गलैंड में औद्योगिक मनोविज्ञान के विकास में मुख्य रूप से दो संस्थाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(१) **औद्योगिक स्वास्थ्य अनुसन्धान बोर्ड** (Industrial Health Research Board) —इस संस्था की स्थापना उत्पादन बढ़ाने के तरीकों में खोज करने के लिये और कर्मचारियों की कार्यक्षमता बढ़ाने तथा थकान इत्यादि की समस्याओं को सुलझाने के लिये हुई। सन् १९१८ में इसका नाम औद्योगिक थकान अनुसन्धान बोर्ड (Industrial Fatigue Research Board) था और बाद में इसको उपरोक्त नाम दिया गया। इस संस्था के विकास में इङ्गलैंड के वैज्ञानिक औद्योगिक अनुसंधान विभाग तथा मैडीकल रिसर्च कौंसिल ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस संस्था को सरकारी अनुदान प्राप्त था। इसमें कर्मचारियों के स्वास्थ्य, काम करने के घण्टे तथा भौतिक परिस्थितियाँ, वेतन, पदोन्नति और तबादले आदि के मनोवैज्ञानिक पहलुओं के विषय में महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये गये।

(२) **औद्योगिक मनोविज्ञान का राष्ट्रीय इन्स्टीट्यूट** (National Institute of Industrial Psychology) —इसकी स्थापना औद्योगिक संस्थानों की सहायता से सन् १९२१ में हुई। इसका निर्देशक कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की मनोविज्ञान प्रयोगशाला का अध्यक्ष सी० एस० मायर्स (C. S. Myers) था। इस प्रकार इस संस्था को औद्योगिक संस्थानों और विश्वविद्यालयों दोनों का सहयोग प्राप्त हुआ जिससे इसके द्वारा औद्योगिक मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण अनुसन्धान हुआ।

रूस में औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास

साम्यवादी रूस भी औद्योगिक मनोविज्ञान के विकास में किसी देश से पीछे नहीं रहा क्योंकि रूसी सरकार ने उद्योगों के क्षेत्र में विकास की ओर विशेष ध्यान दिया। सन् १९२० में मास्को में गैस्टेव (Gesteve) के नेतृत्व में श्रम के केन्द्रीय इन्स्टीट्यूट (Central Institute of Labour) की स्थापना हुई। सन् १९०७ में रूस में इस प्रकार के ६० अनुसन्धान केन्द्र थे जिनमें उद्योगों के क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं पर खोजें की जा रही थीं। चार ही वर्ष बाद इन केन्द्रों की संख्या केवल मास्को में ही १०० तक पहुंच गई। ये सब केन्द्र श्रम के केन्द्रीय इन्स्टीट्यूट से लगे हुये थे। इस केन्द्रीय इन्स्टीट्यूट का मुख्य कार्य औज़ारों और मशीनों के प्रयोग तथा

पत्री (file) के प्रयोग के विषय मे अनुसन्धान करना था। अस्तु, इसमें औजारो और मशीनों के विभिन्न प्रकारो मे गुण दोषो का व्यापक अध्ययन किया गया। इसके साथ-साथ कर्मचारियो के कार्य करने की दशाओ और कार्य विधियों के सम्बन्ध मे भी अनुसन्धान किये गये। इस सस्था मे वैज्ञानिक प्रवन्ध के लिए टेलर व्यवस्था का प्रयोग किया जाता था। सन् १६२२ में रूस मे कार्य विश्लेषण और कर्मचारी वरण की समस्याओं के विषय में अनुसन्धान करने के लिये औद्योगिक मनोविज्ञान की प्रयोगशाला की स्थापना हुई। इन समस्याओ के विषय में मास्को विश्वविद्यालय के न्यूरोलोजिकल इन्स्टीट्यूट (Neurological Institute) में भी अनुसन्धान कार्य हो रहा था। साम्यवादी प्रगति के साथ-साथ रूस में उद्योगो के क्षेत्र में मानव सम्बन्धो को वेहतर बनाने के लिये व्यापक अनुसन्धान किये गये क्योंकि साम्यवादी प्रणाली में उद्योगों में मालिक और मजदूर का अन्तर समाप्त कर दिया गया।

अन्य योरोपीय देशों में औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास

योरुप के उपरोक्त मुख्य देशो मे औद्योगिक मनोविज्ञान के विकास के साथ-साथ अन्य देशो में भी इस दिशा में अनुसन्धान प्रारम्भ हुए। हालैंड, वेल्जियम, पोलैंड, इटली, स्पेन, आस्ट्रिया आदि अनेक देशो मे औद्योगिक मनोविज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान की सस्थाओ की स्थापना हुई। स्वीटजरलैंड में जेनेवा मे व्यावहारिक मनोविज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस (International Congress of Applied Psychology) नामक सस्था की स्थापना हुई जिमने व्यावसायिक निर्देशन और चुनाव के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये। इसी समय ज्यूरिख मे भी एक अनुसन्धान सस्था की स्थापना हुई जहां पर उद्योगो और व्यवसायो के क्षेत्रों में प्रशिक्षण और कार्यविधियो आदि के विषय में महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये गये। सन् १६२० मे जेनेवा मे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर औद्योगिक मनोवैज्ञानिको की सभा हुई। सन् १६२१ में बारसीलोना में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दूसरी सभा हुई। इन दोनो सम्मेलनो में व्यावसायिक निर्देशन तथा उद्योगो के विभिन्न क्षेत्र में मनोविज्ञान के प्रयोग के विषय में विचार विमर्श किया गया। इस प्रकार का तीसरा सम्मेलन सन् १६२२ में मिलान में हुआ। इस सम्मेलन मे कार्य विश्लेषण, दुर्घटनाओं के रोकने मे मनोविज्ञान और दैहिक शास्त्र का महत्व तथा टेलर की योजना आदि पर विचार किया गया। सन् १६३१ में मास्को में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें औद्योगिक विकास और कर्मचारियो की आर्थिक उन्नति के विभिन्न पहलुओ पर विचारविमर्श किया गया।

एशिया में औद्योगिक मनोविज्ञान

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि योरुप के देशो में वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में औद्योगिक मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो में अनुसन्धान की लहर सी आ गई, अनेक प्रयोगशालाओं और अन्तर्राष्ट्रीय समितियों की स्थापना हुई तथा दर्जनों ग्रन्थ और पत्रिकाए प्रकाशित हुई। औद्योगिक मनोविज्ञान के इस विकास मे लगभग

सब कहीं विश्वविद्यालयों और औद्योगिक संस्थानों, सरकार और उद्योगपतियो ने मिल-जुलकर कार्य किया। एशिया के देशों में औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास योरूप के देशों से बहुत बाद में हुआ किन्तु जापान इस बात का अपवाद है क्योंकि वहाँ पर उद्योग के क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति हुई और इसलिये औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी योरूपीय देशों के साथ ही साथ अनुसन्धान प्रारम्भ हो गये। सन् १९२१ में जापान में औद्योगिक दक्षता के इन्स्टीट्यूट (Institute of Industrial Efficiency) की स्थापना हुई।

भारत में औद्योगिक मनोविज्ञान

भारतवर्ष में औद्योगिक मनोविज्ञान की ओर ध्यान देश के स्वतन्त्र होने के बाद ही दिया गया। विश्वविद्यालयों में मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं की स्थापना होने के साथ-साथ औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में कुछ अनुसन्धान होने लगे। क्रमश देश में बड़े-बड़े उद्योगों के विकास के साथ-साथ और श्रम कल्याण आन्दोलन के व्यापक रूप लेने के कारण अनेक औद्योगिक संस्थाओं में भी मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों को प्रोत्साहन दिया गया। बहुत बड़े-बड़े उद्योगों में कर्मचारियों की भरती के लिये मनोवैज्ञानिकों की सहायता ली गई। किन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य सेना में उपयुक्त व्यक्तियों के चुनाव के क्षेत्र में हुआ। सेना, नौ-सेना और वायु-सेना में सभी भर्तियों के लिये मनोवैज्ञानिकों की सहायता अनिवार्य रूप से ली जाने लगी। देश में सरकार की ओर से भी अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं की स्थापना हुई जिनमें व्यावसायिक निर्देशन के विषय में महत्वपूर्ण कार्य हुआ। उत्तर-प्रदेश में इलाहाबाद की मनोविज्ञान शाला में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से व्यावसायिक निर्देशन का कार्य किया जाता है। लगभग पच्चीस सरकारी विद्यालयों में स्कूल मनोवैज्ञानिक है जो कि विद्यार्थियों को अन्य प्रकार की मनोवैज्ञानिक सेवा देने के साथ-साथ व्यावसायिक निर्देशन में भी सहायता देते हैं। बड़े-बड़े उद्योगों में विज्ञापनों में मनोवैज्ञानिक की विशेष रूप से सहायता ली जाती है। उद्योगपतियों ने न केवल कर्मचारियों की भर्ती में बल्कि उत्पादित वस्तुओं के विक्रय में भी व्यापक रूप से मनोवैज्ञानिक के परामर्श पर अमल किया है। इस प्रकार देश में क्रमश औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास हो रहा है। किन्तु योरूप के देशों को देखते हुए यह विकास अभी अपूर्ण है। पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी भाषा के माध्यम से औद्योगिक मनोविज्ञान पर अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं किन्तु ये मौलिक अनुसन्धान से सम्बन्धित न होकर केवल पाठ्य पुस्तकें मात्र हैं। औद्योगिक मनोविज्ञान से सम्बन्धित कोई भी पत्रिका भारत में प्रकाशित नहीं होती। विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाओं में इस क्षेत्र में बहुत कम अनुसन्धान किये जाते हैं। औद्योगिक संस्थाओं में भी केवल गिने चुने उद्योगों में ही मनोवैज्ञानिकों की सलाह ली जाती है। अस्तु, इस दृष्टि से देश पश्चिम के देशों से बहुत पिछड़ा हुआ है। किन्तु यह पिछड़ापन देश के सामान्य पिछड़ेपन से सम्बद्ध है। अस्तु, अन्य दिशाओं में प्रगति होने के साथ-साथ इस दिशा में भी प्रगति की आशा

की जा सकती है। नई पीढ़ी के पढ़े लिखे उद्योगपति अपने औद्योगिक संस्थानों में काम करने की भौतिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों को सुधारने, विज्ञापन, वस्तुओं के क्रय-विक्रय, कर्मचारी वरण, भृत्ति भुगतान आदि में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग कर रहे हैं। अस्तु, भारत में औद्योगिक मनोविज्ञान का भविष्य उज्ज्वल है।

औद्योगिक मनोविज्ञान क्या है ?

औद्योगिक मनोविज्ञान, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो कि औद्योगिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करती है।

मनोविज्ञान की शाखा

मनोविज्ञान व्यवहार का विधायक विज्ञान है। यह व्यवहार सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक इत्यादि विभिन्न क्षेत्रों में दिखलाई पड़ता है। इन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में मानव व्यवहार का अध्ययन करने के लिये आधुनिक काल में मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं का विकास हुआ है। उदाहरण के लिये शिक्षा के क्षेत्र में मानव व्यवहार का अध्ययन करने के लिये शिक्षा मनोविज्ञान की स्थापना हुई। इसी प्रकार सामाजिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करने के लिये समाज मनोविज्ञान का सूत्रपात हुआ। आधुनिक युग औद्योगिक युग है। प्रत्येक प्रगतिशील देश में उद्योगों का क्षेत्र क्रमशः बढ़ता जा रहा है। उद्योगों में मशीनों के अलावा कर्मचारी, प्रबन्धक और मालिकों के रूप में मनुष्य काम करते हैं। केवल मशीनों की सहायता से उद्योग नहीं चलाये जा सकते, उनमें मनुष्यों का योगदान अनिवार्य है। जहाँ कहीं मनुष्य होंगे वहाँ पर उनके आपसी सम्बन्धों का उनके व्यवहार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। उद्योग के क्षेत्र में मानवीय सम्बन्ध ठीक न होने पर हड़ताल और तालेबन्दी के रूप में जो कठिनाइयाँ सामने आती हैं, उनका समस्त देश की आर्थिक स्थिति पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। विज्ञान के इस युग में देश का भविष्य औद्योगिक विकास पर निर्भर होने के कारण मानव व्यवहार का यह क्षेत्र और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। अस्तु, इस क्षेत्र में व्यवहार के सिद्धान्तों का विशेष अध्ययन करने के लिये और उनके सम्बन्ध में अनुसन्धान के लिये औद्योगिक मनोविज्ञान की एक पृथक् शाखा ही बन गयी है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान की शाखा

मनोविज्ञान केवल सैद्धान्तिक विज्ञान नहीं है। जहाँ उसमें विभिन्न क्षेत्रों में मानव व्यवहार के सिद्धान्तों का पता लगाया जाता है वहाँ इन सिद्धान्तों का प्रयोग करके मानव जीवन को बेहतर बनाने का भी प्रयास किया जाता है। इस प्रकार मनोविज्ञान के दो पहलू हो जाते हैं—सैद्धान्तिक और व्यावहारिक। औद्योगिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के व्यावहारिक पहलू में आता है क्योंकि यह मूल रूप से व्यावहारिक विज्ञान है। इसकी उत्पत्ति उद्योगों में मानव सम्बन्धों को बेहतर बनाने के लिये हुई है। इसकी द्वारा उद्योग के क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्तियों की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया जाता है और औद्योगिक परि-

स्थितियो मे उठने वाली कठिनाइयों का सुलझाव किया जाता है। आधुनिक काल मे बड़े-बड़े उद्योगो मे औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र मे आने वाली समस्याओं का अध्ययन करने के लिये मनोवैज्ञानिको की नियुक्ति की जाती है। औद्योगिक मनोविज्ञान के इतिहास पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट मालूम पडता है कि इसके क्षेत्र मे जहाँ एक ओर विश्वविद्यालयो मे अनुसन्धान हुये हैं वहा दूसरी ओर बड़े-बड़े उद्योगों मे उद्योग की वास्तविक परिस्थितियो मे अधिक महत्वपूर्ण अनुसन्धान हुये हैं। अत. औद्योगिक मनोविज्ञान को मनोविज्ञान के पहलू व्यावहारिक मनोविज्ञान की शाखा कहना अधिक उपयुक्त है। औद्योगिक मनोविज्ञान की निम्नलिखित कुछ परिभाषाओं के स्पष्टीकरण से भी उसकी प्रकृति के विषय मे यह बात स्पष्ट होती है।

औद्योगिक मनोविज्ञान की परिभाषा

औद्योगिक मनोविज्ञान की कुछ परिभाषायें निम्नलिखित है —

(१) **ब्लम द्वारा परिभाषा**—मनोवैज्ञानिक ब्लम के अनुसार "औद्योगिक मनोविज्ञान व्यवसाय और उद्योग मे मानव सम्बन्धो से सम्बन्धित समस्याओं के प्रति मनोवैज्ञानिक तथ्यो और सिद्धान्तो का प्रयोग या विस्तार है।"[4] इस परिभाषा मे ब्लम ने यह दिखलाया है कि औद्योगिक मनोविज्ञान मे व्यवसाय और उद्योग के क्षेत्र मे मानव सम्बन्धो मे मनोवैज्ञानिक तथ्यो और सिद्धान्तो का प्रयोग किया जाता है। इनका प्रयोग करके औद्योगिक मनोवैज्ञानिक उद्योग के क्षेत्र मे उठने वाली अनेक समस्याओं को सुलझाता है। जैसा कि ब्लम ने आगे कहा है, औद्योगिक मनोविज्ञान हमारे औद्योगिक समाज और आर्थिक व्यवस्था के सन्मुख उपस्थित होने वाली समस्याओं के गतिशील हल उपस्थित करता है।

(२) **हैरेल का मत**—मनोवैज्ञानिक हैरेल ने अपनी पुस्तक Industrial Psychology मे औद्योगिक मनोविज्ञान की परिभाषा करते हुये लिखा है, "औद्योगिक मनोविज्ञान उद्योग और व्यवसाय मे काम करते हुये लोगो का अध्ययन है।"[5] इस प्रकार हैरेल के अनुसार औद्योगिक मनोवैज्ञानिक वास्तविक औद्योगिक और व्यावसायिक परिस्थितियो मे काम करते हुये लोगो के व्यवहार का अध्ययन करता है। अन्य स्थान पर हैरेल ने यह स्पष्ट कर दिया है कि औद्योगिक परिस्थितियो अथवा व्यवसायों मे औद्योगिक मनोविज्ञान की विषय वस्तु सदैव व्यक्ति ही रहता है क्योकि व्यक्ति ही मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय है। जिस प्रकार समाज मनोविज्ञान सामाजिक

---

4. "Industrial psychology is simply the application or extension of psychological facts and principles to the problems concerning human relations in business and industry." —Blum, M. L., *Industrial Psychology and its Social Foundation*, Harper & Bros New York (1949), p. 3

5. "Industrial psychology is the study of people at work in industry and business." —Harrell, T. W. *Industrial Psychology*, Cal. (1964), p. 1.

परिस्थितियों में व्यक्ति का अध्ययन करता है उसी तरह औद्योगिक मनोविज्ञान औद्योगिक परिस्थितियों में व्यक्ति का अध्ययन करता है। हैरेल के अपने शब्दों में, "औद्योगिक मनोविज्ञान अनेक वस्तुओं का एक जटिल अध्ययन है, परन्तु वह सदैव व्यक्तियों अथवा कार्य की स्थिति में समूहों के रूप में लोगों का अध्ययन है।"[6] कहना न होगा कि अपने अध्ययन में औद्योगिक मनोवैज्ञानिक सदैव व्यक्तियों पर ही ध्यान केन्द्रित करता है।

(३) स्मिथ द्वारा परिभाषा—औद्योगिक मनोविज्ञान की व्याख्या करते हुये स्मिथ ने लिखा है, "व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये औद्योगिक मनोविज्ञान की परिभाषा उन लोगों के आचार के अध्ययन के रूप में जा सकती है जो जीविकोपार्जन के लिये अपने हाथों अथवा मस्तिष्कों के कार्य का विनिमय करते हैं।"[7] औद्योगिक मनोविज्ञान की इस परिभाषा में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इसमें मानसिक अथवा शारीरिक किसी भी प्रकार से उद्योगों में काम करने वाले लोगों का अध्ययन किया जाता है। यहाँ पर औद्योगिक मनोविज्ञान को आचार (Conduct) का अध्ययन कहा गया है। इस परिभाषा में आचार के स्थान पर व्यवहार शब्द का प्रयोग अधिक उत्तम है क्योंकि वास्तव में मनोविज्ञान व्यवहार का ही अध्ययन है आचार का अध्ययन नीतिशास्त्र का विषय है।

संक्षेप में, औद्योगिक मनोविज्ञान की परिभाषा करने में यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें औद्योगिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है और औद्योगिक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने के विषय में अनुसन्धान किया जाता है। यहाँ पर यह याद रखना आवश्यक है कि व्यवहार के अध्ययन में व्यक्तियों के बाहरी व्यवहार तथा आन्तरिक अनुभूतियाँ दोनों ही शामिल हैं।

औद्योगिक मनोविज्ञान और सामान्य मनोविज्ञान
(Industrial Psychology and General Psychology)

मनोविज्ञान व्यवहार का विधायक विज्ञान है। यहाँ पर व्यवहार शब्द को अत्यन्त व्यापक अर्थों में लिया गया है। इसमें वस्तुगत और आत्मगत मानव व्यवहार के साथ-साथ उच्च स्तर के पशुओं का व्यवहार भी सम्मिलित है। मानव व्यवहार में मनुष्य की सामान्य और असामान्य सभी प्रकार की दशाओं, सामाजिक, औद्योगिक कानूनी सभी परिस्थितियों और बालक, किशोर तथा वृद्ध सभी अवस्थाओं में व्यवहार सम्मिलित है। मनोविज्ञान परिवेश के प्रसंग में इन सभी का अध्ययन करता है।

6. "Industrial psychology is a complicated study of a number of things, but it is always primarily the study of people—as individuals or in group-in the work situation." —Ibid.

7. "For the practical purpose Industrial psychology may be defined as the study of conduct for those who exchange the work of their hands and brains for the means to live". —Smith. M. *An Introduction to Industrial Psychology*. New York, (1948), pp. 9-10

मनोविज्ञान विधायक विज्ञान (Positive science) है। उसमें तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। उसमें व्यवहार में कार्य कारण सम्बन्धों का पता लगाया जाता है। उसमें वैज्ञानिक विधियों के द्वारा व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान मानव व्यवहार के सिद्धान्तों का पता लगाता है और कार्य कारण सम्बन्धों की खोज के आधार पर व्यवहार के विषय में भविष्यवाणी करता है। सामान्य मनोविज्ञान मनोविज्ञान की सबसे अधिक विस्तृत शाखा है बल्कि उसको शाखा न कहकर पहलू कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। इसमें मनोविज्ञान के सभी क्षेत्रों के सामान्य सिद्धान्त आ जाते हैं। उदाहरण के लिये इसमें सीखना, चिन्तन, स्मृति, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, संवेग, भाव और व्यक्तित्व आदि मानव व्यवहार की सभी प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इसमें मानव व्यवहार के मूलाधारों जैसे अनुक्रिया यन्त्र और स्नायु संस्थान, चेतना के विभिन्न स्तर और प्रेरणा इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। इसमें मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का भी विवेचन किया जाता है। यह व्यावहारिक मनोविज्ञान से इस अर्थ में भिन्न है कि इसके विवेचन सैद्धान्तिक होते हैं जबकि व्यावहारिक मनोविज्ञान में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का व्यावहारिक रूप में प्रयोग करने पर जोर दिया जाता है।

सामान्य मनोविज्ञान क्या है

सामान्य मनोविज्ञान की उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि औद्योगिक मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान से भिन्न है। इनमें मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं —

(१) **प्रकृति का अन्तर**—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, यह व्यावहारिक मनोविज्ञान की शाखा है। सामान्य मनोविज्ञान के विरुद्ध इसमें व्यावहारिक पहलू पर अधिक जोर दिया जाता है।

सामान्य मनोविज्ञान से अन्तर

(२) **क्षेत्र का अन्तर**—इसका क्षेत्र सामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र से भिन्न और सीमित है। जबकि सामान्य मनोविज्ञान में सभी परिस्थितियों में मानव व्यवहार का सामान्य अध्ययन सम्मिलित है, औद्योगिक मनोविज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र केवल औद्योगिक और व्यावसायिक परिस्थितियों तक ही सीमित है।

(३) **दृष्टिकोण का अन्तर**—सामान्य मनोविज्ञान और औद्योगिक मनोविज्ञान के दृष्टिकोण में अन्तर है। पहले का दृष्टिकोण सैद्धान्तिक और दूसरे का व्यावहारिक है।

उपरोक्त अन्तर के बावजूद सामान्य मनोविज्ञान और औद्योगिक मनोविज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध है। औद्योगिक मनोविज्ञान में मनोवैज्ञानिक सामान्य मनोविज्ञान के निष्कर्षों का औद्योगिक परिस्थितियों में प्रयोग करता है। उदाहरण के लिये सीखना, प्रत्यक्षीकरण और ध्यान, स्मृति और साहचर्य, चिन्तन और तर्क इत्यादि मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में सामान्य मनोविज्ञान के निष्कर्षों

सामान्य मनोविज्ञान से सम्बन्ध

का औद्योगिक परिस्थितियो मे इन प्रक्रियाओ से सम्बन्धित कार्यों को बेहतर बनाने के लिये प्रयोग किया जाता है। विज्ञापन के क्षेत्र मे रुचि और ध्यान के मनोविज्ञान का व्यापक प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार औद्योगिक मनोवैज्ञानिक के लिये सामान्य मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक है यद्यपि इसकी उल्टी बात सत्य नही है अर्थात् सामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र मे काम करने वाले वैज्ञानिक के लिये औद्योगिक मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक नही है।

औद्योगिक मनोविज्ञान की प्रकृति

(Nature of Industrial Psychology)

औद्योगिक मनोविज्ञान की परिभाषा के विवेचन से औद्योगिक मनोविज्ञान की प्रकृति अथवा स्वरूप स्पष्ट होता है। औद्योगिक मनोविज्ञान एक विज्ञान है। उसका स्वरूप वैज्ञानिक है। उसकी प्रकृति वैज्ञानिक है। वह वैज्ञानिक पद्धतियो से मानव व्यवहार के सामाजिक पहलू का अध्ययन करता है। वह उसी प्रकार एक विज्ञान है जिस प्रकार सामान्य मनोविज्ञान अथवा समाजशास्त्र को विज्ञान कहा जाता है। औद्योगिक मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार के अध्ययन के साथ-साथ समूह गतिशास्त्र (Group Dynamics) का भी अध्ययन करता है। इस अध्ययन का भी उद्देश्य तथ्यो की खोज करके उनमे कार्यकारण सम्बन्ध स्थापित करना और इन सम्बन्धो के आधार पर सामान्य नियम बनाकर उनको मूर्त (Concrete) सामाजिक समस्याओ के सुलझाव मे प्रयोग करना है।

विज्ञान की परिभाषा

औद्योगिक मनोविज्ञान एक विज्ञान है, इस बात की परीक्षा करने के लिये सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि विज्ञान क्या है ? विज्ञान एक सीमित क्षेत्र का व्यवस्थित अध्ययन है। विज्ञान कहलाने के लिये किसी भी अध्ययन का क्षेत्र सीमित (Limited) होना आवश्यक है और उसका अध्ययन व्यवस्थित (Systematic) होना चाहिये। परन्तु विषय सामग्री के कारण ही किसी विषय को विज्ञान नही कहा जा सकता। विज्ञान कहलाने के लिये आवश्यक है वैज्ञानिक पद्धति। वास्तव मे वैज्ञानिक पद्धति ही विज्ञान है। पद्धति के कारण ही विज्ञान कला तथा दर्शन से भिन्न है। विज्ञान की विशेषता उसकी विषय सामग्री मे न होकर उसकी पद्धति मे है।

वैज्ञानिक पद्धति

अत. विज्ञान के स्वरूप को समझने के लिये वैज्ञानिक पद्धति को जानना आवश्यक है। वैज्ञानिक पद्धति मे एक सीमित क्षेत्र की विषय सामग्री का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। इस पद्धति मे बडे धैर्य, साहस, कठोर परिश्रम, रचनात्मक कल्पना शक्ति (Creative Imagination) और तटस्थता (Objectivity) की जरूरत होती है। इस वैज्ञानिक अभिवृत्ति या भावना (Scientific attitude or Spirit) के बिना कोई भी व्यक्ति वैज्ञानिक पद्धति से फायदा नही उठा सकता। वैज्ञानिक पद्धति से काम आरम्भ करने से पहले अनुसधान करने वाले को उस समस्या

की सूक्ष्म व्याख्या करनी चाहिये जिस पर वह खोज करना चाहता है जितनी ही अधिक स्पष्ट होगी उतनी ही अधिक खोज करने मे ■ वैज्ञानिक पद्धति में मुख्य कदम (Steps) निम्नलिखित हैं।

(१) निरीक्षण (Observation)—वैज्ञानिक पद्धति मे पहला ५ की विषय सामग्री का सूक्ष्म और सावधानी से निरीक्षण करना है। इस निरीक्षण मे अनुसार यन्त्रों (Apparatus) से सहायता लेनी पड़ती है। इन यन्त्रो का सही होना बड़ा आवश्यक है।

(२) निरीक्षण को लिखना (Recording)—वैज्ञानिक पद्धति का दूसरा कदम इस निरीक्षण को सावधानी से लिखना है। इसमें निष्पक्ष तटस्थता बड़ी जरूरी है।

(३) वर्गीकरण (Classification)—अब एकत्रित सामग्री का वर्गीकरण और सगठन करना होता है। यह बड़ा ही गम्भीर कदम है। कार्ल पियरसन के शब्दो मे, "तथ्यो का वर्गीकरण, उनके क्रम का ज्ञान और उनके सापेक्षिक महत्व का परिचय प्राप्त करना ही विज्ञान का काम है।"[3] वर्गीकरण इस तरह किया जाता है जिससे बिखरे हुये तत्वो मे एक सम्बन्ध और प्रतिमान (Pattern) दिखाई पड़े। इस तरह विषय सामग्री को तर्क के आधार पर व्यवस्थित कर दिया जाता है।

(४) साधारणीकरण (Generalisation)—वैज्ञानिक पद्धति मे चौथा कदम वर्गों मे बाँटी हुई सामग्री के प्रतिमान के आधार पर सामान्य नियम निकालना अथवा साधारणीकरण करना है। यही सामान्य नियम वैज्ञानिक नियम (Scientific Law) कहलाता है।

(५) परीक्षण (Verification)—वैज्ञानिक पद्धति सामान्य नियम बनाकर ही नही रुक जाती है। इन सामान्य सिद्धान्तो का परीक्षण होना भी जरूरी है। वैज्ञानिक सिद्धान्तो की परीक्षा द्वारा जाच की जा सकती है। यह प्रामाणिकता उनकी आवश्यक शर्त है। इसके बिना उनको वैज्ञानिक नही कहा जा सकता।

विज्ञान के मूल तत्व

वैज्ञानिक पद्धति के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि विज्ञान कहलाने के लिये किसी अध्ययन मे किन-किन बातो की जरूरत है। विज्ञान के ये जरूरी तत्व या विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(१) वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method)—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, किसी विज्ञान को उसकी वैज्ञानिक सामग्री के कारण नही बल्कि वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग के कारण विज्ञान कहा जाता है।

(२) तथ्यात्मकता (Factuality)—विज्ञान तथ्यो का अध्ययन है। वह यथार्थ सत्यो की खोज करता है। उसकी विषय सामग्री आदर्श नही बल्कि तथ्य (Facts) हैं।

3 "The classification of facts, the recognition of their sequence and relative significance is the function of science." —Karl Pearson

(३) सार्वभौम एकता (Universality)—वैज्ञानिक सिद्धान्त सार्वभौम होते हैं। वे सभी देशों में सभी काल में खरे उतरते हैं।

(४) प्रामाणिकता (Verecity)—वैज्ञानिक नियम प्रामाणिक होते हैं। उनकी प्रामाणिकता की कभी भी जाच की जा सकती है। उनको जितनी बार जाच की जायेगी वे उतनी ही बार सच निकलेंगे।

(५) कार्य कारण सम्बन्धों की खोज (Discovery of cause-effect Relationships)—विज्ञान अपनी विषय सामग्री में कार्य कारण के सम्बन्धों की खोज करता है और इन सम्बन्ध में सार्वभौम तथा प्रामाणिक नियम पेश करता है।

(६) भविष्यवाणी करने की शक्ति (Predictability)—कार्य कारण सम्बन्धो के बारे में सार्वभौम और प्रामाणिक नियमों के आधार पर विज्ञान उस विषय पर भविष्यवाणी कर सकता है। कार्य-कारणवाद (Causality) में विश्वास पर ही विज्ञान की नीव टिकी हुई है। वैज्ञानिक यह मानता है कि "क्या है" के आधार पर "क्या होगा" का निश्चय किया जा सकता है क्योंकि कार्य कारण का नियम सार्वभौम और अपरिवर्तनीय है।

औद्योगिक मनोविज्ञान विज्ञान है

उपरोक्त छः तत्वो के आधार पर औद्योगिक मनोविज्ञान की परीक्षा करने से यह मालूम होगा कि औद्योगिक मनोविज्ञान में एक विज्ञान के सभी आवश्यक तत्व मिलते हैं।

(१) **औद्योगिक मनोविज्ञान वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करता है**—औद्योगिक मनोविज्ञान की सभी पद्धतियाँ वैज्ञानिक हैं। औद्योगिक मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक विधि (Experimental method) का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाता है। प्रयोगात्मक विधि में अध्ययन के विषय को निश्चित परिस्थितियों में रखकर उसका अध्ययन किया जाता है। सूक्ष्म अवलोकन के बाद औद्योगिक मनोवैज्ञानिक तथ्यों को लिख डालता है और उनका वर्गीकरण करके साधारणीकरण के द्वारा सामान्य नियम निकालता है। ये ही सामान्य नियम औद्योगिक मनोविज्ञान के सिद्धान्त हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि औद्योगिक मनोविज्ञान में मनोवैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। प्रयोग के अतिरिक्त औद्योगिक मनोविज्ञान में अपनायी जाने वाली अन्य पद्धतियाँ इतनी अधिक वैज्ञानिक नहीं हैं, परन्तु फिर भी उनको अधिकाधिक वैज्ञानिक और तथ्यात्मक रूप देने का प्रयास किया गया है और इसमें पर्याप्त सफलता मिली है। विशेष पद्धति के गुण दोष के विषय में औद्योगिक मनोवैज्ञानिकों में चाहे जितना भी विवाद क्यों न हो परन्तु इस विषय पर सभी एक मत हैं कि औद्योगिक मनोविज्ञान में अध्ययन की पद्धति वैज्ञानिक ही होनी चाहिये।

(२) **औद्योगिक मनोविज्ञान तथ्यात्मक है**—औद्योगिक मनोविज्ञान व्यवहार का तथ्यात्मक (Factual) अध्ययन करता है। औद्योगिक मनोवैज्ञानिक के निर्णय तटस्थ और वस्तुवादी (Objective) होते हैं। वह व्यवहार पर *नियामक विज्ञान के*

समान निर्णय नहीं देता। वह व्यवहार का वर्णन करता है और उसके सामान्य नियमों की खोज करता है। अतः उसका सम्बन्ध मूल्यों (Values) से न होकर तथ्यों (Facts) से है।

(३) **औद्योगिक मनोविज्ञान के सिद्धान्त सार्वभौम हैं**—औद्योगिक मनोविज्ञान के सिद्धान्त, परिस्थितियाँ एक सी रहने पर, सभी देश काल में एक से होते हैं। औद्योगिक मनोविज्ञान के नियम सभी देशों में और सभी समय पर एक से रहते हैं चाहे विशिष्ट मानव प्राणियों के मनोविज्ञान में कितना भी अन्तर क्यों न हो। उदाहरण के लिए यह नियम सभी देश काल में खरा उतरेगा कि औद्योगिक संस्थानों में नौतिगत्ता और काम करने की परिस्थितियों का उत्पादन की मात्रा और गुण पर प्रभाव पड़ता है।

(४) **औद्योगिक मनोविज्ञान के सिद्धान्त प्रामाणिक हैं**—इस प्रकार परीक्षण (Verification) और पुनः परीक्षण (Reverification) करने पर औद्योगिक मनोविज्ञान के नियम सदैव सही सिद्ध होते हैं। उनकी प्रामाणिकता की कोई भी जांच कर सकता है। उदाहरण के लिए श्रम तनावों के मूल में सदैव कुछ असन्तोष, समायोजन और दमन आदि होते हैं। इस तथ्य की कहीं भी परीक्षा की जा सकती है।

(५) **औद्योगिक मनोविज्ञान कार्य-कारण सम्बन्धों की व्याख्या करता है**—औद्योगिक मनोविज्ञान व्यवहार के नियमों का पता लगाता है और उनमें कार्य-कारण सम्बन्धों की व्याख्या करता है। उदाहरण के लिये उद्योगों में मानव सम्बन्ध विज्ञापन और विकास का मनोविज्ञान आदि के विषय में औद्योगिक मनोविज्ञान कार्य-कारण सम्बन्धों की खोज करता है और बड़े उपयोगी नियम बतलाता है। इस प्रकार औद्योगिक मनोविज्ञान व्यवहार के 'क्या' के साथ-साथ 'कैसे' का पता लगाता है।

(६) **औद्योगिक मनोविज्ञान भविष्यवाणी (Prediction) कर सकता है**—कार्य-कारण सम्बन्धों की खोज करने के कारण औद्योगिक मनोविज्ञान मानव व्यवहार के सम्बन्ध में भविष्यवाणी कर सकता है और यह भविष्यवाणी सही भी उतरेगी। इस प्रकार आजकल सभी प्रगतिशील देशों में विभिन्न औद्योगिक समस्याओं को सुलझाने के लिये औद्योगिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा की गई भविष्यवाणी का सहारा लिया जाता है और इससे बड़ा लाभ होता है।

उपरोक्त विवेचन से यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि औद्योगिक मनोविज्ञान एक यथार्थ विज्ञान (Exact Science) है। परन्तु इससे यह अर्थ निकालना ठीक नहीं होगा कि उसमें भौतिक विज्ञान (Physical Science) के समान यथार्थता है। वास्तव में सभी प्रकार के विज्ञानों से एक सी यथार्थता की आशा करना भारी भूल है। किसी भी विज्ञान की यथार्थता कुछ न कुछ मात्रा में उसकी विषय सामग्री पर निर्भर होती है। स्पष्ट है कि औद्योगिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करने वाला विज्ञान भौतिक वस्तुओं का अध्ययन करने वाले विज्ञानों के समान

यथार्थ नही हो सकता, क्योकि मानव व्यवहार एक जटिल, परिवर्तनशील और गति-शील विषय है। अतः औद्योगिक मनोविज्ञान को यथार्थ विज्ञान कहते समय उसकी यथार्थता की सीमाओं को ध्यान मे रखना आवश्यक है, यद्यपि ये सीमायें कठोर और पूरी तरह निश्चित नही की जा सकती। नवीन पद्धतियो के साथ-साथ औद्योगिक मनोविज्ञान की यथार्थता बढती जायेगी।

औद्योगिक मनोविज्ञान का क्षेत्र
(Scope of Industrial Psychology)

औद्योगिक मनोविज्ञान के कार्य क्षेत्र को बतलाते हुये हैरेल ने निम्नलिखित बाते कही है[9] :—

(१) औद्योगिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध कार्य के परिवेश के भौतिक पहलू से है। उदाहरण के लिये प्रकाश और तापक्रम और उनका कार्य और सुरक्षा पर प्रभाव।

(२) यह अधिकतर मानव सम्बन्धो मे सिद्धान्तो और व्यवहारो का अध्ययन है।

(३) यह कार्य मे उच्च नीतिमत्ता और उत्साह को प्रभावित करने वाली अभिवृत्तियो और प्रेरणाओं तथा ऊब उत्पन्न करने वाली उकताहट के कारणो का अध्ययन है।

(४) यह कार्य मे मानसिक स्वास्थ्य और गडबडाये हुये तथा अस्पष्ट मस्तिष्क लोगो के मानसिक स्वास्थ्य को वापिस लाने मे सहायता करने वाली विधियो का अध्ययन है।

(५) यह सुपरवाइजर और उसके आधीन व्यक्तियो के सम्बन्धो और औद्योगिक सघर्ष तथा प्रबन्धको और श्रमिको के सहयोग उत्पन्न करने वाले कारको का अध्ययन है।

हैरेल के उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि औद्योगिक मनोविज्ञान मे उद्योग के भौतिक परिवेश के अतिरिक्त उद्योग मे मानव सम्बन्धो के सिद्धान्तो, मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने वाले कारको और उच्च नीतिमत्ता के आधारो का अध्ययन किया जाता है। सक्षेप मे, औद्योगिक मनोविज्ञान का क्षेत्र निम्नलिखित है :—

(१) उद्योग के आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलू (Economic Social and Psychological Aspects of Industry)—औद्योगिक मनोविज्ञान सम्पूर्ण औद्योगिक परिस्थिति मे मानव व्यवहार से सम्बन्धित है। इस प्रकार वह औद्योगिक परिस्थितियो मे मानव व्यवहार के आर्थिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक सभी पहलुओं का अध्ययन करता है। आधुनिक काल मे उद्योगो मे अनेक आर्थिक कारकों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है। औद्योगिक परिस्थितियो मे श्रमिको के सामूहिक जीवन के विभिन्न कारको का भी श्रमिको के मनोविज्ञान पर प्रभाव पड़ता है। औद्योगिक मनोविज्ञान इन सभी का अध्ययन करता है।

9. Harrell, T. W., *Industrial Psychology*, Cal. (1965), p 1

(२) कार्य परिवेश के भौतिक पहलू का अध्ययन (Study of the Physical Aspect of Work Environment)—उद्योग मे काम करने की परिस्थितियो का मजदूरों पर बडा प्रभाव पडता है। यदि काम करने की परिस्थितियां अच्छी हुई तो मजदूर स्वस्थ और सन्तुष्ट रहते हैं। यदि काम करने की परिस्थितिया अच्छी न हुई तो कारखानों मे दुर्घटनायें बढ जाती हैं और मजदूरो मे असन्तोष फैलने लगता है। काम करने की परिस्थितियों मे अनेक बातें आती हैं, जैसे शुद्ध हवा और पानी का प्रबन्ध, आवश्यक विश्राम का प्रबन्ध, कम शोर, अच्छा वातावरण, अच्छा प्रकाश तथा मालिक मजदूरों के अच्छे सम्बन्ध। इन सभी मे मनोविज्ञान के निर्देशन की आवश्यकता पडती है। उदाहरण के लिये प्रकाश किस ओर से आना चाहिये और कितना आना चाहिये, इस बारे मे मनोवैज्ञानिक की राय लेना जरूरी है। कारखाने की दीवारों, फर्शों, छतों और मशीनों के रग का भी मजदूरों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। प्रयोगो से यह देखा गया है कि रगों की अच्छी व्यवस्था होने पर दुर्घटनाये कम होती हैं और कारखाने का वातावरण अधिक स्वस्थ रहता है। कारखाने की मशीनों, दीवारो, फर्शों और छतों की रगाई किस मौसम मे कैसी होनी चाहिये, यह मनोविज्ञान का विषय है। इस प्रकार औद्योगिक मनोविज्ञान काम करने की भौतिक परिस्थितियों का अध्ययन करता है।

(३) मानव सम्बन्धों के सिद्धान्त (Principles of Human Relationships)—उद्योगों मे मशीनों का चाहे जितना भी अधिक प्रयोग किया जाय, मानवीय तत्व के महत्व से इकार किया जा सकता। बडी से बडी मशीन को चलाने के लिये किसी न किसी इजीनियर की आवश्यकता होती है और इजीनियर एक मनुष्य है तथा इसलिये कारखाने को चलाने मे उसके मनोवैज्ञानिक तत्वो का महत्व अनिवार्य है। उसका कारखाने के मालिक से कैसा सम्बन्ध है इस पर उसके कार्य की नीतिमत्ता बहुत कुछ निर्भर करती है। पिछली शताब्दी में जबकि उद्योगपति डिक्टेटर जैसा व्यवहार करते थे और श्रमिक को कारखाने के एक पुर्जे से अधिक कुछ नही समझते थे, उस समय उद्योगो मे नीतिमत्ता अच्छी नही थी। जिन उद्योगपतियों ने श्रमिको से सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार किया उनके कारखानो मे निश्चय ही अधिक अच्छा काम दिखलाई पडा। वर्तमानकाल मे, जब कि लगभग सभी बडे उद्योगो में मजदूर सघ बन चुके हैं, श्रमिको से चाहे जैसा व्यवहार किया जा सकता है। जो उद्योगपति श्रमिको को सन्तुष्ट नहीं रख सकता अर्थात् उनसे अच्छे सम्बन्ध नहीं बनाये रख सकता उसकी सफलता बहुत कम दिन चल सकती है। औद्योगिक मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान होने के नाते औद्योगिक परिस्थितियो मे मानव सम्बन्धों को बेहतर बनाने के सिद्धान्तो का पता लगाता है जिनकी सहायता से विभिन्न उद्योगो मे यथार्थ मानव सम्बन्ध बेहतर बनाये जा सकते हैं। आधुनिक काल मे तालेबन्दी और हडतालों की समस्याओं मे मूल रूप से बिगडे हुये मानव सम्बन्ध ही हैं। औद्योगिक मनोविज्ञान इन समस्याओं को सुलझाने मे सहायता करता है।

(४) अभिवृत्तियों और प्रेरणाओं का अध्ययन (Study of Aptitudes and Motives)—अन्य प्रकार के व्यवहार के समान औद्योगिक परिस्थिति मे व्यवहार भी अभिवृत्तियो (Attitudes) और प्रेरणाओ (motives) से निर्धारित होता है। उत्तेजनायें बदलने के साथ-साथ यह व्यवहार भी बदलता है। अस्तु, उचित अभिवृत्तियाँ और पर्याप्त प्रेरणायें बनाये रखने के नियमों का अध्ययन करना आवश्यक है। औद्योगिक मनोविज्ञान इसी प्रकार के अध्ययन करता है। इस प्रकार के अध्ययन का एक उदाहरण शिकागो के हॉथार्न वर्क्स वेस्टर्न एलेक्ट्रिक कम्पनी द्वारा उत्पादन पर कर्मचारियो की अभिवृत्ति के स्वभाव का अध्ययन है। यह अध्ययन हॉथार्न स्टडीज (Hawthorne Studies) कहलाता है।

(५) मानसिक स्वास्थ्य के सिद्धान्तों का अध्ययन (*Study of Principles of Mental Health*)—आधुनिक काल मे सभी विचारवान व्यक्ति यह जानते हैं कि श्रमिकों के मानसिक स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखने की कितनी अधिक आवश्यकता है। श्रमिको के मानसिक स्वास्थ्य पर कार्य की परिस्थितियो और दूसरे लोगों के उनके प्रति व्यवहार का विशेष महत्व है। औद्योगिक मनोविज्ञान विभिन्न औद्योगिक परिस्थितियो के कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन करता है और मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के सामान्य नियमो का पता लगाता है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक परिस्थितियो मे जिन कर्मचारियो का मानसिक स्वास्थ्य ठीक नही है अथवा जो मानसिक व्याधियो मे पीडित है उनको फिर से स्वस्थ बनाने के विषय मे भी औद्योगिक मनोविज्ञान से सुझाव मिलते है।

(६) मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन (Study of Human Relations)—औद्योगिक मनोविज्ञान औद्योगिक परिस्थितियो मे मानव व्यवहार का अध्ययन है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, इस मानव व्यवहार पर भौतिक परिस्थितियो से भी अधिक मानव सम्बन्धो का प्रभाव पडता है। मैनेजर या सुपरवाइजर श्रमिको से जिस प्रकार का व्यवहार करते हैं इसका उनकी नीतिमत्ता, अभिवृत्तियो तथा प्रेरणाओ पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। कुछ कर्मचारी व्यक्तिगत कारणो से उद्योगो मे विषमायोजन (Maladjustment) फैलाते है। यह भी मानव सम्बन्धो की ही समस्या है। मनोविज्ञान में एक प्रमुख शाखा के रूप में औद्योगिक मनोविज्ञान मे औद्योगिक परिस्थितियो मे मानव सम्बन्धो के विषय मे निरीक्षण, प्रयोग तथा अन्य विधियो के द्वारा निष्कर्ष निकाले जाते है और उनके आधार पर सामान्य सिद्धान्त बनाये जाते है जिनसे औद्योगिक परिस्थितियो मे मानव सम्बन्धो को बेहतर बनाने मे सहायता मिलती है।

उपरोक्त विवेचन से औद्योगिक मनोविज्ञान का कार्य क्षेत्र स्पष्ट होता है। सक्षेप मे, समस्त औद्योगिक परिस्थितियां ही औद्योगिक मनोविज्ञान का कार्य क्षेत्र हैं क्योंकि सभी का मानव व्यवहार पर कुछ न कुछ प्रभाव पडता है। उद्योगो के कार्य क्षेत्र के विस्तार के साथ-साथ औद्योगिक मनोविज्ञान का क्षेत्र भी क्रमश. बढता जा रहा है।

औद्योगिक मनोविज्ञान की समस्यायें
(Problems of Industrial Psychology)

अपनी पुस्तक Industrial Psychology and its Social Foundation में मनोवैज्ञानिक ब्लम ने लिखा है, "औद्योगिक मनोविज्ञान हमारे औद्योगिक समाज और आर्थिक व्यवस्था के सम्मुख उपस्थित परेशान करने वाली समस्याओं का गत्यात्मक हल उपस्थित करता है।"[10] उद्योग अथवा व्यवसाय से सम्बन्धित ये समस्यायें क्या हैं ? ये वे समस्यायें है जो कि उद्योग के किसी भी पहलू में उत्पन्न होती हैं और जिनकी प्रकृति मनोवैज्ञानिक है। संक्षेप में, औद्योगिक मनोविज्ञान की मुख्य समस्यायें निम्नलिखित हैं—

(१) उपयुक्त कार्य के लिये उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव (Selection of proper man for proper work)—किसी भी उद्योग में सफलता प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न कार्यों पर उपयुक्त कर्मचारियों को नियुक्त किया जाय। इसके लिये यहां कार्य विश्लेषण आवश्यक है वहां दूसरी ओर कर्मचारी विश्लेषण के द्वारा आवेदनकारी कर्मचारियों में से विशिष्ट कार्य के लिये उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव आवश्यक है। यह मूल रूप से एक मनोवैज्ञानिक समस्या है क्योंकि इसके लिये विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के द्वारा कर्मचारियों की विभिन्न योग्यताओं की जांच करनी पड़ेगी। कभी-कभी किसी विशेष पद पर काम करने वाला कोई कर्मचारी कुछ व्यक्तिगत कारणों से ठीक काम नहीं कर पाता यद्यपि वह सब प्रकार से उस कार्य करने के योग्य होता है। ऐसी परिस्थिति में औद्योगिक मनोविज्ञान की समस्या इस प्रकार के सुझाव देना है जिनसे वह व्यक्ति अपने कार्य में फिर से फिट हो जाय।

(२) कर्मचारियों का प्रशिक्षण (Training of Workers)—यद्यपि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य करने की भिन्न-भिन्न योग्यतायें होती हैं परन्तु प्रशिक्षण के द्वारा पहले से उपस्थित योग्यताओं को इतना अधिक बढ़ाया जा सकता है कि कर्मचारी इतना अच्छा कार्य दिखलाता है जितना कि वह प्रशिक्षण के अभाव में नहीं कर सकता था। किस कार्य में कुशल बनने के लिये किस व्यक्ति को किस प्रकार के और किस समय तक प्रशिक्षण की आवश्यकता है, यह मूल रूप से एक मनोवैज्ञानिक समस्या है। इसलिये औद्योगिक मनोवैज्ञानिक ही इस समस्या को सुलझाता है।

(३) उद्योगों में नीतिमत्ता (Morale in Industry)—औद्योगिक परिस्थितियां कितनी भी अच्छी क्यों न हों जब तक कर्मचारियों में उपयुक्त नीतिमत्ता

---

10. "Industrial Psychology offers a dynamic solution to the perplexing problems which confront an industrial society and economic system."

—Blum, M L.

Industrial Psychology and its Social Foundation, New York, (1956), p 5

नहीं होगी तब तक उद्योग ठीक प्रकार से नहीं चलते । नीतिमत्ता जहाँ एक ओर कार्य करने मे उत्साह और प्रेरणा में दिखलाई पडती है वहां दूसरी ओर विभिन्न सामूहिक कार्यों मे परस्पर सहयोग में विशेष रूप से दिखलाई पडती है। किसी उद्योगो में नीतिमत्ता बनाये रखने के लिए नया-नया कदम उठाये जाने चाहिये यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या है और औद्योगिक मनोवैज्ञानिक ही इसे सुलझाता है ।

(४) उद्योगो में मानवीय सम्बन्ध (Human Relations in Industry)—आधुनिक काल मे जब कि श्रमिको ने श्रमिक संघ बनाकर अपनी शक्ति को संगठित कर लिया है, उद्योगो मे मानवीय सम्बन्ध की समस्या और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है क्योंकि कर्मचारियो और निरीक्षको तथा प्रबन्धको मे अच्छे सम्बन्ध के बिना आजकल कोई भी उद्योग थोड़े भी दिन नही चल सकता । उसमें बहुत शीघ्र ही उत्पादन गिरने लगता है, दुर्घटनायें बढती हैं तथा हड़ताल और तालेबन्दी की नौबत आ जाती है । मानवीय सम्बन्ध की समस्या मूल रूप में समाज मनोविज्ञान का विषय है । अस्तु, औद्योगिक मनोविज्ञान ही उसे सुलझाता है ।

(५) थकान और ऊब (Fatigue and Boredem)—उद्योगो मे बहुधा लम्बे समय तक यन्त्रवत् कार्य करने से कर्मचारी अपने काम में ऊब जाते हैं। इससे उनकी मनोवैज्ञानिक थकान बढती है । थकान शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दोनो ही प्रकार की हो सकती है । वैज्ञानिक दृष्टि से उद्योगो मे विभिन्न यन्त्र और कार्य प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिये कि कम से कम थकान और ऊब उत्पन्न करते हुये अधिक से अधिक और अच्छा कार्य हो सके । इस दिशा में इन्जीनियरिंग मनोविज्ञान के विशेषज्ञों ने विभिन्न प्रकार के यन्त्रो की रचना और उन पर कार्य करने की विधियों को सुधारने के लिये महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। मनोवैज्ञानिक थकान और ऊब दूर करने के लिये औद्योगिक मनोवैज्ञानिको ने अनेक प्रकार के प्रयोगों से नये-नये सुझाव उपस्थित किये हैं । उदाहरण के लिये यह देखा गया है कि कुछ कारखानो मे संगीत की व्यवस्था होने से थकान और ऊब को बहुत कुछ कम किया जा सका ।

(६) औद्योगिक दुर्घटनायें (Industrial Accidents)—किसी यन्त्र से बिना दुर्घटना किये काम लेने के लिये दो बातें आवश्यक है एक तो यह कि वह यन्त्र ठीक प्रकार से काम कर रहा हो और कर्मचारी उसे ठीक तरह से चला रहा हो, दूसरे यह कि कर्मचारी की मानसिक स्थिति ठीक हो। पहले कारक मे इन्जीनियरिंग मनोवैज्ञानिको ने मशीनो को ठीक प्रकार से और कम मे कम दुर्घटना करते हुए चलाने के विषय मे महत्वपूर्ण सुझाव दिये है । दूसरे कारक के विषय मे उन्होंने सुरक्षात्मक आदतो के विकास, उपयुक्त निरीक्षण और कर्मचारियो की मानसिक स्थिति ठीक रखने के विभिन्न उपायो के विषय मे महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। इस प्रकार औद्योगिक दुर्घटनाओ की रोकथाम औद्योगिक मनोविज्ञान की महत्वपूर्ण समस्या है ।

(७) भौतिक परिवेश के प्रति अनुक्रियायें (Responses towards Physical

Environment)—पीछे बतलाया जा चुका है कि उद्योग की भौतिक परिस्थितियों जैसे प्रकाश की मात्रा, किस्म और दिशा, स्वच्छ वायु का प्रबन्ध, सफाई, शोर की मात्रा, वातावरण में नमी का अंश इत्यादि विभिन्न कारकों का कर्मचारियों के कार्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। अब किसी विशेष उद्योग में ये सब भौतिक परिस्थितियाँ किस प्रकार की हों, इस सम्बन्ध में निश्चित करने के लिए इन परिस्थितियो के प्रति कर्मचारियो की अनुक्रियाओ का अध्ययन करना आवश्यक है। स्वाभाविक है कि औद्योगिक मनोवैज्ञानिक इन भौतिक परिस्थितियो के प्रकार और मात्रा का निश्चय कर सकता है।

(८) उत्पादन की समस्यायें (Problems of production)—उद्योग मे अधिक और अच्छे उत्पादन के लिये कई वातो की जरूरत है। मशीनें तो अच्छी होनी ही चाहियें परन्तु साथ ही साथ यह भी जरूरी है कि उन पर काम करने वाले भी योग्य हो। इस योग्यता की परख कैसे हो ? कारखाने मे सैकडो तरह के काम होते हैं। यह कैसे जाना जाय कि किस काम के लिये कौन-सा व्यक्ति उपयुक्त होगा ? कारखाने मे काम तलाश करने के लिए सैकडो लोग आते हैं। उनकी योग्यता की परीक्षा कैसे की जाय ? कारखाने में उत्पादन अधिक होने के लिये यह भी जरूरी है कि मशीनें ऐसी बनी हो जिनको चलाने मे थकान कम हो। प्रकाश का इन्तजाम ऐसा होना चाहिये कि काम करने मे असुविधा न हो, दुर्घटनायें कम हो और आखो पर जोर भी न पड़े। अक्सर लोग काम से ऊबने लगते हैं। उनको किस तरह फिर से प्रोत्साहित किया जाय ? कारखाने की व्यवस्था किस प्रकार की जाय कि कारखाने मे दुर्घटनायें कम से कम हो ? उद्योग के क्षेत्र मे इन सभी समस्याओ को सुलझाने मे मनोविज्ञान की आवश्यकता है।

(९) विक्रय की समस्यायें (Problems of selling)—केवल चीजो का उत्पादन करने के बाद ही उद्योग का काम पूरा नही हो जाता, असली बात है इन चीजों को बेचना। यदि इसमे सफलता न हुई तो उत्पादन कितना भी अधिक और अच्छा होने पर भी बेकार है। चीजो को बेचने के लिये यह जरूरी है कि लोग उनसे परिचित हो, उनके गुणों को जानें और लोगो मे उनको खरीदने की इच्छा उत्पन्न हो। इसके लिये विज्ञापन की आवश्यकता होगी। सफल विज्ञापन मनोवैज्ञानिक अपील पर आधारित है। स्पष्ट है कि विक्रय के क्षेत्र मे मनोविज्ञान का कितना महत्व है।

(१०) औद्योगिक संघर्षों की रोकथाम और निबटारा (Prevention and Solution of Industrial Conflicts)—किसी भी उद्योग मे बहुधा किसी न किसी बात को लेकर छोटे-मोटे झगडे खडे होते रहते हैं। कभी-कभी ये झगडे अत्यधिक बढ जाते है और मजदूर हडताल करते हैं अथवा मालिक लोग कारखानो को ताले लगा देते हैं। इन औद्योगिक संघर्षों मे कभी-कभी भयकर हिंसा और रक्तपात की घटनायें भी होती हैं। यद्यपि इन सब औद्योगिक संघर्षों के मूल मे कुछ आर्थिक

मार्गे अथवा कुछ राजनैतिक कारक हो सकते हैं परन्तु अधिकतर उनमे मनोवैज्ञानिक कारक महत्वपूर्ण कार्य करते है। यही कारण है कि कही तो बडी से बडी बात हो जाने पर भी कोई संघर्ष नहीं होता और किसी दूसरे उद्योग मे किसी छोटी सी बात जैसे निरीक्षक अथवा प्रबन्धक के कटु वचन बोलने को ही लेकर जबर्दस्त हड़ताल हो जाती है। औद्योगिक संघर्षो के विकट रूप धारण कर लेने के मूल में बहुधा मनोवैज्ञानिक कारक ही होते हैं। अस्तु, इन झगड़ो को निबटाने के लिये केवल आर्थिक कदम उठाना ही काफी नही है, बल्कि उन कारको को भी दूर किया जाना चाहिए जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इन संघर्षो के लिये उत्तरदायी है। यदि इन मनोवैज्ञानिक कारको पर पहले से ही नजर रखी जाय तो औद्योगिक संघर्षों की संख्या बहुत कम की जा सकती है। इन मनोवैज्ञानिक कारको का अध्ययन औद्योगिक मनोविज्ञान की समस्या है।

(११) **व्यक्तिगत आचरण की समस्याये** (Problems of Personal Conduct)—जहां अनेक कर्मचारी औद्योगिक परिस्थितियो मे कुछ खराबी या कमी होने के कारण दुर्व्यवहार करते है वहां अन्य कर्मचारियों के दुर्व्यवहार के मूल कारण उनके अपने व्यक्तित्व और चरित्र से सम्बन्धित होते है। इस प्रकार के व्यक्तियो के आचरण को सुधारने के लिये दुर्व्यवहार के कारणों का पता लगाने के लिये औद्योगिक मनोवैज्ञानिक की सलाह की आवश्यकता होती है।

उद्योगो के क्षेत्र मे विभिन्न समस्याओ को सुलझाने में औद्योगिक मनोविज्ञान के योगदान के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि बड़े-बड़े उद्योगो मे औद्योगिक मनोवैज्ञानिक के परामर्श की कितनी अधिक आवश्यकता है। इसी कारण आजकल प्रगतिशील देशो मे बड़े-बड़े उद्योगो मे औद्योगिक मनोवैज्ञानिक भी नियुक्त किये जाते है।

औद्योगिक मनोविज्ञान के उद्देश्य
(Aims of Industrial Psychology)

औद्योगिक मनोविज्ञान के उद्देश्यो का वर्णन करते हुए मायर्स ने लिखा है, "औद्योगिक मनोविज्ञान का उद्देश्य प्राथमिक रूप से अधिक उत्पादन नहीं है बल्कि कर्मचारी को उसके कार्य मे अधिक आसानी प्रदान करना है। आसानी का अर्थ केवल शारीरिक आसानी न होकर मानसिक आसानी भी है।"[११] व्यावहारिक मनोविज्ञान की एक शाखा के रूप मे औद्योगिक मनोविज्ञान के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(१) **कर्मचारी वरण** (Personnal Selection)—औद्योगिक मनोविज्ञान यह पता लगाता है कि किसी विशिष्ट कार्य के लिये उपयुक्त कर्मचारी का चुनाव

11. "The aim of Industrial Psychology is not primarily to obtain greater output but to give the worker greater ease at his work. Ease does not mean mere physical ease but also mental ease."
—Myers, C. S., *Industrial Psychology*, 1929. p 14—15.

करने के लिए क्या किया जाना चाहिए जिससे एक ओर कार्य को उपयुक्त कर्मचारी मिल जाय और दूसरी ओर कर्मचारी को उसके उपयुक्त कार्य मिल जाय।

(२) **कर्मचारी के स्वास्थ्य की देखभाल** (Care of worker's health)—कर्मचारी के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के अभाव में उद्योगों में ठीक प्रकार से कार्य नहीं हो सकता। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर काम करने की परिस्थितियों तथा कर्मचारियों से मालिकों के सम्बन्ध का व्यापक प्रभाव पड़ता है। औद्योगिक मनोविज्ञान का उद्देश्य कार्य करने की उन आदर्श परिस्थितियों का पता लगाना है जिनमें कर्मचारी का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक रह सके।

(३) **कर्मचारी के आर्थिक हितों का संरक्षण** (Protection of worker's economic interests)—आर्थिक हितों के संरक्षण के बगैर मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता और कर्मचारी को कार्य करने में प्रेरणा नहीं मिल सकती। इसलिये औद्योगिक मनोविज्ञान कर्मचारियों के कार्य का मूल्यांकन करने और उनके लिये उचित वेतन निर्धारित करने के विषय में वैज्ञानिक सिद्धान्त उपस्थित करता है।

(४) **कार्य करने की उपयुक्त विधियों का पता लगाना** (Search of proper methods of work)—कारखानों में दुर्घटनाओं का बहुत बड़ा कारण गलत विधियों से कार्य करना है। गलत विधियों से कार्य करने से थकान और अरोचकता भी बढ़ती है। अस्तु, औद्योगिक मनोविज्ञान का एक उद्देश्य दफ्तरों और कारखानों में काम करने की उपयुक्त विधियों का पता लगाना है जिनसे काम अधिक और अच्छा हो, थकान और अरोचकता कम हो तथा दुर्घटनायें न हों।

(५) **कुसमायोजन को दूर करना** (Removing Maladjustment)—कारखानों में अनेक झगड़े इसलिये होते हैं क्योंकि वहाँ काम करने वाले सभी लोगों का अपनी परिस्थितियों में उचित समायोजन नहीं होता। अधिकतर इसके कारण मनोवैज्ञानिक होते हैं। जो कुछ बाहरी परिस्थितियों का प्रभाव भी होता है वह भी मूल रूप में मनोवैज्ञानिक कारकों के कारण होता है। अस्तु, इस कुसमायोजन के कारणों का पता लगाना और उसे दूर करने के उपायों का सुझाव देना औद्योगिक मनोविज्ञान का उद्देश्य है।

(६) **काम करने की दशाओं में सुधार** (Reform of working conditions)—इस प्रकार औद्योगिक मनोवैज्ञानिक यह पता लगाता है कि काम करने की दशायें और औद्योगिक परिवेश कैसा होना चाहिए जिसमें कर्मचारियों का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बना रहे। इन काम करने की दशाओं में मुख्य हैं—उपयुक्त और पर्याप्त प्रकाश की व्यवस्था, स्वच्छ और पर्याप्त वायु की व्यवस्था, अधिक शोर का अभाव, काम के बीच में आराम तथा स्त्री पुरुष कर्मचारियों की दिनचर्या की आवश्यकताओं के लिये उपयुक्त प्रबन्ध इत्यादि।

(७) **मशीनों में सुधार** (Reform in machines)—काम करने में थकान कम हो और दुर्घटना न हों इसका जितना उत्तरदायित्व कर्मचारी पर है उतना ही उस

बात पर भी है कि मशीनें सही प्रकार की बनी हो। अस्तु, औद्योगिक मनोवैज्ञानिक मशीनो और औजारो मे सुधार करने के विषय मे महत्वपूर्ण सुझाव देते हैं।

(८) मानवीय सम्बन्धों में सुधार (Reform in human relationships)—व्यवसाय और उद्योग मे उपयुक्त वातावरण और कर्मचारियों मे स्वस्थ नीतिमत्ता बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि कर्मचारियो और प्रबन्धको तथा कर्मचारियो मे आपस मे मानवीय सम्बन्ध अच्छे हों। औद्योगिक मनोवैज्ञानिक का एक उद्देश्य इन सम्बन्धो को बेहतर बनाने के लिये सुझाव देना है।

(९) उद्योग में मानवतावादी दृष्टिकोण (Humanistic approach in Industry)—मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि उद्योगों में मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाये विना मानवीय सम्वन्ध अच्छे नही रह सकते। इसके लिये उद्योगपतियो और श्रमिको तथा कर्मचारियो और प्रबन्धको के सम्बन्ध अच्छे बनाये जाने चाहिये और उनके बीच का व्यवधान दूर किया जाना चाहिये। औद्योगिक मनोवैज्ञानिक उद्योग के क्षेत्र मे मानवतावादी दृष्टिकोण फैलाने में सहायता करते हैं।

औद्योगिक मनोविज्ञान का मूल्य
(Value of Industrial Psychology)

उद्योग के क्षेत्र मे प्रगति करने के लिये न केवल मशीनों का अच्छा होना जरूरी है बल्कि मानवीय सम्बन्ध भी अच्छे होने चाहिये। उद्योग के क्षेत्र में ये मानवीय सम्बन्ध ही औद्योगिक सम्बन्ध हैं। ये औद्योगिक सम्बन्ध मूल रूप से मनोवैज्ञानिक हैं। ये मनुष्यों की रूचि, प्रेरणा, स्थायी भाव तथा उद्वेगो पर निर्भर रहते हैं। अस्तु, इनकी प्रकृति को जानने के लिये और इनको बेहतर बनाने के उपाय सुझाने के लिये रूचियों, प्रेरणाओं, स्थायी भावो और उद्वेगों का अध्ययन किया जाना चाहिये। यह कार्य मनोविज्ञान करता है। इसलिये उद्योग के क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। सक्षेप मे उद्योग के क्षेत्र में औद्योगिक मनोविज्ञान के मूल्य निम्नलिखित हैं—

(१) श्रम समस्याओं का सुलझाव (Solution of Labour problems)—व्यवसायो और उद्योगो के क्षेत्र में किसी न किसी बात को लेकर बहुधा झगड़े उठ खड़े होते है और कभी-कभी इनका रूप अत्यधिक भयकर हो जाता है जिससे श्रमिको और पूँजीपतियों दोनो को ही हानि पहुँचती है। झगडो के मूल मे मनोवैज्ञानिक तनाव होते हैं। इन तनावो का अध्ययन मनोविज्ञान का विषय है। इस प्रकार मनोविज्ञान औद्योगिक झगडो को सुलझाने में सहायक सिद्ध होता है। आजकल कर्मचारियो और मालिकों के सम्बन्ध अच्छे बनाये रखने के लिये जो उपाय अपनाये जाते है वे लम्बे काल तक वास्तविक औद्योगिक परिस्थितियो मे मनोवैज्ञानिक प्रयोग और निरीक्षण के फलस्वरूप विकसित हुए है और किसी भी व्यक्ति की इच्छा से उन्हें बदला नही जा सकता। सच तो यह है कि किसी भी प्रकार के झगड़े को सुलझाने

मे उसमे निहित विभिन्न कारकों को अलग-अलग करना आवश्यक है और औद्योगिक संघर्ष के विषय में यह कार्य मनोवैज्ञानिक ही कर सकता है। उदाहरण के लिये झगड़ों मे एक मुख्य तत्त्व व्यक्तिगत विभिन्नतायें हैं जिनका अध्ययन मनोविज्ञान मे किया जाता है। जिस प्रकार शारीरिक रोग उत्पन्न होने पर चिकित्सा शास्त्री से सहायता ली जाती है और सामाजिक समस्याओ के विषय मे समाजशास्त्री की राय ली जाती है उसी प्रकार उद्योग के क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक समस्याओ को सुलझाने मे एक विशेषज्ञ के रूप से मनोवैज्ञानिक की राय ली जानी चाहिये।

(२) दुर्घटनाओं की रोकथाम (Prevention of Accidents)—उद्योग के क्षेत्र मे मनोविज्ञान ने न केवल संघर्षों को सुलझाने मे सहायता दी है बल्कि दुर्घटनाओं की रोकथाम के विषय मे भी महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। मनोवैज्ञानिको ने यह पता लगाया है कि मशीनें और यन्त्र किस प्रकार की बनाई जायें, कैसे चलाई जाये और उद्योग मे किस प्रकार से क्रमानुसार लगाई जाये जिससे दुर्घटनाये कम से कम हो। मनोवैज्ञानिक कर्मचारियो की दुर्घटना उन्मुखता का अध्ययन करके उनको दूर करने के विषय मे भी सुझाव देता है।

(३) अभिवृत्तियों के अध्ययन (Study of Aptitudes)—कारखाने मे कैसी भी अच्छी परिस्थितिया क्यो न हो उन परिस्थितियो का लाभ उठाना कर्मचारियो की अभिवृत्तियो पर निर्भर होता है। यदि ये अभिवृत्तियाँ कार्य के अनुकूल हैं तो कार्य होगा और अच्छा होगा किन्तु यदि ये अभिवृत्तिया कार्य के प्रतिकूल है तो परिस्थितियां कितनी भी अच्छी होने पर भी कार्य नही होगा। अभिवृत्तियो का अध्ययन और माप मनोविज्ञान का विषय है और मनोवैज्ञानिक इस क्षेत्र में उद्योगपतियो की सहायता करता है।

(४) नीतिमत्ता बनाये रखना (Maintaining morale)—कार्य के गुण और मात्रा मे सुधार करने के लिये तथा उत्पादन के स्तर को बनाये रखने के लिये व्यवसायो और उद्योगो मे उच्च नीतिमत्ता बनाये रखने की आवश्यकता होती है। नीतिमत्ता को अनेक मनोवैज्ञानिक कारक प्रभावित करते है जैसे—सहिष्णुता और स्वतन्त्रता, त्याग की भावना, उपयुक्त नेतृत्व की उपस्थिति इत्यादि। इन का अध्ययन करके मनोवैज्ञानिक नीतिमत्ता बनाये रखने के लिये सुझाव देता है।

(५) उपयुक्त नेतृत्व उत्पन्न करना (Creating proper leadership)—नेतृत्व का अध्ययन समाज मनोविज्ञान का विषय है। उद्योग के क्षेत्र मे सुपरवाईजर तथा मैनेजर इत्यादि को केवल पदाधिकारी ही नही बल्कि अच्छे नेता भी होना चाहिये अन्यथा वे कर्मचारियों से ठीक प्रकार के कार्य नही ले सकते। इस नेतृत्व के लिये किन-किन गुणों की आवश्यकता है और उन गुणो को किस तरह उत्पन्न किया जा सकता है अथवा किस व्यक्ति मे वे गुण हैं और किस में नही, इन सब बातो का पता लगाने मे समाज मनोविज्ञान उद्योग और व्यवसाय के क्षेत्र मे सहायता करता है।

(६) व्यक्तिगत विभिन्नताओं का माप (Measurement of Individual differences)—व्यवसाय और उद्योग मे सफलता के लिये यह आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न कर्मचारियो को उनकी व्यक्तिगत विभिन्नताओ के अनुरूप कार्य बाटे जायें। ऐसा होने पर वे अपने कार्य को अधिक मनोयोग से करेंगे और उत्पादन की मात्रा और गुण दोनों मे विकास होगा। व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पता अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणो से चलता है। अस्तु, इस क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक की सहायता अत्यन्त आवश्यक है।

(७) कुशलता के अध्ययन (Study of Efficiency)—उद्योगों में काम करने वाले कर्मचारियो मे विशिष्ट कार्य को करने के लिये एक सी कुशलता नही होती। मनोवैज्ञानिक परीक्षणो से यह पता लगाया जाता है कि किसी काम को करने से किस व्यक्ति मे कितनी कुशलता है। यह ही नही बल्कि कुशलता के मार्ग मे बाधाओ को दूर करने और कुशलता बढाने के विषय में भी मनोवैज्ञानिक महत्वपूर्ण सुझाव देता है।

(८) मनोवैज्ञानिक परीक्षणो का प्रयोग (Use of Psychological tests)—आधुनिक काल मे व्यवसायो और उद्योगो मे भिन्न-भिन्न पदो के लिये उपयुक्त कर्मचारियो का चुनाव करने के लिये मनोवैज्ञानिक परीक्षणो का बडे पैमाने पर प्रयोग किया जाता है। इन परीक्षणों मे बुद्धि, रुचि, अभिरुचि तथा व्यक्तित्व के परीक्षण मुख्य है। कभी-कभी कुछ परीक्षणों मे अनेक परीक्षणो को मिलाकर परीक्षणमालाओ का प्रयोग किया जाता है। जहां कुछ परीक्षण व्यक्ति के परीक्षण के लिये बनाये जाते है वहाँ समूह परीक्षण समूह का अध्ययन करने में काम आते है। इन परीक्षणों की अपनी सीमायें है। फिर भी इनकी सहायता से उद्योगो में भर्ती के कार्य मे महत्वपूर्ण सहायता मिलती है।

(९) गति और समय के अध्ययन (Motion and Time Studies)—भिन्न-भिन्न व्यक्तियो की कार्य करने की गति भिन्न-भिन्न होती है और इसीलिये वे एक ही कार्य को करने मे भिन्न-भिन्न समय लगाते है। आधुनिक काल में गति और समय के अध्ययनो से कर्मचारियों और औद्योगिक यन्त्रो की कुशलता का पता लगाया जाता है। गति और समय के विश्लेषण से किसी काम को करने की बेहतर विधियो का पता लगाया गया है। गति के अध्ययनो से आवश्यक गतियो को निकाल कर श्रम और समय की बचत की जाती है। समय के अध्ययनों से समय की हानि को बचाया जाता है। इस प्रकार आधुनिक कारखानो मे यन्त्रो और बैठने के स्थानों तथा कर्मचारियो की मुद्राओ को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि कार्य अधिक कुशलता से होता है और समय की बचत होती है।

(१०) औद्योगिक प्रशिक्षण सम्बन्धी सहायता (Aid in Industrial Training)—आधुनिक काल मे यह माना जा चुका है कि विशिष्ट प्रकार के प्रशिक्षण देने से कर्मचारियो की कुशलता मे महत्वपूर्ण वृद्धि होती है और प्रशिक्षण पर किया गया

खर्चा कई गुना होकर वापिस आ जाता है। प्रशिक्षित व्यक्ति दुर्घटनायें भी कम करते है और उनके कार्य की मात्रा और गुण अप्रशिक्षित व्यक्तियों से सब कहीं अधिक होते हैं। इसलिये एक ओर तो विभिन्न पदो के लिये विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण की माँग की जाती है और दूसरी ओर कर्मचारियो की समय-समय पर विशिष्ट प्रकार का प्रशिक्षण देने का प्रबन्ध किया जाता है। इससे अन्त मे उद्योगपतियो को भी लाभ होता है। प्रशिक्षण के आधारो और विधियो आदि के सम्बन्ध मे सुझाव देना मनोवैज्ञानिक का कार्य है।

(११) प्रेरणा सम्बन्धी सुझाव (Suggestions concerning Motives)—किसी भी कार्य मे प्रगति के लिये कर्मचारी मे प्रेरणा होनी आवश्यक है। यह प्रेरणा वेतन वृद्धि, पदोन्नति, प्रशसा अथवा किसी भी अन्य प्रकार से दी जा सकती है। प्रेरणा के अभाव मे अथवा भग्नाशा होने पर कर्मचारियो के कार्य की मात्रा और गुण दोनो ही पिछड जाते है। प्रेरणा का विशेष अध्ययन मनोविज्ञान का विषय है। मनोवैज्ञानिक ही यह बता सकता है कि कर्मचारियो को कार्य की मात्रा और गुण मे वृद्धि करने के लिये कैसे प्रेरित किया जा सकता है, कैसे उनकी प्रेरणाओं को हड़तालों के मार्ग मे जाने से रोका जा सकता है, वेतन के कौन से सिद्धान्त सबसे अधिक प्रेरणा देने वाले सिद्ध होते है तथा धन व्यय न करके भी प्रेरणा किस प्रकार बढाई जा सकती है। इन सब सुझावो से उद्योग के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य होता है।

(१२) थकान और अरोचकता के अध्ययन (Studies of fatigue and monotony)—उत्पादन की मात्रा और गुण मे वृद्धि के मार्ग मे सबसे बडी बाधायें थकान और अरोचकता है। इनके क्या कारण है और उन कारणों को कैसे दूर किया जा सकता है इस सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण अध्ययन किये है जिनसे उद्योगो मे थकान और अरोचकता को दूर करने में बडी सहायता मिली है।

(१३) व्यावसायिक निर्देशन मे सहायता (Aid in Vocational Guidance)—व्यावसायिक निर्देशन से तात्पर्य विभिन्न व्यक्तियो के मनोवैज्ञानिक परीक्षणो द्वारा उनकी योग्यताओं का पता लगाकर उन्हे उपयुक्त व्यवसाय के विषय मे सुझाव देना है। यह मनोवैज्ञानिक द्वारा दी गई सलाह है जिस पर अमल करके कर्मचारी अपनी योग्यताओं का पूरा लाभ उठा सकता है। आधुनिक प्रगतिशील देशो मे शिक्षा समाप्त करने से पहले ही व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा व्यक्ति को उसके भावी व्यवसाय के सम्बन्ध मे परामर्श दिया जाता है जिससे कि वह उस व्यवसाय के लिये आवश्यक शिक्षा प्राप्त कर सके।

(१४) विज्ञापन और विक्रय में सहायता (Aid in Advertisement and Selling)—उद्योग के क्षेत्र मे मनोविज्ञान ने केवल उत्पादन बढाने के विषय मे परामर्श नही दिया है बल्कि उत्पादित वस्तुओ के विज्ञापन और विक्रय के विषय मे भी महत्वपूर्ण सुझाव दिये है। विज्ञापन अवधान के मनोविज्ञान पर आधारित है। मनोविज्ञान मे अवधान मे सहायक कारको का विशेष अध्ययन किया जाता है और फिर विज्ञापन की विषय वस्तु, विन्यास (lay out) आदि को अवधान के नियमो के अनुसार

इस प्रकार का बनाया जाता है जिससे वह अधिक से अधिक लोगो का अधिक से अधिक ध्यान आकर्षित करे। इसका एक उदाहरण रात्रि के समय बिजली के बल्वो द्वारा विज्ञापन है। विज्ञापन के साथ-साथ आधुनिक व्यवसाय मे वस्तुओं के विक्रय मे भी मनोवैज्ञानिक उपाय अपनाने का प्रयास किया जाता है जिससे ग्राहक को वस्तु की उपयोगिता के विषय मे भली प्रकार सन्तुष्ट कर दिया जाये और वह वस्तु को खरीदने पर राजी हो जाय। मनोवैज्ञानिको ने वस्तु को खरीदने और बेचने की प्रक्रिया का अध्ययन करके इस सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण सुझाव उपस्थित किये हैं। उन्होंने केवल यही नही बतलाया है कि दुकानदार अपनी वस्तु को खरीदने के लिये ग्राहक को कैसे राजी करले बल्कि यह भी बतलाया है कि ग्राहक किस प्रकार दुकानदार की बातों मे आने से बचे।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उद्योग के क्षेत्र मे मनोविज्ञान का अत्यधिक महत्व है और यह महत्व बढता ही जा रहा है।

सारांश

आजकल उद्योग के क्षेत्र मे विभिन्न समस्याओं को सुलझाने के लिये मनोविज्ञान का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। उत्पादन को समस्यायें, विक्रय की समस्यायें, काम करने की परिस्थितियों का सुधार तथा उद्योग के क्षेत्र में मानवीय सम्बन्धों की कठिनाइयों को मनोविज्ञान की सहायता से सुलझाया जा सकता है।

औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास—मनोविज्ञान का जन्म मानसिक दर्शन के रूप में हुआ। उसमें मन और शरीर के सम्बन्ध की विवेचना की जाती थी। सत्रहवीं शताब्दी में साहचर्यवाद का विकास हुआ। वोल्फ ने शक्ति मनोविज्ञान का सूत्रपात किया। अट्ठारहवीं शताब्दी में आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिकों ने मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर विचार किया। मनोविज्ञान के वैज्ञानिक रूप का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। इसमें वुण्ट, टिचनर, कैटेल, गाल्टन, एबिंगहास और विलियम जेम्स ने महत्वपूर्ण कार्य किया। बीसवीं शताब्दी में व्यवहारवाद, मनोविश्लेषण गेस्टाल्टवाद, प्रयोजनवाद इत्यादि विभिन्न सम्प्रदायों के रूप में मनोविज्ञान का विकास हुआ। क्रमश मनोविज्ञान की स्वतन्त्र शाखाओं का विकास होने लगा। इनमें एक शाखा औद्योगिक मनोविज्ञान के नाम से विकसित हुई। सत्रहवीं और अट्ठारहवीं शताब्दी में गति के सम्बन्ध में अनुसन्धान किए गये। उन्नीसवीं शताब्दी में शारीरिक कार्य और थकान पर अनुसन्धान हुये। बीसवीं शताब्दी में शिक्षण वक्र प्रशिक्षण तथा प्रवरण के अध्ययन किये गये। किन्तु औद्योगिक मनोविज्ञान के विकास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण योगदान मुन्स्टरबर्ग का था। उसने समायोजन और दक्षता बढ़ाने के सम्बन्ध में अपने अनुसन्धानों को टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्ध की योजना से जोड़ दिया। अमरीका में तीन धाराओं में औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास हुआ—अनुसन्धान कार्य नवीन साहित्य का प्रकाशन और औद्योगिक संघों की स्थापना। जर्मनी मे अनुसन्धान

श्रौर श्रौद्योगिक संघों की स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य हुआ। कुछ ग्रन्थ भी प्रकाशित हुये और पत्रिकायें भी निकलने लगीं। इङ्गलैंड में श्रौद्योगिक स्वास्थ्य अनुसन्धान बोर्ड श्रौर श्रौद्योगिक मनोविज्ञान के राष्ट्रीय इन्स्टीट्यूट ने श्रौद्योगिक मनोविज्ञान का विकास किया। रूस में श्रम के केन्द्रीय इन्स्टीट्यूट के श्राधीन व्यापक अनुसन्धान हुए। हालैंड, बेल्जियम, पोलैंड, इटली, स्पेन, श्रास्ट्रिया, स्वीटजरलैंड श्रादि अन्य योरुपीय देशों में भी विभिन्न दिशाओं में श्रौद्योगिक मनोविज्ञान का विकास हुआ। एशिया में जापान में विशेष रूप से इस क्षेत्र में प्रगति हुई। श्राजकल भारतवर्ष में भी श्रौद्योगिक मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों मे अनुसन्धान किए जा रहे हैं, यद्यपि प्रकाशन श्रौर अनुसन्धान तथा श्रौद्योगिक संघ सभी दिशाओं में देश श्रभी बहुत पीछे है।

श्रौद्योगिक मनोविज्ञान क्या है—श्रौद्योगिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो श्रौद्योगिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करती है। वास्तव में यह व्यावहारिक मनोविज्ञान की शाखा कही जानी चाहिए। मनोवैज्ञानिक ब्लम, हैरेल तथा स्मिथ ने श्रौद्योगिक मनोविज्ञान की परिभाषा करने में विभिन्न बातों को स्पष्ट किया है। संक्षेप में, श्रौद्योगिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें श्रौद्योगिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है श्रौर श्रौद्योगिक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली व्यवहार सम्बन्धी समस्याश्रों को सुलझाने के विषय में अनुसन्धान किया जाता है।

श्रौद्योगिक मनोविज्ञान श्रौर सामान्य मनोविज्ञान—श्रौद्योगिक मनोविज्ञान में सामान्य मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को श्रौद्योगिक परिस्थितियों में प्रयोग किया जाता है। सामान्य मनोविज्ञान श्रौर श्रौद्योगिक मनोविज्ञान मे प्रकृति, क्षेत्र श्रौर दृष्टिकोण का अन्तर है। फिर भी दोनों परस्पर पूरक हैं। श्रौद्योगिक मनोवैज्ञानिक के लिए सामान्य मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक है।

श्रौद्योगिक मनोविज्ञान की प्रकृति—श्रौद्योगिक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है। विज्ञान सीमित क्षेत्र का व्यवस्थित अध्ययन है। उसकी विशेषता वैज्ञानिक पद्धति है। वैज्ञानिक पद्धति के मुख्य सोपान निरीक्षण, निरीक्षण को लिखना, वर्गीकरण, साधारणीकरण तथा परीक्षण हे। विज्ञान के मूल तत्व वैज्ञानिक पद्धति, तथ्यात्मकता, सार्वभौमिकता, प्रामाणिकता, कार्य-कारण सम्बन्धों की खोज तथा भविष्य वाणी करने की शक्ति हैं। इन तत्वों के आधार पर परीक्षा करने से श्रौद्योगिक मनोविज्ञान में विज्ञान के सभी श्रावश्यक तत्व मिलते हैं।

श्रौद्योगिक मनोविज्ञान का क्षेत्र—(१) उद्योग के आर्थिक, सामाजिक श्रौर मनोवैज्ञानिक पहलू, (२) कार्य परिवेश के भौतिक पहलू का अध्ययन, (३) मानव सम्बन्धों के सिद्धान्त, (४) अभिवृत्तियों श्रौर प्रेरणाओं का अध्ययन, (५) मानसिक स्वास्थ्य के सिद्धान्तों का अध्ययन, (६) मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन।

श्रौद्योगिक मनोविज्ञान की समस्यायें—(१) उपयुक्त काम के लिए

उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव। (२) कर्मचारियों का प्रशिक्षण, (३) उद्योग में नीतिमत्ता, (४) उद्योगों में मानवीय सम्बन्ध। (५) थकान और ऊब, (६) औद्योगिक दुर्घटनायें, (७) भौतिक परिवेश के प्रति अनुक्रियायें, (८) उत्पादन को समस्यायें, (९) विक्रय की समस्यायें, (१०) औद्योगिक संघर्षों की रोकथाम और निवटारा, (११) व्यक्तिगत आचरण की समस्यायें।

औद्योगिक मनोविज्ञान के उद्देश्य—(१) कर्मचारी वरण (२) कर्मचारी के स्वास्थ्य की देखभाल, (३) कर्मचारी के आर्थिक हितों का संरक्षण, (४) कार्य करने की उपयुक्त विधियों का पता लगाना, (५) कुसमायोजन को दूर करना। (६) काम करने की दशाओं में सुधार, (७) मशीनों में सुधार, (८) मानवीय सम्बन्धों में सुधार, (९) उद्योग में मानवतावादी दृष्टिकोण।

औद्योगिक मनोविज्ञान का मूल्य—(१) श्रम समस्याओं का सुलझाव, (२) दुर्घटनाओ की रोकथाम, (३) अभिवृत्तियों के अध्ययन, (४) नीतिमत्ता बनाए रखना, (५) उपयुक्त नेतृत्व उत्पन्न करना, (६) व्यक्तिगत विभिन्नताओं का माप, (७) कुशलता के अध्ययन, (८) मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग, (९) गति और समय के अध्ययन, (१०) औद्योगिक प्रशिक्षण सम्बन्धी सहायता, (११) प्रेरणा सम्बन्धी सुझाव, (१२) थकान और अरोचकता के अध्ययन, (१३) व्यावसायिक निर्देशन में सहायता, (१४) विज्ञापन और विक्रय में सहायता।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१. व्यावसायिक मनोविज्ञान से आप क्या समझते हैं? विवेचना कीजिये कि यह सामान्य मनोविज्ञान से किस प्रकार सम्बन्धित है?

What is Industrial Psychology? Discuss how it is related to General Psychology. (Agra 1960)

२ क्या औद्योगिक मनोविज्ञान को मनोविज्ञान की एक विशिष्ट शाखा कहा जा सकता है? विवेचना कीजिये।

Is there a case for Industrial Psychology as a special branch of psychology? Discuss. (Karnatak 1960)

३ व्यवसाय मनोविज्ञान के स्वरूप तथा क्षेत्र पर प्रकाश डालते हुए व्यवसाय मनोविज्ञान के विकास का वर्णन कीजिये।

Describe the development of Industrial Psychology pointing out its nature and scope" (Agra 1961)

४. औद्योगिक मनोविज्ञान के बढ़ते हुये क्षेत्र को संक्षेप में बतलाइये।

Briefly indicate the expanding scope of Industrial Psychology. (Utkal M. A. 1965)

५. व्यावसायिक मनोविज्ञान का अध्ययन व्यवसाय से सम्बन्धित किन समस्याओं का समाधान करने का प्रयत्न करता है?

What specific problems connected with industry does a study of Industrial Psychology try to solve? (Agra 1963)

६. औद्योगिक मनोविज्ञान के उद्देश्य और क्षेत्र की विवेचना कीजिए ?

Discuss the aim and scope of Industrial Psychology.

(Karnatak 1968)

७. औद्योगिक मनोविज्ञान के क्या कार्य होते हैं ? उसके कुछ महत्वपूर्ण क्रिया कलापो का उल्लेख करते हुये उद्योग को मनोविज्ञान की देन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

What are the functions of industrial psychologist ? Mention some of his important activities so as to illustrate the contribution of psychology to industry. (Vikram 1967)

८. औद्योगिक सम्बन्ध मुख्य रूप से मनुष्यो की रुचि, प्रेरणा, स्थायी भाव तथा उद्वेगो पर निर्भर करते हैं। उपर्युक्त कथन के आधार पर औद्योगिक मनोविज्ञान के महत्व की व्याख्या कीजिये।

Industrial relations depend essentially on the interests, motives, sentiments and passions of human beings. Explain the value of the study of Industrial psychology in the light of this statement. (Agra 1964)

२

औद्योगिक मनोविज्ञान की विधियां

(Methods of Industrial Psychology)

औद्योगिक मनोविज्ञान औद्योगिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। यह व्यावहारिक मनोविज्ञान की एक शाखा है। अस्तु, इसमें मूल रूप से उन्हीं विधियों का प्रयोग किया जाता है जो कि व्यावहारिक मनोविज्ञान की मुख्य विधिया हैं। मनोविज्ञान में सबसे अधिक वैज्ञानिक विधि प्रयोग विधि है क्योंकि प्रयोग में नियन्त्रित परिस्थितियों में जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं वे अधिक यथार्थ होते हैं। औद्योगिक मनोविज्ञान में भी प्रयोग विधि ही सबसे अधिक वैज्ञानिक विधि है। इसके अतिरिक्त इसमें निरीक्षण विधि, साक्षात्कार विधि, प्रश्नावली विधि इत्यादि अन्य अनेक विधियों का भी प्रयोग किया जाता है। संक्षेप मे, औद्योगिक मनोविज्ञान की मुख्य विधिया निम्नलिखित हैं :—

(१) प्रयोग विधि

(Experiment Method)

प्रयोग पद्धति से पूछा गया प्रश्न है। इसमे प्रयोग करने वाले के सामने एक प्रश्न होता है जिसका उत्तर पाने के लिये वह प्रयोग करता है। यह प्रश्न परिकल्पना (Hypothesis) पर आधारित होता है। यह परिकल्पना अनुभव के आधार पर बनाई जाती है। प्रयोग के परिणामों से परिकल्पना सिद्ध अथवा असिद्ध होती है। परिकल्पना के सिद्ध होने पर उसके आधार पर वैज्ञानिक सिद्धान्त बना लिया जाता है जिसका अन्य क्षेत्रों मे प्रयोग किया जाता है। औद्योगिक मनोविज्ञान मे उद्योग सम्बन्धी विभिन्न परिस्थितियों मे अनुभव के आधार पर कुछ समस्यायें उत्पन्न होती हैं और उन समस्याओं के उत्तर के रूप मे कुछ परिकल्पनायें उपस्थित की जाती हैं। उदाहरण के लिये औद्योगिक मनोविज्ञान मे टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त मे टेलर ने यह अनुभव किया कि उद्योग मे उत्पादन बढाने की समस्या को किस प्रकार से हल किया जाता है। उसने देखा कि उत्पादन में श्रमिक कुछ गतियाँ करता है। उसने यह परिकल्पना उपस्थित की कि यदि इन गतियों को प्रशिक्षण और यन्त्रों की व्यवस्था द्वारा अधिक वैज्ञानिक विधि से किया जाय तो समय की बचत होगी और कम समय मे अधिक उत्पादन किया जा सकेगा। अब इस परिकल्पना की परीक्षा

करने के लिये उसने कच्चा लोहा ढोने वाले बैथेलहम ईस्पात कम्पनी के मजदूरों पर प्रयोग किया। उसने उनकी गतियो और काम करने की परिस्थितियों का अध्ययन किया और श्रमिकों को अपनी बात समझाकर उस पर अमल करने के लिये कहा। उसके सिद्धान्त पर अमल करने से उत्पादन तिगुना और चौगुना बढ गया जिससे उसका वैज्ञानिक प्रवन्ध का सिद्धान्त सही सिद्ध हुआ। इसी सिद्धान्त को लेकर टेलर के शिष्य गिलब्रेथ ने ईंटें जोडने के धन्धे में प्रयोग किये जिनसे टेलर के निष्कर्षों का समर्थन हुआ। इसी प्रकार अन्य मनोवैज्ञानिकों ने अन्य उद्योगों मे टेलर के सिद्धान्तो को अपनाकर उसकी प्रामाणिकता की परीक्षा की जिसमे अन्त मे उसका सिद्धान्त प्रामाणिक सिद्ध हुआ। इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रयोगों के आधार पर नई-नई परिकल्पनाओं की परीक्षा करके उनके आधार पर वैज्ञानिक सिद्धान्त बनाये जाते हैं। क्योकि प्रयोग मे वैज्ञानिक स्वय विभिन्न परिस्थितियो को नियन्त्रित करता है इसीलिये उसके निष्कर्ष अधिक यथार्थ होते हैं। यही कारण है कि आधुनिक औद्योगिक मनोविज्ञान मे इस विधि का प्रयोग बढता ही जाता है।

(२) निरीक्षण विधि
(Observation Method)

मनोविज्ञान के क्षेत्र मे जहा-जहा परिस्थितियो का नियन्त्रण सम्भव नही होता वहा निरीक्षण विधि अपनाई जाती है। उदाहरण के लिये कर्मचारियो की अभिवृत्तियो को एक सीमा तक ही नियन्त्रित किया जा सकता है अथवा मालिक मजदूर में तनाव को उत्पन्न करके नही देखा जा सकता। तनाव का अध्ययन करने के लिये जहां कहीं तनाव हो वही उसका निरीक्षण किया जाना चाहिये। हडताल और तालेबन्दी का उदाहरण लीजिये। इनका अध्ययन करने के लिये मनोवैज्ञानिक इन्हें उत्पन्न नही करता बल्कि जहां कहीं इसकी घटनाएँ होती हैं वहाँ सूक्ष्म निरीक्षण करता है। सबसे पहले वह हडताल और तालेबन्दी की स्थिति मे कर्मचारियो और मालिकों के व्यवहार का सूक्ष्म निरीक्षण करता है और उसको सावधानी से नोट करता है। अनेक स्थानों पर इस प्रकार के व्यवहार का निरीक्षण करने के बाद वह उसका विश्लेषण करके स्थूल प्रतिमानों का पता लगाता है और उनके आधार पर हड़ताल और तालेबन्दी के विषय मे सामान्य सिद्धान्त उपस्थित करता है। औद्योगिक मनोविज्ञान मे निरीक्षण विधि के प्रयोग मे प्रयोग विधि के समान यथार्थता नही हो सकती क्योंकि निरीक्षण पर व्यक्तिगत पूर्वाग्रहो का प्रभाव पड सकता है। उदाहरण के लिये साम्यवादी विचारो का वैज्ञानिक पूँजीपतियो के व्यवहार मे सब कहीं शोषण की गन्ध पाता है और बहुधा श्रमिकों का अधिक पक्ष लेता है। इसी प्रकार कुछ वैज्ञानिक श्रमिको के विरुद्ध होने के कारण पक्षपातपूर्ण निरीक्षण कर सकते हैं। किन्तु इस प्रकार का पक्षपात अभ्यास और प्रशिक्षण से आसानी से दूर किया जा सकता है। वास्तव मे, जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, प्रयोगात्मक विधि निरीक्षण विधि

का स्थान नही ले सकती क्योकि श्रौद्योगिक मनोविज्ञान मे श्रनेक व्यवहार ऐसे होते हैं जिनको कृत्रिम रूप से उत्पन्न नही किया जा सकता श्रौर जिनका पूरी तरह से निरीक्षण नहीं किया जा सकता।

(३) साक्षात्कार विधि

(Interview Method)

श्रौद्योगिक मनोविज्ञान मे अनेक क्षेत्रो मे साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये कर्मचारी वरण मे सही कर्मचारी के चुनाव के लिये श्रावेदनकारियो का साक्षात्कार किया जाता है। इसके अतिरिक्त उद्योगों मे सुधारो के प्रति या विभिन्न परिस्थितियो के प्रति कर्मचारियो के व्यक्तिगत मत को जानने के लिये उनका अलग-अलग साक्षात्कार किया जाता है। साक्षात्कार मे साक्षात्कारकर्ता श्रौर साक्षात्कारदाता आमने-सामने बैठते हैं। इसमें सफलता इस बात पर निर्भर है कि साक्षात्कारकर्ता सही तरीके से ऐसे प्रश्न पूछे जिनसे उसे मतलब की बात का पता चल जाये। इसकी विशेषता यह है कि इसमें साक्षात्कारकर्त्ता श्रौर साक्षात्कारदाता मे व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित होता है जिससे बहुत सी ऐसी बातें मालूम होती हैं जिनका पता अन्यथा नही चल सकता यदि साक्षात्कारदाता किसी प्रश्न का उत्तर देने मे सकोच करता है तो उस सकोच को दूर किया जा सकता है। उद्योग के क्षेत्र मे भिन्न-भिन्न समस्याओं को लेकर वैज्ञानिक बहुधा कर्मचारियों, प्रबन्धको श्रौर मालिको से साक्षात्कार करके महत्वपूर्ण बातो का पता लगाते हैं।

(४) प्रश्नावली विधि

(Questionnaire Method)

आजकल उद्योग के क्षेत्र मे कर्मचारियो, प्रबन्धको श्रौर मालिको के मतो का पता लगाने के लिये एक श्रन्य विधि प्रश्नावली विधि है। प्रश्नावली विधि मे, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, कुछ चुने हुये प्रश्नो की सूची होती है जिनके उत्तरो से मतलब की बात पता लगती है। बन्द (Closed) प्रश्नावली मे प्रश्नो के सामने 'हाँ' या 'न' लिखा रहता है जिनमे से परीक्षार्थी गलत शब्द को काट देता है श्रौर सही के आगे निशान लगा देता है। खुली (Open) प्रश्नावली मे प्रश्न का कुछ शब्दो या पंक्तियों मे उत्तर देना होता है। प्रश्नावली विधि मे निम्नलिखित कठिनाइयाँ हैं:—

(i) बहुधा उत्तरदाता सही बात को छिपा लेता है श्रौर गलत उत्तर देता है।

(ii) कभी-कभी प्रश्न इस प्रकार के होते हैं कि उनका अर्थ वैज्ञानिक के लिये कुछ श्रौर होता है श्रौर उत्तरदाता कुछ श्रौर समझता है।

(iii) प्रश्नावली मे बहुधा बिना सोचे विचारे उत्तर लिख दिये जाते हैं जिससे गलत निष्कर्ष प्राप्त होते है।

उपरोक्त कठिनाइयो के बावजूद प्रश्नावली विधि मे साक्षात्कार विधि से कम

समय लगता है क्योंकि सैंकडो प्रश्नावलियां छपवाकर बटवाई जा सकती हैं या डाक द्वारा भेजी जा सकती हैं और उनसे प्राप्त उत्तरो के आधार पर आसानी से निष्कर्ष निकाले जा सकते है। किन्तु फिर प्रश्नावली विधि मे अनुसन्धानकर्ता और उत्तरदाता मे व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित न होने के कारण सही बात पूरी तरह नही मालूम होती।

(५) मनोवैज्ञानिक परीक्षण
(Psychological Tests)

औद्योगिक मनोविज्ञान मे प्रमुख समस्या विशेष कार्य के लिये उपयुक्त कर्मचारी का वरण है। इसके लिये अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणो का प्रयोग किया जाता है जिनसे कर्मचारी की योग्यताओं का पता चलता है। अब यदि उनमे विशेष कार्य के उपयुक्त योग्यता दिखलाई पडती है तो उसे वह कार्य सौंप दिया जाता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणो मे मुख्य निम्नलिखित है —

(अ) बुद्धि परीक्षण (Intelligence Tests)—बुद्धि परीक्षणो मे कुछ प्रश्नो के उत्तर या कुछ कार्यों के सम्पादन के द्वारा व्यक्ति अथवा समूह की बुद्धि की परीक्षा ली जाती है। भिन्न-भिन्न आयु मे भिन्न-भिन्न बुद्धि परीक्षण प्रयोग किये जाते हैं। बुद्धि परीक्षण शाब्दिक अथवा अशाब्दिक, व्यक्तिगत अथवा सामूहिक हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे इनमे से एक अथवा दूसरे प्रकार की आवश्यकता होती है। उद्योगो के भिन्न-भिन्न कार्य के लिये भिन्न-भिन्न बुद्धिलब्धि आवश्यक होती है। बुद्धि परीक्षणो द्वारा बुद्धिलब्धि पता लगाकर कर्मचारी वरण किया जा सकता है।

(ब) विशेष मानसिक योग्यताओं के परीक्षण (Tests of Special Abilities)—कुछ कार्यों मे कुछ विशेष मानसिक योग्यताओं की आवश्यकता होती है। इसको जानने के लिये कुछ विशेष परीक्षण प्रयोग किये जाते हैं। इस प्रकार के परीक्षण का एक उदाहरण अमरीका के साइकालॉजिकल कारपोरेशन की परीक्षण बैट्री है जिसमे वाचिक तर्क, अंक सम्बन्ध योग्यता, अमूर्त तर्क, आन्तरिक्षिक सम्बन्ध, यन्त्रवत तर्क, लेखा सम्बन्धी गति और यथार्थता तथा भाषा सम्बन्धी प्रयोग के परीक्षण हैं। विशेष मानसिक योग्यताओं की परीक्षा के लिये थर्सटन के एस० आर० ए० प्राथमिक मानसिक योग्यताओं के परीक्षण प्रसिद्ध हैं।

(स) अभिरुचि परीक्षण (Aptitude Tests)—अभिरुचि परीक्षणो मे यान्त्रिक योग्यता के परीक्षण के लिये मिनेसोटा यान्त्रिक सयोजन परीक्षण और यान्त्रिक सूझ का बैनेट परीक्षण प्रसिद्ध हैं। गत्यात्मक योग्यता के परीक्षण का एक उदाहरण स्थिरता परीक्षण तथा ओकोनर चिमटी दक्षता परीक्षण हैं। लिपिक परीक्षण का उदाहरण मिनेसोटा लिपिक परीक्षण है। कलात्मक तथा सौन्दर्यात्मक योग्यता के परीक्षण के लिये मैकएडोरी कला परीक्षण और सीशोर सगीत योग्यता माप तथा मायर कला निर्णय परीक्षण प्रयोग किये जाते हैं।

(द) रुचि के परीक्षण (Interest Tests)—औद्योगिक मनोविज्ञान के

सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक कर्मचारी को उसकी रूचि के अनुसार काम दिया जाना चाहिये। अस्तु, उद्योग के क्षेत्र मे रूचि के परीक्षण प्रचलित हैं। इस प्रकार के परीक्षणों का एक उदाहरण स्ट्राग का व्यावसायिक रुचि का रिक्त पत्र है जिसमे व्यवसाय, मनोरजन, स्कूल के विषय, विभिन्न कार्य, व्यक्तित्व की विशेपतायें, कार्य मे रुचि का क्रम, दो कार्यो मे रूचि की तुलना और वर्तमान योग्यताओ और गुणो का मूल्याकन पता लगाया जाता है। व्यावसायिक रुचि परीक्षण का एक उदाहरण क्यूडर का व्यावसायिक पसन्द लेखा है। रूचि पत्रियो मे व्यवसाय का विवरण एकत्र करने में कठिनाई होती है। उत्तरो की विश्वसनीयता मे भी सन्देह होता है। रुचिया भी बदलती रहती हैं और उनका सफलता से अनिवार्य सम्बन्ध नही होता। फिर भी उद्योग के क्षेत्र में रूचि परीक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुये हैं।

(इ) व्यक्तित्व परीक्षण (Personality Tests)— उद्योग के भिन्न-भिन्न पदों पर कार्य करने के लिये व्यक्तित्व की कुछ विशेपताओ की आवश्यकता होती है। इनका पता लगाने के लिये आवेदनकारियो को व्यक्तित्व परीक्षण दिये जाते हैं। व्यक्तित्व परीक्षण की मुख्य विधियां हैं–जीवनवृत्त विधि, साक्षात्कार विधि, प्रश्नावली विधि, निर्माण परीक्षण विधिया, पैंसिल कागज विधिया, व्यक्तित्व परिसूचिया, मूल्यांकन विधि, परिस्थिति परीक्षण, मनोविश्लेपणात्मक विधिया और प्रक्षेपी प्रविधियाँ। इन विधियो से व्यक्तित्व की विशेपताओं का पता लगाया जाता है।

(६) अभिवृत्तियों के माप

(Measurements of Aptitudes)

औद्योगिक मनोविज्ञान मे काम करने की परिस्थितियो, वेतन की दशाओं तथा अनेक प्रकार के सुधारों के विषय मे कर्मचारियों, प्रवन्धको अथवा मालिको की अभिवृत्तियो का पता लगाने के लिये अभिवृत्तियो के माप प्रयोग किये जाते हैं। अभिवृत्तियों को मापने के लिये तीन प्रकार के माप दण्ड प्रयोग किये जाते हैं।

(अ) मत मापदण्ड (Opinion Scales)—मत मापदण्ड के उदाहरण है—थर्स्टन मापदण्ड, लिकर्ट मापदण्ड और गटमैन मापदण्ड। इन मापदण्डो से व्यक्तियो के मतों को जानकर उनकी अभिवृत्तियो का पता लगाया जाता है। इनमे रचना की विधियाँ और प्रकारो का अन्तर होता है। इनसे अभिवृत्तियो का अप्रत्यक्ष रूप से पता चलता है।

(ब) मूल्यांकन मापदण्ड (Rating Scales)—इसमे अभिवृत्ति का मूल्याकन कर्मचारी के मतो या निर्णयो के आधार पर न होकर वैज्ञानिक के अपने निर्णय के आधार पर होता है। इसमे अशाब्दिक व्यवहार, शाब्दिक व्यवहार, गौण अभिव्यक्ति करने वाले अभिसूत्र, चिकित्सात्मक साक्षात्कार, निजी लेख, प्रक्षेपण प्रविधियाँ और तात्कालिक अनुभवों के आधार पर मूल्याकन किया जाता है। इसके कुछ उदाहरण हैं–रैंक पद क्रम मापदण्ड तथा जनसख्या प्रतिशत मापदण्ड।

(स) परोक्ष मापदण्ड (Indirect Scales)—इनमे कर्मचारियो को यह नही

मालूम होता कि उनकी अभिवृत्तियो की परीक्षा ली जा रही है। सन् १९३८ में ऐश, ब्लाक और हर्जमैन ने सकेत की सहायता से औद्योगिक समूहों मे मत परिवर्तन का अध्ययन किया।

(७) समय और गति अध्ययन की प्रविधियां
(Techniques of Time and Motion Studies)

औद्योगिक क्षेत्र में मनोवैज्ञानिको द्वारा अपनायी जाने वाली उपरोक्त विधियो के अतिरिक्त कुछ अन्य विधिया भी है जिनका विशिष्ट समस्याओ को सुलझाने के लिये प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक प्रसिद्ध विधि समय गति अध्ययन की विधि है जिसमे किसी भी कार्य में कर्मचारी द्वारा की जाने वाली विभिन्न गतियों का अध्ययन किया जाता है और उसमे लगे समय का पता लगाया जाता है। इससे यह मालूम होता है कि इसमे कौनसी गतिया ऐसी हैं जिनको निकाला जा सकता है और ऐसा करने से समय की बचत की जा सकती है जिससे कम समय मे अधिक उत्पादन होता है। आधुनिक काल मे उद्योग के अनेक क्षेत्रो मे समय गति अध्ययन किये गये है।

सक्षेप में, आधुनिक काल मे ज्यो-ज्यों औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में नई-नई समस्याओ में अनुसन्धान किया जा रहा है त्यो-त्यों नई-नई विधियों का भी आविष्कार किया जा रहा है। भविष्य में अधिक वैज्ञानिक विधियो का पता लगाया जा सकेगा जिससे अधिक यथार्थ निकाले जा सकेंगे।

सारांश

औद्योगिक मनोविज्ञान में उन सभी वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है जो व्यावहारिक मनोविज्ञान में इस्तेमाल होती हैं। इनमें मुख्य हैं—१. प्रयोग विधि, २. निरीक्षण विधि, ३. साक्षात्कार विधि, ४. प्रश्नावली विधि, ५. मनोवैज्ञानिक परीक्षण :—(अ) बुद्धि परीक्षण, (ब) विशेष मानसिक योग्यताओं के परीक्षण, (स) अभिरुचि परीक्षण, (द) रुचि के परीक्षण, (इ) व्यक्तित्व परीक्षण, (ई) अभिवृत्तियों के माप:—(अ) मत मापदण्ड, (ब) मूल्यांकन मापदण्ड, (स) परोक्ष मापदण्ड, ७. समय गति अध्ययन की प्रविधियां।

अभ्यास के लिये प्रश्न

1. औद्योगिक मनोविज्ञान की मुख्य विधियों का सक्षिप्त विवरण दीजिये।

   Give a brief description of the chief methods of industrial psychology.

३

औद्योगिक मनोविज्ञान के आधार

(Foundations of Industrial Psychology)

आधुनिक औद्योगिक मनोविज्ञान के विकास का अध्ययन करने से यह मालूम होता है कि उसके आधार मूल रूप से मनोवैज्ञानिक हैं। ऐसा कहने से यह तात्पर्य नही है कि मनोवैज्ञानिक आधार ही औद्योगिक मनोविज्ञान का एक मात्र आधार हैं। वास्तव मे मनोवैज्ञानिक के अतिरिक्त औद्योगिक मनोविज्ञान के आधार आर्थिक और सामाजिक भी है। किन्तु चूकि मनोविज्ञान की एक शाखा के रूप मे औद्योगिक मनोविज्ञान औद्योगिक परिस्थितियो मे मानव व्यवहार का अध्ययन है इसलिये उसके आधारो मे मनोवैज्ञानिक आधार को अधिक महत्व दिया जाना चाहिये। यहाँ पर हम औद्योगिक मनोविज्ञान के विभिन्न आधारो का सक्षिप्त विवेचन करेंगे।

औद्योगिक मनोविज्ञान के मनोवैज्ञानिक आधार

(Psychological Foundations of Industrial Psychology)

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे मनोविज्ञान का जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे इतना अधिक प्रयोग होने लगा कि उसके व्यावहारिक प्रयोग के आधार पर उसकी अनेक नई महत्वपूर्ण शाखाओ का उदय हुआ। प्रगतिशील देशो मे उद्योग और व्यवसाय के क्षेत्र मे विशेष विकास होने के साथ-साथ मनोविज्ञान का इन क्षेत्रो मे प्रयोग भी बढने लगा। इस प्रयोग के आधार पर मनोविज्ञान की नवीन शाखा औद्योगिक मनोविज्ञान की स्थापना हुई। उसमे मूल रूप से उन मनोवैज्ञानिक तथ्यो का अध्ययन प्रारम्भ किया गया जो उद्योग और व्यवसाय की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। विभिन्न उद्योगो ने मनोवैज्ञानिको को उद्योग मे सहायता देने के लिये नियुक्त किया। इन मनोवैज्ञानिकों ने उद्योगो के विभिन्न पहलुओ मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। औद्योगिक मनोविज्ञान के मनोवैज्ञानिक आधार का अध्ययन निम्नलिखित तीन पहलुओ मे विशेष रूप से किया जा सकता है—

(१) **उद्योग में मनोविज्ञान (Psychology in Industry)**—व्यवसाय और उद्योग के क्षेत्र मे अनेक कार्य ऐसे हैं जिनमे मनोवैज्ञानिक की सहायता विशेष रूप से अपेक्षित होती है। उदाहरण के लिये विभिन्न कार्यो के लिये विशिष्ट कर्मचारियो का चुनाव करने के लिये मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की आवश्यकता हो जाती है। इसी

प्रकार से कार्य करने की भौतिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ कैसी हो, इस सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिक सुझाव महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। भौतिक परिस्थितियों मे प्रकाश, तापमान, और वायु का सचार, सगीत, काम और आराम के घण्टे इत्यादि परिस्थितियाँ सम्मिलित हैं। मनोवैज्ञानिक परिस्थितियो मे कर्मचारियो की सुरक्षा, उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति, कार्य करने मे प्रलोभन, उसके आपस के और उच्च अधिकारियो से उनके सम्बन्ध इत्यादि सम्मिलित है। पदोन्नति के अवसर किन सिद्धान्तो पर आधारित होने चाहियें इस विषय में भी मनोवैज्ञानिक खोज की आवश्यकता होती है। उद्योग में मानवीय सम्बन्धो को बेहतर बनाने तथा औद्योगिक सघर्षो को सुलझाने मे तो मनोवैज्ञानिको के सुझाव बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुये हैं। इस प्रकार व्यवसाय और उद्योग के विभिन्न क्षेत्रो में मनोविज्ञान का प्रयोग लाभदायक सिद्ध हुआ है।

(२) वैयक्तिक भिन्नतायें (Individual Differences)—आधुनिक काल में मनोवैज्ञानिक परीक्षणो से यह सिद्ध हो चुका है कि बुद्धि, रुचि, अभिरुचि, विशेष योग्यताओ, व्यक्तित्व आदि के विषय मे व्यक्तियो में वैयक्तिक विभिन्नतायें पाई जाती हैं। इन विभिन्नताओ की अवहेलना करके किसी भी उद्योग मे कर्मचारियो का सही चुनाव नही किया जा सकता। औद्योगिक मनोविज्ञान वैयक्तिक भिन्नताओ के मनोविज्ञान पर आधारित है क्योकि इसमें किसी भी प्रकार के सुझाव देते समय वैयक्तिक भिन्नताओ को ध्यान में रखना पडता है। जब कि एक व्यक्ति को एक प्रकार से समझाया जा सकता है दूसरे व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार समझाने की भिन्न विधि अपनायी जाती है। अस्तु, वुण्ट से लेकर आधुनिक काल मे कैटेल,[1] बिने और क्रेपलिन तथा मुंस्टरबर्ग आदि मनोवैज्ञानिको ने वैयक्तिक भिन्नताओ के महत्वपूर्ण अध्ययन किये हैं।

(३) वैयक्तिक समायोजन (Personal Adjustment)—कारखाने में कर्मचारी का अपने चारो ओर की परिस्थितियो से समायोजन अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना वह काम मे रुचि नही ले सकता और उसमे तनाव बना रहता है। समायोजन होने से औद्योगिक सघर्ष और दुर्घटनायें कम होती हैं तथा थकावट और अरोचकता भी नही बढ़ती। यह समायोजन किस प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है और कैसे बनाया जा सकता है, इस विषय में औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र मे बराबर *अनुसन्धान किये जा रहे हैं।*

औद्योगिक मनोविज्ञान के सामाजिक आधार

(Social Foundations of Industrial Psychology)

उद्योग की परिस्थितियों मे व्यक्ति अकेला नही रहता। उसे अपने साथ के अन्य कर्मचारियो, अधिकारियो और मालिको से बराबर सम्पर्क में आना पडता है।

---

1. Cattell, J. Mck: *Mental Tests and Measurements*, Mind, 1 (1890), p. p 373—80

व्यापार मे प्रत्येक कर्मचारी को तरह-तरह के लोगो से व्यवहार करना पडता है। अस्तु, औद्योगिक मनोविज्ञान के सामाजिक आधारो का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है। इसीलिये आजकल औद्योगिक प्रबन्ध को वैज्ञानिक स्तर पर लाने के लिये प्रयास किये गये हैं। प्रगतिशील देशो मे नाना प्रकार के सामाजिक कार्य-कर्मो के द्वारा कर्मचारियो के सामाजिक जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास किया गया है। संक्षेप मे, औद्योगिक मनोविज्ञान के सामाजिक आधार मे निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं—

(१) **कर्मचारी और सामाजिक प्रगति** (Worker and Social Progress)—औद्योगिक कर्मचारियो की प्रगति सामान्य सामाजिक प्रगति का ही एक अग है। इसीलिए समाज सुधार के आन्दोलनो के विकास के साथ-साथ श्रमिको की दशा मे सुधार के आन्दोलन भी उत्पन्न हुये। यह सामान्य रूप से मान लिया गया कि जब तक श्रमिको की दशा मे सुधार नही होता तब तक सामाजिक सुधार का कार्य अधूरा ही रहता है। इसलिये सामाजिक कार्यकर्त्ताओ ने श्रमिको की दशा मे सुधार के लिए कदम उठाये। विधान सभाओ मे इस सम्बन्ध मे विधेयक उपस्थित किये गये और सरकार ने अधिनियम बनाये। सामाजिक कार्यकर्त्ताओं ने उद्योगपतियों का ध्यान श्रमिकों की दुर्दशा की ओर खीचा और इस बात पर जोर दिया कि उन्हे मानव सुलभ अधिकार दिये जाये और उनकी परिस्थितियाँ ऐसी हो जिससे उनका सब प्रकार से विकास हो सके। श्रमिकों के शोषण का उग्र विरोध किया गया। उनकी सामाजिक सुरक्षा की ओर ध्यान दिया गया। राजनैतिक दलो ने भी श्रमिकों के सुधार की ओर ध्यान दिया। इस प्रकार से प्रगतिशील देशों मे उद्योगो के क्षेत्र मे सुधार को सामान्य समाज सुधार के एक अग के रूप मे आगे बढाया गया। आधुनिक प्रगतिशील देशो मे उद्योगो के क्षेत्र मे यह मानवतावादी भावना बराबर बढती जा रही है।

(२) **कर्मचारी विभाग और श्रम कल्याण योजना** (Worker's Department and Welfare Schemes)—उपरोक्त विचार धारा को लेकर आधुनिक काल मे प्रत्येक प्रगतिशील देश मे कर्मचारी विभाग की स्थापना की गई है जो कर्मचारियो के हितों की सब प्रकार से देखभाल करता है। श्रम कल्याण (Labour welfare) *को सामाजिक कल्याण का महत्वपूर्ण अग माना जाने लगा है।* श्रम कल्याण मे श्रमिको का सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक सब प्रकार का कल्याण सम्मिलित है। इसकी ओर ध्यान देने के लिए बड़े-बड़े उद्योगो मे श्रम कल्याण अधिकारियो की नियुक्ति की जाती है जोकि इस क्षेत्र की समस्याओं को सुलझाने मे उद्योगपतियो की सहायता करते हैं। आधुनिक राज्य कल्याणकारी राज्य है। उसका उद्देश्य नागरिकों का सब प्रकार से कल्याण करना है। श्रमिक देश की जनता का महत्वपूर्ण अग है। इसलिये जो राज्य श्रम कल्याण के लिये उचित व्यवस्था नही करता वह सामाजिक कल्याण के उद्देश्य को प्राप्त नही कर सकता। देश के स्वतन्त्र होने के बाद से भारतवर्ष में भी श्रम कल्याण की दिशा मे विशेष ध्यान दिया गया है और

समय-समय पर भिन्न-भिन्न उद्योगो मे काम करने वाले कर्मचारियों के हितो को सरक्षण देने के लिए अधिनियम बनाये गये है। यद्यपि अभी भी बहुत से उद्योगपति तरह-तरह के उपायों से कानून की पकड से बच निकलते है परन्तु श्रम सगठनो के दबाव से क्रमश. यह स्थिति बदलती जा रही है।

(३) **औद्योगिक व्यवस्था** (Industrial Management)—आधुनिक काल मे औद्योगिक व्यवस्था को वैज्ञानिक स्तर पर लाने का प्रयास किया जा रहा है। इस सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिक टेलर और थामसन के सुझाव विशेष रूप से महत्वपूर्ण सिद्ध हुये हैं। वैज्ञानिक औद्योगिक व्यवस्था से तात्पर्य एक ऐसी औद्योगिक व्यवस्था की स्थापना करना है जिसमे औद्योगिक व्यवस्था के विभिन्न अग परस्पर समायोजन से अधिक से अधिक कुशलता के साथ कार्य करें और किसी भी अग का शोषण न हो। वैज्ञानिक औद्योगिक व्यवस्था मे श्रमिको की ओर मानवीय दृष्टिकोण रक्खा जाता है और उनकी सुविधायें बराबर बढायी जाती हैं। प्रगतिशील देशो मे क्रमश इस दिशा मे बराबर प्रगति हो रही है।

औद्योगिक मनोविज्ञान के आर्थिक आधार
(Economic Foundations of Industrial Psychology)

औद्योगिक मनोविज्ञान के अध्ययन न केवल कर्मचारियो के व्यक्तिगत और सामाजिक लाभ मे सहायक सिद्ध हुये है बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी लाभदायक सिद्ध हुये हैं। इसलिये औद्योगिक मनोविज्ञान के विकास मे आर्थिक कारको ने भी महत्व-पूर्ण योगदान दिया है। आधुनिक काल मे यह भली प्रकार सिद्ध हो चुका है कि यदि उद्योगपति को अपने उद्योग की अधिक से अधिक प्रगति करनी है तो उसे उद्योग में काम करने वाले कर्मचारियो की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए और ऐसी मनोवैज्ञानिक परिस्थितियां उत्पन्न करनी चाहियें जिनमे कर्मचारियो मे नीतिमत्ता और कुशलता बनी रहे। उद्योगो मे मशीनों के प्रादुर्भाव से कुछ समय के लिये मानव तत्व का महत्व घट गया था किन्तु शीघ्र ही वैज्ञानिको ने इस ओर ध्यान दिलाया कि इस तत्व पर समुचित ध्यान दिये बिना उद्योगो मे प्रगति नही की जा सकती। अस्तु औद्योगिक व्यवस्था को वैज्ञानिक स्तर पर लाने का प्रयास किया गया। इस दिशा में अमरीकन इजीनियर एफ० डब्लू० टेलर (F W Taylor)[2] ने ठोस उदम उठाया। उसने जो योजना प्रस्तुत की वह टेलरवाद (Taylorism) के नाम से प्रसिद्ध हुई। उसने अपनी योजना को *वैज्ञानिक व्यवस्था का नाम दिया।*

टेलर का वैज्ञानिक व्यवस्था का सिद्धान्त

औद्योगिक मनोविज्ञान के विकास मे अमरीकन इजीनियर टेलर ने उद्योगो मे वैज्ञानिक व्यवस्था के मूल सिद्धान्त उपस्थित किये। टेलर की प्रणाली मे उद्योगो मे दो मूलभूत आवश्यकतायें मानी गई हैं, पहली यह कि प्रत्येक कर्मचारी मालिक से

---

2. Taylor, F. W., *Shop Management*, New York, 1911, p. 21.

अधिक से अधिक वेतन लेना चाहता है और मालिक कम से कम वेतन देकर अधिक से अधिक उत्पादन कराना चाहता है। दूसरे, उद्योग में कोई भी व्यवस्था ऐसी नहीं है जिससे मालिक और मजदूर के सम्बन्ध अच्छे बने रहें और दोनों सन्तुष्ट रहें तथा औद्योगिक विकास को दोनों अपना लक्ष्य बनाकर सहयोग से काम लें। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए टेलर ने औद्योगिक प्रबन्ध के लिये एक नई योजना प्रस्तुत की। इस योजना को बेबकाक (G. D. Babcock) ने निम्नलिखित चार सिद्धान्तों में उपस्थित किया—[3]

(१) पुरानी अंगूठा टेक विधियों को हटाने के लिए मानव के कार्य के प्रत्येक तत्व के लिये एक विज्ञान का विकास।

(२) प्रत्येक विशिष्ट कार्य के लिए सर्वोत्तम कर्मचारी का चुनाव और उसके बाद कर्मचारी के प्रशिक्षण का कार्यक्रम जो कि कर्मचारी के स्वयं अपना कार्य चुनने और स्वयं अपना अधिक से अधिक प्रशिक्षण करने की प्रथा का स्थान ले ले।

(३) विकसित विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार अपने कार्यों को चलाने के लिए प्रबन्धकों और मनुष्यों में हार्दिक सहयोग की प्रवृत्ति का विकास।

(४) प्रबन्धकों और कर्मचारियों में लगभग बराबर हिस्से के रूप में कार्य का विभाजन जिसमें कि प्रत्येक विभाग उस कार्य को ग्रहण करे जिसके लिये वह सबसे अधिक योग्य है और इस प्रकार उस दशा का स्थानापन्न बन जाये जिसमें लगभग सभी कार्यों और उत्तरदायित्व का अधिकांश भाग कर्मचारियों पर डाल दिया जाता था।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि टेलर उद्योग के क्षेत्र में पुरानी घिसी-पिटी विधियों के स्थान पर नई वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करना चाहता था। वह कर्मचारी वरण और उनका प्रशिक्षण वैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर करना चाहता था। उसने उद्योग की प्रगति के लिए कर्मचारियों और प्रबन्धकों दोनों के समान उत्तरदायित्व के साथ परस्पर सहयोग और विश्वास से काम करने पर जोर दिया।

टेलर के उपरोक्त सिद्धान्त उसके कुछ प्रयोगों पर आधारित है। सबसे पहले उसने कच्चा लोहा उठाने के उद्योग से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने के लिये उपरोक्त सिद्धान्तों का प्रयोग किया। उसने बैथेलहम इस्पात कम्पनी में कच्चा लोहा ढोने वाले कर्मचारियों पर वैज्ञानिक प्रबन्ध की व्यवस्था लागू की। इस कम्पनी में

टेलर के प्रयोग[4]

3 Babcock, G. D., *The Taylor System in Franklin Management Application & Results*, New York, 1917, p. 17

4. Taylor, F. W., *The Principles of Scientific Management*, New York, 1911, p. 42

उस समय लगभग [illegible]५ श्रमिक थे जोकि पुरानी अगूठा टेक विधियों से लोहा ढोने का काम करते थे। वे साधारणतया स्वस्थ और कार्यकुशल थे और फोरमैन के आदर्शों का पालन करते थे। लोहा ढोने की प्रणाली में पहले मजदूर झुक कर लगभग ९२ पौण्ड वजन का लोहा उठाता था। अब वह उसे लेकर कुछ गज चलता और फिर निश्चित स्थान पर रख देता। इस तरह वह दिन भर में लगभग साढ़े १२ टन लोहा ढोता था। कम्पनी के प्रबन्धकों को बतलाया गया कि टेलर की नई योजना से काम लेने से प्रत्येक मजदूर लगभग चौगुना लोहा ढो सकता है जबकि उसकी मजदूरी उतनी अधिक नहीं बढ़ेगी। टेलर ने यह बतलाया कि उसकी प्रणाली से काम करने से प्रत्येक श्रमिक प्रतिदिन लगभग ४७, ४८ टन लोहा ढो सकता है। प्रबन्धकों ने उसको विशेष प्रोत्साहन नहीं दिया परन्तु इससे टेलर हतोत्साह नहीं हुआ।

अपने प्रयोग के लिए टेलर ने पेंसिलवानिया के एक डच श्रमिक को चुना जिसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी और वह उच्च चरित्र का था। टेलर ने उससे पूछा कि वह एक दिन में १·८५ शिलिंग मजदूरी लेना अच्छी समझेगा या १·१५ शिलिंग। स्वाभाविक था कि वह मजदूर अधिक मजदूरी लेना अच्छा समझता। टेलर ने उसको बतलाया कि १·८५ शिलिंग मजदूरी लेने के लिए उसे नये तरीके से काम करना पड़ेगा जिससे वह प्रतिदिन ४७½ टन लोहा ढो सकता है। नये तरीके से काम करने के लिए श्रमिक को प्रशिक्षण के अनुसार कार्य करना था और निरीक्षक के प्रत्येक आदेश का पालन करना था। श्रमिक ने अपना कार्य प्रारम्भ किया और वह निरीक्षक के आदेश का अक्षरशः पालन करने लगा। जब निरीक्षक ने उसे उठने को कहा तब वह उठा, जब आराम करने को कहा तब उसने आराम किया। इसका परिणाम यह हुआ कि काम के घण्टे पूरे करने पर उस श्रमिक ने लगभग साढ़े सैतालिस टन लोहा ढोया और परिणामस्वरूप उसको १·८५ शिलिंग मजदूरी प्राप्त हुई। इस डच श्रमिक के उदाहरण को लेकर टेलर ने प्रत्येक अन्य श्रमिक को इसी प्रकार काम करने के लिए कहा। किन्तु सभी कर्मचारी इस विधि से काम करने के लिए तैयार नहीं थे। प्रत्येक आठ में से केवल एक कर्मचारी ही इस विधि का प्रयोग करने के लिए उपयुक्त पाया गया। परिणाम यह हुआ कि कम्पनी के ७५ कर्मचारियों में से केवल ९ श्रमिक रख लिये गये जो कि सुयोग्य थे और बाकी ६६ को निकाल दिया गया। इस छटनी से निकाले गये कर्मचारियों ने टेलर की बड़ी बुराई की। किन्तु टेलर अपने इस सिद्धान्त पर जमा रहा और उसने उन्हें समझाया कि वे अन्य स्थानों पर अपने उपयुक्त कार्य करके अधिक वेतन पा सकते हैं। टेलर के इस प्रयोग से कम्पनी और कर्मचारी दोनों को लाभ हुआ। कम्पनी को केवल थोड़ी सी मजदूरी अधिक देकर लगभग चौगुना परिणाम प्राप्त हुआ क्योंकि १·१५ शिलिंग के स्थान पर १·८५ शिलिंग मजदूरी देने से साढ़े १२ टन लोहा के स्थान पर साढ़े ४७ टन लोहा ढोया गया। दूसरी ओर कर्मचारी को लगभग ७० शिलिंग

वेतन अधिक मिला। इस प्रकार जब कि कर्मचारी ने चौगुना काम किया उसे उतना लाभ नही हुआ। इस बात से कर्मचारियो ने टेलर को मालिकों का एजेण्ट और श्रमिको का शत्रु ठहराया।

टेलर के सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए एक अन्य उदाहरण भी दिया गया है। इसमें बालबियेरिंग इन्सपैक्टरो के उत्पादन की वृद्धि और गुण मे सुधार करने के लिए थामसन (Thompson) ने कुछ सुझाव उपस्थित किये। इस योजना मे विश्राम काल को कार्य मे आवश्यक स्थान दिया गया और कार्य की दशाओ का सुधार किया गया। प्रत्येक कार्य के लिये उचित कर्मचारी का चुनाव किया गया और उसे उचित प्रशिक्षण तथा विश्राम दिया गया। इन सब सुधारो से यह देखा गया कि जो काम पहले १२० लडकिया करती थी उसे अब केवल ३५ लडकिया ही करने लगी। इन लडकियो का वेतन भी बढाया गया। वेतन मे वृद्धि ८० से १०० प्रतिशत तक हुई। दूसरी ओर कार्य का समय घटा अर्थात् अब प्रत्येक लडकी को साढे १० घण्टे के बजाय साढे ८ घण्टे कार्य करना पडता था। शनिवार के दिन आधे दिन की छुट्टी दी जाती थी। प्रत्येक लडकी को यह महसूस हुआ कि वह कम्पनी में बहुत महत्व रखती है और इसलिये वह अधिक मेहनत से कार्य करने लगी। इस प्रकार वैज्ञानिक सुधारों से कम्पनी और कर्मचारियो दोनों को ही लाभ हुआ।

थामसन के प्रयोग

टेलर के सिद्धान्तो को उसके शिष्य गिलब्रेथ (Gilbreth) ने भी प्रयोग किया। गिलब्रेथ ने ईंटें जोडने के काम मे टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्ध की प्रणाली अपनाई। इसके पहले ईंटें जोडने का काम पुराने ढग से किया जाता था जिसमे ईंटे, चूना, सीमेंट और अन्य सामान रखने के स्थान पर कोई ध्यान नही दिया जाता था कही ईंटे रखी होती थी तो किसी अन्य स्थान पर चूना और सीमेण्ट होता था। इसका परिणाम यह होता था कि राज और मजदूर सभी को ईंटें जोडने के काम मे अधिक गतिया करनी पडती थी जिसमे श्रम भी अधिक होता था और काम भी कम होता था। गिलब्रेथ ने इन गतियों का अध्ययन किया और सब सामग्री को एक स्थान पर एकत्रित किया तथा ईंटें जोडने के काम के लिये योग्य और कुशल कर्मचारियों की नियुक्ति की और उन्हे आवश्यक प्रशिक्षण दिया। इन सब सुधारो से अत्यधिक लाभ हुआ। जबकि पहली प्रणाली में एक श्रमिक एक घण्टे में १२० ईंटें जोडता था, गिलब्रेथ के सुधारो के बाद एक मजदूर एक घण्टे मे ३२० ईंटें जोड़ने लगा। इस प्रकार जहाँ एक ओर मालिको को लाभ हुआ वहाँ साथ ही साथ दूसरी ओर श्रमिको की मजदूरी भी बढा दी गई। इससे अन्त में मालिक और मजदूर दोनो को ही लाभ हुआ।

गिलब्रेथ के प्रयोग[5]

---

5 Gilbreth, F W , *Bricklaying System*, New York, 1909

टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्ध की व्यवस्था के विषय में उपरोक्त प्रयोगो के उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि उसका उद्देश्य कार्य करने की दशा मे सुधार करना था। कार्य करने की दशा को सुधारने के लिए अनेक बाते अपनानी पडती है। इस सम्बन्ध में टेलर ने निम्न-लिखित विधियो को आवश्यक माना है—

वैज्ञानिक प्रबन्ध के तत्व

(१) काम के समय का अध्ययन और कम समय मे अधिक काम करने की विधियो की खोज।

(२) काम को फोरमैनो मे बॉट देना।

(३) काम के लिए अधिक उपयुक्त औजारो का प्रयोग।

(४) योजना विभाग की स्थापना।

(५) प्रबन्ध मे अतिरिक्त नियम।

(६) आसान नियमों तथा उनके संशोधन और समय बचत की योजना का प्रबन्ध।

(७) कर्मचारियो के लिये निर्देश पत्रो की व्यवस्था।

(८) वेतन के रूप मे विभिन्न दर।

(९) निर्माण के अनुसार कार्यों का विभाजन।

(१०) मार्ग निर्देशन का प्रबन्ध।

(११) वर्तमान मूल्यो को देखते हुये वेतन दर को निश्चित करना।

(१२) अच्छे काम को महत्व देना और अच्छे काम के लिए उचित पारि-तोषिक बाँटना।

टेलर ने बतलाया कि उपरोक्त १२ विधियो से किसी भी उद्योग में वैज्ञानिक प्रबन्ध स्थापित किया जा सकता है। इन विधियो के अतिरिक्त वैज्ञानिक प्रबन्ध को सफल बनाने के लिये टेलर ने नये-नये प्रलोभनो की खोज करने और उनके प्रयोग की सहायता से श्रमिको मे उत्पादन बढवाने पर जोर दिया।

टेलरवाद का सामाजिक पक्ष

अपनी वैज्ञानिक प्रबन्ध की व्यवस्था मे टेलर ने मजदूरो के सामाजिक पक्ष मे प्रगति का समर्थन किया। उसने इस बात पर जोर दिया कि यदि वैज्ञानिक प्रबन्ध को अपनाया जाये तो जहाँ एक ओर प्रत्येक व्यक्ति की उत्पादन क्षमता दुगनी, तिगुनी और चौगुनी बढ जाती है वहाँ दूसरी ओर उसकी आय भी बढ जाती है। इस तरह वैज्ञानिक प्रबन्ध अपनाने से मालिक और मजदूर दोनो को ही लाभ होता है। एक ओर उत्पादन बढता है तो दूसरी ओर मजदूरी बढती है। अस्तु, मालिक मजदूर के संघर्ष कम होते हैं और दोनो सहयोग से काम करते हैं तथा एक दूसरे का सम्मान करते हैं।

टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध का जहाँ कुछ लोगो ने स्वागत किया है वहाँ उसकी

आलोचना भी कम नही की गई है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, अनेक कर्मचारियो ने ही उसको मालिको का एजेण्ट कहा क्योकि उनकी योजना मे कर्मचारियो का वेतन उस अनुपात मे नही बढ़ाया गया था जिस अनुपात मे उनके द्वारा उत्पादन बढ़ता था। सच तो यह है कि टेलर की वैज्ञानिक व्यवस्था से लाभ उठाकर ही मालिको ने अपनी पूँजी दिन दूनी और रात चौगुनी बढानी शुरू की। अमरीका मे टेलर के प्रभाव से सब कही उद्योगो मे वैज्ञानिक प्रबन्ध की विधि अपनायी गई। इससे श्रमिक को कम और पूँजीपतियों को अधिक लाभ हुआ और यह कहना ठीक है कि पूँजीपतियों ने ही टेलर के सिद्धान्त का इतना अधिक प्रचार किया। किन्तु यदि कर्मचारी के उत्पादन की वृद्धि के अनुपात मे ही उसका वेतन भी बढा दिया जाता तो टेलर की योजना श्रमिको के लिये वरदान सिद्ध होती यद्यपि इसमे सदेह है कि उस परिस्थिति में सभी उद्योगपति उसे अपनाने को तैयार होते। सच तो यह है कि टेलर ने जितना अधिक उत्पादन को बढाने की ओर ध्यान दिया उतना अधिक मजदूरी बढाने की ओर ध्यान नही दिया जिसका लाभ उठाकर मालिको ने उसके सिद्धान्त को अपने लाभ के लिए प्रयोग किया अन्यथा वैज्ञानिक दृष्टि से उसके सिद्धान्त के महत्व मे किसी को भी सन्देह नही होना चाहिए। उसके अनेक शिष्यो और अनुयायियो ने उसे भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे अपनाया। उसके वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त को लेकर औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र और आर्थिक पक्ष दोनों ही मे व्यापक अनुसन्धान किये गये। उसके सिद्धान्त के प्रभाव से विभिन्न उद्योगों में विभिन्न कार्यों के लिये उपयुक्त कर्मचारियों का चुनाव होने लगा और ऐसा करने में मनोवैज्ञानिक परीक्षणो की सहायता ली जाने लगी। विभिन्न उद्योगो मे अनावश्यक गतियो को रोकने तथा अरोचकता और दुर्घटना की रोकथाम के लिये उपाय किये गये आराम के घण्टो के समुचित उपयोग की ओर ध्यान दिया गया और काम मे रुचि बढाने के लिए अनेक तरीके अपनाये गये। कर्मचारियों और फोरमैनों को अपने-अपने विशिष्ट कार्यो मे प्रशिक्षण दिया गया। उनके स्वास्थ्य, आराम और विकास के लिये उपयुक्त और आवश्यक भौतिक दशाओं का अध्ययन किया गया और उद्योगो मे उनका समुचित प्रबन्ध किया गया। वेतन के नियमो का अध्ययन करके उससे सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया गया। इस प्रकार टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्ध की व्यवस्था से औद्योगिक मनोविज्ञान के आर्थिक आधार को व्यवस्थित रूप मिला। उत्पादन और मजदूरी दोनों की वृद्धि के उपाय सुझाने के कारण औद्योगिक मनोविज्ञान का महत्व बढ गया। मालिक और मजदूर के सम्बन्ध अच्छे हुए और प्रत्यक्ष शोषण बहुत कम हो गया। जो कुछ शोषण रहा वह अप्रत्यक्ष शोषण था। इस प्रकार औद्योगिक मनोविज्ञान के प्रभाव से उद्योग के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक सुधार हुए।

टेलरवाद की आलोचना

सारांश

औद्योगिक मनोविज्ञान के मूलाधार मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक है।

औद्योगिक मनोविज्ञान के मनोवैज्ञानिक आधार—(१) उद्योग में मनोविज्ञान, (२) वैयक्तिक विभिन्नतायें, (३) वैयक्तिक समायोजन।

औद्योगिक मनोविज्ञान के सामाजिक आधार—(१) कर्मचारी और सामाजिक प्रगति, (२) कर्मचारी विभाग और श्रम कल्याण योजना, (३) औद्योगिक व्यवस्था।

औद्योगिक मनोविज्ञान के आर्थिक आधार—इसमें टेलर का वैज्ञानिक व्यवस्था का सिद्धान्त टेलर, के प्रयोग, थामसन के प्रयोग तथा गिलब्रेथ के प्रयोग उल्लेखनीय हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ औद्योगिक मनोविज्ञान के आधारों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

Give a brief introduction of the bases of industrial psychology.

४

उद्योग में मानवीय कारक

(Human Factors in Industry)

पहले जमाने मे उद्योग मे मजदूरो को कारखानो की मशीनो के साथ ही कारखाने का पुर्जा समझा जाता था। उनके साथ बडा ग्रमानवीय व्यवहार होना था। बहुत से मजदूरो की हालत तो गुलामो से अच्छी नही थी। अंग्रेजो के जमाने मे भारतवर्ष मे नील के कारखानो के मालिक निलहे साहबो के कारखानो मे काम करने वाले मजदूरो पर अत्याचार के विरुद्ध अनेक राष्ट्रीय नेताओ ने आवाज उठाई थी। पश्चिम मे भी कारखानो मे और खानो मे मजदूरो के साथ मालिको का व्यवहार अच्छा नही था। मजदूरो से डाट डपट से काम लिया जाता था। बहुत-से व्यवसायो मे कर्मचारियो को नोटिस दिये बगैर निकाल दिया जाता था। दुर्घटना होने पर कर्मचारी और उसके परिवार को भूखो मरने तक की नौबत आ जाती थी। मशीनो के आविष्कार के बाद स्त्रियो और बच्चो मे भी कारखानो मे काम लिया जाने लगा। इसमे उनकी कोमल दशा पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। आवश्यक होने पर भी स्त्रियो को छुट्टी नही मिलती थी। बहुधा सन्तान होने पर स्त्री को नौकरी से निकाल दिया जाता था। कारखाने की व्यवस्था और काम करने की दशाये भी बडी शोचनीय थी। मालिको को अपने लाभ से मतलब था। कारखाने मे रोशनी, हवा, पानी, सफाई आदि का क्या इन्तजाम है इसमे उन्हे कोई दिलचस्पी नहीं थी। सरकार की ओर से काम के घण्टो पर अधिक रोक-टोक न होने के कारण व्यवसायो के मालिक-लोग कर्मचारियो से कम वेतन मे अधिक घण्टे काम लेते थे। पदोन्नति के विषय मे भी कोई निश्चित नियम नही थे। मजदूरो को काम मे प्रलोभन दिये जाने की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। इस प्रकार उद्योग के क्षेत्र मे सब कही शोषण का राज्य था।

कर्मचारियों से दुर्व्यवहार

साम्यवादी और जनतन्त्रीय आदर्शों के प्रचार से क्रमश. लोगो ने इस स्थिति का विरोध किया। जगह-जगह पर मजदूर सघ बने। भिन्न-भिन्न व्यवसायो ने अपने-अपने अलग-अलग सघ बना लिये। प्रगतिशील देशो मे अधिकतर व्यवसायों मे कर्मचारियो ने सगठित होकर काम की दशाओ को बेहतर बनाने के लिये और कर्मचारियो के जीवन को अन्य मनुष्यों के समान बनाने के लिये आन्दो-

मानवीय व्यवहार और दशाओं की मांग

लन किये। जनतन्त्रीय और साम्यवादी सरकारों ने भी इस ओर ध्यान दिया। इसके अलावा विचारकों और वैज्ञानिको ने इस तथ्य को उपस्थित किया कि उद्योगो मे मानवीय सम्बन्ध (Human relations) अच्छे न रहने से कर्मचारियों के साथ-साथ मालिको और सरकार को भी हानि है। इससे यह विचारधारा फैलने लगी है कि उद्योग मे मानवीय सम्बन्धो को बेहतर बनाये जाने की कोशिश की जानी चाहिये।

उद्योग में मानवतावादी विचार

आज के इस युग मे अनेक कारणों से उद्योग के क्षेत्र मे मानवतावादी विचार बढते जा रहे है। अब मजदूरो को कारखाने के विशाल यन्त्र का एक पुर्जा मात्र नही समझा जाता। अब यह समझ लिया गया है कि उद्योग का हित इसी मे है कि मजदूर सुखी और सन्तुष्ट हों। उद्योग का यह मानवीकरण (Humanization) मनोविज्ञान की देन है। इसके कारण अब मालिक लोग मजदूरो के कल्याण (Welfare) का भी ध्यान रखते है। मनोविज्ञान ने इस बात पर जोर दिया है कि मनुष्य का काम केवल शारीरिक ही नही होता बल्कि मानसिक भी होता है। कारखाने मे काम करने की विधियो मे सुधार करने के लिये इस तथ्य को ध्यान मे रखना जरूरी है।

औद्योगिक प्रशासन में मानव सम्बन्ध

उद्योग मे मानव सम्बन्ध मुख्य रूप मे दो क्षेत्रो मे दिखाई पडते है—प्रशासन (Administration) का क्षेत्र और कल्याण (Welfare) का क्षेत्र। प्रशासन के क्षेत्र मे अधिकारियों और कर्मचारियो के सम्बन्ध का बडा महत्व है। श्रमिक कोई मशीन का पुर्जा नही है। वह मनुष्य है उसमें मानव सुलभ प्रेरणायें, सवेग, अनुभूतिया, आशायें, इच्छाये और आवश्यकताये है। वह चाहता है कि उसके अच्छे काम की प्रशसा की जाय। वह चाहता है कि उसकी मेहनत से उसको लाभ हो। वह आदर और प्रेम चाहता है। यदि अधिकारी लोग उससे मनुष्य के समान व्यवहार करते है तो उसका काम उसके लिये अधिक सुखद हो जाता है। पिछले दिनो जो स्थान-स्थान पर हडताल और तालेबन्दी की घटनायें दिखाई पडती थी वे मूल रूप मे प्रशासन से सम्बन्धित थी। कारखाने के प्रशासन मे श्रमिकों से उचित व्यवहार के साथ-साथ कारखाने की व्यवस्था भी सम्मिलित है। कारखाने मे नियुक्ति पद का स्थाई होना और पदोन्नति आदि के बारे मे निश्चित नियम होने चाहियें जिस से कि कर्मचारी सुरक्षा अनुभव करे। उसको यह मालूम हो कि प्रगति का रास्ता सीधा है और सच्चाई तथा ईमानदारी से काम करने से बराबर प्रगति हो सकती है। ऐसा न होने पर कर्मचारियो मे असन्तोष रहता है और वे मन लगाकर काम नही करते। अच्छा और अधिक काम दिखाने पर कर्मचारियो की प्रशसा होनी चाहिये और उनको किसी न किसी रूप मे लाभ होना चाहिये। उनका वेतन बढाया जाय, उनको लाभांश (Bonus) मिले, उनको ऊचा पद मिले, काम करने की दशायें बेहतर

की जायें, अच्छी जगह तबादला हो जाय, इन सब बातो के रहने से काम करने मे प्रेरणा रहती है। प्रलोभनो के बगैर उद्योग में कभी भी उतना अधिक और अच्छा काम नही हो सकता।

उद्योगो में कर्मचारियो और अधिकारियो मे मतभेद होना कोई अनहोनी बात नही है। सभी मनुष्य हैं, उनके मन मे एक दूसरे के प्रति हर तरह की भावनायें आ सकती हैं। अत. सघर्ष के अवसर आते रहते हैं। मानव सम्बन्धो की इन समस्याओ मे बडी चतुरता से काम लेने की जरूरत है। यदि अधिकारी ढिलाई दिखलाता है तो हो सकता है कि उसका गलत फायदा उठाकर कर्मचारी लोग काम मे ढिलाई शुरू कर दें। दूसरी ओर यदि अधिकारी जरूरत से ज्यादा कठोर है, बातबात में झिडकता और फटकारता है, कर्मचारियो का अपमान करता है और उन्हे धमकियाँ देता है तो इससे भी काम में उत्साह बने रहना कठिन है। वास्तव मे कर्मचारियो मे सभी का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है। इसलिये अधिकारी को यथायोग्य व्यवहार करना चाहिये। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि जहाँ तक हो सके आपस के सम्बन्ध मानव-सुलभ और अच्छे बने रहें।

पहले यह समझा जाता था कि यदि मालिक कर्मचारी को उसके काम का पारिश्रमिक देता है तो उसका कर्तव्य यही समाप्त हो जाता है। आज के अर्थशास्त्र मे आर्थिक लाभ से अधिक कल्याण पर जोर दिया गया है।

उद्योग में कल्याण

आज के राज्यो के सामने कल्याणकारी राज्य का आदर्श है। इसलिये आजकल यह माना जाता है कि कर्मचारियो को वेतन देने के साथ-साथ उनके कल्याण का ध्यान रखना भी उतना ही जरूरी है। कर्मचारियो के लिये मानव-सुलभ सेवाओ, सुविधाओ और आरामो का इन्तजाम होना चाहिये। उनके काम करने का और घर का वातावरण स्वस्थ होना चाहिये। उनको बौद्धिक, भौतिक, नैतिक और आर्थिक उन्नति के अवसर मिलने चाहियें। उनके कल्याण के लिये मकानो की व्यवस्था, चिकित्सा और शिक्षा सम्बन्धी सुविधायें, अच्छे भोजन की सुविधायें तथा आराम और मनोरजन की सुविधायें होनी चाहिये। स्त्री कर्मचारियो के लिये अवकाश की और वेतन सहित छुट्टी की व्यवस्था बहुत जरूरी है। माताओ के लिये व्यवसायो मे लगे हुये धाय गृह और शिशु गृह होने चाहियें। बीमारी मे कर्मचारियो को विशेष सहायता मिलनी चाहिए। स्त्रियो के लिये मातृत्व लाभ योजनायें आवश्यक हैं। कर्मचारियो के बच्चो की शिक्षा का भी प्रबन्ध होना चाहिये। इन सब बातो के अलावा कर्मचारियो के भविष्य की सुरक्षा का भी ध्यान रखा जाना चाहिये। इसके लिये प्रोविडेन्ट फण्ड, पेन्शन तथा जीवन बीमा आदि का इन्तजाम होना चाहिये। इस प्रकार आजकल यह माना जाता है कि मालिकों को कर्मचारियो के सर्वांगीण विकास का प्रयास करना चाहिये।

वास्तव मे कर्मचारियो के कल्याण मे खर्च किये हुये धन से मालिकों को भी

कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता है। उससे श्रमिको की कार्य कुशलता और सहयोग बढता है। यदि कारखाने मे काम करते समय मजदूर किसी दुर्घटना का शिकार हो जाये तो उसके परिवार के भरण-पोषण का प्रबन्ध करना मालिक का नैतिक कर्तव्य है। वास्तव मे श्रम कल्याण कार्यों मे लगाया गया धन खर्च न होकर विनियोग

कल्याण कार्यों से लाभ

(Investment) है क्योकि जितना खर्च किया जाता है उसमे अन्त मे मालिको को लाभ पहुचता है। मजदूरो की कुशलता बढने से उत्पादन बढता है और कच्चा माल कम खर्च होता है। वैज्ञानिक ढग से कर्मचारी वरण करने से मध्यस्थो का अनुचित शोषण समाप्त हो जाता है जिससे श्रमिको मे सन्तोष और उत्साह बना रहता है और वे अधिक काम करते हैं। इसी तरह औद्योगिक प्रशिक्षण देने में मालिको को शुरू में काफी रुपया खर्च करना पडता है परन्तु इससे उनका लाभ भी बहुत बढ जाता है क्योकि प्रशिक्षित कर्मचारी अप्रशिक्षित कर्मचारी की अपेक्षा कम नुकसान करते है और अधिक कुशलता से काम करते है। प्रशिक्षित श्रमिको के उत्पादन की मात्रा और गुण दोनों ही बढ जाते है जिससे मालिको को लाभ होता है। कारखाने मे स्वच्छता, प्रकाश तथा वायु के प्रबन्ध मे कारखानेदार को कुछ अधिक व्यय नही करना पडता, परन्तु इससे श्रमिको के स्वास्थ्य तथा कुशलता पर बडा अनुकूल प्रभाव पडता है जिससे उत्पादन की मात्रा तथा गुण दोनों ही बढते है, कारखाने मे अनुपस्थिति कम रहती है, श्रमिकों को थकान कम आती है और बीमारियाँ भी कम होती है। काम करने की दशाओ के स्वास्थ्यप्रद होने से मजदूर सन्तुष्ट रहते है और यह अनुभव करते हैं कि मालिको को उनका ध्यान है। इससे मालिक-मजदूर के सम्बन्ध अच्छे बनते हैं और मजदूरो मे प्रवासी प्रवृत्ति कम होती है। दुर्घटनाओ से रोकथाम के कल्याण कार्य से तो मालिक को सीधा लाभ है। दुर्घटनाओ से श्रमिक को तो हानि होती ही है मालिक को भी कम हानि नही होती। दुर्घटना के कारण श्रमिक के परिवार को कुछ न कुछ मुआवजा अवश्य देना पडता है और साथ ही कारखाने के अन्य श्रमिको मे असन्तोष भी फैलता है। कभी-कभी यदि कोई प्रशिक्षित श्रमिक दुर्घटना का शिकार बन जाता है तो मालिक की प्रत्यक्ष हानि होती है। कारखाने में आग लगने आदि के खतरे से रोकथाम तो मालिक के अपने ही फायदे की बात है यद्यपि उससे श्रमिको का भी कल्याण होता है। कारखाने मे थकान मिटाने की व्यवस्था या आराम की व्यवस्था मे मजदूरो की कार्य कुशलता बनी रहती है। कैंटीन आदि की व्यवस्था से उनको समय पर नाश्ता आदि मिल जाता है और फिर वे काम पर जुट सकते हैं। *इस प्रकार कारखाने मे कल्याण कार्यों से मालिको को लाभ होता है।*

श्रम कल्याण

(Labour Welfare)

श्रम कल्याण का तात्पर्य उन कामों से है जिनसे श्रमिको को किसी प्रकार का लाभ होता हो। परन्तु यह सामान्य अर्थ विज्ञान के काम का नही है। देश, काल

तथा परिस्थितियों के अनुसार श्रम-कल्याण का अर्थ भी बदलता रहता है। शाही श्रम आयोग (Royal Commission of Labour) की रिपोर्ट के अनुसार, 'कल्याण शब्द, जैसा कि वह औद्योगिक कार्यकर्ता के लिये लागू किया जाता है, ऐसा है जो कि आवश्यक रूप से लचीला होना चाहिये, विभिन्न सामाजिक प्रथाओं, औद्योगीकरण की मात्रा और श्रमिकों के शैक्षिक विकास के अनुसार उसकी एक देश से दूसरे देश में कुछ न कुछ भिन्न व्याख्यायें होनी चाहियें।'[1] इस प्रकार श्रम-कल्याण शब्द का तात्पर्य किस देश में क्या होगा यह उस देश के श्रमिकों की दशा पर निर्भर है। उदाहरण के लिये भारत में श्रमिक अधिकतर अशिक्षित हैं। अतः यहाँ पर श्रम-कल्याण में श्रमिकों की शिक्षा की व्यवस्था भी शामिल हो जायेगी। सामाजिक विज्ञानों के विश्वकोष (Encyclopaedia of Social Sciences) के अनुसार, "श्रम-कल्याण में कानून, उद्योग की प्रथा और बाजार की दशा के लिये आवश्यक कामों के परे, वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था में मालिकों द्वारा श्रमिकों के काम करने की और कभी-कभी रहने की अवस्थाओं को स्थापित करने के ऐच्छिक प्रयत्न निहित हैं।"[2] इस प्रकार श्रम-कल्याण में वे काम शामिल नहीं होते जो कि देश के कानूनों, उद्योगों की प्रथाओं अथवा बाजार की दशाओं के कारण अनिवार्य रूप से किये जाते हैं। अतः श्रम-कल्याण में ऐच्छिक कार्य आते हैं जिनसे मालिक श्रमिकों की दशा उन्नत बनाने का या काम की दशायें बेहतर बनाने का प्रयास करते करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन (International Labour Organisation) की एक रिपोर्ट में श्रम-कल्याण की परिभाषा इस प्रकार की गई है, "श्रमिकों के कल्याण का अर्थ ऐसी सेवाओं, सुविधाओं और आरामों से समझना चाहिये जो कि कारखानों में या उनके निकट स्थापित की जाये ताकि उनमें काम करने वाले व्यक्ति अपना काम स्वस्थ और अनुकूल पर्यावरण में कर सकें और उनको स्वच्छता, स्वास्थ्य तथा उच्च नीतिमत्ता में सहायक सुविधायें मिल सकें।"[3] इस प्रकार श्रम-कल्याण के

श्रम-कल्याण की परिभाषा

1 "The term welfare, as applied to the industrial worker, is one which must necessarily be elastic, bearing a somewhat different interpretation in one country from another according to the different social customs, the degree of industrialisation and the educational development of the workers."

—Report of the Royal Commission of Labour.

2 "Labour welfare implies the voluntary efforts of the employers to establish, within the existing industrial system, working and sometimes living conditions of the employees beyond what is required by law, the custom of the industry and the condition of the market."—Encyclopaedia of Social Sciences.

3. "Worker's welfare should be understood as meaning such services, facilities and amenities which may be established in, or in vicinity of, undertakings to enable the persons employed in them to perform their work in healthy, congenial surroundings and provided with amenities conducive to good health and high morale" —Report of I. L. O.

कामों में श्रमिकों के स्वास्थ्य को उन्नत करने की दशायें उत्पन्न करने वाले और नैतिक स्तर को ऊँचा करने की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने वाले काम आते हैं। इनमे मालिको द्वारा ऐच्छिक रूप से किये गये वे सब काम शामिल हैं जिनसे श्रमिकों को किसी प्रकार का लाभ होता है। श्रम-कल्याण कार्य मे ऐसे कोई काम नही आते जिन्हे मालिक को बाध्य होकर करना पडता हो चाहे उनसे श्रमिको को कितना भी लाभ क्यों न हो ? श्रम-कल्याण के कार्यो द्वारा मिल मालिक और कारखानेदार श्रमिको के सर्वांगीण विकास का प्रयास करते हैं।

श्रम-कल्याण कार्य तीन प्रकार के माने जाते हैं—

(१) वैधानिक—श्रमिको की सुविधा, सुरक्षा, काम करने की दशाओं आदि के विषय में सरकारी कानून।

श्रम-कल्याण कार्य

(२) ऐच्छिक—वे कार्य जिनको उद्योगपति अपनी इच्छा से श्रमिको के लिये करते हैं।

(३) पारस्परिक (Mutual)—इसमें श्रमिक संघों द्वारा किये जाने वाले कल्याण कार्य आते हैं।

डा० ब्राउटन (Dr. Broughton) ने श्रमिक कल्याण के कार्यों को दो भागो मे विभाजित किया है—(१) कारखाने के अन्दर (Intra-mural) और (२) कारखाने के बाहर (Extra-mural)। कारखाने के अन्दर किये जाने वाले कल्याण कार्यो मे मुख्य निम्नलिखित है—

कारखाने के अन्दर के कल्याण कार्य

(१) वैज्ञानिक भर्ती—श्रमिको की भर्ती वैज्ञानिक ढंग से करना।

(२) औद्योगिक प्रशिक्षण—विभिन्न कारखानो मे विशिष्ट कामो का प्रशिक्षण।

(३) स्वच्छता, प्रकाश तथा वायु का प्रबन्ध—इसमे कारखानों मे सफाई, पुताई, रोशनदानो का प्रबन्ध, पीने के पानी का प्रबन्ध, स्नानगृह, सडास, मूत्रालय आदि की व्यवस्था, रोशनी का प्रबन्ध तथा गर्मी-सर्दी को कम करने की व्यवस्थाये आती हैं।

(४) दुर्घटनाओं की रोकथाम—इसमे खतरनाक यन्त्रों, अत्यधिक ताप आदि से बचाव तथा आग बुझाने का प्रबन्ध आदि शामिल हैं।

(५) अन्य कार्य—जैसे कैन्टीन, थकावट दूर करने की व्यवस्था, आराम की व्यवस्था आदि।

कारखाने के बाहर के मुख्य कल्याण कार्य निम्नलिखित हैं—

कारखाने के बाहर कल्याण कार्य

(१) शिक्षा का प्रबन्ध—इसमें प्रौढ शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, स्त्री, पुरुष, बालको की शिक्षा आदि आती हैं।

(२) उत्तम आवासों की व्यवस्था।

(३) चिकित्सा व्यवस्था—इसमें आराम, सवेतन अवकाश, मुफ्त उपचार आदि आते हैं।

(४) सस्ते और पोषणयुक्त भोजन की व्यवस्था।

(५) मनोरंजन की सुविधायें—क्लब, अखाड़े, सिनेमा, रेडियो, वाचनालय, पुस्तकालय आदि।

उपरोक्त कामों के अलावा श्रम-कल्याण में निम्नलिखित काम भी शामिल हैं—

श्रम कल्याण में अन्य कार्य

(१) सामाजिक बीमा-व्यवस्था।
(२) प्रोविडेन्ट फण्ड की व्यवस्था।
(३) पेन्शन की व्यवस्था।
(४) बीमारी और मातृत्व लाभ की सुविधायें।
(५) धाय गृहों और शिशु गृहों की व्यवस्था।
(६) सहकारी समितियों की व्यवस्था।
(७) सांस्कृतिक कार्यक्रमों की व्यवस्था।
(८) बालक-बालिकाओं के स्कूलों की व्यवस्था।

कल्याण कार्यों से मालिक को लाभ

आधुनिक देशों में सब कहीं प्रगतिशील सेवायोजक (Employers) श्रमिकों के लिये विभिन्न प्रकार के कल्याण कार्यों की व्यवस्था करते हैं, क्योंकि उन्हें यह भली प्रकार विदित हो गया है कि श्रम-कल्याण कार्यों में जितना खर्च किया जाता है उससे अन्त में केवल श्रमिकों को ही नहीं बल्कि मालिकों को भी लाभ पहुंचता है। काम करने की दशाओं के स्वास्थ्यप्रद होने से मजदूर सन्तुष्ट रहते हैं और यह अनुभव करते हैं कि मालिक को उनका ख्याल है। इससे मालिक-मजदूर के सम्बन्ध अच्छे बनते हैं और मजदूरों में प्रवासी प्रवृत्ति कम होती है। दुर्घटनाओं से रोकथाम के कल्याण कार्य से तो मालिक को सीधा लाभ है। दुर्घटनाओं से श्रमिक को तो हानि होती ही है मालिक को भी कम हानि नहीं होती। उसको दुर्घटना के कारण श्रमिक के परिवार को कुछ न कुछ मुआवजा अवश्य देना पड़ता है और साथ ही कारखाने के अन्य श्रमिकों में असन्तोष भी फैलता है। कभी-कभी यदि प्रशिक्षित श्रमिक दुर्घटना का शिकार हो जाता है तो मालिक की प्रत्यक्ष हानि होती है। कारखानों में आग लगने आदि के खतरे से रोकथाम तो मालिक के अपने ही फायदे की बात है यद्यपि उससे श्रमिकों का भी कल्याण होता है। कारखाने में थकान मिटाने की व्यवस्था या आराम की व्यवस्था से मजदूरों की कार्यकुशलता बनी रहती है। कैन्टीन आदि की व्यवस्था से उनको समय पर नाश्ता आदि मिल जाता है और फिर वे काम पर जुट सकते हैं। इस प्रकार कारखाने के अन्दर के कल्याण कार्यों से तो मालिकों को सीधा लाभ होता है।

कारखाने के बाहर के कल्याण कार्यों से भी अन्त में मालिकों को लाभ होता है। मुख्य लाभ अग्रलिखित हैं:—

(१) श्रमिको के स्वास्थ्य में वृद्धि—उत्तम आवासो का प्रबन्ध, सस्ते तथा पोषक भोजन की व्यवस्था तथा समुचित अवकाश आदि के प्रबन्ध मे श्रमिको का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। इससे कारखाने मे अनुपस्थिति कम होती है, प्रति मजदूर उत्पादन की दर बढती है और मजदूरों में असन्तोष नही फैलता तथा मजदूरों मे मालिक के प्रति श्रद्धा और विश्वास बना रहता है।

(२) श्रमिकों में कार्यकुशलता को वृद्धि—शिक्षा के प्रबन्ध से मजदूरो की कार्यकुशलता बढती है और वे अधिक मात्रा मे अच्छा काम कर सकते हैं। उनकी समझदारी बढती है तथा वे निहित स्वार्थ वाले व्यक्तियो के भडकाने में नही आ सकते।

(३) कारखाने में अनुपस्थिति में कमी—चिकित्सा की व्यवस्था तथा बीमारियो की रोकथाम से श्रमिक कम बीमार पडते हैं और यदि पडते भी हैं तो जल्द अच्छे हो सकते हैं जिससे कारखानो मे अनुपस्थिति कम होती है क्योकि श्रमिको में अनुपस्थिति का सबसे बडा कारण बीमारी है। सामाजिक कल्याण के कार्यों से श्रमिकों का चरित्र ठीक रहता है और वे ईमानदारी से मेहनत करके काम करते हैं।

(४) मालिक-मजदूरों के सम्बन्धों का अच्छा होना—सामाजिक बीमा, प्रोवीडेन्ट फण्ड, पेन्शन, ग्रेच्युटी आदि की व्यवस्था से मजदूरो में असुरक्षा की भावना कम होती है, कल की चिन्ता मिट जाती है और मालिक पर विश्वास होता है। इससे मालिक और मजदूरो में सम्बन्ध अच्छे होते हैं।

(५) मजदूरों में असन्तोष का दमन—स्वस्थ मनोरजन की व्यवस्था तथा सांस्कृतिक कार्यों से मजदूरों में हिंसात्मक प्रवृत्तियो का शोधीकरण (Sublimation) होना है। स्त्री श्रमिको के कल्याण कार्यों, धाय गृहो और शिशु गृहो आदि की व्यवस्था तथा मातृत्व लाभ आदि की सुविधाओं से श्रमिको मे असन्तोष नही उत्पन्न होता जिससे हडतालें नही होती और फलतः मिल मालिको को लाभ होता है।

(६) उत्पादन की मात्रा और किस्म में उन्नति—उपरोक्त लाभो से कारखाने मे उत्पादन की मात्रा बढती है तथा अच्छी किस्म का माल बनता है। इससे मालिक को प्रत्यक्ष लाभ होता है।

(७) मालिक को नैतिक सन्तोष—परन्तु श्रम कल्याण के कार्यों से सबसे बडा लाभ मालिक को नैतिक सन्तोष (Moral Contentment) के रूप मे मिलता है। भूखे, नगे, रोगी, अशिक्षित तथा दुखी श्रमिको के श्रम से किसी भी सहृदय मालिक को सन्तोष नही मिलेगा। श्रम-कल्याण के कार्यों का आधार केवल आर्थिक लाभ ही नही है, यद्यपि उनसे आर्थिक लाभ होता है। श्रम-कल्याण के पीछे मानवता की भावना है, सहृदयता है और नैतिक चेतना है। इनके अभाव मे शोषण होता है और वर्ग संघर्ष बढता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कल्याण कार्यों से श्रमिको के साथ-साथ

मालिको को भी लाभ होता है। परन्तु कल्याण कार्य सुआयोजित (Intelligently conceived) तथा उदारतापूर्वक प्रशासित (Generously administered) होने चाहियें। योजना तो सभी कामो में आवश्यक है परन्तु कल्याण कार्यो का प्रशासन उदार होने की भी आवश्यकता है क्योकि वे केवल भौतिक दृष्टिकोण पर ही आधारित नही होते बल्कि मानवतावादी (Humanitarian) विचारो से भी निर्देशित होते हैं। अत. अन्त मे यह कहा जा सकता है कि "बुद्धिमत्तापूर्वक आयोजित तथा उदारतापूर्वक प्रशासित कल्याण कार्य अन्त मे मालिको के लिए लाभप्रद होगा।"

भारत में श्रम-कल्याण के महत्व के कारण

अन्य देशो की तुलना मे भारतवर्ष में श्रम कल्याण के कार्यों का महत्व तथा आवश्यकता कही अधिक है। इसका कारण भारतीय श्रमिकों की कुछ कमियां हैं जो कि अन्य देशो के श्रमिको मे उसी अनुपात में नही पाई जाती। ये कमियाँ या दोष ही देश में श्रम कल्याण की आवश्यकता को बढाते है। सक्षेप में, अन्य देशों की तुलना में भारतवर्ष मे श्रम-कल्याण के कार्यों का महत्व तथा आवश्यकता अधिक होने के कारण निम्नलिखित है :—

(१) **श्रम-संगठन की न्यूनता**—भारतवर्ष में श्रमिक लोग अभी तक वर्ग के रूप मे सगठित नही हो पाये हैं। मजदूरों की सख्या को देखते हुये श्रम-सगठन का आन्दोलन अभी बहुत अविकसित है। जो कुछ श्रमिक सघ हैं भी उनमे से अधिकतर मे योग्य नेताओ का अभाव है तथा विभिन्न श्रम-सगठनो मे आपस मे एकता नही है। दलगत तथा निहित स्वार्थों के सामने श्रमिको के कल्याण का कोई ध्यान नही रखा जाता। सुसगठित श्रमिक सघों के अभाव मे श्रमिक न तो अपनी माँगों को मालिकों के सामने रख सकते हैं और न व्यवस्थित रूप से अपने हितो पर विचार ही कर सकते है। अन्य प्रगतिशील देशों मे श्रमिक सगठन दृढ और सुसंगठित होते हैं, अत. भारतवर्ष मे मालिकों तथा सरकार द्वारा कल्याण कार्यों का महत्व तथा आवश्यकता अधिक है। इससे मजदूर अपने पैरों पर खडे हो सकेंगे, सुदृढ सघ बना सकेंगे, अपने हितो को समझ सकेंगे तथा मिलकर आगे बढ सकेंगे और देश के विकास मे सुसगठित रूप मे भाग ले सकेंगे।

(२) **अशिक्षा**—अन्य देशों के श्रमिको के मुकाबले मे भारत मे श्रमिकों मे शिक्षितो की संख्या बहुत ही कम है। अधिकाश श्रमिक अशिक्षित हैं। इससे न तो वे औद्योगिक कुशलता प्राप्त कर सकते हैं, न उद्योगों की समस्याओं को समझ सकते है और न अपने तथा राष्ट्र के हित को समझ सकते हैं। इससे केवल श्रमिको की ही नही बल्कि मालिको और देश को भी हानि होती है। अत: भारतवर्ष मे श्रम कल्याण की आवश्यकता अधिक है। श्रम कल्याण के कार्यों से श्रमिक सुशिक्षित होंगे, औद्योगिक प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेंगे और देश के योग्य नागरिक बन सकेंगे।

(३) **प्रवासी प्रवृत्ति तथा अनुपस्थिति की समस्यायें**—अन्य देशो की तुलना मे भारतीय श्रमिकों मे प्रवासी प्रवृत्ति अधिक है क्योंकि शहरो में उनके रहने आदि

की आवश्यक सुविधायें नही हैं और न वहाँ का वातावरण उनके अनुकूल है। मजदूरी की दर अत्यधिक कम है और चीजों के दाम अधिक हैं। अतः श्रमिक जमकर किसी एक स्थान पर नही रह पाते। श्रम कल्याण कार्यों से, आवास आदि की व्यवस्था तथा काम करने की दशाओं में उन्नति से श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति कम होगी। इससे श्रमिकों को बार-बार भाग कर गाँवों में अपने घर न जाना पड़ेगा क्योंकि वे नगरों में सपरिवार रह सकेंगे। अतः कारखानों में अनुपस्थिति कम होगी। मनोरंजन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों से नशे, अपराध तथा वेश्यागमन की प्रवृत्तियाँ और दुराचरण कम होगा। इससे भी अधिक कारखानों में अनुपस्थिति की संख्या कम होगी।

(४) **स्वास्थ्य तथा पोषण का निम्न स्तर**—अन्य देशों की तुलना में भारतीय श्रमिकों के स्वास्थ्य का स्तर बड़ा नीचा है। इससे उनकी उत्पादन क्षमता प्रगतिशील देशों के श्रमिकों की अपेक्षा कम हो गई है। अतः उनको पोषणयुक्त सस्ते भोजन तथा चिकित्सा आदि की सुविधाओं की बड़ी आवश्यकता है।

(५) **अत्यधिक गरीबी**—भारतीय श्रमिक अन्य देशों के श्रमिकों की अपेक्षा अत्यधिक गरीब है। गरीबी के कारण न तो वह अपने बाल-बच्चों के भरण-पोषण का प्रबन्ध कर सकता है और न उन्हें समुचित शिक्षा ही दिला सकता है। स्त्री श्रमिकों का स्वास्थ्य अन्य देशों की स्त्रियों की तुलना में बहुत खराब है और गरीबी के कारण वे प्रसूति आदि के समय आवश्यक संरक्षण नही पाती। अतः भारतवर्ष में कल्याण कार्यों की भारी आवश्यकता है। मातृत्व कल्याण की सुविधाओं, धाय घरों और शिशु गृहों से भारतीय स्त्री श्रमिक भी अन्य देशों की स्त्री श्रमिकों के समान स्वस्थ, सुखी और कार्यकुशल हो सकेंगी। बालक-बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था बड़ी जरूरी है। गरीबी के कारण भारतीय श्रमिक बुढ़ापे के लिये कुछ नही बचा पाता। अतः उसके लिये प्रोविडेन्ट फण्ड या पेन्शन आदि की सुविधाओं की आवश्यकता और भी अधिक है।

(६) **प्रशिक्षण की कमी**—भारतीय श्रमिकों में प्रशिक्षितों (Trained) की संख्या बहुत कम है। अन्य देशों की तुलना में श्रमिकों में प्रशिक्षण की भारी कमी है। अतः प्रशिक्षण की सुविधाओं की बड़ी जरूरत है। अप्रशिक्षित होने के कारण दुर्घटनाओं की सम्भावना बढ़ जाती है। अतः दुर्घटनाओं से बचाव का समुचित प्रबन्ध होना चाहिये।

(७) **स्वस्थ मनोरंजन की कमी**—भारतवर्ष में स्वस्थ मनोरंजन का बड़ा अभाव है। इससे श्रमिकों में अपराध और दुराचरण फैलता है तथा उनकी कार्यकुशलता घटती है। अतः देश में स्वस्थ मनोरंजन की सुविधाओं का होना बड़ा आवश्यक है।

(८) **भारत का औद्योगिक पिछड़ापन**—औद्योगिक दृष्टि से अन्य देशों के मुकाबले में भारतवर्ष बहुत पिछड़ा हुआ है। देश में पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा

औद्योगिक विकास का प्रयत्न किया जा रहा है। औद्योगिक प्रगति श्रमिकों पर निर्भर है और श्रमिकों की दशा अन्य देशों के श्रमिकों की तुलना मे बडी दयनीय है। अतः श्रमिकों मे सब प्रकार के कल्याण कार्यों की आवश्यकता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि अन्य देशों की तुलना मे भारतवर्ष मे श्रम-कल्याण के कार्यों का महत्व और आवश्यकता क्यों अधिक है? श्रम-कल्याण के कार्यों से श्रमिक नैतिक पतन से बचेंगे, उद्योगों के क्षेत्रों मे हड़ताल और तालेबन्दी की घटनायें कम होंगी जिससे देश की योजनायें सफल हो सकेंगी।

औद्योगिक संघर्ष
(Industrial Conflicts)

उद्योग में संघर्ष

यदि किसी व्यवसाय मे कर्मचारियों को मालिक मे विश्वास होता है और मालिक कर्मचारियों का ध्यान रखता है तो उनके परस्पर सम्बन्ध अच्छे रहते है और उनमे संघर्ष की नौबत नही आती। यदि कर्मचारी अत्यधिक शोषण होते हुये भी किसी कारण से विरोध नही करते और चुप रहते हैं तो भी उनका मालिकों से संघर्ष नही होता। दूसरी ओर यदि मालिक लोग सदैव समझदारी से काम लेते है तो कारखाने को बन्द करने की नौबत नही आती। परन्तु बहुधा ऐसा नही होता। बहुधा मालिक मजदूरों का ध्यान नही रखते। वे भूल जाते है कि मजदूर भी मनुष्य है उनकी भी बहुत सी आवश्यकतायें है जिनको पूरा करना जरूरी है, उनका शोषण करने से वे विद्रोह कर सकते है। पहले जब कर्मचारी असगठित थे तब बहुधा वे मालिकों का विरोध नही कर पाते थे। उनमे फूट डलवाकर मालिक लोग मनमानी किया करते थे। परन्तु आज हरएक देश मे लगभग हर एक बड़े व्यवसाय मे कर्मचारियों के संघ बने हुए है। कुछ मजदूर संघ तो अनेक देशों मे फैले हुए हैं। अनेक मजदूर संघों के पीछे राजनैतिक दलों की शक्ति है। इन राजनैतिक दलों के बहुत से नेता विधान-सभाओं के सदस्य होते हैं। मजदूरों पर कही भी अत्याचार होने पर वे विधान-सभाओं मे शोर मचा देते है और सरकार पर जोर डालते हैं। इन सब बातों से कर्मचारियों मे शक्ति की भावना रहती है। वे अत्याचार का मुँह-तोड़ जवाब देते है। शोषण होने पर वे उसका विरोध करते है। वे सगठित रूप मे अपनी माँगें पेश करते हैं, सभायें करते है, जलूस निकालते है, नारे लगाते हैं और अन्त मे हड़ताल करते हैं। हड़ताल आज के औद्योगिक जगत की मुख्य समस्या है।

हड़ताल
(Strike)

हड़ताल क्या है?

हड़ताल मालिक से असहयोग की घोषणा है। हड़ताल में सबसे पहले काम करना बन्द कर दिया जाता है। इसके बाद सभायें होती हैं, जलूस निकाले जाते हैं, प्रदर्शन किये जाते है, सार्वजनिक रूप मे अपनी माँगें पेश की जाती है और कर्मचारियों के प्रतिनिधि मालिकों के पास अपनी माँगें लेकर जाते हैं। हड़ताल के साथ मे ये

मब वाले लगी हुई है। इनके अलावा आजकल हडताल के साथ-साथ जनता मे हडताल के उद्देश्यो का प्रचार किया जाता है और जनमत को कर्मचारियों के पक्ष मे लाने की कोशिश की जाती है। कर्मचारियो के प्रतिनिधि सरकार के पास भी अपनी मॉंगो का प्रस्ताव भेजते हैं और हडताल के उद्देश्य बतलाते है।

हडताल क्यों होती है ?

यह हडताल क्यों होती है ? इसके मूल मे मालिकों के प्रति कर्मचारियो का अविश्वास है। काम करने की दशायें अच्छी न होते हुए भी जब तक कर्मचारी यह समझते हैं कि मालिक उनका भला चाहता है और उनकी दशाओ को बेहतर बनाने की कोशिश कर रहा है तब तक वे हडताल नही करते। परन्तु जब मालिक उनकी एक नही सुनता, जब मालिक पर से उनका विश्वास उठ जाता है तब हडताल होती है। ऐसा नही है कि हडताल करने वाले श्रमिको की मॉंगें सदैव उचित ही हो। कभी-कभी राजनैतिक दलो के भडकाने से या अन्य निहित स्वार्थो के चक्कर मे आकर अथवा द्वेष के वशीभूत होकर कर्मचारी हडताल करते हैं। बहुत से कर्मचारियो, विशेषतया बहुत से श्रमिको के मस्तिष्क मे यह बात घर कर जाती है कि मालिको की कोठियाँ, कारें, धन, वैभव और सुख के सामान सब मजदूर के शोषण पर आधारित हैं। कभी-कभी इस विचारधारा के कारण मालिक का व्यवहार अच्छा होते पर भी और काम करने की दशायें साधारणतया सन्तोषजनक होने पर भी कर्मचारी हडताल कर बैठते हैं। इस प्रकार वर्ग द्वेष भी हडताल का कारण होता है। कभी-कभी मजदूर सघ के नेता लोग अपने स्वार्थों के कारण श्रमिको को भडकाते हैं। वे बहुत सी बातो को तोड-मरोड कर उपस्थित करते है और उनको हडताल करने पर प्रेरित करते है।

हडताल बन्द करने का उपाय

इस प्रकार हडताल चाहे सही हो चाहे गलत, उसके उद्देश्य उचित हो अथवा अनुचित, वह कर्मचारियों और मालिकों के मध्य अविश्वास का परिणाम है। यह अविश्वास कभी-कभी मालिक खुद उत्पन्न करते हैं। और कभी राजनैतिक नेता या दूसरे लोग उत्पन्न करते है दोनो ही हालतो मे विश्वास पैदा करने की जरूरत है। यदि मजदूर कुछ गलत मॉंगे भी पेश करते है तो भी उनको सुनना जरूरी है। हडताल के समय में कर्मचारी भीड का सा व्यवहार करने लगते हैं। बहुधा वे विवेक खो बैठते हैं। उनमे सवेग बडी आसानी से जागृत हो जाते हैं। छोटी छोटी बात पर वे उत्तेजित हो बैठते है। ऐसे समय मे यदि मालिकों ने समझदारी से काम नही लिया तो कारखानो मे आग लगाने, तोड-फोड करने आदि की भी नौबत आ जाती है। परन्तु यदि श्रमिको की बातो को सुना जाय, चतुराई से उनको समझाया जाय, उनकी कठिनाइयाँ दूर करने का वायदा किया जाय और व्यर्थ भडकाने वालो का पर्दाफाश किया जाय तो ऐसी दुर्घटनाये टाली जा सकती हैं।

परन्तु उपचार से रोकथाम सदैव बेहतर है। मालिकों को यह कोशिश करनी चाहिये कि कर्मचारियो मे अविश्वास कभी इतना न बढे कि हडताल की नौबत आ जाये, उनको कर्मचारियो का विश्वास प्राप्त करने की बराबर चेष्टा करनी चाहिये। इसके लिये दो बातें जरूरी है, एक ओर तो कर्मचारियो से अच्छा व्यवहार किया जाय, दूसरी ओर उनके काम करने की दशाओ मे उन्नति की जाय और उनके कल्याण का ध्यान रखा जाय। ये दोनो बातें होने पर कर्मचारियो का विश्वास बना रहता है और हडताल की नौबत नही आती।

हड़ताल की रोकथाम

तालाबन्दी

(Lock out)

मालिक मजदूर के अविश्वास का एक पहलू हडताल है तो दूसरा पहलू है तालेबन्दी। तालेबन्दी मे, जैसा कि उनके नाम से स्पष्ट है, कारखानो मे और दफ्तरो मे कर्मचारियों का प्रवेश रोक दिया जाता है और फाटको मे ताले लगा दिये जाते हैं। इससे लाखो श्रमिक और कर्मचारी बेकार हो जाते है तथा कभी-कभी उनके भूखो मरने की नौबत आ जाती है। कर्मचारियो का तो नुकसान होता ही है मालिको का भी कम नुकसान नही होता। मशीनों के बन्द पडे रहने से ही उनका हजारों रुपये का नुकसान होता है। उत्पादन बन्द होने से लाखो का व्यापार ठप्प हो जाता है। फिर तालेबन्दी से भडककर कर्मचारी कभी-कभी हिंसा पर उतर आते हैं। वे कारखानो पर चढाई कर देते हैं, आग लगा देते हैं और तोड फोड करते हैं। इससे मालिकों को बडी हानि होती है। ऐसे अवसर पर मालिको को पुलिस की सहायता लेनी पडती है। भीड को तितर-बितर करने के लिये कभी-कभी पुलिस को गोली भी चलानी पडती है। इससे कभी-कभी दो चार लोग मर जाते है और सब जगह मालिक की बदनामी होती है। मालिको से भी अधिक तालेबन्दी से देश की हानि होती है। आज के आर्थिक जगत मे विभिन्न उद्योग एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। अत एक उद्योग मे तालेबन्दी होने पर उससे सम्बन्धित दूसरे उद्योगो पर भी प्रभाव पडता है और कभी-कभी वहाँ पर भी तालेबन्दी की नौबत आ जाती है। उद्योगों में काम करने वाले कर्मचारियो के अलावा हजारो दुकानदार और दूसरे लोग भी उद्योग के सहारे अपनी जीविकायापन करते है। तालेबन्दी से ये सब भी बेकार हो जाते हैं। उद्योगों के बन्द होने से बाजार मे वस्तु की पूर्ति (Supply) बन्द हो जाती है। माँग से पूर्ति के कम हो जाने से चीजो के दाम बढते हैं और उपभोक्ता पर सकट आ जाता है। इस तरह आज की जटिल आर्थिक व्यवस्था मे किसी भी बडे उद्योग मे तालेबन्दी होने पर न्यूनाधिक रूप मे पूरे देश पर प्रभाव पडता है। इस प्रकार वह एक राष्ट्रीय समस्या बन जाती है।

तालेबन्दी की समस्या

कभी-कभी कुछ परिस्थितियाँ ऐसी आ जाती है कि तालेबन्दी जरूरी हो जाती है परन्तु आमतौर से तालेबन्दी अनुचित होती है। कभी-कभी उसमें मालिक लोग कर्मचारियों को दबाना चाहते है। कभी-कभी कर्मचारियों को भूखे मरते देखकर उनको मजा आता है। कभी-कभी आत्म सम्मान के प्रश्न को उठाकर, कारखाने में ताले लगा दिये जाते हैं। कभी-कभी वे अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिये ऐसा करते हैं। इन सभी परिस्थितियों में तालेबन्दी अनुचित है। इनमें मालिक लोग अपने स्वार्थों के सामने कर्मचारियों के साथ-साथ राष्ट्र का हित भी भूल जाते है। ऐसी दशा में सरकार को भी हस्तक्षेप करना चाहिये क्योंकि यह एक राष्ट्रीय प्रश्न बन जाता है। वास्तव यदि कर्मचारियों के कल्याण का ध्यान रखा जाय, उनके काम करने की दशायें अच्छी रखी जायें, उनको समय-समय पर प्रलोभन दिये जायें, उनके लिये दुर्घटना में, बुढापे में और अन्य आपत्ति के समय सुरक्षा का प्रबन्ध हो और इन सब बातों में सरकार की ओर से नियम बनायें जाये तथा उन नियमों का कठोरता से पालन कराया जाय तो देश में हड़ताल और तालेबन्दी की दुर्घटनाओं को रोका जा सकता है।

तालेबन्दी के कारण

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, हड़ताल और तालेबन्दी एक ही समस्या के दो पहलू हैं। उनके मूल में मालिकों और कर्मचारियों का परस्पर अविश्वास, पूर्व आग्रह (Prejudice), आन्तरिक समूह की भावना (In Group-feeling), स्वार्थ और व्यर्थ का दंभ होता है। ये सब मनोवैज्ञानिक कारण है। परन्तु ये एकदम पैदा नहीं जाते। थोड़ी बहुत मात्रा में इनके रहने से हड़ताल और ताले-बन्दी की नौबत भी नहीं आती। यह नौबत तो तभी आती है जब ये उग्र रूप में बढ़ जाते हैं और इनका इस सीमा तक बढ़ना बराबर रोका जा सकता है। रोकने का मुख्य उपाय आपस के अविश्वास, पूर्व आग्रह और व्यर्थ दम्भ आदि को दूर करना है। इसके लिये एक ओर तो इनको फैलाने वाले दलों और व्यक्तियों पर निगरानी रखी जानी चाहिये और दूसरी ओर कल्याण के कार्य के किये जाने चाहिये। परन्तु इसमें सरकार के साथ-साथ मालिकों और कर्मचारियों के सहयोग की भी जरूरत है। आज की जटिल आर्थिक व्यवस्था में किसी भी उद्योग में हड़ताल और तालेबन्दी की समस्यायें न्यूनाधिक रूप में राष्ट्रीय समस्यायें बन जाती हैं। अतः उनको सुलझाने के लिये सरकार, कर्मचारियों, कर्मचारी संघों और मिल मालिकों सभी का मिलकर प्रयास करना चाहिये।

सारांश

औद्योगिक परिस्थितियों में अनेक समस्यायें मानवीय सम्बन्धों से सम्बन्धित होती हैं। पिछली शताब्दी में उद्योगों में कर्मचारियों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार होता था। साम्यवादी और जनतन्त्रीय आदर्शों के प्रचार से तथा औद्योगिक संघों की स्थापना से मानवीय व्यवहार और दशाओं की माँग की गयी। क्रमशः उद्योग में

मानवतावादी विचार बढ़ने लगे। उद्योग में मानवीय कारक एक ओर प्रशासन और दूसरी ओर कल्याण के क्षेत्र में विशेष रूप से दिखलाई पड़ते हैं। आजकल उद्योग में कल्याण की ओर सब कहीं ध्यान दिया जा रहा है क्योंकि कल्याणकारी उपायों से केवल कर्मचारियों को ही नहीं बल्कि अन्त में सरकार और मालिकों को भी लाभ होता है अस्तु, श्रम कल्याण की दिशा में सुधार बढ़ता जा रहा है। यह श्रम कल्याण औद्योगिक कार्य कर्त्ता का कल्याण है। इसमें वे सभी सुविधायें, सेवायें और आराम सम्मिलित हैं जो कर्मचारी का स्वास्थ्य और नीतिमत्ता बनाये रखने में सहायक हैं। श्रम-कल्याण कार्य वैधानिक, ऐच्छिक और पारस्परिक हो सकते हैं। ये कारखाने के अन्दर और बाहर सब कहीं होते हैं। कारखाने के अन्दर के कल्याण कार्यों में वैधानिक शर्तें, औद्योगिक प्रशिक्षण, स्वच्छता, प्रकाश तथा वायु का प्रबन्ध, दुर्घटनाओं की रोकथाम तथा भोजन और आराम की व्यवस्था आदि सम्मिलित हैं। कारखाने के बाहर के कार्यों में मुख्य रूप से शिक्षा का प्रबन्ध, आवास और चिकित्सा की व्यवस्था, सस्ते और पोषणयुक्त भोजन की व्यवस्था तथा मनोरंजन की सुविधायें सम्मिलित हैं। कारखाने के अन्दर और बाहर सब कहीं कल्याण कार्यों से मालिक को लाभ होता है। बाहर के कल्याण कार्यों से श्रमिकों का स्वास्थ्य और कार्य कुशलता बढ़ती है, कारखाने में अनुपस्थिति कम होती है, मालिक मजदूरों के सम्बन्ध अच्छे होते हैं मजदूरों में असन्तोष कम होता है, उत्पादन की मात्रा और किस्म में उन्नति होती है और सबसे अधिक मालिक को नैतिक सन्तोष मिलता है। कारखाने में कल्याण कार्य सुआयोजित और उदारतापूर्वक प्रशासित होने चाहिए।

भारत में श्रम कल्याण के महत्व के कारणः—(१) श्रम संगठन की न्यूनता, (२) श्रमिकों में अशिक्षा, (३) प्रवासी प्रवृत्ति तथा अनुपस्थिति की समस्यायें, (४) स्वास्थ्य तथा पोषण का निम्न स्तर, (५) अत्यधिक गरीबी, (६) प्रशिक्षण की कमी, (७) स्वस्थ मनोरंजन की कमी, (८) भारत का औद्योगिक पिछड़ापन।

उद्योग में संघर्ष—उद्योग में संघर्ष मुख्य रूप से मानवीय कारकों के कारण होते हैं। इनके उदाहरण हड़ताल और तालेबन्दी हैं। ये दोनों ही मालिकों और कर्मचारियों में परस्पर अविश्वास और सम्बन्धों के बिगड़ने के कारण होते हैं। इनको सुलझाने के लिये जहाँ एक ओर आर्थिक सुधारों की आवश्यकता है वहां दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक उपायों से काम लेना भी जरूरी है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. व्यवसाय में मानव तत्व के महत्व का विवेचन कीजिये और उपयुक्त उदाहरण भी दीजिये।

Discuss the importance of human factor in industry giving appropriate examples. (Agra 1968)

२. टिप्पणी लिखिये—व्यवसाय मे मानव तत्व ।

Write short note on—Human factor in Industry.

(Agra 1967)

३. श्रम कल्याण क्या है ? उसके क्या कार्य हैं ? उससे मालिको को क्या लाभ हैं ? भारत मे श्रम कल्याण का महत्व बतलाइये ।

What is labour welfare ? What are its function ? How far is it beneficial to employers ? Point out its value in India.

४. सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—औद्योगिक सघर्ष ।

Write short on—Industrial conflict. (Agra 1964)

५

व्यक्तिगत विभिन्नतायें

(Individual Differences)

उद्योगों में सफलता का मूलमन्त्र प्रत्येक काम पर उपयुक्त व्यक्ति की नियुक्ति और प्रत्येक कर्मचारी को सही काम देना है। सही काम क्या है ? यह वह काम है जो किसी कर्मचारी के व्यक्तित्व, रुचि, अभिरुचि, स्वभाव, शारीरिक और मानसिक योग्यताओं तथा बुद्धि आदि के अनुकूल हो। इससे व्यक्ति के गुणों का पूरा लाभ मिलता है और कर्मचारी भी सन्तुष्ट रहता है। किसी भी काम को सभी कर्मचारी नहीं कर सकते क्योंकि प्रत्येक कार्य में कुछ विशेष योग्यताओं, व्यक्तित्व के लक्षणों, रुचियों, अभिरुचियों आदि की आवश्यकता होती है। उस काम पर किसी कर्मचारी को नियुक्त करते समय उसमें इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिये। इस प्रकार उद्योग की सफलता कर्मचारी वरण में व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर ध्यान रखने पर निर्भर है।

व्यक्तिगत विभिन्नता का अर्थ

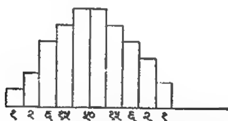
अति प्राचीन काल से उद्योगों में आयु के अनुसार श्रमिकों में अन्तर किया जाता था। आयु की विभिन्नता से श्रमिकों को भिन्न-भिन्न कार्य दिये जाते थे। आयु के अलावा थोड़ा बहुत बुद्धि की विभिन्नता पर भी ध्यान रखा जाता था। इसके साथ ही साथ पढ़ने लिखने के कामों में शैक्षिक सम्प्राप्ति (Educational attainments) को भी महत्वपूर्ण माना जाता था। इस प्रकार प्राचीन काल में और मध्य काल में व्यक्तिगत विभिन्नताओं का तात्पर्य किसी कार्य को करने की योग्यता से समझा जाता था। आधुनिक औद्योगिक संस्थाओं में उपरोक्त कारकों के अलावा व्यक्तियों की अन्य प्रकार की योग्यताओं और व्यक्तित्व की विशेषताओं पर भी ध्यान दिया जाता है। स्किनर के अनुसार, "आजकल हम व्यक्तिगत विभिन्नताओं को सम्पूर्ण व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के किसी भी मापे जाने योग्य पहलू को सम्मिलित करते हुए समझते हैं।"[1] व्यक्तिगत विभिन्नताओं की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि उसमें मनुष्य के व्यक्तित्व के वे सभी पहलू आते हैं जिनको किसी न किसी प्रकार से मापा जा सकता है। इस प्रकार के पहलू अनेक हो सकते हैं जैसे परिवर्तनशीलता,

1. "Today we think of individual differences as including any measurable aspect of the total personality" —Skinner

सामान्यता, विकास और सीखने की गति में अन्तर, व्यक्तित्व के विभिन्न लक्षणो मे परस्पर सम्बन्ध, आनुवंशिकता और परिवेश का प्रभाव इत्यादि, इस प्रकार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों मे शारीरिक और मानसिक विकास, स्वभाव, सीखने की गति और योग्यता, विशिष्ट योग्यतायें, रुचि तथा व्यक्तित्व आदि मे अन्तर देखा जा सकता है।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं का विस्तार

किसी भी विशेष जनसख्या मे किसी विशेष शील गुण या विशेषता का विस्तार सामान्य सभाव्यता वक्र (Normal Probability curve) द्वारा दिखलाया जाता है। यदि न्यादर्श सामान्य और शील गुण या विशेषता का परीक्षण औसत है तो दी हुई जनसख्या मे आधे से अधिक व्यक्ति औसत योग्यता के दिखलाई पडेंगे और औसत के बिन्दु से दोनो ओर शीलगुण के क्रमश बढने और घटने के साथ-साथ व्यक्तियो की सख्या भी घटती जायेगी। इस प्रकार किसी भी जनसख्या मे किसी भी सामान्य शीलगुण के दृष्टिकोण से अत्यधिक योग्य तथा अत्यधिक अयोग्य व्यक्तियो की सख्या बहुत कम होती है। शीलगुण विस्तार के नीचे दिये हुये वक्र से यह तथ्य स्पष्ट होता है। इस वक्र मे ऊँचाई जनसख्या मे व्यक्तियो की सख्या दिखलाती है और मानचित्र के आधार मे उस योग्यता की विभिन्न दशायें ज्ञात होती है। इस वक्र मे स्पष्ट दिखलाया गया है कि औसत के व्यक्तियो की सख्या बहुत अधिक होती है। उसमे कम और अधिक योग्यता होते जाने पर यह सख्या समानुपात से कम होती चली जाती है। देखिये चित्र मे मध्य से दोनो ओर वक्र समान रूप से गिरता है। सामान्य विभाजन वक्र मे यह केन्द्र का प्रति-साम्य (Symmetry) दिखलाई पडता है।



चित्र स० १—शीलगुण विस्तार सामान्य वितरण वक्र

स्तम्भ चित्र के रूप मे उपरोक्त वक्र को निम्न रूप मे व्यक्त किया जा सकता है।

उपरोक्त स्तम्भ चित्र मे ५० प्रतिशत व्यक्ति औसत योग्यता के हैं। फिर १५ प्रतिशत व्यक्तियों मे दिया हुआ शीलगुण समान रूप से अधिक या कम है। दोनो आन्तरिक छोरो पर एक प्रतिशत व्यक्ति है। सामान्य जनसख्या मे सामान्य शीलगुण मे आन्तिक योग्यता वाले व्यक्तियो की सख्या एक से तीन प्रतिशत तक होती है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानो से ज्ञात होता है कि किसी भी शीलगुण को लेकर व्यक्तियो को दो आन्तिक श्रेणियों मे विभाजित नही किया जा सकता। उदाहरण के लिये आप व्यक्तियो को सामाजिक और असामाजिक इन दो श्रेणियो मे नही रख सकते क्योकि अधिकतर व्यक्ति न्यूनाधिक मात्रा मे सामाजिक या असामाजिक होते हैं। पूरी तरह सामाजिक या पूरी तरह असामाजिक शायद ही किसी को कहा जा सके। इस प्रकार लम्बाई, भार, बुद्धि, स्मरण शक्ति आदि किसी भी शीलगुण की सामान्य परीक्षा को लेकर किसी सामान्य जनसंख्या का अध्ययन करने पर परिणाम के रूप मे पीछे दिये हुये स्तम्भ या विभाजन वक्र जैसे निष्कर्ष उपलब्ध होंगे।

फिर भी निम्नलिखित दशाओं मे सामान्य प्रकार का विभाजन वक्र उपलब्ध नही होता—

(१) यदि परीक्षण बहुत सरल या बहुत कठिन है—परीक्षण बहुत कठिन होने पर अधिकाश व्यक्ति उसमे असफल हो जाते है जिससे विभाजन वक्र का स्वरूप बदल जाता है। परीक्षण अत्यधिक सरल होने पर शायद ही कोई फेल होता है जिसमे सफल लोगों की संख्या असफल से बहुत अधिक होती है।

(२) प्राप्तांकों के विस्तार क्षेत्र में परिवर्तन—सामान्य रूप से जटिल शील गुण का विस्तार क्षेत्र सरल शील गुण की अपेक्षा अधिक होता है। अस्तु, दोनो का विभाजन वक्र भी भिन्न होता है।

(३) यदि मापी जाने वाली योग्यता सामान्य रूप मे वितरित नहीं है—ऐसा होने पर जनसख्या का विभाजन भी सामान्य वक्र द्वारा उपस्थित नही किया जा सकता है।

(४) यदि न्यादर्श काफी बड़ा हो—ऐसी परिस्थिति मे योग्यता विस्तार वक्र सामान्य नही होता।

व्यक्तिगत विभिन्नताओ की विविधता—मनोवैज्ञानिक अध्ययनो से यह ज्ञात हुआ है कि किसी भी विशेष व्यक्ति के विभिन्न शील गुणो का स्तर एक सा नही होता। उदाहरण के लिये यदि किसी व्यक्ति मे बुद्धि की मात्रा अधिक है तो यह आवश्यक नहीं है कि उसमे मिलनसारिता भी अधिक हो या समानुपात मे कम हो। अस्तु, बौद्धिक योग्यता और मिलनसारिता मे किसी प्रकार का सहसम्बन्ध (Correlation) नही स्थापित किया जा सकता। इस सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे मतभेद है। जहाँ टरमन और थार्नडाइक के प्रयोग यह स्थापित करते हैं कि बुद्धि अथवा किसी अन्य शीलगुण मे श्रेष्ठ व्यक्ति मे अन्य शीलगुणो की मात्रा भी श्रेष्ठ ही मिलती है वहाँ अर्ले (Earle) और गा (Gaw) के प्रयोगो से यह सिद्ध होता है कि एक शीलगुण श्रेष्ठ होने पर भी अन्य शीलगुण निकृष्ट हो सकता है क्योकि वस्तुत शीलगुण एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हैं। ५१ विद्यार्थियो पर १७ गामक परीक्षणो (Motor Tests) के द्वारा पेरिन (Perin) ने भी यही बात सिद्ध की। म्यूसियो (Muscio), इस

(Toops) और स्टेनक्विस्ट (Stenquist) के अध्ययन यह सिद्ध करते है कि किसी व्यक्ति की विभिन्न गामक योग्यतायें एक समान श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट नही होती। १०७ विद्यार्थियो पर ३५ प्रकार के विभिन्न परीक्षणो का प्रयोग करके हल (Hull) भी इसी निष्कर्ष पर पहुचा। हमारा रोजाना का सामान्य अनुभव भी इसी मत की पुष्टि करता है। अस्तु, संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि जहाँ विशिष्ट शीलगुण को लेकर विभिन्न व्यक्तियो मे विभिन्नतायें होती हैं वहाँ एक ही व्यक्ति मे विभिन्न शीलगुणो की श्रेष्ठता और निकृष्टता मे भी अन्तर होता है।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार

सामान्य रूप से व्यक्तिगत विभिन्नताओ को समझने के लिये निम्नलिखित कारको को समझना जरूरी है—

(१) पृष्ठभूमि—स्कूल में भिन्न-भिन्न बालक जिन परिवारो और समुदायों मे आते हैं उनसे उनमे अन्तर हो जाता है। उदाहरण के लिये भिन्न-भिन्न परिवारो और सस्कृतियो तथा वर्गो मे शिक्षा के प्रति और सत्ता (Authority) के प्रति भिन्न-भिन्न अभिवृत्तियाँ देखी जाती है। इनमे से कुछ अभिवृत्तियाँ (Attitudes) शिक्षण के अनुकूल और कुछ प्रतिकूल होती हैं। दोनो ही दशाओ मे अभिवृत्तियो की भिन्नता मे बालको मे भिन्नता हो जाती है। अभिवृत्तियों के अलावा बालक के सवेगात्मक, सामाजिक और सौन्दर्यात्मक तथा नैतिक विकास पर उसके परिवार और पास-पड़ौस आदि का प्रभाव पडता है। अत पृष्ठभूमि के अन्तर से इसमे भी अन्तर देखा जा सकता है।

(२) आर्थिक स्थिति—आर्थिक स्थिति के अन्तर मे भी बालको को अभिवृत्तियो, रूचियो तथा चरित्र आदि मे अन्तर देखा जाता है।

(३) प्रजातीय अन्तर—अनेक अध्ययनो से विभिन्न प्रजातियो (Races) के व्यक्तियो मे नाना प्रकार के अन्तर पाये गये हैं, यद्यपि इन अन्तरो मे परिवेश का प्रभाव स्वाभाविक ही है। प्रारम्भ मे गाल्टन ने अपने अध्ययनो के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि जबकि नीग्रो लोगो की मानसिक योग्यता अंग्रेजो से कम है, अंग्रेजो की मानसिक योग्यता प्राचीन यूनानियो मे कम है। अन्य विद्वानो के प्रयोगो ने इस धारणा का खण्डन हुआ। कार्ल ब्रिधम (Karl Brigham) ने अमेरिका मे विभिन्न देशों से आये हुये व्यक्तियो की मानसिक आयु के अन्तर को लेकर निम्नलिखित तालिका बनाई है। यह अन्तर स्टेनफोर्ड विने (Stanford Binet) परीक्षणो से पता लगाया गया है—

देश	मानसिक आयु	देश	मानसिक आयु
इगलैंड	१४ २	बेल्जियम	१२ ५६
स्काटलेंड	१३·७७	आयरलैंड	१२·२
हालेंड	१३·७६	आस्ट्रिया	१२·१६
जर्मनी	१३·४१	टर्की	११·६६

श्वेत अमेरिकन	१३·३२	ग्रीस	११·८८
डेनमार्क	१२·२६	रूस	११·४५
कनाडा	१३·२५	इटली	११·२
स्वेडन	१२·६६	पोलैंड	१०·६६
नार्वे	१२·७६	नीग्रो अमेरिकन	१०·७१

प्रजातियो के आधार पर पाये गये उपरोक्त औसत अन्तर से यह नही निश्चित किया जा सकता है कि विशेष प्रजाति के विशेष व्यक्ति की मानसिक आयु क्या है क्योकि यह अन्तर परिवेश पर आधारित है।

(४) **राष्ट्रीयता**—अनेक अध्ययनो से यह पता लगाया गया है कि भिन्न-भिन्न राष्ट्रो के व्यक्तियो के स्वभाव, शारीरिक और मानसिक लक्षण, रुचि तथा व्यक्तित्व आदि मे अन्तर होता है। सास्कृतिक और भौगोलिक परिवेश के अन्तर से यह अन्तर स्वाभाविक ही है।

(५) **लिंग भेद**—मैक्नीमर और टर्मन ने ४३ अनुसधानो के आधार पर स्त्री पुरुष मे निम्नलिखित अन्तर पाये है :—

(अ) जहाँ स्त्रियो मे स्मृति की योग्यता अधिक होती है वहाँ पुरुषो मे गत्यात्मक (Motor) योग्यता अधिक होती है।

(ब) स्त्रियो मे हाथ का लेख पुरुषो से बेहतर होता है जबकि पुरुषो मे गणित सम्बन्धी तर्क की अधिक योग्यता देखी जाती है।

(स) स्त्रियो मे इन्द्रिय सम्बन्धी अन्तर करने जैसे कष्ट, स्वाद और गन्ध आदि को पहचानने की अधिक योग्यता होती है जबकि मनुष्य मे आकार-भार विपर्यय (Size-Weight Illusion) का अधिक प्रतिरोध दिखलाई पड़ता है।

(द) भाषा सम्बन्धी योग्यता अधिक होने के कारण स्त्रियाँ भाषाओ, उपमाओ, शब्द बनाने, रचनाओ तथा बडे वाक्यो के प्रयोग आदि मे पुरुष से बेहतर होती हैं। दूसरी ओर पुरुष भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र मे आगे देखे जाते हैं।

(च) स्त्रियाँ दर्पण चित्रण (Mirror drawing) मे बेहतर पाई गई जब कि पुरुषो मे बोलने के दोष स्त्रियो से तिगुने पाये गये।

(छ) स्त्रियो पर निर्देश (Suggestion) का अधिक प्रभाव पडता है जबकि पुरुषो मे स्त्रियो की अपेक्षा तिगुने वर्णान्ध (Colour-blind) पाये जाते है।

(ज) लडकियाँ प्रेम की कहानियो, परियो की कहानियो, घर और स्कूल की कहानियो तथा दिवास्वप्नो मे रुचि लेती है और अपने खेलो मे भिन्न-भिन्न स्तर दिखलाती है। दूसरी ओर लडके साहस की कहानियो, विज्ञान की पत्रिकाओ, युद्ध और स्काउटिंग, खेलो की कहानियो, स्काउट की कहानियो तथा अध्यवसाय और कौशल वाले कामो मे रुचि लेते है।

(६) **सामान्य बुद्धि**—व्यक्ति की सामान्य बुद्धि मे अन्य व्यक्तियो से काफी अन्तर देखा जाता है। साधारणतया कक्षा मे ४० से ६० प्रतिशत बालको की बुद्धि

लब्धि ६५ और १०५ के बीच में होनी है। ये औसत बुद्धि के बालक हैं और सामान्य रूप से शिक्षा की पद्धति और पाठ्यक्रम इन्ही के अनुकूल बनाया जाता है। इससे नीचे और ऊचे स्तर की बुद्धि लब्धि के बालको के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता होती है। ११५ या १२० बुद्धि-लब्धि वाले बालक बुद्धिमान या प्रखर बुद्धि माने जा सकते हैं। ७५ से ६० बुद्धि-लब्धि वाले बालक मन्द बुद्धि माने जाते हैं और उनको भी अन्य बालको के साथ सीखने में आगे बढना कठिन होता है। ७० से ८० बुद्धि-लब्धि के बालको को छोटे स्कूलो मे भी कठिनाई होती है। ५० से ७० बुद्धि-लब्धि वाले बालक केवल बहुत ही सरल कार्यों को सीख सकते है। ५० बुद्धि-लब्धि के नीचे के बालको को सामान्य स्कूल में नही भेजा जा सकता है।

बालको की बुद्धि सम्बन्धी व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अध्ययन से उनके विषय मे निम्नलिखित बातें ज्ञात हुई हैं —

(अ) अनुकूल परिस्थितियो मे औसत बुद्धि का बालक सामान्य रूप से पढाई-लिखाई मे अच्छी सफलता प्राप्त करता है।

(ब) यदि परिस्थितिया अनुकूल हो तो प्रखर बुद्धि बालक सीखने की प्रक्रियाओ मे काफी तेज दिखलाई पडता है।

(स) परिवेश और शिक्षा पद्धति के कितने ही अच्छे होने पर मन्द बुद्धि बालक औसत अथवा प्रखर बुद्धि बालक से पहले ही सीखने की सीमा पर पहुच जाता है।

(द) प्रतिकूल परिस्थितियो का सभी प्रकार के बालको पर बुरा प्रभाव पडता है और उन्हे सीखने मे कठिनाई होती है।

(७) विशेष योग्यतायें—जूनियर और सीनियर हाई स्कूल तथा कालेज मे व्यक्ति की सामान्य बुद्धि के अलावा उसकी विशेष योग्यताओ का अन्तर भी महत्व-पूर्ण होता है, क्योकि विशेष व्यवसायो मे जाने के लिये अथवा विशेष क्षेत्रो मे योग्यता प्राप्त करने के लिए कुछ विशेष योग्यताओ की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की विशेष योग्यतायें मानसिक, कलात्मक, व्यक्तित्व सम्बन्धी तथा गत्यात्मक कुशलता से सम्बन्ध रखती है।

(८) मानसिक आयु—भिन्न-भिन्न आयु के बालको मे और एक ही आयु के विभिन्न बालको मे मानसिक आयु (**Mental age**) मे अन्तर देखा जाता है। सामान्य रूप से एक कक्षा के सभी विद्यार्थियो मे मानसिक आयु मे कुछ न कुछ अन्तर होता है। यह देखा गया है कि ६ वर्ष की आयु के विभिन्न बालको मे मान-सिक आयु मे ५ साल तक का अन्तर पडता है। मानसिक आयु से शिक्षा का बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। बालक की शिक्षा के स्तर इसी के अनुसार निश्चित किये जाते है।

(६) विकास सम्बन्धी अन्तर—केवल विभिन्न आयु के व्यक्तियो मे ही नही बल्कि एक आयु के व्यक्तियो मे भी विकास सम्बन्धी अन्तर दिखलाई पडता है।

(१०) सीखने से सम्बन्धित अन्तर—सीखने के सम्बन्ध मे बालको मे पिछली पढाई-लिखाई और अनुभव, विभिन्न उपकरणो का उपयोग करने की योग्यता, सीखने की गति, सीखने मे रुचि आदि मे अन्तर देखा जा सकता है। केवल विभिन्न आयु के बालको मे ही नही बल्कि सामान्य आयु के बालको मे भी सीखने की तत्परता मे अन्तर देखा जाता है। यह अन्तर उसकी परिपक्वता और शिक्षा सम्बन्धी पृष्ठभूमि पर निर्भर है। सीखने की तत्परता में अन्तर से औपचारिक शिक्षा के लाभ मे अन्तर पड जाता है।

(११) गत्यात्मक कुशलता—विभिन्न व्यक्तियो के हाथ पैरो को चलाने की क्रियाओ और कुशलताओ मे अन्तर पाया जाता है। वयस्कावस्था तक व्यक्ति के हस्त कौशल (Manual dexterity), मांस-पेशियो के सचालन, कार्य की गति और नियन्त्रण तथा थकान का प्रतिरोध (Resistance of fatigue) आदि मे बराबर विकास होता है। इस प्रकार एक व्यक्ति मे भिन्न-भिन्न आयु मे और एक ही आयु मे भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे गत्यात्मक कुशलता मे अन्तर पाया जाता है।

(१२) रुचि सम्बन्धी अन्तर—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, लिंग भेद से रुचि में अन्तर हो जाता है। इसी तरह पारिवारिक पृष्ठभूमि, विकास का स्तर तथा राष्ट्रीय और प्रजातीय भेद आदि अनेक कारक रुचि मे अन्तर उत्पन्न करते हैं।

(१३) व्यक्तित्व प्रकार—व्यक्तित्व सम्बन्धी अन्तर को लेकर मनोविज्ञान मे अनेक अध्ययन किये गये है और इन अध्ययनो के अनुसार व्यक्तियो को भिन्न-भिन्न वर्गों मे बाँटा गया है। स्टीफैन्स ने व्यक्तित्व को प्रसारक (Preservator) और अप्रसारक (Non-preservator) दो वर्गो मे बाँटा है। इसमे पहले वर्ग के व्यक्तियो पर अनुभव के सस्कार गहरे पडते है और दूसरे पर उतने गहरे नही पडते। कटेल ने व्यक्तित्व को लहरी (Surgent) और अलहरी (Non-surgent) वर्गों मे बाँटा है। इनमे लहरी युग के बहिर्मुखी से और अलहरी अन्तर्मुखी से मिलता-जुलता है। टर्मन (Terman) ने बुद्धि के अनुसार व्यक्तित्व के ९ प्रकार माने है—(क) प्रतिभाशाली (Genius), (ख) उपप्रतिभाशाली (Near Genius), (ग) अति उत्कृष्ट बुद्धि (Very superior intelligence), (घ) उत्कृष्ट बुद्धि (Superior), (च) सामान्य बुद्धि (Average), (छ) मन्द बुद्धि (Backward), (ज) मूर्ख (Feebleminded), (झ) मूढ (Dull), (ट) जड बुद्धि (Idiot)।

वर्नन (Vernon) ने शारीरिक दृष्टि से व्यक्तियो को दस वर्गों मे बाँटा है—(१) स्वस्थ, (२) अविकसित, (३) अपरिपुष्ट, (४) अगहीन, (५) स्नायविक, (६) सुस्त या पिछडा हुआ, (७) चुस्त-चालाक, (८) मन्द बुद्धि, (९) स्नायु रोगी, (१०) मृगीग्रस्त। व्यक्तित्व के ये वर्ग स्वास्थ्य की दृष्टि से बनाये गये हैं।

थार्नडाइक (Thorndike) ने विचार की दृष्टि से व्यक्तियों को ४ वर्गों मे बांटा है—(अ) सूक्ष्म विचारक (Abstract thinkers), (ब) प्रत्यय (Idea) विचारक, (स) स्थूल (Thing) विचारक, (द) विशेष इन्द्रिय प्रधान विचारक। इनके नाम से इनकी विचार सम्बन्धी विशेषतायें मालूम पडती हैं।

शारीरिक प्ररूप

व्यक्तित्व के शारीरिक प्ररूपों (Physical Types) के उदाहरण 'Physique and Character' नामक पुस्तक के लेखक क्रैशमर (E. Kretshmer) के वर्गीकरण मे मिलते है। शारीरिक रचना के आधार पर क्रैशमर ने मनुष्यों को दो वर्गों मे विभाजित किया है :—

(१) साइक्लायड (Cycloid)—ये मोटे होते है। इनका स्वभाव (Temperament) वस्तुवादी, सामाजिक, मिलनसार और प्रसन्न होता है।

(२) शाइजायड (Schizoid)—ये लम्बे और दुबले-पतले होते हैं। इनका स्वभाव आत्मकेन्द्रित, भावुक, सकोचशील, शान्त और एकान्तप्रिय होता है।

इन दो प्रकारों के अतिरिक्त क्रैशमर ने शारीरिक रचना के आधार पर अन्य अनेक उपवर्ग भी बतलाये हैं जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं —

(१) ऐस्थेनिक (Asthenic)—ये छोटे कन्धे वाले और दुबले-पतले होते हैं। इनका स्वभाव आत्म-केन्द्रित, भावुक, स्वप्न देखने वाला, बौद्धिक, शान्त और एकान्तप्रिय होता है।

(२) एथलेटिक (Athletic)—जैसा कि इनके नाम से प्रकट है, इनका शारीरिक गठन बहुत अच्छा होता है, कन्धे चौड़े और कमर पतली होती है। ये स्वभाव से व्यवहार कुशल, सामाजिक और क्रियाशील होते हैं।

(३) पिकनिक (Pyknic)—ये मोटे होते हैं। इनका पेट निकला हुआ और मुह गोल होता है। ये स्वभाव मे प्रसन्नचित्त तथा मिलनसार होते है।

स्वभाव के आधार पर प्ररूप

शारीरिक रचना के अतिरिक्त स्वभाव (Temperament) के आधार पर भी व्यक्तित्व के प्ररूपो का वर्गीकरण किया गया है। इस प्रकार के वर्गीकरण का एक उदाहरण शैल्डन (W H Sheldon) की 'The Varieties of Temperament' नामक पुस्तक मे मिलता है। इसमें पहले मानवशास्त्रीय नाप-जोख (Anthropological Measurements) के आधार पर व्यक्तियों के आकार का वर्गीकरण किया गया है और फिर इसके आधार पर स्वभाव के प्ररूप बतलाये गये हैं। आकार-प्रकार के आधार पर शैल्डन ने व्यक्तियो को तीन वर्गों मे बाँटा है। ये वर्ग निम्नलिखित हैं :—

(१) एण्डोमार्फिक (Endomorphic)—इनका पेट बड़ा होता है तथा पाचन क्रिया सम्बन्धी अतड़ियाँ विकसित होती हैं।

(२) मेसोमार्फिक (Mesomorphic)—इनकी हड्डियाँ तथा मांस-पेशियाँ अधिक विकसित होती हैं।

(३) एक्टोमार्फिक (Ectomorphic)—इनकी हड्डियाँ लम्बी तथा कोमल होती है तथा शारीरिक बनावट कमजोर होती है।

(१) विसेरोटानिक (Viserotonic)—इनमे भोजन की क्रियाओं की

प्रधानता होती है। ये आरामपसन्द, भोजनप्रिय तथा दूसरों से प्यार पाने के इच्छुक होते हैं। इनकी नींद गहरी होती है। आपत्ति आने पर ये दूसरो से सहायता चाहते हैं। इनमे एण्डोमार्फिक शरीर रचना वालो की गिनती होती है।

(२) सोमेटोटानिक (Somatotonic)—ये कर्मठ, स्पष्ट और प्रतियोगी स्वभाव वाले होते हैं। ये शक्तिशाली, साहसी और अधिकारप्रिय तथा जोर-शोर से बोलने वाले होते हैं। आपत्ति पडने पर ये अधिक क्रियाशील हो जाते हैं। मेसोमार्फिक इसी प्रकार के होते हैं।

(३) सेरीब्रोटानिक (Cerebrotonic)—इनमें एक्टोमार्फिक प्ररूप के व्यक्ति आते हैं। ये सयमी, सकोचशील और सवेदनशील होते हैं। ये अपनी भावनाओ को दबाने के आदी होते हैं। ये एकान्तप्रिय होते हैं और आपत्ति मे दूसरो से सहायता लेने की अपेक्षा अपने ही तक सीमित रहना अधिक पसन्द करते हैं। ये धीरे-धीरे बोलते हैं तथा इन्हे अच्छी नींद नही आती है।

मार्गन तथा गिलीलैंड ने स्वभाव के अनुसार व्यक्तित्व के चार प्ररूप बतलाये हैं—

(१) प्रफुल्ल (Elated)—ये आशावादी, प्रफुल्ल और प्रसन्नचित्त होते हैं।

(२) उदास (Depressed)—ये निराशावादी, उदास और सवेगात्मक होते हैं।

(३) चिड़चिड़ा (Irritable)—ये झगडालू और चिडचिडे तथा गर्म मिजाज होते हैं।

(४) अस्थिर (Unstable)—इनका मिजाज असन्तुलित, अस्थिर और सवेगात्मक होता है।

सामाजिकता के आधार पर वर्गीकरण

व्यक्तित्व के प्ररूपो का सबसे अधिक महत्वपूर्ण वर्गीकरण युंग (Jung) का है। सामाजिकता के आधार पर युग ने व्यक्तियो के दो प्ररूप माने हैं—(१) बहिर्मुखी (Extroverts) और अन्तर्मुखी (Introverts)।

(१) बहिर्मुखी—ये अन्य व्यक्तियो मे अधिक रुचि लेते हैं। ये अपने स्वभाव के अन्य लोगों के साथ मिलना-जुलना पसन्द करते हैं। ये यथार्थवादी होते हैं और जीवन की परिस्थितियों का वस्तुगत रूप मे सामना करते हैं। ये अपने चारों ओर के सामाजिक कार्यों मे भाग लेने को सदैव तैयार रहते हैं। सामाजिक आदान-प्रदान मे ये मुक्त होकर भाग लेते हैं। ये भावना प्रधान होते हैं, शीघ्र निर्णय करते हैं और निर्णय पर तत्काल अमल करते हैं। ये व्यवहार-कुशल और कर्मठ होते हैं। बहिर्मुखी वर्ग मे व्यापारी, खिलाडी, अभिनेता तथा सामाजिक, राजनैतिक नेता आदि आते हैं।

(२) अन्तर्मुखी—जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, इन लोगों की मानसिक प्रवृत्ति बाहर की ओर अर्थात् अपने आस-पास के लोगों की ओर न होकर अन्दर की

ओर अर्थात् स्वय अपनी ओर होती है। इस प्रकार ये आत्मकेन्द्रित और एकान्तप्रिय होते हैं। इनमें विचार की प्रधानता होती है और ये चिन्तन, मनन मे लगे रहते हैं। ये विचारो मे ही व्यस्त रहते हैं और दूसरो को अपने विचारो से ही प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। ये आदर्शवादी होते हैं और भविष्य के विषय मे बहुत सोचते है। ये प्रायः सामाजिक परिवेश की अपेक्षा भौतिक परिवेश मे अर्थात् पेड, पौधों मशीनो आदि मे अधिक रुचि लेते है। ये शीघ्र निर्णय नही करते और न उस पर फौरन अमल ही करते हैं। ये व्यवहार-कुशल नहीं होते और काम की अपेक्षा विचार की ओर अधिक ध्यान देते हैं। अन्तर्मुखी वर्ग मे वैज्ञानिक, दार्शनिक, कवि आदि आते है।

(३) उभयमुखी—बहिर्मुखी तथा अन्तर्मुखी के अन्तर की तालिका से यह स्पष्ट हो गया होगा कि ये दोनो प्ररूप एक दूसरे से बिलकुल विरुद्ध हैं। परन्तु यथार्थ जगत मे इस प्रकार के विशुद्ध प्ररूप बहुत कम मिलते है। अधिकतर व्यक्तियो मे बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी दोनो की कुछ न कुछ विशेषतायें पाई जाती है। इन मध्यवर्ती व्यक्तियो को युग ने उभयमुखी (Ambiverts) कहा है। बाद मे युग ने व्यक्तियो को सवेदनशील (Sensing), विचारशील (Thinking), अनुभूतिशील (Feeling) और मूलप्रवृत्यात्मक (Instinctive) प्ररूपो मे विभाजित किया।

आनुवंशिकता का महत्व

आनुवशिक्तावादी (Hereditarians) आनुवशिक्ता को ही व्यक्तिगत विभिन्नताओ का निर्धारक मानते है। पिन्टर (Pinter) के अनुसार बालको की सभी योग्यतायें तथा शीलगुण आनुवशिक्ता से ही प्राप्त होते है। प्रतिमा (Image) के प्रकारो का अध्ययन करते समय फ्रान्सिस गाल्टन ने विभिन्न व्यक्तियो मे भिन्नतायें देखी जिनका आधार आनुवशिक्ता माना गया। अन्य अध्ययनो मे गाल्टन ने बुद्धि सम्बन्धी व्यक्तिगत भिन्नताओं का कारण भी आनुवशिक्ता को ठहराया। ९७७ वकील, न्यायाधीश, कलाकार, वैज्ञानिक, साहित्यकार आदि महान व्यक्तियो के अध्ययन से गाल्टन ने यह निष्कर्ष निकाला कि इन व्यक्तियो के पूर्वज भी वैसे ही प्रतिभाशाली थे। इतनी ही सख्या मे सामान्य व्यक्तियों के अध्ययन मे उसे उनके पूर्वजो मे प्रतिभाशाली व्यक्ति नही के बराबर दिखाई पडे। एक अन्य अध्ययन मे उसने ऐसे तीस परिवारो मे जिनमे माता-पिता दोनो कलाकार थे, चौसठ प्रतिशत वशज कलाकार पाये। दूसरी ओर १५० ऐसे परिवारो मे जिनमे माता-पिता मे से कोई भी कलाकार नही था, केवल २१ बालको मे कलात्मक योग्यता दिखलाई पडी। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Hereditary Genius मे गाल्टन ने उपरोक्त प्रयोगो के आधार पर प्रतिभा को आनुवशिक घोषित किया। गाल्टन के पश्चात् कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) ने लगभग दो हजार भाई बहनो की शारीरिक और मानसिक विशेषताओं के विषय मे उनके अध्यापको से मिले मूल्याकन के आधार पर अध्ययन किया और उनके निष्कर्षों से गाल्टन के मत की पुष्टि की।

आनुवंशिकता के प्रभाव के विषय मे कुछ विशिष्ट परिवारों के अध्ययन विशेष महत्त्वपूर्ण है। इनमे मुख्य निम्नलिखित हैं—

(१) ज्यूक्स (Jukes) परिवार—डगडेल (Dugdal) तथा एस्टाब्रुक्स (Estabrooks) ने अमरीकी ज्यूक्स परिवार का अध्ययन किया। ज्यूक्स सन् १७२० मे न्यूयार्क नगर में उत्पन्न हुआ। १५७ वर्ष बाद सन् १८७७ ई० तक इसके परिवार मे १२०० व्यक्ति हुए। ज्यूक्स मानसिक रूप से क्षीण व्यक्ति था और मछलियाँ मारकर अपने परिवार का पालन-पोषण करता था। अत उसके परिवार मे ४४० रोगी या विकलांग, ३१० अत्यन्त दरिद्र, १३० अपराधी, ७ हत्यारे और आधी से अधिक स्त्रियाँ वेश्यायें पाई गईं। केवल बीस व्यक्ति ऐसे मिले जो सामान्य व्यवसाय करके जीवन निर्वाह करते थे। पहले अध्ययन के ४० वर्ष बाद जब एस्टाब्रुक्स ने इस परिवार का अध्ययन किया तो उस मूल स्थिति मे किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं दिखलाई पडी।

(२) कालीकाक (Kalikak) वंश—गोडार्ड (Goddard) ने मार्टिन कालीकाक के परिवार का अध्ययन किया। इस व्यक्ति ने पहले एक मन्दबुद्धि (Feeble minded) स्त्री से विवाह किया जिससे उत्पन्न मन्दबुद्धि पुत्र के ४८० वंशजो मे केवल ४६ सामान्य बुद्धि थे और शेष सभी मन्दबुद्धि थे। कुछ समय बाद कालीकाक ने एक बुद्धिमान महिला से विवाह किया जिसके ४९६ वंशजो मे एक भी मन्द बुद्धि नही था और सभी श्रेष्ठ पदाधिकारी एव सम्मानित व्यक्ति थे। इस अध्ययन से गोडार्ड ने यह निष्कर्ष निकाला कि मानसिक योग्यता सम्बन्धी गुण दोष आनुवंशिक होते है।

(३) एडवर्ड्स (Edwards) वंश—विंशिप (Winship) ने एडवर्ड्स परिवार का अध्ययन किया। सन् १९०० ई० मे इस वंश मे १३९४ व्यक्ति थे जिनमे २९५ विश्वविद्यालयो के स्नातक थे। इनमे से १३ महाविद्यालयो के अध्यक्ष और एक संयुक्त राज्य अमरीका का उपाध्यक्ष था। अन्य व्यक्ति भी ऊंचे पद पर थे। पूरे वंश मे एक भी व्यक्ति निकृष्ट लक्षण वाला न था।

युग्म बालको के अध्ययन—

शील गुणो पर आनुवंशिकता के प्रभाव की जांच के विषय मे युग्म (Twins) बालकों पर किये गये अध्ययन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योकि युग्म बालको की आनुवंशिकता समान होती है। इस दिशा मे सर्वप्रथम फ्रान्सिस गाल्टन ने ८० युग्म बालकों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि वे सभी शीलगुणो मे समान होते हैं। न्यूमैन (Newman), मुलर (Muller) तथा कॉक (Koch) के अध्ययन इस मत की पुष्टि करते हैं।

थार्नडाइक (Thorndike) ने ५० युग्म बालकों पर ७ प्रकार के बुद्धि परीक्षणो का प्रयोग किया। तत्पश्चात् ५० भाई बहनो पर इन्ही ७ प्रकार के बुद्धि परीक्षणो का प्रयोग किया। इन परीक्षणो से यह ज्ञात हुआ कि प्रथम प्रकार के

बालकों की बुद्धि का अनुबन्ध दूसरे प्रकार के बालको की बुद्धि के अनुबन्ध से बहुत अधिक था। इससे थार्नडाइक ने बुद्धि पर आनुवंशिकता का प्रभाव स्थापित किया'।

अन्य अध्ययन

स्टार्च (Starch) ने विसकान्सिन (Wisconsin) विश्वविद्यालय मे १६ से ३२ वर्ष की आयु के १८ जोडे भाई बहनो के विभिन्न शीलगुणो का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि आनुवंशिकता की समानता के कारण उनके शील गुणो मे भी समानता थी और उस पर वातावरण का प्रभाव बहुत कम था। न्यूइंगलैंड के १०५ परिवारो के ३१७ बालको की मानसिक योग्यताओ का अध्ययन करके एच० ई० जोन्स (H. F. Jones) भी इसी निष्कर्ष पर पहुचा। ७३४ जोडे भाई बहनो का वचना परीक्षण (Cheating test) द्वारा परीक्षण करके मे (May) और हार्टशोर्न (Hartshorne) ने इसी मत की पुष्टि की। फ्रीमैन (Freeman) तथा होलजिगर (Holzinger) के अध्ययनो से भी यही बात सिद्ध हुई।

वंशानुसक्रमण के विपक्ष मे तर्क

वशानुसक्रमण के प्रभाव के विषय मे पीछे बतलाये गये प्रयोगो से यह नही सिद्ध हो सका कि वशानुसक्रमण बुद्धि अथवा शारीरिक लक्षणो आदि को निश्चित करता है। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित आपत्तिया ध्यान देने योग्य हैं—

(१) नीग्रो और श्वेत प्रजातियो के बुद्धि अको के तुलनात्मक अध्ययन के प्रयोगो के विरुद्ध निम्नलिखित आपत्तियाँ उठाई गई—

(i) बुद्धि परीक्षण ज्ञान का परीक्षण है और ज्ञान पर्यावरण पर आधारित होता है।

(ii) बुद्धि का परीक्षण बुद्धि के वाहकाणु का मापक नही है।

(iii) नीग्रो और श्वेत पर्यावरणो के भिन्न होने के कारण यह नही कहा जा सकता कि उनके बुद्धि अको (Intelligence scores) का अन्तर वशानुसक्रमण के कारण है या पर्यावरण के कारण।

(iv) नीग्रो तथा श्वेत लोगों के प्रशिक्षण, शिक्षा, सामाजिक जीवन के अनुभव तथा घरेलू जीवन और सामाजिक अवसरो मे भी अन्तर है और इस अन्तर का प्रभाव उनके बुद्धि अको पर भी अवश्य पडेगा।

(२) जापानी और अमरीकी सैनिको की ऊचाई के अन्तर को उनके वशानुसक्रमण के कारण नही माना जा सकता। इस विषय में निम्नलिखित आपत्तियाँ उठाई गई हैं—

(i) स्कीनफैल्ड (Scheinfeld) के अनुसार "जन्म शुरू होने के क्षण से वयस्क होने तक कद के जीवाणुओ की क्रिया पर अगणित कारक प्रभाव डालते है।"[1]

1. "From the moment of conception and through puberty, innumerable factors bear upon the action of the "stature genes " —Scheinfeld

(ii) लम्बाई मे अन्तर पर्यावरण के कारण भी हो सकता है। बॉस (Boss) ने लिखा है कि अमेरिका मे रहने वाले यहूदियो और जापानियो की सन्तानो की लम्बाई उनके माता-पिता की ऊंचाई से औसतन दो इंच बढ गई।

वैज्ञानिको ने आनुवंशिकता के पक्ष में विभिन्न वंशो के अध्ययन को सर्वथा अवैज्ञानिक ठहराया है। इसके विरुद्ध अनेक तर्क उपस्थित किये गये। लैन्सलोट होगवेन (Lancelot Hogben) ने तो यहाँ तक कह दिया कि "यदि सामाजिक जीव-विज्ञान कभी एक निश्चित जीव-विज्ञान बनता है तो ज्यूक्स के नीरस इतिहास को उसी दृष्टि से देखा जायगा जिससे आज हम रस विद्या (Alchemy) को देखते है।" इस विषय में मुख्य तर्क निम्नलिखित है—

(१) विवाह करने वाले स्त्री-पुरुष आमतौर से भिन्न-भिन्न वंशो के होते हैं और प्रत्येक पीढी में वाहकाणुओ (Genes) का एक नया संग्रह होता है। अत यह कहना सर्वथा अवैज्ञानिक होगा कि ज्यूक्स का जो वंशानुसंक्रमण १७२० मे था वहाँ १८७७ मे था। अतः इन वंशजो पर ज्यूक्स या एडवर्ड्स का भी प्रभाव नही माना जा सकता।

(२) ज्यूक्स और एडवर्ड्स का यह अध्ययन पूर्ण नही कहा जा सकता क्योंकि इनमे अनेक अप्रसिद्ध व्यक्तियो के छूट जाने की सम्भावना है।

(३) ज्यूक्स और एडवर्ड्स का अन्तर बहुत कुछ पर्यावरण के भी कारण है। स्वयं वंशानुसंक्रमणवादी इस बात से इन्कार नही करते कि उनके पर्यावरणो में अन्तर था। अत एक मात्र वंशानुसंक्रमण को इस अन्तर का कारण नही ठहराया जा सकता। वास्तव मे ज्यूक्स की खोज जेलो, अनाथालयो और गरीब परिवारो में और एडवर्ड्स की प्रमुख स्थानो तथा उच्च परिवारो मे की गई।

(४) प्रत्येक व्यक्ति मे माता-पिता के आधे-आधे पित्र्यैक आते है। इन पित्र्यको का किस प्रकार सम्मिलन होगा, यह कुछ नही कहा जा सकता। अतः वास्तव मे अध्ययन किये गये इन व्यक्तियो का वंशानुसंक्रमण एक नही माना जा सकता।

उपरोक्त आलोचनाओ से यह स्पष्ट है कि ज्यूक्स और एडवर्ड्स के इन अध्ययनो के आधार पर यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि व्यक्ति के गुण उसके वंशानुसंक्रमण का प्रभाव हैं।

पर्यावरण का प्रभाव

मनुष्य पर उसके पर्यावरण का बडा प्रभाव पडता है। पर्यावरण का यह प्रभाव उसके जन्म से लेकर एक बडी आयु तक और कभी-कभी मृत्यु पर्यन्त चलता रहता है। परिवार और समाज मे बालक, युवक और वृद्ध व्यक्तियों की स्थितियो और कार्यो मे पर्याप्त अन्तर होता है और इस अन्तर के कारण स्वभावत उनके व्यक्तित्व, काम, स्वभाव, सोचने विचारने के ढंग, रुखो, झुकावो और चरित्र सभी पर प्रभाव पडता है। इस प्रकार स्कूल, आफिस, व्यवसाय मे व्यक्तियो की स्थिति (status) का उनके कार्यो आदि पर बडा प्रभाव पडता है।

सामाजिक पर्यावरण का प्रभाव

पर्यावरण को मोटे तौर से दो भागों मे बाँटा जा सकता है—नियन्त्रित पर्यावरण और अनियन्त्रित पर्यावरण तथा सामाजिक पर्यावरण और भौगोलिक पर्यावरण। मनुष्य के सामाजिक तथा भौगोलिक दोनो प्रकार के पर्यावरण मे कुछ नियन्त्रित (Controlled) और कुछ अनियन्त्रित (Uncontrolled) हैं। इन दोनों प्रकार के सामाजिक तथा भौगोलिक पर्यावरण का मनुष्य पर बडा प्रभाव पडता है। सामाजिक पर्यावरण के विभिन्न पहलुओ परिवार, स्कूल, व्यवसाय, सामाजिक रीति-रिवाज, परम्परायें आदि सभी का मनुष्यों पर प्रभाव पडता है। इस विषय मे यहाँ पर केवल परिवार का ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा। प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी सिगमण्ड फ्रायड के अनुसार मनुष्य का व्यक्तित्व उसके पहले सात वर्षों में बन लेता है और बाद को उन्ही प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति होती रहती है। फ्रायड (Freud) के इस मत से चाहे सब विचारक सहमत न हो परन्तु परिवार के पर्यावरण के व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव, मनोवृत्तियो, आदतों, व्यवहारो आदि पर प्रभाव को सभी ने माना है और यह कहने के पर्याप्त कारण उपस्थित हैं कि अभी हम परिवार के मनुष्य पर प्रभाव के बारे में पूरी तरह नही जानते। इस प्रभाव का विशेष ज्ञान परिवार में पले बालकों के स्वभाव की राज्य की संस्थाओ में पले बालको के स्वभाव से तुलना करने पर होगा। बचपन मे माता-पिता के प्यार का बालक की भावनाओ के स्थायित्व पर बडा प्रभाव पडता है। यह सर्वविदित है कि अत्यधिक लाड-प्यार से बालक बिगड जाते हैं और बिल्कुल स्नेह न मिलने से उनकी भावनायें कुण्ठित रह जाती हैं या अप्राकृतिक तरीको से अभिव्यक्त होती हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एलफ्रेड (Alfred Adler) के अनुसार परिवार में बालक के उत्पन्न होने के क्रम (Birth Order) का भी उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पडता है। इसको इस तरह से और भी अच्छी तरह जाहिर किया जा सकता है कि परिवार मे माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन, बडा भाई, छोटा भाई, बडी बहन, छोटी बहन, लाडला बालक, अवाच्छित सन्तान आदि सबकी भिन्न-भिन्न स्थिति होती है जिनका उनके व्यक्तित्व पर अवश्य प्रभाव पडता है।

वातावरण सम्बन्धी प्रयोगात्मक अध्ययन

५७२ धुरधुर विद्वानों के जीवन का अध्ययन करके कैन्डल (Kendell) ने गाल्टन के मत के विरुद्ध यह निष्कर्ष निकाला कि उनकी सफलता का श्रेय उनको मिली सुविधाओ और अच्छे वातावरण को था। शिकागो विश्वविद्यालय के विद्वानों ने पोष्य बालको (Foster children) के अध्ययन से यह सिद्ध किया कि बौद्धिक योग्यता पर वातावरण का महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। स्टेन्फोर्ड विश्वविद्यालय के अध्ययन आनुवंशिकता के महत्व से इंकार न करते हुए वातावरण के महत्व पर जोर देते हैं। विशेष योग्यताओ पर वातावरण के प्रभाव के सम्बन्ध में ह्वीपल (Whipple) ओवर्ली (Oberly) तथा डलेनबक (Dellenbatch) और गेट्स (Gates) के अध्ययनों में कोई एक निश्चित निष्कर्ष नहीं निकलता।

वास्तव मे आनुवशिकता और परिवेश दोनो ही महत्वपूर्ण है। मैकाइवर और पेज ने उचित ही लिखा है कि "जीवन की हर घटना दोनो का फल होती है। परिणाम के लिये उनमे से एक भी उतनी ही आवश्यक है जितनी कि दूसरी। कोई भी न तो कभी हटाई जा सकती है और न ही कभी अलग की जा सकती है।"[1] आनुवशिकता सम्बन्धी परीक्षणो से यह सिद्ध हुआ है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास करने मे आनुवंशिकता ही एक मात्र कारक नही है। इसी तरह परिवेश के सम्बन्ध मे परीक्षणो मे यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य के व्यक्तित्व को अकेला परिवेश ही नही बनाता है। आल्टेनबर्ग (Altenberg) के शब्दों में "हर एक लक्षण को अपने विकास के लिये आनुवशिकता और परिवेश दोनो की आवश्यकता होती है।"[2]

आनुवंशिकता और परिवेश की परस्पर पूरकता

समाज में व्यक्ति के विकास पर आनुवशिकता और परिवेश के प्रभाव के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि दोनो का ही अपना-अपना महत्व है। कुछ वैज्ञानिको ने यह निश्चय करने की चेष्टा की है कि इन दोनो कारको मे किसका किस अनुपात मे महत्व है। कुमारी बर्क्स (Miss Berkes) के अनुसार मनुष्य की बुद्धि के विकास मे आनुवशिकता का ८० प्रतिशत और परिवेश का २०% प्रभाव पडता है। परन्तु इस प्रकार के निर्णय एकागी हैं और व्यवहार मे कभी खरे नही उतरते। इस विषय मे केवल इतना भर कहा जा सकता है कि व्यक्ति के विकास मे दोनों का हाथ है। लैंडिस और लैंडिस (Landis & Landis) के शब्दो में "आनुवशिकता हमें विकसित करने की सामर्थ्य देती है परन्तु इन सामर्थ्यों को विकसित करने का अवसर परिवेश से ही मिलना चाहिये। आनुवशिकता हमे हमारी कार्यशील पूजी देती है और परिवेश उसके विनियोग का अवसर देता है।"[3]

आनुवशिकता बीज रूप मे वह सब कुछ है जो किसी बालक को उसके माता पिता से प्राप्त होता है। बालक का जन्म माता और पिता दोनो के पिन्यसूत्रो के मिलने से होता है। परन्तु क्या बीज सभी परिस्थितियो मे एक-सा फलीभूत होगा ? उत्तर स्पष्ट है कि नही। किसान एक खेत को जोतकर उसमे बीज बिखेर देता है। पत्थर पर पडा बीज फूटता ही नही, कठोर जमीन पर पडा बीज कठिनता से फूटता है। पानी से दूर बीज फूटकर भी नही उगता, पानी की अनुपस्थिति मे पौधा सूख

1 "Every phenomena of life is the product of both Each is as necessary to the result as the other Neither can ever be eliminated and neither can ever be isolated " —MacIver and Page

2. "Each trait requires both heredity and environment for its development " —Altenberg, B

3. "Heredity gives us the capacities to be developed but opportunity for the development of these capacities must come from the environment. Heredity gives us our working capital; environment gives us the opportunity to invest it " —Landis & Landis

जाता है। किसान देखभाल न करे तो जगली जानवर व पक्षी पौधो को नष्ट कर दें। खाद न मिले तो पौधो की समुचित बाढ़ न हो। अतः केवल बीज बोने मात्र से गेहू की फसल नही काटी जा सकती। उसको ठीक समय पर आवश्यक खाद, पानी, निराई, गुड़ाई और जानवरो तथा कीडो से रक्षा की आवश्यकता है।

ठीक यही बात मनुष्य के विषय मे भी सच है। माना कि बालक बहुत से शारीरिक तथा मानसिक गुणो को बीजरूप मे लेकर उत्पन्न होता है परन्तु क्या इन गुणो का सभी परिस्थितियो मे एक जैसा विकास हो सकता है? समान जुडवाँ बच्चो की आनुवशिक्ता बिल्कुल एक सी होती है। न्यूमैन, फ्रीमैन और होलजिंगर ने १६ समान जुडवाँ बच्चों को भिन्न-भिन्न परिवेश मे पालकर अध्ययन किया। यद्यपि उनके शारीरिक लक्षणों मे बहुत कम अन्तर दिखाई पडा परन्तु व्यक्तित्व के लक्षणो और विशेषताओ मे अत्यधिक अन्तर दिखाई पडा। स्पष्ट है कि परिवेश बदलने से आनुवंशिकता का प्रभाव भी बदल जाता है। इस प्रकार यदि प्रखर से प्रखर बालक को भी प्रतिकूल परिवेश मे रखा जायेगा तो उसकी प्रतिभा बहुत कुछ कुण्ठित हो जायेगी और साधारण बालक को भी अनुकूल परिवेश मे रखकर उसके गुणो का समुचित विकास किया जा सकता है।

परन्तु क्या इसका अर्थ यह है कि बीज का कोई महत्व नही है? क्या परिवेश बदलने मात्र से किसी को कुछ भी बनाया जा सकता है? कीकड के बीज बोकर आम नही खाया जा सकता। परिवेश आनुवशिकता से प्राप्त गुणो का विकास करता है परन्तु केवल एक सीमा तक।

सक्षेप मे, यह कहा जा सकता है कि आनुवशिकता बीज और मनुष्य का परिवेश उस बीज के विकास की परिस्थितियाँ हैं। जैसी परिस्थितियाँ होगी वैसा ही बीज का विकास होगा। जैसा परिवेश होगा उसी के अनुसार व्यक्ति के आनुवशिकता से प्राप्त गुणो का विकास होगा। इस प्रकार आनुवशिकता परिवेश मे ही वास्तविकता प्राप्त करती है।

वास्तव मे आनुवंशिकता और परिवेश एक ही तथ्य के दो पक्ष हैं। डेविस (Davis) ने ठीक ही लिखा है "आनुवशिकता और परिवेश जैसे शब्द किसी मूर्त वस्तु की ओर नही बल्कि एक अमूर्तता (Abstraction) की ओर सकेत करते है।"[1] मनुष्य के विकास के सम्बन्ध मे परिवेश से अलग आनुवशिकता और आनुवशिकता से अलग परिवेश की कल्पना भी नही की जा सकती। लाइसेन्को (Lysenco) ने इस बात को प्रकृति से एक उदाहरण देकर समझाया है। गेहूँ के बीज से गेहू का पौधा ही निकल सकता है और सरसो के बीज से सरसों का पौधा ही उग सकता है। परन्तु जब किसान गेहूँ बोने का निश्चय करता है तो उसके मस्तिष्क मे यह बात रहती है कि उस

1. "Terms such as heredity or environment do not refer to any thing tangible but to abstraction" —Davis, K

बीज को प्रस्फुटित होने के लिये किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता है और वह इन आवश्यकताओं को कहाँ तक पूरा कर सकता है। स्पष्ट है कि गेहू के बीज का फूटना और विकसित होना बीज और परिवेश दोनो पर निर्भर है। डेविस अब्राहमसन (David Abrahamson) ने लिखा है कि "मनुष्य क्या कर सकता है, यह आनुवशिकता से निश्चित होता है और मनुष्य क्या करता है यह परिवेश निश्चित करता है। मनुष्य की शक्तिया आनुवशिकता मे होती हैं। इन शक्तियो को बाहर निकालना परिवेश का कार्य है। एक प्रभाव की दूसरे से न्यूनता या अधिकता कहना व्यर्थ है।" परिवेश और आनुवशिकता के उस सम्बन्ध को लम्ले (Lumley) ने बड़े सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया है। उसने लिखा है यह *"आनुवंशिकता या परिवेश नहीं है परन्तु आनुवशिकता और परिवेश है।"*[1]



वंशानु संक्रमण
चित्र स० २

परिवेश और आनुवशिकता के सम्बन्ध को दिये हुये चित्र से भली प्रकार समझाया जा सकता है। इसमे स्पष्ट है कि व्यक्ति परिवेश और आनुवशिकता का गुणनफल है।

व्यक्तिगत विभिन्नताओ की प्रकृति

व्यक्तिगत विभिन्नताओ की प्रकृति पीछे दिये गये व्यक्तिगत विभिन्नताओ के विस्तार और व्यक्तिगत विविधता की विभिन्नताओ से स्पष्ट होती है। किसी भी जनसख्या मे कोई भी व्यक्तित्व गुण अथवा योग्यता विशिष्ट प्रकार से विस्तृत देखी जाती है। ऊँचाई, बुद्धि, स्मृति, सच्चाई, सवेगात्मक स्थिरता, हस्तकौशल, प्रतिक्रिया करने की गति इत्यादि विभिन्न लक्षण जनसख्या मे विशिष्ट प्रतिमान मे बिखरे हुये होते हैं। इस प्रतिमान को व्यक्तियो का परीक्षण करके पता लगाया जा सकता है। पीछे जो शील गुण विस्तार सामान्य विभाजन वक्र दिया गया है उससे यह पता चलता है कि किसी जनसख्या मे किसी गुण को किस मात्रा मे कितने-कितने व्यक्तियो मे पाया जा सकता है। जैसा कि इस वक्र से स्पष्ट होता है, लगभग आधी जनसख्या औसत के निकट दिखलाई पड़ती है। इससे ऊपर और नीचे के वर्गों मे क्रमश व्यक्तियो की सख्या घटती जाती है और दोनो छोरो पर पहुँचकर व्यक्तियो की सख्या बहुत कम दिखलाई पडती है। दूसरे शब्दो मे, कोई भी लक्षण या शील गुण अत्यधिक मात्रा मे और बहुत ही कम मात्रा मे बहुत कम लोगो मे दिखलाई पड़ता है। विभिन्न प्रकार के परीक्षणो के द्वारा किसी समूह मे व्यक्तियो का परीक्षण करके

1. "It is not heredity or environment but heredity and environment."
—Lumley.

शील गुण वितरण वक्र बनाये जा सकते हैं। इन वक्रो से यह पता लगाया जा सकता है कि उस समूह मे विशिष्ट शील गुण का वितरण किस प्रकार से हुआ है। इस वक्र मे किसी भी व्यक्ति की स्थिति से उसका प्राप्तांक पता लगाया जा सकता है। इस स्थिति में यह मालूम पडता है कि उसमे विशिष्ट शील गुण की मात्रा कहाँ तक सामान्य से कम या अधिक है। इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन से व्यक्तिगत भिन्नताओ पर अधिक प्रकाश पडता है। उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति एक घण्टे मे दो सौ पुर्जों का निरीक्षण कर सकता है तो इसका स्वय मे तब तक कोई महत्व नही जान पडता जब तक कि यह पता न चल जाये कि समूह मे केवल तीन प्रतिशत व्यक्ति ही उससे अच्छा काम कर सकते हैं। इस प्रकार सामान्य वितरण वक्र मे व्यक्ति के स्थान से यह स्पष्ट होता है कि वह दूसरो से कहाँ तक आगे है। इसमे यह भी मालूम पडता है कि उस जैसे कार्य कुशल व्यक्ति समूह मे अन्य अधिक नही मिलेंगे। स्पष्ट है कि मानव का कोई भी शील गुण एक सापेक्षिक तत्व है। दूसरो की तुलना मे ही हम किसी व्यक्ति मे किसी शील गुण का महत्व पहचानते हैं। किसी जनसख्या मे किसी व्यक्ति का दूसरे की तुलना मे क्या स्थान है, इसी से उसकी श्रेष्ठता मालूम पडती है

उद्योग के क्षेत्र मे व्यक्तिगत विभिन्नताओ का महत्व

व्यक्तिगत विभिन्नताओ का उद्योग के क्षेत्र मे अत्यधिक महत्व है। उद्योग मे भिन्न-भिन्न कार्यों को करने के लिये भिन्न-भिन्न शील गुण वाले व्यक्तियो की आवश्यकता होती है। काम अच्छा और अधिक हो इसके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक स्थान पर सर्वोत्तम व्यक्ति की नियुक्ति की जाय। सर्वोत्तम व्यक्ति कौन है इसका पता विशेष परीक्षणों के द्वारा व्यक्तिगत विभिन्नताओ की जाँच करने से लगता है। कोई भी व्यक्ति दूसरो की तुलना मे ही अधिक श्रेष्ठ होता है। यह तुलना कैसे की जाय ? सामान्य वितरण वक्र से सुपरवाईजर यह पता लगा लेता है कि विशिष्ट कार्य को करने मे औसत व्यक्ति से क्या आशा की जा सकती है। अब जो व्यक्ति औसत से अधिक अच्छा काम दिखलाता है वह श्रेष्ठ माना जा सकता है। दूसरी ओर जो व्यक्ति औसत से निम्न मात्रा और गुण का कार्य दिखलाते हैं उनको निम्न श्रेणी का माना जा सकता है। बहुधा यह देखा जा सकता है कि अधिक योग्य व्यक्ति अधिक समय तक काम मे नही लगते और कम योग्य व्यक्ति पूरे समय काम करने के बावजूद भी अपना काम पूरा नही कर पाते। यह पता तभी लगता है जब कि काम पर चुपचाप बैठे रहने या इधर-उधर आवारागर्दी वाले कर्मचारियो को निकाल दिये जाने के बाद यह ज्ञात होता है कि वह जो काम रहा था उसे करने के लिये अब कई व्यक्तियो की आवश्यकता पड रही है। इसी से यह जान पड़ता है कि वह व्यक्ति कितना श्रेष्ठ था। जिस कार्य को औसत व्यक्ति पूरे समय लगे रहकर पूरा करता है उसे अधिक कुशल व्यक्ति थोडे ही समय मे कर डालता है और इसीलिये वह इधर-उधर घूमता और समय खराब करता दिखलाई पडता है। कुछ व्यक्ति तो

इतने अधिक कार्य-कुशल होते है कि उनको काम मे लगाये रहना ही प्रबन्धक के लिये एक समस्या बन जाती है। जब काम को मात्रा से नही बल्कि समय से तौला जाता है तो ऐसे व्यक्ति एक समस्या बन जाते हैं क्योकि वे एक निश्चित मात्रा से अधिक काम नही करना चाहते और इतना काम करने मे वे बहुधा खाली से बैठे दिखलाई पडते हैं।

जिस प्रकार अधिक कार्य कुशल व्यक्ति उद्योग मे समस्या बन जाते हैं उसी प्रकार कम कार्य कुशल व्यक्ति भी समस्या होते हैं। ये अधिक काम करने मे उत्पादन का गुण घटा देते हैं, इन्हे दुर्घटना से बचने मे कठिनाई होती है और ये बडी जल्दी प्रबन्धको के विरुद्ध हो जाते हैं। कभी-कभी इस प्रकार के पिछडे हुये कर्मचारियो का अन्य कर्मचारियों की कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पडता है क्योकि वे भी अपने स्तर से उतर कर उन्ही के स्तर पर आ जाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उद्योग मे कर्मचारियो की व्यक्तिगत विभिन्नताओ को ध्यान मे रखना कितना आवश्यक है। उद्योग की अनेक समस्यायें कर्मचारियों के इस व्यक्तिगत अन्तर के कारण ही होती हैं। जो कर्मचारी अधिक कार्य कुशल हैं वे थोडी ही देर मे अपना काम पूरा करके इधर-उधर घूमने लग जाते हैं और अन्य कर्मचारियो के पास बैठकर उनका समय खराब करते हैं। दफ्तरो मे इस तरह के कार्यकुशल लोग लगभग सदैव दूसरो की मेजो पर बैठे हुए, इधर-उधर घूमते हुये, कैन्टीन मे चाय पीते हुये या सिग्रेट फूंकते हुये दिखलाई पडते हैं यद्यपि उनका रोज का काम सदैव पूरा हो जाता है। ऐसे लोगो के रवैये से दूसरे कम कुशल लोगों के कार्य मे बाधा पडती है क्योकि वे पूरे समय पूरे मनोयोग से काम करके भी उतना काम नहीं कर सकते। अस्तु, अधिकारी को इन व्यक्तियो को बराबर काम मे लगाये रखना पडता है किन्तु वह जितना भी काम देता है उस काम को वे चटपट निबटा देते हैं तथा फिर इधर-उधर घूमने लगते है। ऐसी परिस्थिति मे योग्य अधिकारी को व्यक्तिगत विभिन्नताओ पर ध्यान देकर उसी के अनुसार कार्य का विभाजन करना चाहिये। सबसे पहले उसे विभिन्न प्रकार के परीक्षणो से यह जाँच कर लेनी चाहिये कि सामान्य वितरण वक्र मे किस व्यक्ति का क्या स्थान होगा। इससे वह उनकी व्यक्तिगत विभिन्नताओ के अनुरूप उन्हे कार्य दे सकेगा और उनसे कार्य की मात्रा और गुण के विषय मे ठीक आशा कर सकेगा।

उद्योग की परिस्थिति मे व्यक्तिगत विभिन्नताओ के महत्व को नौर्मन मायर द्वारा दिये गये निम्नलिखित उदाहरण से और भी आसानी से समझा जा सकता है—

टेलीफोन उद्योग मे एक फोरमैन से जब उसके कर्मचारियो की उत्पादन क्षमता के विषय में पूछा गया तो उसने यह बतलाया कि छ. व्यक्ति उत्पादन मे औसत से अधिक थे अन्य छः व्यक्ति औसत से नीचे थे और कोई भी व्यक्ति औसत नही था। औसत से ऊपर के व्यक्ति एक दिन मे चार टेलीफोन लगा रहे थे औसत से कम के व्यक्ति प्रतिदिन तीन टेलीफोन लगा रहे थे। फोरमैन की इस रिपोर्ट मे स्पष्ट रूप

से कुछ कठिनाई थी क्योकि आधे कर्मचारी औसत से अधिक नही हो सकते। फिर औसत से अधिक वाले छः कर्मचारियो मे भी कम से कम एक या दो ऐसे हो सकते थे जो एक दिन मे ४ से अधिक टेलीफोन लगा सकते थे। इसी तरह अन्य ६ व्यक्तियो मे एक दो ऐसे हो सकते थे जो एक दिन मे ३ से कम टेलीफोन लगाते। ऐसा इसलिये नही हुआ क्योकि जो व्यक्ति एक दिन मे ३ टेलीफोन नही लगा पाये उनका तबादला कर दिया गया या उन्हे नौकरी से हटा दिया गया। किन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि कोई भी व्यक्ति ३ और ४ के बीच मे अर्थात् ३·५ टेलीफोन लगाने वाला नही था। अस्तु, इससे यह जानने की आवश्यकता हुई कि ये व्यक्ति पूरी सख्या मे टेलीफोन क्यो लगाते थे, दूसरे, कुछ व्यक्ति अधिक काम करने मे रुचि क्यो नही ले रहे थे तथा तीसरे, जो व्यक्ति तीन टेलीफोन नही लगाते थे उनमे क्या व्यवहार किया जाता था। यदि अधिक अच्छा काम करने वाले व्यक्ति पूरी गति से इसलिये काम नही कर रहे थे कि वे पिछड़े हुए कर्मचारियो को अपने साथ रक्खे तो यह तथ्य ध्यान मे रक्खा जाना चाहिये। यह भी देखना आवश्यक है कि किस मात्रा मे कम उत्पादन करने पर व्यक्ति को नौकरी से हटा दिया जाता है। नौकरी से अलग कर दिये जाने की सीमा ऐसी नही होनी चाहिये कि उससे दूसरों की नीतिमत्ता पर विरोधी प्रभाव पड़े। उदाहरण के लिये यदि उपरोक्त उदाहरण मे ४ टेलीफोन प्रतिदिन लगाना आवश्यक माना जाता और इससे कम काम करने वालो को नौकरी से हटा दिया जाता तो अधिकतर कर्मचारियो को बडी चिन्ता होती और कई को नौकरी से हाथ धोना पडता। वास्तव मे औद्योगिक मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि किसी भी वैज्ञानिक उद्योग मे यह आग्रह करना अनुचित है कि सभी लोग समान मात्रा और गुण का उत्पादन दिखलायें। ऐसी माँग व्यक्तिगत विभिन्नताओं के तथ्य के विरुद्ध है। क्योकि कर्मचारियों मे व्यक्तिगत विभिन्नतायें होती हैं इसलिये यही अधिक स्वाभाविक है कि कुछ लोग औसत से अधिक काम दिखलायें और अन्य लोग औसत से पिछडे हुये रहे। समझदार प्रबन्धक को न तो पिछडे हुये लोगों पर अत्यधिक सख्ती ही करनी चाहिये और न औसत से अधिक योग्यता वाले व्यक्तियों पर अनुचित दबाव डालना चाहिए क्योकि पिछडे हुये और आगे बढ़े हुये दोनो ही प्रकार के कर्मचारियों को अपनी-अपनी तरह से काम करने देने से उत्पादन का औसत ठीक ही बैठ जाता है।

व्यक्तिगत भेदों के मापन के लिए परीक्षण—

अब प्रश्न यह है कि व्यक्तिगत भेदो का माप किस प्रकार किया जाए। आधुनिक काल मे मनोवैज्ञानिको ने विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत भिन्नताओ की परीक्षा करने के लिए अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणो की रचना की है। बुद्धि सम्बन्धी व्यक्तिगत विभिन्नताओं को बुद्धि परीक्षणो के द्वारा पता लगाया जाता है। व्यक्तित्व सम्बन्धी शील गुणो के अन्तर को व्यक्तित्व परीक्षणो के द्वारा पता लगाया जाता है। विशेष योग्यताओ का पता लगाने के लिए अलग-अलग विशेष योग्यताओं के लिए विशिष्ट परीक्षण होते हैं। हस्तकौशल सम्बन्धी कुशलता का पता लगाने के लिए

हस्तकौशल परीक्षण दिये जाते है। रुचि सम्बन्धी अन्तर रुचि सूचियो से पता लगाए जाते हैं। अभिवृत्तियो के माप के लिए मत मापदण्ड, मूल्यांकन मापदण्ड और परोक्ष मापदण्ड इत्यादि विभिन्न प्रकार के मापदण्ड प्रयोग किये जाते है।

व्यक्तिगत विभिन्नताओ को पता लगाने के लिए प्रयोग किए जाने वाले उपरोक्त परीक्षणो के अतिरिक्त विद्यालयो और कालिजो तथा विश्वविद्यालयो से प्राप्त किये हुये डिप्लोमा और डिग्रियो के द्वारा भी अनेक योग्यताओ का पता चलता है। व्यक्तिगत विभिन्नताओ का पता लगाने का एक उत्तम उपाय प्रार्थी व्यक्ति का साक्षात्कार करना है। साक्षात्कार मे उसके व्यक्तित्व, रुचि, अभिरुचि तथा बुद्धि आदि अनेक व्यक्तिगत बातो के विषय मे महत्वपूर्ण बातें मालूम पड़ती हैं। इसीलिए आजकल लिखित प्रार्थना पत्रों को प्राप्त करने के बाद अधिकतर उद्योगपति साक्षात्कार के द्वारा कर्मचारियो की योग्यता का पता लगाने का प्रयास करते हैं। किन्तु साक्षात्कार से व्यक्तिगत विभिन्नताओ का पता लगाने के लिए साक्षात्कारकर्त्ता मे मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि आवश्यक है। ऐसा होने पर ही वह चुने हुये प्रश्नो से सही बात का पता लगा सकता है। साक्षात्कार की परिस्थिति मे किसी व्यक्ति के किस व्यवहार का क्या अर्थ है इसको सही रूप से समझना केवल मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि रखने वाले व्यक्तियो के लिये ही सम्भव है।

व्यक्तिगत विभिन्नतायें और व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन

आधुनिक काल मे किसी व्यक्ति को उसकी योग्यताओ के अनुरूप व्यवसाय के चुनाव मे सहायता देने का कार्य व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) कहलाता है। यह एक सामान्य बात है कि सभी व्यक्तियों मे सभी प्रकार के कार्य करने की योग्यता नही होती। दूसरी ओर अलग-अलग व्यवसायो में अलग-अलग प्रकार की बुद्धि, व्यक्तित्व तथा विशिष्ट योग्यता सम्बन्धी शील गुण की आवश्यकता होती है। इसलिये व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया मे विभिन्न मानसिक परीक्षणो की सहायता से व्यक्ति की बुद्धि, मानसिक योग्यताओ, रुचियो, अभिरुचियो, शारीरिक विकास तथा व्यक्तित्व के शील गुण आदि के विषय मे पता लगा लिया जाता है। अनेक व्यवसायो मे यान्त्रिक योग्यता अथवा सामाजिकता या शिक्षा सम्बन्धी योग्यता की आवश्यकता होती है। अस्तु, कोई व्यक्ति किस व्यवसाय मे सफल हो सकता है यह बतलाने के लिए यह देखना आवश्यक है कि उसमे किस स्तर की व्यक्तिगत विभिन्नतायें हैं। उदाहरण के लिए प्रोफेसर, लेखक, वैज्ञानिक, वकील आदि के व्यवसाय मे सफलता प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय की शिक्षा, सृजनात्मक प्रतिभा तथा तर्कशक्ति और उच्च स्तर की बुद्धि की आवश्यकता होती है। इनके होने पर ही किसी व्यक्ति से इन व्यवसायों में सफलता प्राप्त करने की आशा की जा सकती है। रुचि सम्बन्धी अन्तरों से भी उपयुक्त व्यवसाय मे अन्तर हो जाता है क्योंकि रुचि के अनुसार व्यवसायो को यान्त्रिक, गणनात्मक, वैज्ञानिक, कलात्मक, साहित्यिक, समाज सेवा सम्बन्धी और लिपिक सम्बन्धी इत्यादि अनेक वर्गों मे बाटा गया है।

सारांश

व्यक्तिगत विभिन्नता का अर्थ—स्किनर के अनुसार आजकल हम व्यक्तिगत विभिन्नताओं को सम्पूर्ण व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के किसी भी मापे जाने योग्य पहलू को सम्मिलित करते हुए समझते हैं।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं का विस्तार—इसका परीक्षण सामान्य सम्भाव्यता वक्र से होता है। यह वक्र कुछ दशाओं में उपलब्ध नहीं होता जैसे—(१) यदि परीक्षण बहुत सरल या बहुत कठिन है, (२) प्राप्तांकों के विस्तार क्षेत्र में परिवर्तन, (३) यदि मापी जाने वाली योग्यता सामान्य रूप से विस्तृत नहीं है, (४) यदि न्यादर्श काफी बड़ा है। व्यक्तिगत विभिन्नताओं में भारी विविधता पाई जाती है।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार—(१) पृष्ठभूमि, (२) आर्थिक स्थिति, (३) प्रजातीय अन्तर, (४) राष्ट्रीयता, (५) लिंग भेद, (६) सामान्य बुद्धि, (७) विशेष योग्यतायें, (८) मानसिक आयु, (९) विकास सम्बन्धी अन्तर, (१०) सीखने से सम्बन्धित अन्तर, (११) गत्यात्मक कुशलता, (१२) रुचि सम्बन्धी अन्तर, (१३) व्यक्तित्व प्रकार।

आनुवंशिकता और परिवेश का आपेक्षिक महत्व—व्यक्तिगत विभिन्नताओं को निर्धारित करने में आनुवंशिकता और परिवेश का आपेक्षिक महत्व है। आनुवंशिकता के महत्व के विषय में गाल्टन और पिण्टर, पियर्सन के अध्ययन तथा ज्यूक्स, कालीकाक और एडवर्ड परिवारों के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त युग्म बालकों पर भी अध्ययन किये गये हैं। इन अध्ययनों से जहाँ आनुवंशिकता के पक्ष में प्रमाण मिलते हैं वहाँ उसके विपक्ष में भी प्रमाण कम नहीं हैं। यह निश्चित है कि व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर पर्यावरण का भी प्रभाव होता है। यह पर्यावरण सामाजिक और भौगोलिक, नियन्त्रित और अनियन्त्रित दोनों प्रकार का होता है। सामाजिक पर्यावरण में परिवार, स्कूल, व्यवसाय और संस्कृति का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। संक्षेप में व्यक्तिगत विभिन्नताओं को निर्धारित करने में आनुवंशिकता और परिवेश दोनों का हाथ है। आनुवंशिकता एक परिवेश में ही वास्तविकता प्राप्त करती है। व्यक्ति के विकास पर दोनों का ही प्रभाव पड़ता है। आनुवंशिकता और परिवेश परस्पर पूरक हैं।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं की प्रकृति—सामान्य रूप से व्यक्तिगत विभिन्नताओं में औसत की ओर प्रवृत्ति होती है। किसी भी शीलगुण के विस्तार सामान्य विभाजन वक्र को देखने से यह पता चलता है कि केन्द्र में सबसे अधिक संख्या होती है और दोनों छोरों की ओर बढ़ने पर यह संख्या घटती जाती है।

उद्योग के क्षेत्र में व्यक्तिगत विभिन्नताओं का महत्व—आधुनिक काल में उद्योग के क्षेत्र में व्यक्तिगत विभिन्नताओं का महत्व निर्विवाद सिद्ध हो चुका है। कर्मचारियों को उनकी व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुरूप कार्य देने से अधिक और अच्छा काम होता है तथा अनुशासन की समस्यायें नहीं आतीं। इसीलिए

आजकल कर्मचारी वरण और व्यावसायिक मार्ग-दर्शन में व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। विभिन्नताओं को मापने के लिए अनेक परीक्षण प्रयोग किए जाते हैं। इन परीक्षणों से विभिन्न लक्षणों और गुणों की मात्रा निर्धारित होती है। नये-नये परीक्षणों से ये माप अधिक विश्वसनीय होते जा रहे हैं।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १—योग्यता विषयक वैयक्तिक भिन्नतायें किस प्रकार वितरित होती हैं? उद्योग की दृष्टि से इस भिन्नता का क्या महत्व है?

Q 1. How are individual differences in ability distributed? What are the implications of those differences for industry?
(Vikram 1967)

प्रश्न २—व्यक्तिगत विभिन्नताओ की प्रकृति समझाइये और उद्योग के लिये उनका महत्व बतलाइये।

Q. 2. Explain the nature of individual differences and their significance for industry. (Karnatak 1968)

प्रश्न ३—व्यवसाय के क्षेत्र मे व्यक्तिगत भेदो के माप की क्यो आवश्यकता पडती है? व्यक्तिगत भेदो के माप के लिये किस प्रकार के परीक्षणो की आवश्यकता है?

Q. 3. Why should individual differences be measured in the field of industry? What kinds of tests are needed for measuring individual differences? (Agra 1967)

प्रश्न ४—उद्योग के क्षेत्र मे व्यक्तिगत विभिन्नताओं को मापने का क्या महत्व है? इन विभिन्नताओ को मापने के लिए किस प्रकार के परीक्षण प्रयुक्त किये जाते हैं?

Q. 4. What is the importance of the measurement of individual differences in the field of industry? What types of tests are used for measuring those differences? (Agra 1964)

प्रश्न ५—व्यक्तिगत विभिन्नताओ के तथ्य का उद्योग के लिये महत्व समझाओ।

Q. 5. Explain the importance of the fact of individual differences for Industry (Karnatak 1966)

६

मनोवैज्ञानिक परीक्षण

(Psychological Testing)

आजकल दफ्तरों में, कारखानो मे और सरकारी नौकरियो मे उपयुक्त कर्मचारियों के चुनाव के लिये मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता ली जाती है। इससे जहाँ विशेष व्यक्ति को उसकी रुचि, अभिरुचि, बुद्धि और योग्यताओ के अनुरूप काम मिल जाता है वहाँ दूसरी ओर पद पर उपयुक्त व्यक्ति की नियुक्ति होने से उस पद का काम भी अच्छा हो पाता है। इस प्रकार कर्मचारी और सेवायोजक दोनों को ही लाभ होता है। किसी भी व्यक्ति को किसी प्रकार का प्रशिक्षण देने से तभी लाभ हो सकता है जबकि उसमे उस प्रशिक्षण के लिये आवश्यक बुद्धि, योग्यतायें आदि पहले से उपस्थित हो और उसे उस काम मे रुचि भी हो। स्पष्ट है कि प्रशिक्षण देने के पहले प्रार्थी की इन योग्यताओं का परीक्षण किया जाना आवश्यक है। इसलिये आजकल सभी विकसित देशो मे भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रशिक्षण सस्थाओ मे प्रशिक्षार्थियो का चुनाव करने के लिये मनोवैज्ञानिक परीक्षणो का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये भारत मे उत्तर प्रदेश के पुलिस प्रशिक्षण महाविद्यालय (Police Training College), राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय (Govt Teacher's Training College) तथा अनेक टैक्निकल सस्थाओ मे चुनाव के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण इस्तेमाल किये जाते हैं। पब्लिक स्कूलो मे छात्रवृत्ति पाने वाले विद्यार्थियों को चुनने के लिये भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणो का प्रयोग किया जाता है। देश की राष्ट्रीय सुरक्षा अकादमी (National Defence Academy) मे भी चुनाव के लिये मनोवैज्ञानिक परीक्षणो का प्रयोग किया जाता है। प्रशिक्षण संस्थाओ मे चुनाव के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणो का यह प्रयोग बराबर बढता जा रहा है। अनेक व्यवसायों मे, सेना मे तथा अनेक उद्योगों मे बुद्धि परीक्षणो की सहायता से कर्मचारी और अफसरो का वर्गीकरण करके ही उन्हे काम सौंपा जाता है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण क्या है ?

मनोवैज्ञानिक परीक्षण की परिभाषा करते हुये मर्सेल ने लिखा है, "एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण उद्दीपको का एक प्रतिमान है, जो कि ऐसी अनुक्रियाओं को उत्पन्न करने के लिये चुने और सगठित किये जाते हैं जो कि परीक्षण देने वाले

व्यक्ति की कुछ मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को प्रकट करेंगे।"[1] इस प्रकार मनोवैज्ञानिक परीक्षण कुछ उद्दीपनों का एक संगठन होता है। ये उद्दीपन एक विशेष उद्देश्य से चुने जाते हैं। यह उद्देश्य परीक्षा किये जाने वाले व्यक्ति में कुछ मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का पता लगाना होता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में दिये गये उद्दीपक परीक्षण पद (Test Items) कहलाते हैं। ये अनेक प्रकार के हो सकते है, जैसे चित्र, आकृतियाँ, लकड़ी के गुटके अथवा शब्द-समूह, वाक्य या अंक इत्यादि। इन उद्दीपकों से मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का पता कैसे लगता है, यह दिये गये मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विवरण से स्पष्ट हो जायगा।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण मनोवैज्ञानिक प्रयोग से भिन्न होता है

यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण मनोवैज्ञानिक प्रयोग से भिन्न होता है, यद्यपि दोनों में ही कुछ उद्दीपन दिए जाते हैं और उनके प्रति अनुक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इन दोनों में मुख्य अन्तर उद्देश्य को लेकर है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, मनोवैज्ञानिक परीक्षण का उद्देश्य विषय (Subject) की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का पता लगाना होता है। दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक प्रयोग का उद्देश्य प्रयोग में सम्बन्धित मानसिक प्रक्रिया का पता लगाना होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जहाँ मनोवैज्ञानिक परीक्षण से योग्यताओं या विशेषताओं को जाना जाता है वहाँ मनोवैज्ञानिक प्रयोग से मानसिक प्रक्रिया (Mental Process) को जाना जाता है। फिर भी इन दोनों का अध्ययन सूक्ष्म है क्योंकि आजकल मानसिक प्रक्रियाओं को जानने के लिये भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाने लगा है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण अनेक प्रकार के होते हैं। विभिन्न दृष्टिकोण से उनका वर्गीकरण किया गया है। यह वर्गीकरण इस प्रकार है :—

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का वर्गीकरण

(१) **परीक्षण-विधि के अनुसार वर्गीकरण**—परीक्षण विधि के अनुसार मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को निम्नलिखित दो वर्गों में बाँटा गया है—

(क) **व्यक्ति परीक्षण (Individual Tests)**—ये परीक्षण, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, एक समय में एक ही व्यक्ति को दिये जाते हैं। इनमें सभी क्रियात्मक परीक्षण (Performance Tests) आते हैं। इसके अलावा इसमें ऐसे परीक्षण भी आते हैं जिनमें शाब्दिक योग्यताओं की आवश्यकता पड़ती है। इनके कुछ उदाहरण हैं—स्टैनफोर्ड बिने बुद्धि परीक्षण, वैश्लर-बेलेव्यू बुद्धि परीक्षण, कोहज का ब्लॉक डिजाइन परीक्षण, रोर्शा का स्याही धब्बा परीक्षण तथा टी० ए० टी०

1. "A psychological test, then, is a pattern of stimuli selected and organised to elicit responses which will reveal certain psychological characteristics in the person who takes them." —Mursell, J. L., *Psychological Testing*, New York, Longmans Green (1950), p. I.

परीक्षण इत्यादि। ये परीक्षण व्यक्तिगत निर्देशन के लिए विशेष रूप से उपयुक्त होते हैं, परन्तु ये महंगे होते हैं और इनमे अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता पडती है। ये सामूहिक परीक्षणो से कम यथार्थ भी होते हैं।

(ख) सामूहिक परीक्षण (Group Tests)—इनमें, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, बहुत से व्यक्तियों की एक साथ परीक्षा ली जाती है। उत्तर प्रदेश मनोविज्ञानशाला के समूह बुद्धि-परीक्षण, रुचि-परिसूचिया, व्यक्तित्व परिसूचियाँ तथा व्यावसायिक रुचि पत्रियां आदि इनके कुछ उदाहरण हैं। इनमे यथार्थता अधिक होती है और समय तथा धन भी कम व्यय होता है। इनके लिये विशेष परीक्षण की भी आवश्यकता नही होती, परन्तु इसमे व्यक्तिगत परीक्षणों के समान परीक्षार्थी और परीक्षक मे भाव सम्बन्ध (Rapport) नही स्थापित हो पाता। अत. ये समस्याओ के निदान और उपचार मे व्यक्तिगत परीक्षणो से कम उपयोगी होते हैं। फिर भी ये शिक्षा सम्बन्धी और व्यावसायिक निर्देशन मे विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुये हैं।

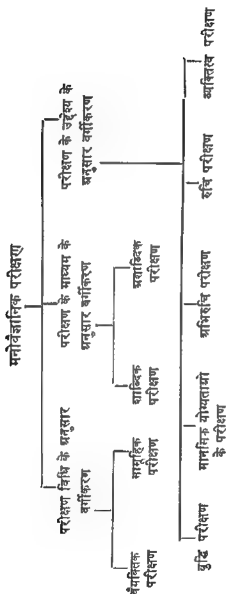
(२) परीक्षण के माध्यम के अनुसार वर्गीकरण—इसमे परीक्षण के माध्यम के अनुसार अन्तर किया जाता है। इस दृष्टिकोण से मनोवैज्ञानिक परीक्षण निम्नलिखित दो वर्गों मे बाँटे जाते हैं:—

(क) शाब्दिक परीक्षण (Verbal Tests)—इनमे, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, ऐसे परीक्षण सम्मिलित हैं जिनमे प्रश्न पूछे जाते हैं और भाषा सम्बन्धी योग्यताओं की आवश्यकता पडती है। शाब्दिक परीक्षणो का एक उत्तम उदाहरण डा० सोहनलाल का बुद्धि-परीक्षण है। इन परीक्षणों से निरक्षर, बहुत कम पढ़े-लिखे अथवा छोटे बालको का निरीक्षण नही किया जा सकता क्योकि उनमे भाषा सम्बन्धी योग्यता की कमी होती है।

(ख) अशाब्दिक परीक्षण (Non-verbal tests)—इनमे, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, ऐसे परीक्षण प्रयोग मे लाये जाते है जिनमे शब्दो का प्रयोग नही होता और आकृतियां, चित्रों, लकडी के गुटकों आदि का प्रयोग होता है। इनके कुछ उदाहरण पिजन का अशाब्दिक परीक्षण तथा रैवन का प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज अशाब्दिक परीक्षण हैं। इनसे विशेष लाभ यह है कि इनके द्वारा निरीक्षर, कम पढे-लिखे और छोटे बालकों की भी परीक्षा की जा सकती है। इनमे सभी निष्पादन परीक्षण आते हैं। क्रियात्मक परीक्षणो के उदाहरण है सेग्युइन आकार पटल परीक्षण, कोह्ज का ब्लॉक डिजाइन परीक्षण, अलेक्जेण्डर का पास एलोग टैस्ट इत्यादि। अशाब्दिक परीक्षणो के इन सब उदाहरणो का विस्तृत वर्णन आगे दिया गया है।

(३) परीक्षण के उद्देश्य के दृष्टिकोण से वर्गीकरण—परीक्षण के उद्देश्य के दृष्टिकोण से मनोवैज्ञानिक परीक्षणो को निम्नलिखित वर्गो मे बाँटा गया है—

(क) बुद्धि परीक्षण—इनके द्वारा बुद्धि की परीक्षा ली जाती है। इनमे शाब्दिक और अशाब्दिक दोनो ही प्रकार के परीक्षण आते हैं। ये व्यक्तिगत अथवा सामूहिक दोनो विधियो मे दिये जाते हैं।


मनोवैज्ञानिक परीक्षण
परीक्षण विधि के अनुसार वर्गीकरण
वैयक्तिक परीक्षण
सामूहिक परीक्षण
परीक्षण के माध्यम के अनुसार वर्गीकरण
शाब्दिक परीक्षण
अशाब्दिक परीक्षण
परीक्षण के उद्देश्य के अनुसार वर्गीकरण
बुद्धि परीक्षण
मानसिक योग्यताओं के परीक्षण
अभिरुचि परीक्षण
रुचि परीक्षण
व्यक्तित्व परीक्षण

(ख) मानसिक योग्यताओं के परीक्षण—इनमे विभिन्न प्रकार की मानसिक योग्यताओ, जैसे आन्तरिक्षिक योग्यता (Spatial Ability), कलात्मक योग्यता (Artistic Ability), *यान्त्रिक योग्यता (Mechanical Ability)* इत्यादि के परीक्षण सम्मिलित हैं, जिनका वर्णन आगे किया गया है।

(ग) रुचि परीक्षण—इनके द्वारा व्यक्ति की रुचियो का पता लगाया जाता है। इनके उदाहरण हैं—स्ट्रोंग का व्यावसायिक रुचि पत्र और क्यूडर का व्यावसायिक पसन्द लेखा। इन दोनों के विवरण आगे दिये गये हैं। इनके अलावा मनोविज्ञानशाला उत्तर प्रदेश की व्यावसायिक रुचि पत्री भी महत्वपूर्ण है।

(घ) अभिरुचि परीक्षण—अभिरुचि परीक्षणमालायें मानसिक योग्यताओ के परीक्षणो को मिलाकर बनाई जाती है। अभिरुचि परीक्षणो के कुछ उदाहरण हैं—भेदात्मक अभिरुचि परीक्षण सामान्य अभिरुचि परीक्षण माला तथा फ्लैनगन अभिरुचि वर्गीकरण परीक्षण, गिल्फर्ड जिम्मरमैन अभिरुचि सर्वेक्षण इत्यादि।

(ङ) व्यक्तित्व परीक्षण—*इनके द्वारा व्यक्तित्व की विशेषताओ का पता* लगाया जाता है। व्यक्तित्व परीक्षण की विधियों मे मुख्य हैं—साक्षात्कार विधि, परिस्थिति परीक्षण, निर्धारण मान एव निर्णय विधि, व्यक्तित्व परिसूची विधि, प्रक्षेपी प्रविधि इत्यादि। इनका विस्तृत वर्णन आगे दिया गया है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणो का उपरोक्त वर्गीकरण पीछे दिये गये चार्ट से भली प्रकार समझा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणो के इस वर्गीकरण से विभिन्न परीक्षणो का पता लगता है। अब इस अध्याय मे क्रमश निम्नलिखित परीक्षणो का विस्तृत वर्णन *दिया जायेगा*—

(१) बुद्धि परीक्षण (Intelligence Tests),
(२) मानसिक योग्यताओ के परीक्षण (Tests of Mental Abilities),
(३) रुचि परीक्षण (Interest Tests),
(४) अभिरुचि परीक्षण (Aptitude Tests),
(५) व्यक्तित्व परीक्षण (Personality Tests)।

बुद्धि और बुद्धि-परीक्षण

रोजाना की बोलचाल की भाषा मे बुद्धि एक सामान्य शब्द है। मनोविज्ञान के क्षेत्र मे भी इस शब्द का व्यापक प्रयोग किया जाता है परन्तु मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की परिभाषा अनेक प्रकार से की है। स्थूल रूप से ये परिभाषायें निम्नलिखित है—

बुद्धि की परिभाषा

(१) बुद्धि नई परिस्थिति मे अभियोजन करने की योग्यता है—वैल्स के अनुसार, "बुद्धि नई परिस्थिति मे बेहतर काम करने के लिये अपने व्यवहार प्रतिमान को पुनर्गठित करने का गुण है।"[2] विलयन स्टर्न के अनुसार,

2. "Intelligence is the property of recombining our behaviour pattern so as to act better in novel situation." —Wells.

"बुद्धि एक व्यक्ति की नवीन परिस्थिति के साथ अनुकूलन करने की सामर्थ्य है।"[3]

बुद्धि की इस परिभाषा में निम्नलिखित दोष हैं—

(अ) इस परिभाषा से बुद्धि का पूरा स्वरूप स्पष्ट नहीं होता।

(ब) बुद्धि और अभियोजनशीलता एक नहीं हैं। बुद्धि जन्मजात है, अभियोजनशीलता में बहुत कुछ अर्जित है।

(२) **बुद्धि गत अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता है** एबिंगहास और थार्नडाइक के अनुसार, गत अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता ही बुद्धि है। दूसरे शब्दों में, बुद्धि शिक्षण की योग्यता है।

बुद्धि की इस परिभाषा में निम्नलिखित दोष हैं—

(अ) शिक्षण की योग्यता और बुद्धि एक नहीं है, क्योंकि शिक्षण की योग्यता बुद्धि के अलावा अन्य बातों पर भी निर्भर करती है।

(ब) यह परिभाषा बुद्धि के पूरे स्वरूप का वर्णन नहीं करती।

(३) **बुद्धि अमूर्त चिन्तन की योग्यता है**—गैरेट के अनुसार बुद्धि में "चिन्हों के प्रयोग और समझने की आवश्यकता वाली समस्याओं के सुलझाव में आने वाली योग्यतायें"[4] सम्मिलित हैं। टरमन के अनुसार, "अमूर्त चिन्तन की योग्यता ही बुद्धि है।"[5]

बुद्धि की इस परिभाषा में निम्नलिखित दोष हैं—

(अ) अमूर्त चिन्तन ही बुद्धि नहीं है, यह बुद्धि का केवल एक अंग है।

(ब) यह परिभाषा बुद्धि के पूरे स्वरूप का वर्णन नहीं करती।

(४) **बुद्धि अनेक शक्तियों का एक समुदाय है**—वेश्लर के अनुसार "बुद्धि एक व्यक्ति की प्रयोजनपूर्वक कार्य करने, तर्कपूर्वक सोचने और अपने परिवेश से भली प्रकार व्यवहार करने की समुच्चय या भूवीय योग्यता है।"[6] हसवैण्ड ने बुद्धि की विभिन्न शक्तियों को गिनाते हुये कहा है, "बुद्धिमान व्यक्ति गत अनुभव को प्रभावपूर्वक प्रयोग करता है, अधिक लम्बे काल तक अपने ध्यान को लगाये रखने में समर्थ होता है, एक नई और अपरिचित परिस्थिति से अधिक तेजी से और कम असमंजस तथा कम गलतियों के साथ अनुकूलन करता है, अनुक्रिया की परिवर्तनशीलता और विविधता दिखलाता है, दूर के सम्बन्धों को देखने योग्य होता है, अमूर्त चिन्तन कर

---

3. "Intelligence is the ability to adjust oneself to a new situation" —Wm. Stern.

4. "..... as including the abilities demanded in the solution of problems which require the comprehension and use of symbols" —Garrett

5. "Intelligence is the ability to think abstractly" —Terman.

6. "Intelligence is the aggregate of global capacity of an individual to act purposefully, to think rationally and to deal effectively with his environment" —Wechsler.

सकता है, दमन और नियन्त्रण की अधिक सामर्थ्य रखता है और आत्म-आलोचन के योग्य होता है।"[7]

हसबैण्ड का बुद्धिमान व्यक्ति का यह वर्णन बिल्कुल ठीक है परन्तु बुद्धि को इन समस्त योग्यताओं का योग नही माना जा सकता। बुद्धि कोई अकेली शक्ति है या कई शक्तियों की समष्टि है इस विषय मे भी वैज्ञानिकों मे मतभेद है।

वास्तव में बुद्धि के यथार्थ स्वरूप को निश्चित करने के लिये अभी पर्याप्त प्रयोगों की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध मे अभी तक कोई सर्वमान्य सिद्धान्त प्रस्तुत नही किया जा सका है। फिर भी स्थूल रूप से बुद्धि मे सामान्य और विशिष्ट मानसिक योग्यतायें और वे सब तत्व सम्मिलित हैं जिनको बुद्धि परीक्षणो से जाना जाता है।

बुद्धि लब्धि

बुद्धि परीक्षणो से बुद्धि लब्धि आकी जाती है। बुद्धि लब्धि के विचार का सबसे पहले १९१६ मे स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण में प्रयोग किया गया। बुद्धि लब्धि मानसिक आयु (Mental Age or M A) तथा वास्तविक आयु (Chronological Age or C A) के बीच का अनुपात (Ratio) है। वास्तविक आयु जन्म-तिथि से निर्धारित की जाती है। मानसिक आयु परीक्षणो से जानी जाती है। उदाहरण के लिए, यदि किसी परीक्षा में १३ वर्ष के बालकों का औसत मान (Average score) ७५ हो तो जिन-जिन बालको का इस परीक्षण का औसत मान ७५ आयेगा उनकी मानसिक आयु १३ मान ली जायेगी चाहे उनकी वास्तविक आयु कुछ भी हो। १४ वर्ष की वास्तविक आयु के आगे मानसिक आयु नही मानी जाती। समान मानसिक आयु के बालको मे भी अन्तर हो सकता है। शारीरिक आयु बढने के साथ मानसिक आयु नही बढती। मानसिक आयु को भली प्रकार समझने के बाद अब बुद्धि लब्धि को भी अच्छी तरह समझा जा सकता है। बुद्धि लब्धि निकालने का समीकरण निम्नलिखित है—

बुद्धि लब्धि क्या है

$$I.Q.=\frac{MA}{CA}\times 100$$

जैसा कि उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है बुद्धि लब्धि (I. Q or Intelligence Quotient) निकालने के लिए मानसिक आयु को वास्तविक आयु से भाग देकर १०० से गुणा कर दिया जाता है। एक उदाहरण लीजिये, एक बालक की

7. "The intelligent person uses past experience effectively, is able to concentrate and keep his attention focussed for longer periods of time, adjusts in a new and unacustomed situation rapidly and with less confusion and with fewer false moves, shows variability and versatility of response, is able to see distant relationships, can carry on abstract thinking, has a greater capacity of inhibition or delay and is capable of exercising self criticism." —Husband

मानसिक आयु ३ वर्ष और वास्तविक आयु ४ वर्ष है। अब उसकी बुद्धि लब्धि निम्नलिखित समीकरण से स्पष्ट है—

$$\frac{३}{४}\times १०० = ७५$$

वास्तव मे बुद्धि लब्धि से व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता ज्ञात होती है जिसके आधार पर उसके भविष्य के विषय मे उसको निर्देशन दिया जा सकता है। बुद्धि लब्धि की धारणा को ठीक से समझने के लिए उसकी सीमाओ को ध्यान मे रखना आवश्यक है। मुख्य सीमायें निम्नलिखित हैं—

बुद्धि लब्धि की सीमायें

(१) बुद्धि लब्धि किसी व्यक्ति की बुद्धि की मात्रा नही है।

(२) सभी परीक्षणो से एक सी बुद्धि लब्धि नही आती। अत किसी भी परीक्षण से जानी गई बुद्धि लब्धि पूरी तरह विश्वसनीय नही होती।

(३) कोई व्यक्ति बुद्धि शून्य नही होता अत. बुद्धि लब्धि शून्य से नही चलती।

(४) बुद्धि लब्धि कम से कम तीन वर्ष मे बराबर बदलती रहती है।

बुद्धि लब्धि की स्थिरता के विषय मे महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं—

(१) एक ही परीक्षण से बार-बार परीक्षा लेने पर भी व्यक्ति की बुद्धि लब्धि मे अन्तर पड जाता है। यह अन्तर भिन्न-भिन्न परीक्षणो मे भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरण के लिए वैस्लर बैल्व्यू (Wechsler Bellevue) परीक्षण में यह अन्तर ५ प्वाइन्ट तक और स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण मे ४ प्वाइन्ट तक होता है।

बुद्धि लब्धि की स्थिरता

(२) सभी बालको की बुद्धि लब्धि स्थिर नही रहती। कुछ मे बडा भारी परिवर्तन दिखलाई पडता है।

(३) बुद्धि लब्धि वंशानुक्रम और परिवेश दोनो का परिणाम है। अत परिवेश मे परिवर्तन से उसमे परिवर्तन हो सकता है। गैरेट के अनुसार परिवेश अच्छा या बुरा होने पर बुद्धि लब्धि मे १० प्वाइन्ट तक वृद्धि और न्यूनता देखी जा सकती है।

गैरेट (Garrett) ने अपनी पुस्तक 'Great Experiments in Psychology' मे बुद्धि लब्धि के अनुसार व्यक्तियो के वर्गीकरण तथा जनसख्या मे उनके प्रतिशत को निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट किया है :—

बुद्धि-लब्धि के अनुसार वर्गीकरण

बुद्धिलब्धि	वर्गीकरण	प्रतिशत
१४० या ऊपर	अत्यन्त श्रेष्ठ (Very Superior)	१'५
१२०—१३९	श्रेष्ठ (Superior)	११'०
११०—११९	प्रतिभाशाली (Bright)	१८'०

९०—१०९	औसत और सामान्य (Average or Normal)	४८·०
८०—८९	मन्द सामान्य या पिछड़ा हुआ (Dull-normal or Backward)	१४·०
८०—७९	अत्यन्त मन्द (Very dull)	५·०
०—६९	दुर्बल बुद्धि (Feeble-minded)	२·५

इस सम्बन्ध मे किये गये परीक्षणों से मिली अन्य महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित है —

(१) सामाजिक तथा आर्थिक स्तर बढाने के साथ बालको की बुद्धि-लब्धि बढने की सम्भावना होती है और गिरने के साथ बुद्धि लब्धि गिरने की सम्भावना होती है।

(२) ५ वर्ष की आयु से १४ वर्ष को आयु तक बुद्धि-लब्धि अधिकतर स्थिर रहती है।

(३) मानसिक स्तर धीरे-धीरे बढता है।

बुद्धि परीक्षणों के प्रकार

बुद्धि परीक्षणो को उनमे दी हुई क्रियाओ के अनुसार दो वर्गों मे बाटा जा सकता है —

१ शाब्दिक परीक्षण (Verbal Tests)

२ अशाब्दिक परीक्षण (Non-verbal Tests)

शाब्दिक परीक्षण मे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, भाषा का प्रयोग किया जाता है और अशाब्दिक परीक्षण मे ऐसी क्रियायें शामिल होती है, जिनमे भाषा का प्रयोग नही करना पडता। ये दोनो ही प्रकार के परीक्षण व्यक्तियो के लिये भी बनाये गये हैं और समूहो के लिये भी बनाये गये है। अत शाब्दिक और अशाब्दिक दोनो प्रकार के परीक्षणो को व्यक्तिगत और समूहगत दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार अन्त मे बुद्धि परीक्षणो की निम्नलिखित चार वर्गों मे बाँटा जा सकता है :—

१. शाब्दिक व्यक्ति-बुद्धि परीक्षण (Verbal Individual Intelligence Tests)।

२. अशाब्दिक व्यक्ति-बुद्धि परीक्षण (Non-Verbal Individual Intelligence Tests)।

३. शाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षण (Verbal Group Intelligence Tests)।

४. अशाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षण (Non Verbal Group Intelligence Tests)।

शाब्दिक व्यक्ति बुद्धि परीक्षण

शाब्दिक व्यक्ति-बुद्धि परीक्षण, जैसा कि उनके नाम से स्पष्ट है, ऐसे बुद्धि

परीक्षण है जो व्यक्तियो को दिये जाते है अर्थात् जिनमे व्यक्ति की बुद्धि परीक्षा की जाती है। इनमे भाषा का पर्याप्त मात्रा मे प्रयोग होता है। विने साइमन बुद्धि परीक्षण तथा उसके सब अनुशीलन (Revisions) इसी वर्ग मे आते हैं।

टरमन-मॅरिल स्केल का हिन्दी अनुशीलन

उत्तर-प्रदेश की मनोविज्ञानशाला ने टरमन-मॅरिल स्केल का हिन्दी अनुशीलन किया है। इस अनुशीलन मे स्थूल पदार्थो से लेकर कठिन प्रश्नो तक अनेक प्रकार की सामग्री दी गई है। प्रारम्भ की क्रियायें सरल और स्थूल है, जैसे गुटको का पुल या मीनार बनाना अथवा छोटे बड़े लकडी के टुकडो को उनके अनुकूल खाली जगह मे जमाना। इसके साथ-साथ परीक्षण के अन्त मे ऐसे कठिन प्रश्न भी हैं; जिनमे काफी सोचने की जरूरत पडती है। यह परीक्षण विभिन्न आयु के वर्गों मे बाँटा हुआ है। ऊपर के वर्गो मे भाषा का प्रयोग अधिक होता है और नीचे के वर्गो मे कम होता जाता है। उदाहरण के लिये "वर्ष दो" मे निम्न प्रकार की क्रियायें होती हैं—

१. तीन छिद्र वाला आकार पटल।
२. नाम द्वारा वस्तु पहचानना।
३. शरीर के अग पहचानना।
४. गुटको की मीनार बनाना।
५. चित्र देखकर वस्तु का नाम बतलाना।
६. शब्द-क्रम।

उत्तम प्रौढ तीन (Superior Adult Third) मे विभिन्न क्रियायें निम्न-लिखित हैं .—

१. शब्द भण्डार।
२. दिशा बोध।
३. विपरीत सहधर्मता।
४. कागज काटना।
५. तर्क करना।
६. नौ अक दोहराना।

अशाब्दिक व्यक्ति बुद्धि परीक्षण

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि शाब्दिक परीक्षणो मे बालक को भाषा सम्बन्धी योग्यता की अधिक आवश्यकता पडती है। स्पष्ट है कि यह परीक्षण विद्यार्थियो अथवा पढ़े-लिखे लोगो पर ही लागू किया जा सकता है। परन्तु बे पढ़े-लिखे लोगो पर ऐसा परीक्षण नही किया जा सकता जिसमे भाषा के प्रयोग की अधिक आवश्यकता होती है, क्योकि ऐसे परीक्षणो द्वारा बे पढ़े-लिखे लोगो के व्यक्तिगत अन्तर को नही मापा जा सकता। उनमें तो इस प्रकार के परीक्षणो के परिणाम लगभग एक-से ही आयेंगे। अतः बे पढ़े-लिखे लोगो की बुद्धि की परीक्षा करने के लिये

अशाब्दिक व्यक्ति-बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, इन बुद्धि परीक्षणों में भाषा सम्बन्धी योग्यता की कम से कम आवश्यकता पड़ती है और इनमें पुस्तकीय ज्ञान का कम से कम प्रभाव पड़ता है। अवाचिक परीक्षणों का एक उदाहरण क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Test) है।

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण

अवाचिक व्यक्ति बुद्धि-परीक्षण के उदाहरण के रूप मे अब क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण को विस्तार से समझ लेना प्रासंगिक होगा। मन (Munn) के शब्दों मे "क्रिया (Performance) शब्द का प्रयोग आमतौर से ऐसे परीक्षण में किया जाता है जिसमे समझ और भाषा के प्रयोग की कम से कम आवश्यकता होती है।" इस प्रकार क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों में ऐसे पदों (Items) का प्रयोग किया जाता है जिनमे भाषा की नही बल्कि अनुक्रियाओं की आवश्यकता होती है। इनमें बालकों, निरक्षरों, मन्द बुद्धि और विदेशियों की बुद्धि परीक्षा हो सकती है।

पिंटनर-पैटर्सन क्रियात्मक मानदण्ड

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण का एक उदाहरण पिंटनर-पैटर्सन-क्रियात्मक मानदण्ड (Pintner-Paterson-Performanre Scale) है। इनका परीक्षण पिंटनर और पैटर्सन ने सन् १९१७ मे किया। इस मानदण्ड मे १५ प्रकार के परीक्षण हैं जिनमे सात आकार फलक (Form Board), ६ परीक्षण चित्र पूर्ति (Picture Completion), स्मृति विस्तार (*Memory Span*) और अन्य चित्र पहेलियाँ (Picture Puzzles) तथा अनुकरण (Imitation) आदि हैं।

मैरिल पामर ब्लॉक बिल्डिंग परीक्षण

बालकों के लिये उपयुक्त क्रियात्मक परीक्षणों में से अत्यन्त प्रसिद्ध एक परीक्षण मैरिल पामर ब्लॉक बिल्डिंग परीक्षण (Merrill-Palmer Block Building Test) है। इसमे सेगुइन आकार फलक के अतिरिक्त ब्लॉक बिल्डिंग परीक्षण भी सम्मिलित होता है, जैसा कि आगे चित्र मे दिया गया है। इस चित्र मे एक चार वर्ष की बालिका ब्लॉकों की सहायता से एक ऐसा ढाँचा बनाने की चेष्टा कर रही है जैसा कि परीक्षक ने बनाया है।

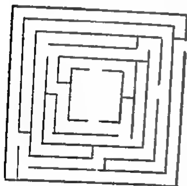
पोर्टियस भूल भुलैया परीक्षण

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण का एक अन्य उदाहरण पोर्टियस भूल-भुलैया परीक्षण (Porteus-maze-tests) है। जिनमे कागज-पेंसिल भूल-भुलैया परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। पोर्टियस ने अपने परीक्षण मे ३ वर्ष से लेकर १४ वर्ष तक की आयु के बालकों के लिये भूल-भुलैया का निर्माण किया। आयु के अनुसार यह भूल-भुलैया बराबर कठिन होती जाती है। इनमें पहले परीक्षक कुछ उदाहरण उपस्थित करता है। फिर विद्यार्थी करता है। विद्यार्थी को पेंसिल उठाये बिना कागज पर बने इन व्यूहों मे प्रवेश द्वार से लेकर निकलने के द्वार तक निशान



चित्र सं० ३—मॅरिल पामर ब्लॉक बिल्डिंग परीक्षण

बनाना होता है। इसमें समय का प्रतिबन्ध नही होता परन्तु गलती करने पर वह कागज हटा लिया जाता है और वैसा ही दूसरा कागज दे दिया जाता है। प्रयोज्य (Subject) को दो बार अवसर दिया जाता है। यदि वह दोनो बार असफल होता है तो यह समझा जाता है कि उसकी बुद्धि उस विशेष अवस्था-स्तर की नही है। १२ और १४ वर्ष की आयु के लिये ४ अवसर दिये जाते हैं। पोर्टियम के परीक्षणो से केवल बुद्धि की ही परीक्षा नही होती बल्कि व्यक्ति के अनुभव पर भी प्रकाश पडता है। इस परीक्षण की विशेषता यह है कि इसमें कुछ ऐसे पहलुओ को भी लिया गया है जो स्टेन्फोर्ड-बिने के परीक्षणो मे भी नही हैं।



चित्र सं० ४—पोर्टियस भूल-भुलैया परीक्षण से मिलता-जुलता एक नमूना

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण का एक सरल उदाहरण आकार फलक परीक्षण (Form Board Test) है। इसमें सॅगुइन (Seguin) और गोडार्ड (Goddard) के परीक्षण उल्लेखनीय है। आकार फलक परीक्षण मे विभिन्न आकारो के ब्लॉक होते हैं और एक फलक होता है जिसमे उन आकारो के अनुरूप छिद्र होते हैं, जैसा कि आगे चित्र मे दिखाया गया है। प्रयोज्य को बोर्ड के इन छेदों मे उनके अनुरूप ब्लॉको को फिट करना पडता है। इसमे सब ब्लॉको को रखने मे लगे हुए समय और की हुई गलतियाँ नोट की जाती हैं तथा इन दोनो से परीक्षण का लब्धांक (Score) निकाला जाता है।

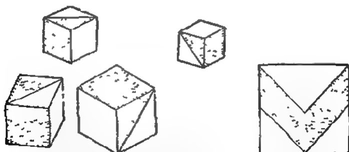
आकार फलक परीक्षण



चित्र सं० ५—सेगुइन आकार फलक

भाटिया की क्रियात्मक परीक्षणों की बैटरी (Bhatia's battery of Performance Tests) का उल्लेख किये बिना क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों का और वाचिक व्यक्ति बुद्धि परीक्षणों का विवरण अपूर्ण होगा। अतः यहाँ उसका भी संक्षिप्त वर्णन किया जायेगा। यह बैटरी उत्तर-प्रदेश की मनोविज्ञानशाला के भूतपूर्व संचालक डा० चन्द्र मोहन भाटिया ने निर्माण की थी। इस बैटरी में निम्नलिखित ५ सहायक परीक्षण हैं—

भाटिया की क्रियात्मक परीक्षणों की बैटरी

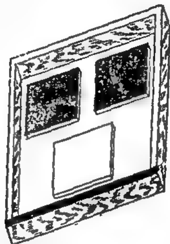


चित्र सं० ६—चार टुकड़ों की सहायता से बनने वाले कोहज के ब्लॉक डिजाइन टैस्ट का एक नमूना

(१) कोहज ब्लॉक डिजाइन टैस्ट—इसमें कोहज द्वारा बनाये गये ब्लॉक डिजाइन टैस्ट के १० विषय बैटरी में शामिल कर लिये गये हैं। हर एक विषय में एक कार्ड होता है जिस पर एक रंगीन डिजाइन बना रहता है। इस डिजाइन को देखकर

प्रयोज्य रंगीन गुटकों की सहायता से वैसा ही डिजाइन बनाता है। ये डिजाइन दसों विषयों में क्रमशः सरल से जटिल होते जाते है।

(२) **एलेक्जेंडर पास ए लौंग टैस्ट**—भाटिया की बैंटरी में एलेक्जेंडर पास ए लौंग टैस्ट भी शामिल कर लिया गया है। इसमें भी कुछ डिजाइन इत्यादि रखते है और इन डिजाइनों को देखकर प्रयोज्य एक खुले बक्स में रंगीन टुकडों को खिसकाकर उसी डिजाइन की तरह रखता है।



चित्र सं० ७—एलेक्जेंडर पास ए लौंग टैस्ट का एक नमूना

(३) **पैटर्न ड्राइंग टैस्ट**—इस टैस्ट को डा० भाटिया ने स्वयं बनाया है। इसमें आठ कारक होते है जिनमें से प्रत्येक पर एक रेखा-आकार बना होता है। प्रयोज्य इस आकार को देखकर विशेष आकार को बनाता है।

(४) **तात्कालिक स्मृति परीक्षण**—इस सहायक परीक्षण में पांच विषय रहते है जिनमें भारतीय ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित चित्रों के क्रमशः २, ४, ६, ८ और १२ टुकड़े होते है। प्रयोज्य के सामने एक बार में एक चित्र के टुकड़े रखे जाते है और वह उन टुकड़ों को जोडकर चित्र बनाता है।

उपरोक्त भाटिया परीक्षण के अलावा उत्तर-प्रदेश की मनोविज्ञानशाला ने ४ से १० वर्ष की आयु के बालकों के लिये एक अन्य क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण की बैंटरी तैयार की है।

वाचिक और अवाचिक दोनों ही प्रकार के व्यक्ति बुद्धि परीक्षणों में कुछ कठिनाइयाँ है। ये कठिनाइयाँ स्थूल रूप से निम्नलिखित है—

व्यक्ति बुद्धि परीक्षणों में कठिनाइयाँ

(१) **समय की कठिनाई**—व्यक्ति बुद्धि परीक्षण में आमतौर से लगभग एक घण्टा या उससे अधिक समय लग जाता है और एक बार में एक व्यक्ति की परीक्षा की जाती है। स्पष्ट है कि इस रफ्तार से बहुत अधिक संख्या

में प्रशिक्षित परीक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी और तब भी सबका काम नहीं हो सकेगा।

(२) **अनुभवी परीक्षकों की आवश्यकता**—व्यक्ति बुद्धि परीक्षण में दूसरी कठिनाई अनुभवी परीक्षकों की आवश्यकता के कारण है। अनुभव न होने पर इस परीक्षण में सही परिणाम नहीं मिल सकता, परन्तु इतनी अधिक संख्या में अनुभवी परीक्षकों का मिलना लगभग असम्भव ही है।

परन्तु उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुये भी कुछ परिस्थितियों में व्यक्तिबुद्धि परीक्षण अनिवार्य हो जाता है। सच तो यह है कि व्यक्ति की बुद्धि की जितनी अधिक सही परीक्षा व्यक्ति बुद्धि परीक्षण में हो सकती है उतनी समूह-बुद्धि परीक्षण से नहीं हो सकती।

शाब्दिक समूह बुद्धि-परीक्षण

व्यक्ति-बुद्धि परीक्षणों की इन्हीं कठिनाइयों के कारण समूह-बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया गया। इस परीक्षण में, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, किसी एक व्यक्ति की नहीं बल्कि समूह की बुद्धि परीक्षा की जाती है। इसमें समूह के सभी व्यक्तियों को एक तरह के निर्देश दिये जाते हैं और सभी को एक प्रकार के काम करने होते हैं। परीक्षणों के परिणाम के आधार पर लब्धांक भी प्रायः मशीन से निकाल लिया जाता है जिसमें न तो अधिक समय की आवश्यकता ही होती है और न कुशल परीक्षकों की।

आर्मी एल्फा और बीटा परीक्षण

समूह-बुद्धि परीक्षणों का उत्तम उदाहरण आर्मी एल्फा और आर्मी बीटा बुद्धि परीक्षण है। इन परीक्षणों का निर्माण प्रथम महायुद्ध में अमेरिका के सैनिकों की जाँच के लिये किया गया है। इन परीक्षणों से कई महत्वपूर्ण बातें मालूम हुईं। उदाहरण के लिये इनसे मन्द बुद्धि, कुशल विशेषज्ञ होने की क्षमता वाले, बड़े अफसर होने की क्षमता वाले तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता वाले लोगों का अलग-अलग पता चल गया।

नौ-सेना और सेना सामान्य वर्गीकरण परीक्षण

इस परीक्षण की सफलता के कारण द्वितीय महायुद्ध में भी युद्ध और नौ-सेना विभागों के सैनिकों के वर्गीकरण के लिये कुछ समूह परीक्षण बनाये गये जिनमें निम्नलिखित दो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

१ नौ-सेना सामान्य वर्गीकरण परीक्षण।

२ सेना सामान्य वर्गीकरण परीक्षण।

क्रूज (Cruze) के अनुमान के अनुसार १९४१ से १९४६ तक सेना सामान्य वर्गीकरण परीक्षण के द्वारा लगभग एक अरब से अधिक व्यक्तियों की जाँच की गई। इस परीक्षण में तीन तरह के परीक्षण-विषय होते हैं—एक तो शब्द-कोष सम्बन्धी समस्यायें, दूसरे, अंकगणित सम्बन्धी समस्यायें तथा तीसरे, ब्लॉक गिनने की समस्यायें।

शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षणों के उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि इसमें समूह के व्यक्तियों की तर्क-शक्ति, कल्पना शक्ति, तुलना और अन्तर करने की शक्ति दिशाओं की बोध तथा अंक सम्बन्धी योग्यता और भाषा सम्बन्धी योग्यता की परीक्षा की जाती है। समूह-परीक्षण में यह आवश्यक है परीक्षक परीक्षण को पूरी तरह जानता हो और उससे सम्बन्धित निर्देशनों को अच्छी तरह समझता हो। अत: बहुधा परीक्षक पहले स्वय अपनी परीक्षा कर लेता है। इसके साथ ही साथ परीक्षक को परीक्षण की परिस्थिति के सम्बन्ध में कुछ यान्त्रिक पहलुओं का ज्ञान होना भी जरूरी है, जैसे प्रयोज्यों को बैठाने का समुचित प्रबन्ध करना, परीक्षण रिक्त पत्रों (Test blanks) को बाटना और परीक्षण सम्बन्धी सामग्री जैसे पेंसिल आदि का प्रबन्ध करना।

शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षणों में कठिनाइयां

इस प्रकार की सावधानियां रखते हुये भी शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण में कुछ ऐसी कठिनाइयां दिखलाई पडती हैं जो कि केवल व्यक्ति बुद्धि परीक्षण में ही दूर की जा सकती हैं। इन कठिनाइयों के कारण समूह बुद्धि परीक्षण व्यक्ति बुद्धि परीक्षण की अपेक्षा कम यथार्थ समझा जाता है। शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण में ये कठिनाइयाँ स्थूल रूप से निम्नलिखित है—

(१) प्रयोज्य की सहयोग सम्बन्धी कठिनाई— शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण में यह निश्चय करना कठिन है कि प्रयोज्य परीक्षण में पूरी तरह सहयोग दे रहा है या नही।

(२) प्रयोज्य के सन्तुलन सम्बन्धी कठिनाई—शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण में दूसरी कठिनाई यह है कि परीक्षण के समय प्रयोज्य के विषय में यह निश्चय करना कठिन है कि उसका शारीरिक और भावात्मक सन्तुलन ठीक है अथवा नहीं।

(३) प्रयोज्य की आसानी सम्बन्धी कठिनाइयां—शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण में यह निश्चय करना कठिन है कि प्रयोज्य आसानी (Ease) महसूस कर रहा है या कठिनाई।

(४) प्रयोज्य द्वारा नकल की सम्भावना—शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण में एक अन्य कठिनाई यह है कि यह निश्चय नही किया जा सकता कि प्रयोज्य ने अपने उत्तर स्वय लिखे हैं अथवा निकट के व्यक्तियों की नकल की है।

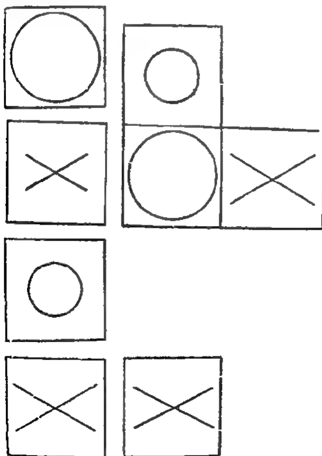
शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षणों में उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुये भी उसके कुछ अपने लाभ हैं जिनके कारण उनका व्यापक प्रयोग किया जाता है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है ये लाभ वही हैं जो व्यक्ति बुद्धि परीक्षण की कठिनाइयाँ हैं।

अशाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, शाब्दिक बुद्धि परीक्षण केवल पढ़े-लिखे लोगों के लिये होते हैं क्योंकि उनमें भाषा सम्बन्धी योग्यता की अधिक आवश्यकता

पडती है। इसीलिये अशाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षणो का निर्माण किया गया है। इनमें भाषा का कम से कम प्रयोग किया जाता है और प्रयोज्य को क्रियायें अधिक करनी पडती हैं। अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण का एक उदाहरण कैटेल का कल्चर फ्री परीक्षण (Culture Free Tests) तथा एन० आई० आई० पी० (N. I I. P.) का परीक्षण है। इन परीक्षणो मे दिये गये विषयो का एक उदाहरण निम्नलिखित है—

दिये हुये चित्र स० ८ मे ३ वर्ग है और चौथे वर्ग की जगह खाली है। इन तीन वर्गो मे कुछ आकार बने हुये है। बाई ओर पाच वर्गों मे भिन्न-भिन्न आकार दिये गये है। दिये हुये चित्र मे चौथे वर्ग की जगह मे पाचो वर्गो मे से एक ऐसा आकार रखना है कि तीसरे वर्ग के आकार का उससे वही सम्बन्ध हो जो पहले वर्ग के आकार का दूसरे वर्ग के आकार मे है।



चित्र स० ८

अशाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षणो के प्रयोज्यो को सरल से सरल ढग का निर्देश समझा दिया जाता है और जहाँ तक हो सकता है करके दिखाया जाता है जिससे कि भाषा की योग्यता की कम से कम आवश्यकता पड़े। समूह-बुद्धि परीक्षणों मे कुछ क्रियात्मक परीक्षण होते हैं जिनमे प्रयोज्य अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार कुछ रेखाये खीचता है, कुछ खाली जगहों को भरता है, कुछ खाली पत्रो को भरता है अथवा कुछ सरल प्रतिक्रियाये करता है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने अशाब्दिक परीक्षणों को बुद्धि का सही मानदण्ड नही माना है। दूसरी ओर, कुछ मनोवैज्ञानिक उनको शाब्दिक परीक्षण से भी बेहतर समझते हैं। उदाहरण के लिये एलेक्जेण्डर ने लिखा है "एक पूर्ण क्रियात्मक बैट्री एक पूर्ण वाचिक बैट्री की अपेक्षा अधिक बेहतर मानदण्ड होगी।"

अशाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षणो के कुछ अन्य उदाहरण निम्नलिखित है :—

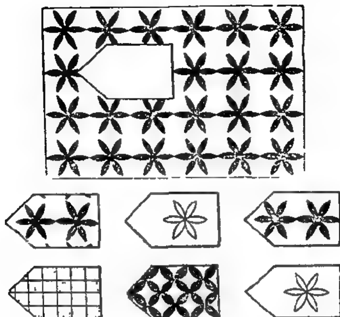
(१) शिकागो अशाब्दिक परीक्षा (Chicago Non-Verbal Examination)—यह परीक्षण छ: वर्ष की आयु के बालको से लेकर प्रौढो तक को दिया जाता है। १३ वर्ष की आयु के बालको पर यह परीक्षण अधिक उपयोगी पाया गया है। इससे अधिक आयु के लोगो की बुद्धि परीक्षा मे यह इतना अधिक उपयोगी नही है। इस परीक्षण मे निम्नलिखित प्रकार के परीक्षण पद देखे जा सकते है—

(i) प्रतीकात्मक अक (Symbol Digits)
(ii) समानताओ का प्रत्यक्षीकरण (Perception of Similarities)
(iii) वस्तुओ का वर्गीकरण (Classification of Objects)
(iv) लकड़ी के ब्लॉकों को गिनना (Block Counting)
(v) कागज आकार पटल (Paper Form Board)
(vi) चित्र विन्यास (Picture Arrangements)
(vii) आकृतियो की तुलना (Matching Figures)

(२) रैवन का प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज (Raven's Progressive Matrices)—इसमे अनेक मैट्रिसेज है जो कि क्रमश. एक दूसरे से अधिक कठिन होती गई हैं। इस प्रकार ये मैट्रिसेज क्रमश. उन्नत होने वाले अर्थात् प्रोग्रेसिव क्रम मे रखी गई हैं। इस परीक्षण के १९५६ के सशोधित सस्करण में पाँच भाग हैं। इनमे से प्रत्येक भाग मे परीक्षण पद हैं। पहले भाग के परीक्षण पद से मिलता-जुलता एक नमूना नीचे दिया गया है।

सच तो यह है कि अशाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षण शाब्दिक परीक्षणो से अधिक नही तो कम महत्वपूर्ण भी नही है। उनकी मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(१) भिन्न-भिन्न व्यक्ति समूहों की तुलना—विभिन्न अशाब्दिक समूह बुद्धि मापाओ तथा सस्कृतियों के व्यक्ति-समूहो की तुलना मे सब परीक्षण की विशेषतायें से पहली बाधा उनका भाषा सम्बन्धी अन्तर है। अशाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षणो से यह कठिनाई दूर की जा सकती है और विभिन्न व्यक्ति समूहो की तुलना की जा सकती है।



चित्र सं ६—रेंवन के प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज से मिलती-जुलती एक मैट्रिक्स

(२) निरक्षर सैनिकों की परीक्षा—शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण निरक्षर अथवा बेपढे लिखे सैनिको की बुद्धि परीक्षा के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण द्वारा बेपढे-लिखे सैनिको की सीखने की योग्यता की परीक्षा की जाती है।

(३) बालकों की बुद्धि परीक्षा—बालको की भाषा सम्बन्धी योग्यता बहुत कम होती है अत. उनके लिये शाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षण नही प्रयोग किये जा सकते। स्पष्ट है कि बालको की बुद्धि परीक्षा के लिये अशाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षण ही काम दे सकता है।

(४) कुछ विशेष वर्गों को परामर्श—अशाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षणो के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कुछ विशेष वर्ग के व्यक्तियो के लिये ये परीक्षण सबसे अधिक उपयुक्त सिद्ध हुये है। अतः इन वर्गो के लोगो को उचित परामर्श देने के लिये इन परीक्षणो के परिणामो से बडी सहायता मिलती है।

(अ) विशेष मानसिक योग्यताओं के परीक्षण
(Tests of Special Abilities)

किस व्यक्ति को कौन-सा व्यवसाय करना चाहिये, किस कर्मचारी को कौन-सा कार्य चुनना चाहिये इत्यादि विभिन्न समस्याओ मे निर्देशन देने के लिये व्यक्ति

मानसिक योग्यताओं के परीक्षण का महत्व

की वृद्धि के साथ-साथ उनकी विशेष मानसिक योग्यताओं का परीक्षणभी आवश्यक है क्योंकि जीवन की समस्याओं में इन विशेष मानसिक योग्यताओं का बड़ा महत्व होता है। अतः विशेष मानसिक योग्यताओं के परीक्षण बनाने का चेष्टा की गई है और अनेक जगह उनका धडल्ले से प्रयोग किया जाता है।

विशेष मानसिक योग्यताओं से सम्बन्धित परीक्षणों के विवरण से पहले यह जानना आवश्यक है कि विशेष मानसिक योग्यताओं का परीक्षण किस आयु में किया जा सकता है। यह प्रश्न इसलिये उठता है क्योंकि बाल्यावस्था में मनुष्यों की विशेष मानसिक योग्यताएं अलग-अलग नहीं दिखाई पड़ती। ये विशेष मानसिक योग्यतायें किस आयु में अलग-अलग दिखाई पड़ने लगती हैं, इस विषय में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है। ड्यू के अनुसार मनुष्य की विशेष मानसिक योग्यतायें ११ वर्ष की आयु में स्पष्ट होने लगती हैं। दूसरी ओर साइरल बर्ट (Cyril Burt) ने मनुष्य की विशेष मानसिक योग्यताए स्पष्ट होने की आयु १३ वर्ष मानी है। सामान्य रूप से ड्यू का मत अधिक माना जाता है। इसलिये शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन भी ११ वर्ष की आयु में ही दिया जाता है।

मानसिक योग्यताओं के परीक्षण की आयु

विशेष मानसिक योग्यताओं के स्पष्ट होने की आयु निश्चय करने के बाद अब एक प्रश्न यह रह जाता है कि विशेष योग्यतायें कितनी हैं। वास्तव में विशेष योग्यताओं की गिनती करना अत्यन्त कठिन है और इस विषय में कोई मत सर्वमान्य नहीं है। सन् १९३८ में थर्सटन और उनके सहयोगियों ने सात मूल मानसिक विशेषताए मानी हैं। थर्सटन इन्हें मूल मानसिक योग्यतायें (Primary Mental Abilities) कहता है। ये मूल मानसिक योग्यताये हैं शब्द बोध (Verbal Ability or 'V'), संख्या सम्बन्धी (Numerical Ability or 'N') तर्क (Reasoning or 'R'), स्मृति (Memory or 'M'), शब्द प्रवाह (Word Fluency or 'W'), और आन्तरिक्षिक योग्यता (Spatial Ability or 'S'), तथा प्रत्यक्ष ज्ञान की गति (Perceptual Speed or 'P')। शिकागो प्राइमरी मेण्टल एबिलिटीज टैस्ट इन्हीं योग्यताओं के आधार पर तैयार किया गया है। इसी के आधार पर बनी एक दूसरी परीक्षण बैट्री अमेरिका के साइकोलोजिकल कारपोरेशन (Psychological Corporation) में इस्तेमाल की जाती है। इस परीक्षण बैट्री में निम्नलिखित ७ परीक्षण हैं :—

विशेष मानसिक योग्यताओं की संख्या

१. वाचक तर्क (Vebal Reasoning),
२. अंक सम्बन्धी योग्यता (Numercial Ability),
३. अमूर्त तर्क (Abstract Reasoning),
४. आन्तरिक्षिक सम्बन्ध (Space Relation),

५. यन्त्रवत् तर्क (Mechanical Reasoning),
६. लेखा सम्बन्धी गति और यथार्थता (Clerical Speed and Accuracy),
७. भाषा सम्बन्धी प्रयोग (Language Uses) ।

अब मानसिक योग्यताओं के कुछ विशेष परीक्षणों का विस्तृत विवरण दिया जायेगा।

(१) थर्सटन के एस० आर० ए० प्राथमिक मानसिक योग्यताओं के परीक्षण (Thurston's S. R. A Tests of Primary Mental Abilities)—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है थर्सटन ने अपने प्रयोगों से ७ मूल मानसिक योग्यताओं का पता लगाया है। इन मूल मानसिक योग्यताओं की धारणा ने निर्देशन के क्षेत्र मे भारी परिवर्तन किया। इस खोज के बाद से निर्देशन मे बुद्धि से भी अधिक विशेष मानसिक योग्यताओं को महत्व दिया जाने लगा क्योंकि समान बौद्धिक स्तर के व्यक्तियो की विशेष मानसिक योग्यताओं मे भारी अन्तर पाया गया। दूसरी ओर एक-सी विशेष मानसिक योग्यतायें होने पर भी बुद्धि मे अन्तर दिखलाई पडा। वास्तव मे पाठ्य विषयो के चुनाव मे या व्यवसाय के चुनाव में बुद्धि से अधिक मानसिक योग्यताओ की परीक्षा आवश्यक है क्योंकि इनमे सफलता बुद्धि से अधिक मानसिक योग्यताओ पर निर्भर है। भिन्न-भिन्न विषयो और भिन्न-भिन्न व्यवसायो मे भिन्न-भिन्न मानसिक योग्यताओ की आवश्यकता पडती है। अत इगलैण्ड और अमेरिका में मानसिक योग्यताओ के अनेक परीक्षण निकाले गये और उनको मिलाकर परीक्षणमालायें बनाई गई। इन परीक्षणमालाओं का शिक्षा और व्यवसाय के क्षेत्र में व्यापक प्रयोग किया जाने लगा।

थर्सटन ने निम्नलिखित तीन वर्गों की आयु के बालको के लिये मानसिक योग्यताओ की तीन परीक्षणमालायें बनाई और उनमे निम्न परीक्षण पद रखे—

(i) पांच से सात वर्ष की आयु के बालकों के लिये—इस वर्ग की परीक्षणमाला मे शाब्दिक योग्यता, पारिमाणिक योग्यता, आन्तरिक्षिक योग्यता, प्रत्यक्ष ज्ञान की गति और गत्यात्मक योग्यता के परीक्षण सम्मिलित हैं।

(ii) सात से ग्यारह वर्ष की आयु के बालकों के लिये—इस वर्ग के लिये बनाई गई परीक्षणमाला मे शाब्दिक योग्यता, सख्या सम्बन्धी योग्यता, आन्तरिक्षिक योग्यता, तर्क और प्रत्यक्ष ज्ञान की गति के परीक्षण लिये गये।

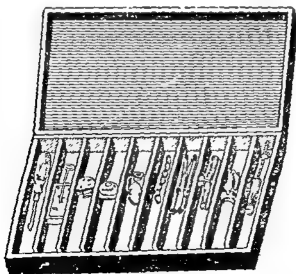
(iii) ग्यारह से सत्रह वर्ष की आयु के बालकों के लिये—इस वर्ग के लिये परीक्षण माला मे शाब्दिक योग्यता, सख्या सम्बन्धी योग्यता, शब्द प्रवाह, आन्तरिक्षिक योग्यता और तर्क-शक्ति के परीक्षण लिये गये।

थर्सटन की बनाई गई परीक्षणमालाओ से विभिन्न आयु के व्यक्तियो की अनेक मानसिक योग्यताओं का पता लगता है, परन्तु इनके अलावा भिन्न-भिन्न मानसिक योग्यता की परीक्षा करने के लिये अलग-अलग परीक्षण भी है। यहां पर इनका विवरण देना भी प्रासगिक होगा।

(२) आन्तरिक्षिक योग्यता परीक्षण (Spatial Ability Tests)—इनमें व्यक्ति में आन्तरिक्षिक अथवा आकार सम्बन्धी योग्यता का पता लगाया जाता है। इसका एक उदाहरण इंगलैण्ड में लन्दन के औद्योगिक मनोविज्ञान की राष्ट्रीय संस्था (National Institute of Industrial Psychology London) का बना हुआ एन० आई० आई० पी० आकार सम्बन्ध परीक्षण (N. I. I. P Form Relation Test) है। इनका वर्णन पीछे किया जा चुका है। उत्तर-प्रदेश की मनोविज्ञानशाला में पिछले कई वर्षों से इसका प्रयोग किया जा रहा है। मनोविज्ञानशाला में भी आन्तरिक्षिक योग्यता का एक परीक्षण बनाया गया है। आन्तरिक्षिक योग्यता के परीक्षणों का एक अन्य उदाहरण मिनेसोटा कागज आकार पटल (Minnesota Paper Form Board) है। इसमें ६४ परीक्षण पद हैं जिनमें ज्यामितीय आकृतियों के विभिन्न भागों को मिलाकर पूरी आकृति बनानी होती है। मिनेसोटा आन्तरिक्षिक सम्बन्ध परीक्षण (Minnesota Spatial Relation Test) में आकार पटल के चार परीक्षण हैं। ये दोनों ही परीक्षण बड़े उपयोगी सिद्ध हुये हैं।

आन्तरिक्षिक योग्यता के परीक्षणों के उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इनमें परीक्षण पद के रूप में लकड़ी के कुछ गुटके होते हैं जिनको उनके अनुरूप खाली जगहों में फिट करना होता है या जिनको एक दूसरे से इस तरह जोड़ना होता है कि जिससे पूरी आकृति बन जाये।

(३) यान्त्रिक योग्यता परीक्षण (Mechanical Ability Test)—इन परीक्षणों में यान्त्रिक योग्यताओं की परीक्षा ली जाती है। इसके लिये कहीं-कहीं

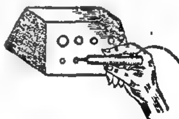


चित्र १०—मिनेसोटा यान्त्रिक परीक्षण का एक बक्स

कागज, पेंसिल और कहीं-कहीं औजारों तथा यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इसका एक उदाहरण मिनेसोटा यान्त्रिक सयोजन परीक्षण (Minnesota Mechanical Assembly Test) है। इसमे तीन बक्स होते हैं, जिनमे कुछ सामान्य यान्त्रिक वस्तुओं के भाग अलग-अलग रखे होते हैं। परीक्षण मे इन भागो को मिलाकर उन वस्तुओ को बनाना होता है। मिनेसोटा यान्त्रिक परीक्षण के एक बक्स का चित्र नीचे दिया गया है। इस परीक्षण के अलावा यान्त्रिक योग्यताओं के परीक्षण में यान्त्रिक सूझ का बेनेट परीक्षण (Bennett Test of Mechanical Comprehension) और यान्त्रिक योग्यता का मैक्क्वैरी परीक्षण (Mac Quarrie Test for Mechanical Ability) प्रसिद्ध है।

(४) गत्यात्मक योग्यता परीक्षण (Motor Dexterity Tests)—इन परीक्षणो मे, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, उगलियो अथवा हाथ की गत्यात्मक योग्यता की परीक्षा की जाती है। इनके उदाहरण हैं, बैनेट हस्त औजार दक्षता परीक्षण, (Bennet Hand Tool Dexterity Test), परड्यू पेगबोर्ड (Purdue Peg Board), स्थिरता परीक्षक (Steadiness Tester) तथा आकोनर चिमटी दक्षता परीक्षण (O' Coner Tweezer Dexterity Test)। यहाँ पर इनमे से पिछले दो का ही वर्णन किया जायेगा।

(क) स्थिरता परीक्षक (Steadiness Tester)—इस यन्त्र से, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, हाथ अथवा उगली की स्थिरता का परीक्षण किया जाता है। इसका चित्र दाईं ओर दिया गया है, जैसा कि चित्र में दिखाई पड़ता है। इसमे एक बक्सनुमा पटल में कई छेद होते है, जो क्रमश. छोटे होते चले जाते है। परीक्षार्थी स्टाइलस कहलाने वाले यन्त्र को इनमे से हर एक छेद मे क्रमश पूरा डालता और निकालता है। यदि ऐसा करने में स्टाइलस पटल को छू देता है तो घण्टी बज जाती है। परीक्षा इस बात की है कि स्टाइलस पटल को छूने न पावे और प्रत्येक छेद में पूरा अन्दर डाल कर निकाल लिया जाये। एक छेद मे स्टाइलस डालने का तीन बार अवसर दिया जाता है। इस परीक्षण मे सफलता से व्यक्ति मे हाथ अथवा उगलियो की स्थिरता ज्ञात होती है जिससे वह बारीक यांत्रिक कामो मे सफल हो सकता है।



चित्र ११ स्थिरता परीक्षक

(ख) आकोनर चिमटी दक्षता परीक्षण (O'Coner Tweezer Dexterity Test)—इस परीक्षण मे एक पटल में दस-दस की पंक्तियो मे सौ बारीक छिद्र बने होते हैं। एक ओर सौ पिनें रखी होती है। परीक्षार्थी चिमटी की सहायता से पिन को पकड कर एक-एक करके इन छेदों मे रखता है। जो व्यक्ति इस कार्य मे जितना कम समय लेता है उसे उतने ही अधिक फलांक दिये जाते है।

(५) लिपिक परीक्षण (Clerical Tests)—इस परीक्षणों द्वारा व्यक्ति मे लिपिक अथवा आलेखा सम्बन्धी योग्यताओ (Clerical Abilities) का परीक्षण किया जाता है। इनमे अकगणित सम्बन्धी प्रश्न, शब्द भण्डार सम्बन्धी परीक्षण, शुद्ध तथा शीघ्र पढने-लिखने तथा गलतियो का पता लगाने और प्रत्यक्ष ज्ञान से सम्बन्धित परीक्षण होते हैं। लिपिक परीक्षण का एक उदाहरण मिनेसोटा लिपिक परीक्षण (Minnesota Clerical Test) है। इसके दो भाग हैं। एक भाग मे संख्याओं के जोडे दिये रहते हैं और सही जोडो पर निशान लगाना होता है जिसमे कि दोनो सख्यायें हो। दूसरे भाग मे नाम के ऐसे जोडो पर सही का निशान लगाना होता है जो एक से है।

(६) कलात्मक अथवा सौंदर्यात्मक योग्यता परीक्षण (Artistic or Aesthetic Ability Test)—इनमें व्यक्ति मे कलात्मक अथवा सौंदर्यात्मक योग्यता की परीक्षा की जाती है। इनका एक उदाहरण मैक एडोरी कला परीक्षण (Mc Adory Art Test) है। सी शोर सगीत योग्यता माप (Sea Shore Measure of Musical Talent) से सगीत सम्बन्धी योग्यता की परीक्षा की जाती है। कलात्मक योग्यता परीक्षण का एक अन्य उत्तम उदाहरण मायर कला निर्णय परीक्षण (Meir Art Judgement Test) है। इस परीक्षण मे चित्रो के १०० जोडे होते हैं। हर एक जोडे मे एक चित्र मौलिक और एक उसकी प्रतिलिपि होती है। परीक्षार्थी को हर एक जोडे मे से मौलिक चित्र और प्रतिलिपि को छाटना होता है। इसमें सफलता उसकी सौदर्यात्मक परख पर निर्भर है, क्योकि मौलिक चित्र मे प्रतिलिपि से अधिक सौंदर्य होता है।

(ब) रुचि के परीक्षण
(Tests of Interest)

कोई व्यक्ति कौन-सा कार्य अच्छी प्रकार स कर सकता है यह उसकी बुद्धि और सामर्थ्य के अतिरिक्त रुचि पर भी बहुत कुछ निर्भर है। किस विद्यार्थी को कौन-सा विषय अथवा पाठ्यक्रम चुनना चाहिये इसमे उसकी बुद्धि और सामर्थ्य के अतिरिक्त रुचि पर भी ध्यान देना पडेगा। इस प्रकार निर्देशन मे, चाहे वह शिक्षा सम्बन्धी हो अथवा व्यावसायिक, व्यक्ति की रुचि के सम्बन्ध मे पता लगा लेना अत्यन्त आवश्यक है। आमतौर से लोग यह समझते है कि रुचि का पता लगाने के लिये किसी व्यक्ति से पूछना ही काफी है। उदाहरण के लिये लोग एक दूसरे से पूछा करते हैं कि आपकी किस विषय मे रुचि है अथवा आपको कौन-सा काम अच्छा लगता है, इत्यादि परन्तु विज्ञान मे इन प्रकार की अटकलबाजियो से काम नही चल सकता। उसमे प्रत्येक बात का यथा-सम्भव यथार्थ निश्चय होना चाहिये। अतः मनोविज्ञान मे रुचि को मापने के अनेक परीक्षण निकाले गये हैं।

रुचि का सबसे सरल परीक्षण और जो कि सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है व्यक्ति से इस विषय मे पूछना है। कर्मचारी अथवा प्रयोज्य को व्यवसायो की एक लम्बी सूची दे दी जाती है और अपनी रुचि के व्यवसाय के आगे निशान लगाने को

कहा जाता है। इस सूची को देखकर मनोवैज्ञानिक यह जान लेता है कि विशेष व्यक्ति की किस विशेष व्यवसाय मे रुचि है। इस प्रकार की सामान्य सूचियों मे उल्लेखनीय सूची मार्गरेट ई० होपौक (Margaret E. Hoppock) की व्यवसायो की चैक लिस्ट (Check List of Occupations) है।

इन सामान्य सूचियों के अलावा कुछ अन्य सूचियाँ इस प्रकार की बनाई जाती हैं जिनमे व्यवसाय के साथ-साथ व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षो के अभिव्यक्त होने का भी अवसर दिया जाता है। इस प्रकार की सूची का एक उदाहरण स्ट्राग का व्यावसायिक रुचि का रिक्त पत्र (Strong's Vocational Interest Blank) है। वयस्क स्त्री-पुरुषो तथा लड़के-लडकियो के लिये अलग-अलग रिक्त पत्र होते हैं। सम्पूर्ण रिक्त पत्र आठ भागो मे विभाजित होता है जिनका क्रम और विवरण निम्नलिखित है :—

स्ट्रांग का व्यावसायिक रुचि पत्र

१. व्यवसाय
२. मनोरंजन
३. स्कूल के विषय
४. विभिन्न कार्य
५. व्यक्तित्व की विशेषतायें
६. कार्य मे रुचि का क्रम
७. दो कार्यों मे रुचि की तुलना
८. वर्तमान योग्यताओं और गुणो का मूल्याकन।

इन रिक्त पत्रो मे यह पता लगाने की कोशिश की जाती है कि पत्र भरने वाले की रुचि किस व्यवसाय मे सफल व्यक्ति की रुचि से मेल खाती है। इस प्रकार स्ट्राग की सूची (Inventory) विभिन्न व्यवसायो मे सफल व्यक्तियो के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है।

व्यावसायिक रुचि परीक्षण का एक अन्य उदाहरण क्यूडर का व्यावसायिक पसन्द लेखा (Cudor-Vocational Preference Record) है। इसमे १६८ पद समूह (Item Groups) हैं जिनमे से हर एक पद समूह मे तीन पद होते हैं। इन तीनो पदो मे से हर एक अलग-अलग व्यवसाय को सूचित करता है। परीक्षार्थी इनमे से सबसे अधिक पसन्द और सबसे कम पसन्द पदो को चुनता है। इससे उसकी रुचियां मालूम पड़ती हैं। यह परीक्षण जाचने मे अत्यन्त सरल है और विशेष रूप से हाई-स्कूल के विद्यार्थियो के लिये उपयोगी है। इस परीक्षण मे वे दस प्रकार की व्यावसायिक रुचिया दी गई हैं जिनका उल्लेख आगे उत्तर-प्रदेश मनोविज्ञान शाला के व्यावसायिक प्रीफ्रेंस रिकार्ड के विवरण मे दिया गया है। इस परीक्षण मे लिखे हुए अंको को लेकर एक पार्श्वचित्र बनाया जाता है। परीक्षार्थी को जिस प्रकार

क्यूडर व्यावसायिक पसन्द लेखा

के व्यवसाय से सम्बन्धित क्षेत्र में सबसे अधिक फलक मिलते है उसमे उसी प्रकार की व्यावसायिक रुचि मानी जाती है।

अन्य रुचि पत्रियां

एक अन्य प्रकार की रुचि मापने की सूची ऐसी होती है जिसमें भिन्न-भिन्न व्यवसायो की प्रक्रिया तथा वास्तविक क्रियाओ का और उनके लिये आवश्यक व्यक्तिगत विशेषताओं और व्यवसाय के वातावरण का वर्णन होता है। इस प्रकार की सूची का उदाहरण डनलप की एकैडेमिक प्रिफ़ेंस रिकार्ड (Academic Preference Record) है। उत्तर प्रदेश की मनोविज्ञानशाला का वोकेशनल प्रिफ़ेंस रिकार्ड (Vocational Preference Record) भी इस वर्ग मे आता है। यह रुचि सूची विभिन्न रुचि क्षेत्रों (Interest areas) का वर्णन करती है। इसमे समस्त व्यवसायो को १० रुचि क्षेत्रो मे बाटा गया है। इन दसो क्षेत्रो में होने वाली क्रियाओं का सूची मे उल्लेख किया जाता है और प्रयोज्य को बहुत पसन्द, साधारण पसन्द तथा ना-पसन्द इन तीन मे से किसी एक पर निशान लगाना पडता है। सब क्रियाओ के निशानो को जोडकर रुचि का एक परिपार्श्व चित्र (Profile) बनाया जाता है जिससे व्यक्ति को उसके भावी व्यवसाय के सम्बन्ध मे निर्देशन दिया जा सकता है। इस रुचि पत्र के विभिन्न रुचि क्षेत्र निम्नलिखित है—

१. घर से बाहर (Out door) के कार्य जैसे मैदानो, जगलो, बाजारो आदि के कार्य,
२. यान्त्रिक (Mechanical) कार्य,
३. हिसाब किताब करने से सम्बन्धित (Computational) कार्य,
४ वैज्ञानिक (Scientific) कार्य,
५ समझाने बुझाने से सम्बन्धित (Persuasive) कार्य,
६ कलात्मक (Artistic) कार्य,
७ साहित्यिक (Literary) कार्य,
८. सगीत सम्बन्धी (Musical) कार्य,
९. समाज सेवा (Social Service) कार्य,
१०. लेखा सम्बन्धी (Clerical) कार्य।

रुचियो को मापने की उपरोक्त सूचियो से निर्देशन मे सहायता मिलती है, परन्तु इन सूचियो मे कुछ अपने दोष और सीमायें है जिनको ध्यान मे रख कर ही इनसे कार्य लेना चाहिए। स्थूल रूप से ये सीमायें निम्नलिखित है—

रुचि पत्रियो की सीमायें

(१) व्यवसाय का विवरण एकत्र करने में कठिनाई—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है। व्यवसाय सम्बन्धी सूचियो मे व्यवसाय का विवरण दिया जाता है, परन्तु वास्तव में किसी भी व्यवसाय का पूरा विवरण अर्थात् उसमे होने वाली समस्त क्रियाओं, उनके लिये आवश्यक योग्यताओ तथा रुचियों आदि का विवरण एकत्रित करना अत्यन्त कठिन है। मनोवैज्ञानिक की तो बात ही क्या,

स्वयं उस व्यवसाय मे काम करने वाले लोग भी उस व्यवसाय का पूरा विवरण नही दे सकते।

(२) उत्तरों की विश्वसनीयता में संदेह—रुचि पत्रिकाओ मे विभिन्न व्यवसाय, रुचि क्षेत्र अथवा कार्य के सम्बन्ध में व्यक्ति की परीक्षा नही ली जाती बल्कि उससे पूछा जाता है। स्पष्ट है कि यह सामग्री पूरी तरह वैज्ञानिक नही हो सकती क्योकि व्यक्तियों के उत्तरों मे पूरा सन्देह है। इसके अतिरिक्त यह जानने का भी कोई साधन नही है कि उत्तर सही दिया गया है अथवा गलत।

(३) रुचि की परिवर्तनशीलता—रुचि पत्रियाँ रुचि के विषय मे जानकारी एकत्रित करती हैं परन्तु रुचि स्वभाव का कोई स्थिर अथवा स्थायी गुण नही है। *रुचियाँ बदलती रहती हैं और इसलिये किसी व्यक्ति की किसी विशेष समय की रुचियो से यह अनुमान नही लगाया जा सकता कि उसको किस व्यवसाय में जाना चाहिये।* हो सकता है कि उसकी सामर्थ्य किसी विशेष व्यवसाय के अनुकूल हो और उसमे जाने के बाद उसकी उसमे रुचि भी हो जाय। वैसे भी किसी व्यक्ति की किसी विशेष कार्य मे रुचि इसलिये होती है क्योकि उसको वह कार्य पूरा करने का अवसर मिलता है अथवा वह उस कार्य को करने वालों के सम्पर्क मे आता है। उदाहरण के लिये जिस व्यक्ति ने कभी उपन्यास नही पढा उसको उपन्यास पढने मे रुचि हो ही कैसे सकती है। किसी व्यक्ति की उपन्यास पढने मे रुचि है या नही यह प्रश्न तो उसी व्यक्ति के बारे मे उठ सकता है जिसने कभी उपन्यास पढा हो। व्यवसाय के सम्बन्ध मे यह देखा गया है कि बहुत-से लोग जो किसी विशेष व्यवसाय को पसन्द नही करते थे उसमें जाने के बाद उसको पसन्द करने लगे। दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी है जो यह कहते थे कि उनको अमुक व्यवसाय मे बडी रुचि है परन्तु जब उनको वह व्यवसाय करने को दिया गया तो उनको पता लगा कि उनकी उसमे रुचि नही थी। अत केवल रुचि पत्र को भरवाने से यह निश्चय नही किया जा सकता कि किस व्यक्ति को किस व्यवसाय मे जाना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति की इस समय किसी विशेष व्यवसाय के अनुकूल रुचि है तो इससे यह गारन्टी नही दी जा सकती कि भविष्य मे भी उसको उस विषय मे रुचि अवश्य रहेगी। दूसरी ओर, *यदि किसी व्यक्ति को इस समय किसी व्यवसाय मे रुचि नही है तो इससे यह कहना* ठीक नही होगा कि भविष्य मे भी उसकी उस विशेष व्यवसाय मे रुचि नही होगी क्योकि रुचि जन्मजात् तो है नही वह अर्जित है। अनेक चीजों मे हमारी रुचि नही होती और बाद मे हो जाती है। अनेक चीजो मे हमारी रुचि होती है और बाद मे नही रहती। अनेक चीजों मे हमारी रुचि नही होती और बाद में दिलाई जाती है। यह एक सामान्य बात है कि कुशल शिक्षक कठिन से कठिन विषय को रुचिकर बना देता है।

(४) रुचि और सफलता में अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है—व्यावसायिक निर्देशन में रुचि पत्रियो के आधार पर विशेष व्यवसाय मे सफलता के विषय मे भविष्यवाणी

करना वैज्ञानिक नही है। किसी व्यक्ति की किसी व्यवसाय मे रुचि होने से ही यह निश्चित नही होता कि उसको उस व्यवसाय मे सफलता अवश्य मिलेगी। उदाहरण के लिये विश्वविद्यालय मे पढने वाले एम० ए० के अधिकतर विद्यार्थी पी० सी० एस० या आई० ए० एस० के पदो मे रुचि रखते है और जोर-शोर से उनकी प्रतियोगिताओ मे भाग लेते हैं। रुचि रखने पर भी इन प्रतियोगिताओ मे कितने सफल होते हैं और इन सफल व्यक्तियों मे भी कितने सफल प्रशासक सिद्ध होते हैं यह देखकर कोई भी व्यवसाय और रुचि को अनिवार्य रूप से सम्बन्धित नही मान सकता। व्यवसाय मे सफलता व्यक्ति की रुचि से अधिक उसकी योग्यताओ पर आधारित है। बहुधा किसी विशेष कार्य में अरुचि का अर्थ उससे भागने की प्रवृत्ति, आलस्य, साहसहीनता आदि चारित्रिक दोष होते हैं। उदाहरण के लिये गाँवो से शहरो मे पढने आने वाले अधिकांश विद्यार्थी खेती करना पसन्द नही करते और सफेदपोश नौकरियो के पीछे भागते हैं अथवा उनमे रुचि दिखलाते हैं, परन्तु क्या इससे यह सिद्ध होता है कि उनकी खेती में अरुचि है? जब उन्होने कभी खेती मे रुचि रखने की कोशिश ही नही की, जब वे हाथ के परिश्रम से भागना चाहते हैं, जब उन्हे शहर का भडकीला वातावरण ही पसन्द है तब उन्हें खेती मे रुचि हो ही कैसे सकती है? परन्तु इस अरुचि के आधार पर यह कहना एकदम गलत होगा कि उनको खेती के व्यवसाय मे नही जाना चाहिये अथवा कि उनको कम सफलता मिलेगी।

(५) **व्यवसायों का वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है**—इन रुचि पत्रियो मे एक अन्य बड़ा दोष यह है कि इनमे व्यवसायो को अलग-अलग तथाकथित वर्गों मे बाँटा गया है, यह नितान्त अवैज्ञानिक है। सच पूछिये तो कोई भी दो व्यवसाय समान नही होते। हर एक व्यवसाय मे उसकी अपनी विशिष्ट क्रियायें, उत्तरदायित्व तथा सफलता के लिये आवश्यक गुण होते हैं और इस प्रकार के स्वतन्त्र व्यवसाय हजारो नही तो सैकडो अवश्य हैं। इतने व्यवसायो की विस्तृत सूची बनाना और उसमे प्रत्येक व्यवसाय का विस्तृत वर्णन देना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है।

रुचि पत्रियो के उपरोक्त दोषो से यह नही समझना चाहिये कि वे बिल्कुल बेकार हैं। वास्तव मे रुचि का विषय ही ऐसा है कि उस पर दिये हुये निर्णय से अधिक यथार्थता की आशा नही की जा सकती। काम चलाऊ रूप से ये रुचि पत्रियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं परन्तु उनसे काम लेते समय उनकी उपरोक्त सीमाओ को अवश्य ध्यान मे रखना चाहिये।

(स) व्यक्तित्व परीक्षण

(Personality Tests)

व्यक्तित्व व्यक्ति का परिवेश से अनुकूलन करने का ढग है। व्यक्ति परिवेश से अनुकूलन करने के लिये व्यवहार करता है। इस व्यवहार मे सकलन होता है। यह सकलन भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे भिन्न-भिन्न मात्रा मे पाया जाता है, परन्तु सामान्य रूप से भी स्वस्थ व्यक्तियो मे किसी न किसी प्रकार का सकलन होता अवश्य है। यह

व्यक्तित्व क्या है?

विशेष सकलन या सकलन का विशिष्ट रूप ही व्यक्तित्व है। यह एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से अलग करता है परन्तु व्यक्तित्व कोई स्थिर अवस्था नही है। वह एक गतिशील समष्टि है जो कि परिवेश के प्रभाव से बराबर बदलती रहती है। व्यक्तित्व व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार, क्रियाओ, गतिविधियों सभी मे दिखलाई पड़ता है।

इस प्रकार व्यक्तित्व व्यक्ति के रूपो, गुणों, प्रवृत्तियों, सामर्थ्यों आदि का सगठन है। वह व्यक्ति और परिवेश की परस्पर अन्तर्क्रिया का परिणाम है। वह उसके विशेष लक्षणों का योगमात्र न होकर उनका विशिष्ट सगठन है। यह व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण है। व्यक्तित्व दूसरों पर प्रभाव डालता है। वह विभिन्न परिस्थितियो मे व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं में अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार व्यक्तित्व मे आन्तरिक और बाहरी दोनो प्रकार की क्रियाओं का सगठन शामिल है। सक्षेप मे, व्यक्तित्व एक व्यक्ति के व्यवहारों, रूपो, रुचियो, सामर्थ्यो, योग्यताओं, अभिरुचियों आदि बाहरी और आन्तरिक लक्षणो के प्रतिमानो का सकलित समग्र रूप है जो कि परिवेश मे उसके विशेष व्यवहारो मे प्रकट होता है।

आजकल निर्देशन, शिक्षा, मानसिक स्वास्थ्य, अपराध निरोध, उद्योग, व्यापार आदि अनेक क्षेत्रों मे मानव व्यक्तित्व को समझने की आवश्यकता पड़ती है। अतः व्यक्तित्व के माप के लिये बहुत-से परीक्षण निकाले गये है।

व्यक्तित्व परीक्षण

व्यक्तित्व का माप मुख्य रूप से दो तरह से किया जाता है। कुछ परीक्षणो मे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समझने की चेष्टा की जाती है। इनमें मन की अचेतन प्रवृत्तियाँ भी आ जाती हैं। कुछ अन्य परीक्षणों मे व्यक्तित्व के विभिन्न गुणो, विशेषताओ या तत्वो को अलग-अलग मापा जाता है। यद्यपि इन दोनों विधियो के अपने-अपने गुण दोष है परन्तु पहली विधि दूसरी विधि से अपेक्षाकृत अधिक उत्तम है क्योंकि व्यक्तित्व एक समष्टि है और उसको समष्टि रूप मे ही समझने की चेष्टा की जानी चाहिये। यहाँ व्यक्तित्व परीक्षण की मुख्य विधियो का उल्लेख किया जायेगा। ये मुख्य विधियाँ निम्नलिखित हैं—

१. जीवन वृत्त विधि (Case History Method)
२. साक्षात्कार विधि (Interview Method)
३. प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)
४. निर्माण परीक्षण विधियाँ (Performance Tests)
५. पेंसिल कागज विधियाँ (Pencil and Paper Devices)
६. व्यक्तित्व परिसूचियाँ (Personality Interventories)
७. मूल्यांकन विधि (Rating Scale Method)
८. परिस्थिति परीक्षण (Situation Tests)
९. मनोविश्लेषणात्मक विधियाँ (Psychoanalytic Methods)
१०. प्रक्षेपी प्रविधियाँ (Projective Techniques)

(१) जीवन वृत्त विधि

मनोविज्ञान में व्यक्तित्व के गुण-दोष अथवा असामान्यताओं के अध्ययन में जीवन वृत्त विधि से काम लिया जाता है। इसमें मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की परिस्थिति का निरीक्षण करता है। इसमें व्यक्ति के परिवार, स्कूल या दफ्तर तथा उसके नाते-रिश्तेदार और दोस्त आदि सभी के बारे में सूचनायें एकत्रित करना जरूरी हो जाता है।

जीवन वृत्त विधि क्या है

इनसे व्यक्ति के जीवन वृत्त (Case History) का अध्ययन किया जाता है। इस तमाम अध्ययन में विश्लेषण द्वारा यह पता लगाने की कोशिश की जाती है कि व्यक्ति के असामान्य व्यवहार या मानसिक व्याधि का मूल कारण क्या है? यह विधि विशेषतया मनोवैज्ञानिक रोगो के उपचार मे प्रयोग की जाती है। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि एक मनोवैज्ञानिक के पास एक ऐसा बालक आता है जिसका आचरण असामान्य और बिगडा हुआ है। बालक उद्दण्ड, अशिष्ट तथा लडाकू है। वह धमकियो और सजा की परवाह नही करता और कई बार घर से भाग भी चुका है। ऐसी दशा मे मनोवैज्ञानिक उस बालक का अनेक प्रकार से निरीक्षण करता है। वह उसको एक अलग कमरे में ले जाकर उससे सहानुभूतिपूर्वक बहुत-सी बातें जानने की कोशिश करता है। वह उसके प्रति उसके माता-पिता तथा परिवार के अन्य व्यक्तियो के व्यवहार का पता लगाता है। वह उसके स्कूल की परिस्थिति का पता लगाता है और मालूम करता है कि उसके दोस्त कौन-कौन और कैसे हैं तथा आवश्यकता पडने पर उनसे पूछताछ भी करता है। सक्षेप में, वह बालक से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति के उसके प्रति व्यवहार की तथा उसकी प्रत्येक परिस्थिति की पूरी छान-बीन करके तथा उससे बातचीत करके और अन्य प्रकार से यथासम्भव उसकी परीक्षा करके उसके उद्दण्ड और अशिष्ट व्यवहार के कारणो का पता लगाने की कोशिश करता है।

जीवन वृत्त विधि से व्यक्तियो के असामान्य व्यवहार के कारणो का पता लगाने मे सहायता मिलती है, परन्तु फिर भी वैज्ञानिक दृष्टि से इस पद्धति मे अनेक दोष है। सबसे बडा दोष तो यह है कि जीवन वृत्त का सही रूप मे सग्रह करना बडा कठिन है। यदि व्यक्ति से स्वय पूछा जाय तो वह निश्चय ही बहुत कुछ कल्पना-प्रधान और गलत बातें बतला सकता है। उसके सम्बन्धी भी सदैव ठीक बात नही बतलाते। उस व्यक्ति के प्रति उनके रुख के अनुसार वे बातो को बढा-चढाकर या घटा कर बतला सकते है। इस प्रकार एकत्रित किये हुये जीवन वृत्त के आधार पर व्यवहार के कारणों का निश्चय करना कभी भी मनोवैज्ञानिक नही कहा जा सकता, चाहे व्यवहार मे यह निदान कभी-कभी सही क्यो न बैठता हो।

जीवन वृत्त विधि के दोष

वास्तव में जीवन वृत्त विधि में उपरोक्त दोष ही उसकी कठिनाइयाँ है। सबसे बडी कठिनाई यह है कि सही रूप मे जीवन वृत्त कैसे एकत्रित किया जाय ? दूसरे यह आवश्यक नही है कि एक ही घटना अथवा बात का विभिन्न मनोवैज्ञानिक एक अर्थ लगायें अथवा उसे समान महत्व दें। उदाहरण के लिये फ्रायड (Freud) के अनुयायी कुछ मनोविश्लेषणवादी जीवन वृत्त मे यौन सम्बन्धी घटनाओ पर जोर देते हैं।

जीवन वृत्त विधि की कठिनाइयां

वास्तव मे, जीवन वृत्त विधि की सफलता बहुत कुछ उसके प्रयोग करने वाले मनोवैज्ञानिक की निष्पक्षता, मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि और सूझ-बूझ पर निर्भर है, क्योकि यह कोई यथार्थ (Exact) विधि नही है। इस प्रकार के योग्य मनोवैज्ञानिको ने उसका बडी सफलता से प्रयोग किया है। इसके अलावा जिन कारणो का पता लगाने का कोई साधन न हो, व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी उन कारणो के पता लगाने के लिये जीवन वृत्त विधि के अतिरिक्त अन्य चारा ही क्या है ? अतः समस्त सीमाओ और दोषो के होने हुये भी जीवन वृत्त विधि का मनोविज्ञान, विशेषतया नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology) मे महत्वपूर्ण स्थान है।

[२] साक्षात्कार विधि

व्यक्तित्व की परीक्षा के लिये सबसे अधिक सामान्य विधि साक्षात्कार विधि है। सरकारी नौकरियो मे चुनाव के लिये इस विधि का सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है। इसमे परीक्षक और परीक्षार्थी सामने सामने बैठते हैं और परीक्षार्थी परीक्षक के प्रश्नो का उत्तर देता है। परीक्षार्थी के लिये दिए हुए उत्तरो के अतिरिक्त उसके हाव-भाव, तौर-तरीके तथा अन्य बातो से भी उसके व्यक्तित्व का पता चलता है। जीवन वृत्त विधि के समान साक्षात्कार विधि मे भी बडे कुशल परीक्षको की आवश्यकता है। कुशल परीक्षक ऐसे प्रश्न पूछता है कि जिसमे मतलब की बात निकल आये और परीक्षार्थी नि सकोच अपने को अभिव्यक्त कर सके। सच पूछिये तो साक्षात्कार विधि जितनी परीक्षार्थी पर निर्भर है उतनी ही परीक्षक पर भी निर्भर है।

[३] प्रश्नावली विधि

व्यक्तित्व के सामाजिक गुणो, जैसे सामाजिकता, आत्म-प्रकाशन आदि की परीक्षा के लिये मनोविज्ञान मे प्रश्नावलियो का बडे पैमाने पर प्रयोग किया जाता है। प्रश्नावली मे, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, कुछ ऐसे चुने हुए प्रश्नो की सूची होती है जिनके उत्तरो से व्यक्तित्व की इन विशेषताओं पर प्रभाव पडता है। इन प्रश्नो के सामने 'हाँ' या 'न' लिखा रहता है जिनमे से परीक्षार्थी गलत शब्द को काट देता है अथवा सही शब्द के आगे निशान लगा देता है। प्रश्नावलियों से व्यक्तित्व के विभिन्न लक्षणो जैसे आत्म-विश्वास, सामाजिकता, अन्तर्मुखता अथवा बहिर्मुखता प्रभुत्व वृत्ति अथवा आधीनता की वृत्ति आदि की जानकारी हो जाती है।

इस प्रकार प्रश्नावलियां अनेक प्रकार की होती हैं। उनमे से मुख्य चार निम्नलिखित हैं :—

प्रश्नावलियों के प्रकार (१) प्रतिबन्धित प्रश्नावली (Closed Questionnaire)—इस प्रश्नावली मे प्रश्नों का उत्तर अधिकतर 'हां' या 'नही' मे दिया जाता है। उदाहरण के लिये नीचे लिखे कुछ प्रश्न देखिये :—

(i) क्या आपको सार्वजनिक उत्सव मे भाग लेना पसन्द है ? हाँ/नही
(ii) क्या आप अपने मित्रो की सख्या बढाना चाहते हैं ? हाँ/नहीं
(iii) क्या आप मेहमानो के आने से खुश होते हैं ? हाँ/नही
(iv) क्या आपको अकेले रहना अच्छा लगता है ? हाँ/नही

(२) खुली प्रश्नावली (Open Questionnaire)—इस प्रश्नावली मे, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, उत्तर हा या नही मे न देकर पूरा लिखना पडता है, उदाहरण के लिये—

(अ) भारत पर चीन के आक्रमण के सम्बन्ध मे आपके क्या विचार हैं ?

(ब) वर्तमान सकट की स्थिति में भारत को स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये क्या करना चाहिये ?

(३) चित्रित प्रश्नावली (Pictorial Questionnaire)—जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इसमे दिये हुये चित्रों पर निशान लगाकर प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है।

(४) मिश्रित प्रश्नावली (Mixed Questionnaire)—जैसा कि इसके नाम स स्पष्ट है, इसमे उपरोक्त तीनो प्रकार के प्रश्नो का मिश्रण होता है।

प्रश्नावली विधि मे कुछ कठिनाइयां हैं। उसकी सीमायें निम्नलिखित हैं—

(१) बहुधा परीक्षार्थी सही बात को छिपा लेते हैं और गलत उत्तर देते हैं।

प्रश्नावली विधि की सीमायें (२) कभी-कभी प्रश्न इस प्रकार के होते है कि उनका अर्थ परीक्षक कुछ और लगाता है और परीक्षार्थी कुछ और।

(३) आमतौर से परीक्षार्थी अधिक मनन किये बिना ही प्रश्नो के उत्तर लिख देते हैं जिससे गलती होने की सम्भावना रह जाती है।

उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुये भी प्रश्नावली विधि बडी ही उपयोगी सिद्ध हुई है। आलपोर्ट तथा मिनेसोटा आदि ने ऐसी प्रश्नावलियां बनाई हैं जिनसे व्यक्तित्व के किसी एक शील गुण की जाँच हो सके। इस विधि मे

प्रश्नावली विधि का उपयोग विभिन्न परीक्षार्थियों द्वारा एक प्रश्न के अनेक उत्तर दिये जाने से तुलनात्मक अध्ययन मे बडी सहायता मिलती है। इन प्रश्नावलियो पर आधारित निर्णय तुलनात्मक के साथ-साथ संख्यात्मक भी होते हैं। प्रश्नावलियो से अनेक व्यक्तियों का परीक्षण एक साथ हो जाता है और इस प्रकार बहुत-सा समय बच जाता है।

(४) निर्माण परीक्षण विधियां

निर्माण परीक्षण विधि मे (May) और हार्टशोर्न (Hartshorne) ने चलाई। इस विधि मे परीक्षार्थी को खास तरह का काम देकर उसके व्यक्तित्व के शील गुण की परीक्षा की जाती है। उदाहरण के लिये, कुछ बालकों की ईमानदारी की जाच करने के लिये एक परीक्षण मे ८, १० वजनो को, जिनमे बहुत कम अन्तर था, एक जगह रख दिया गया। हर एक वजन के नीचे उसकी तौल लिख दी गई। अब बालको को उन वजनो मे तौल के क्रम से रखने को कहा गया। ईमानदार बालकों को ऐसा करने मे बड़ी कठिनाई हुई और बेईमान बालको ने उनके नीचे के वजनो को पढकर वजनो को झटपट क्रमानुसार लगा दिया। कक्षा मे विद्यार्थियो की परीक्षा करने के लिये एक बहुत ही सरल विधि इस तरह हो सकती है, विद्यार्थियो को इमला बोल दिया जाय और उनकी कापियां इकट्ठी कर ली जायें तथा कापियो मे निशान लगाये बिना गुप्त रूप से हर एक की गलतियां नोट करली जायें। इसके बाद कापियां उनको वापस कर दी जायें और उनको स्वय अपनी गलतियो को काट कर नम्बर देने को कहा जाय। इमले को बोर्ड पर लिख दिया जाय। ईमानदार बालक अपनी गलतियो काटेंगे और बेईमान बालक उन्हे काटने की जगह चुपचाप ठीक कर लेंगे। गुप्त रूप से नोट की गई गलतियो से मिलाकर कक्षा के विद्यार्थियो मे ईमानदारी की परीक्षा की जा सकती है।

(५) पेंसिल कागज विधियां

व्यक्तित्व परीक्षण की कुछ सरल विधिया पेन्सिल कागज विधियां कही जा सकती हैं, क्योकि इनमे पेन्सिल-कागज का प्रयोग किया जाता है। इनमे प्रयोज्य दिये हुये प्रश्न-पत्र मे प्रश्नो का उत्तर देने के लिये कागज पर निशान लगाता है। इस प्रकार के एक *कागज-पेन्सिल परीक्षण का प्रसिद्ध उदाहरण मिनेसोटा नाना स्थितिक* व्यक्तित्व सूची (Minnesota Multiphasic Personality Inventory) है। इस मे ५५० विषय (Items) होते हैं। इनसे व्यक्तित्व मे हिस्टीरिया, मानसिक उन्माद आदि की ओर झुकाव का पता चलता है। यह परीक्षण वैयक्तिक और सामूहिक दोनों ही प्रकार का होता है। उसका विवरण व्यक्तित्व परिसूचियो मे दिया गया है।

(६) व्यक्तित्व परिसूचियां

आजकल इगलैंड और अमरीका मे व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने के लिये नाना प्रकार की व्यक्तित्व परिसूचियो को प्रयोग किया जाता है। कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तित्व परिसूचियां निम्नलिखित हैं :—

१. मिनेसोटा बहुविध व्यक्तित्व परिसूची (Minnesota Multiphasic Personality Inventory),

२. बर्नरायटर की व्यक्तित्व परिसूची (Bernreuter Personality Inventory),
३. बेल की समायोजन परिसूची (Bell's Adjustment Inventory),
४. आलपोर्ट का ए० एस० प्रतिक्रिया अध्ययन (Allport's A. S. Reaction Study),
५. फ्रायड हेडब्रेडर का अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी परीक्षण (Freud Heidbreder's Introversion-Extroversion Test),
६. कौर्नल सूचक (Cornell Index),
७. वुडवर्थ का व्यक्तित्व तथ्य पत्रक (Woodworth's Personal Data Sheet)

व्यक्तित्व परिसूची में बहुत से पद होते हैं जो कि व्यक्तित्व के किसी पहलू से सम्बन्धित होते हैं। परीक्षार्थी इन कथनों के आगे 'हाँ' या 'नहीं' अथवा सही (√) का निशान लगाकर अपने विषय में सूचना देता है। यदि परिसूची विधिवत् और प्रामाणिक हो तो उससे व्यक्तित्व के विषय में पर्याप्त रूप से विश्वसनीय ज्ञान मिलता है। व्यक्तित्व परिसूचियाँ सामूहिक रूप से एक समय में बहुत से लोगों को दी जा सकती हैं। इस प्रकार इनमें समय और खर्च की काफी बचत होती है परन्तु फिर इनमें निम्नलिखित दोष भी हैं —

१. इनसे व्यक्तित्व के अचेतन पहलू के विषय में जानकारी नहीं मिल सकती।

२. यदि कोई व्यक्ति जान-बूझकर गलत उत्तर देना चाहे तो गलत सूचना मिल सकती है।

३. यदि कोई व्यक्ति कथनों को न समझे तो इसका कोई निराकरण नहीं है।

यहाँ पर व्यक्तित्व परिसूचियों के उदाहरण-स्वरूप मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद में प्रयोग होने वाली परिसूची और मिनेसोटा नाना स्थितिक व्यक्तित्व परिसूची का वर्णन किया जायगा।

मनोविज्ञानशाला उत्तर प्रदेश इलाहाबाद द्वारा प्रयोग होने वाली व्यक्तित्व परिसूची निम्नलिखित चार खण्डों में विभाजित है :—

मनोविज्ञानशाला की व्यक्तित्व परिसूची
१. तुम्हारा घर तथा परिवार।
२. तुम्हारा स्कूल।
३. तुम और दूसरे लोग।
४. तुम्हारा स्वास्थ्य तथा अन्य समस्यायें।

इन खण्डों में क्रमशः ३०, ४०, ३५ और ४० समस्यायें हैं। इस प्रकार कुल परिसूची में १४५ समस्यायें हैं। परिसूची के परीक्षण पद समस्याओं के रूप में रखे गये हैं। परीक्षार्थी अपने ऊपर लागू होने वाली समस्या पर सही का निशान लगाता

है। निम्नलिखित उदाहरण देखिये और अपने ऊपर लागू होने वाली समस्या पर सही का निशान लगाइये :—

(अ) खण्ड एक—तुम्हारा घर तथा परिवार—

१. मेरे माता-पिता मुझ पर बडा कठोर नियन्त्रण रखते है।

२. मुझे माता-पिता से अलग रहना बिल्कुल अच्छा नही लगता।

३. मेरे विचार बहुत-सी बातो मे मेरे घर वालो से भिन्न रहते हैं।

(ब) खण्ड दो—तुम्हारा स्कूल—

१. टीम का कप्तान न बनाये जाने पर मुझे खेल मे आनन्द नही आता।

२. मैं चाहते हुये भी कक्षा मे सवाल नही पूछ पाता।

३. अन्य छात्रो को परेशान देखकर मैं स्वय दु.खी हो जाता हूँ।

(स) खण्ड चार—तुम और दूसरे लोग—

१. मुझे बहुत शीघ्र क्रोध आ जाता है।

२. मेरे धर्म और जाति को अन्य लोग बुरा समझते है।

३. मैं आसानी से मित्र नही बना पाता।

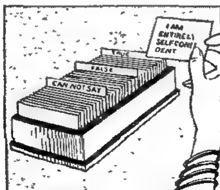
(द) खण्ड चार—तुम्हारा स्वास्थ्य और अन्य समस्यायें—

१. मैं चाहता हू कि मेरा शरीर सुन्दर तथा सुडौल बने।

२. मैं बहुत शीघ्र थक जाता हूँ।

३. मुझे ठीक से भूख नही लगती।

व्यक्तित्व परिसूची की समस्याओं की व्याख्या मरे द्वारा प्रस्तुत मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के रूप मे की जाती है। इस परिसूची से जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे व्यक्ति की समस्याये और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताये ज्ञात होती है।



चित्र सं० १२—मिनेसोटा नाना स्थितिक व्यक्तित्व परिसूची

इस विधि से व्यक्ति की परीक्षा करने मे उसको ५५० कार्ड दिये जाते हैं जिनमे से प्रत्येक में एक प्रश्न होता है। बक्स के पीछे तीन कार्ड होते हैं, जिनमे

क्रमशः True (सत्य), False (असत्य) और Cannot Say (कह नही सकता) लिखा रहता है। प्रयोज्य को दिये हुये ५५० कार्डों मे से प्रत्येक मे लिखे वाक्य को पढकर और अपने पर लागू करके यह निश्चय करना होता है कि वह सत्य है, असत्य है अथवा उसके विषय में कुछ निश्चित नही कहा जा सकता। इनमे से जो बात होती है उसी के कार्ड के पीछे वह उस कार्ड को रख देता है।

मिनेसोटा नाना स्थितिक व्यक्तित्व सूची

इस सूची के विषय विविध प्रकार के होते है। कुछ उन कामों का वर्णन करते हैं जो व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियो मे करता है। कुछ शारीरिक कठिनाइयो, भयो तथा भावनाओ आदि से सम्बन्धित होते हैं। इनमें बहुत से विषय इस प्रकार के होते हैं जिनमे अपने को अच्छा दिखलाने के लिये ईमानदारी से उत्तर न देने वालो के लिये धोखा देने का अवसर होता है। उदाहरण के लिये एक कार्ड मे लिखा है "I sometimes put off until tomorrow what I should do today" अर्थात् मैं कभी-कभी आज के काम को कल पर छोड देता हू। अपने को अच्छा दिखलाने का प्रयास करने वाला व्यक्ति इस बात के उसके विषय मे सत्य होने पर भी इसको 'असत्य' वाले कार्ड के पीछे रख देगा। इस प्रकार के विषयों मे अधिकतर का 'असत्य' वाले कार्ड के पीछे रक्खा जाना इस बात का सूचक है कि व्यक्ति अपने को अच्छा दिखलाने की कोशिश कर रहा है और उसने सही जवाब नही दिये है। 'कह नही सकता' वाले कार्ड के पीछे रखे गये कार्ड अक्सर यह दिखलाते है कि प्रयोज्य विषयो के कार्डो मे लिखी बातो को कहां तक नही समझा है अथवा वह उनका उत्तर देने मे कहाँ तक लापरवाह है। इस परीक्षण मे सामूहिक औसत (Group norms) की तुलना मे व्यक्ति के अको की परीक्षा करके उसके व्यक्तित्व के विषय में मूल्याकन (Rating) किया जाता है।

(७) मूल्यांकन विधि

व्यक्तित्व को मापने की एक अन्य विधि मूल्याकन विधि (Rating method) है। इस विधि मे स्थूल रूप से दो तरह से काम किया जाता है। एक तो प्रयोज्य से कुछ ऐसे सवालो का जवाब देने को कहा जाता है जो कि व्यक्तित्व के कुछ गुणो से सम्बन्धित हो। प्रयोज्य जिस तरह के जवाब देता है अथवा दिये हुये जवाबो मे जिनको चुनता है उनसे व्यक्तित्व का पता चलता है। मूल्याकन की दूसरी विधि प्रयोज्य को वास्तविक परिस्थितियो मे रखकर उसके व्यवहारो और प्रतिक्रियाओ का अध्ययन करना है। उदाहरण के लिये किसी व्यक्ति मे कार्यपटुता, अध्यवसाय, मेहनत आदि विभिन्न गुणो की जांच करने के लिए उसको कई काम दिये जा सकते हैं।

मूल्याकन विधि मे मुख्य रूप से निम्नलिखित दो प्रकार के निर्धारण मान-दण्ड होते हैं :—

(१) सापेक्ष निर्धारण मानदण्ड (Relative Rating Scales)—इनमे जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, बहुत से व्यक्तियो को एक दूसरे के सापेक्ष सम्बन्ध मे

श्रेष्ठता क्रम मे रखा जाता है। इस विधि को थोडे ही लोगों मे प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिये यदि दस व्यक्तियों मे मिलनसारिता (Sociability) का मूल्याकन करना है तो उसमे सबसे अधिक मिलनसार व्यक्ति को पहला और सबसे कम मिलनसार व्यक्ति को दसवां स्थान दिया जायेगा और इन दोनो के बीच मे बाकी लोगो को रखा जायेगा।

(२) निरपेक्ष निर्धारण मानदण्ड (Absolute Rating Scales)—जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, इनमे व्यक्तियो की तुलना नही की जाती बल्कि उन्हे पूर्व निश्चित विशेषताओ की निरपेक्ष कोटियो मे रखा जाता है। उदाहरण के लिये यदि कुछ व्यक्तियो मे नम्रता का मूल्याकन करना है तो उनको अत्यधिक, अधिक, मध्यम, न्यून, अतिन्यून, इन पाच अथवा इनसे अधिक कोटियो मे रखा जा सकता है। इस तरह की कोटियाँ तीन, पाच, सात, दस अथवा पन्द्रह हो सकती हैं। विशेषताओ का मूल्याकन कुछ व्यक्ति उदारता से और कुछ कठोरता से करते है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये सामान्य वितरण (Normal Distribution) का ध्यान रखा जाता है। उदाहरण के लिए सौ के पाँच कोटियो मे विभाजित होने पर सामान्य वितरण क्रमश १०, २०, ४०, २० और १० होगा, क्योकि मध्यम प्रकार के व्यक्तियो की सख्या सबसे अधिक होती है।

यूं तो मूल्याकन विधि बडी ही सरल मालूम पडती है परन्तु इस विधि का प्रयोग करने के लिये बडे कुशल परीक्षक की जरूरत है। स्थूल रूप से इस विधि मे मुख्य कठिनाइयां निम्नलिखित है—

१ इस विधि मे परीक्षक मे अत्यधिक कुशलता और योग्यता की जरूरत है।

२. इस विधि मे पक्षपात की सम्भावना बहुत अधिक है क्योकि यह एक सामान्य बात है कि अधिकतर लोग अपने प्रियजनो की बुराई नही देखते।

३. इस विधि मे एक अन्य कठिनाई यह है कि किसी व्यक्ति मे एक विशेष गुण अथवा अवगुण दिखाई देने पर हम उसके चरित्र को अच्छा या बुरा मान लेते है और उसके चरित्र के अन्य पहलुओ मे भी गुण अथवा दोष देखने लगते है।

४. इस विधि मे चौथी कठिनाई यह है कि किसी भी शील गुण की मात्रा को आंकना बडा कठिन है, प्राय इसमे गलती हो जाती है।

उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुये भी मूल्याकन विधि का सामाजिक और औद्योगिक क्षेत्र मे काफी प्रयोग किया जाता है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, परीक्षक मे आवश्यक गुण होने पर मूल्यांकन को बहुत कुछ यथार्थ बनाया जा सकता है।

(८) परिस्थिति परीक्षण

परिस्थिति परीक्षण मे, जैसा कि उसके नाम से प्रगट है, व्यक्ति को कुछ विशेष परिस्थितियो मे रखकर उसके व्यक्तित्व के गुण दोषो की जांच की जाती है।

वास्तव मे यह विधि निर्माण परीक्षण जैसी ही है, परन्तु अन्तर केवल यह है कि इसमें व्यक्ति को एक परिस्थिति मे रखा जाता है और निर्माण परीक्षण मे उसको कुछ कार्य करने को दिये जाते हैं। बहुधा मनोवैज्ञानिको ने इन दोनो विधियो को एक ही मान लिया है, अतः इसका वर्णन अनावश्यक है।

(६) मनोविश्लेषणात्मक विधि

व्यक्तित्व की परीक्षा करने के लिये मनोविश्लेषणात्मक विधि मे दो तरह के परीक्षण अधिक प्रचलित है—१. मुक्त साहचर्य (Free Association) और २. स्वप्न विश्लेषण (Dream Analysis)। इन दोनो परीक्षणो की सहायता से मनोविश्लेषक व्यक्ति की अचेतन विशेषताओ को मालूम करता है। स्वप्न विश्लेषण मे प्रयोज्य अपने स्वप्न का वर्णन करता है और बुद्धि का इस्तेमाल किये बिना अर्थात् मन को खुला छोड़कर स्वप्न मे दिखाई दी हुई चीजों, जीवो तथा क्रियाओं के साथ स्वतन्त्र साहचर्य करता है। बुद्धि का अकुश न होने के कारण इस साहचर्य से अक्सर उसके अचेतन मन की सही बात प्रगट हो जाती है। मनोविश्लेषण विधि विशेष रूप से असामान्य (Abnormal) व्यक्तियो के व्यक्तित्व की विशेषताओं, मानसिक ग्रन्थियों (Mental Complexes) और मानसिक रोगो (Mental Diseases) का पता लगाने मे इस्तेमाल की गई है। इस विधि मे सबसे बडी कठिनाई यह है कि इसके लिये बड़े कुशल और अनुभवी मनोविश्लेषक की आवश्यकता है। बहुधा सफल मनोविश्लेषक पहले अपने मन का विश्लेषण कर लेता है जिससे पक्षपात का डर नही रहता।

(१०) आरोपणात्मक प्रविधियां

व्यक्तित्व की परीक्षा मे सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रचलित परीक्षण आरोपणात्मक प्रविधि के हैं। यह विधि, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, आरोपण या प्रक्षेप (Projection) के तथ्य पर आधारित है। आरोपण

आरोपणात्मक प्रविधि का अर्थ किसी वस्तु अथवा क्रिया मे अपनी विशेष मानसिक अवस्था अथवा व्यक्तित्व के अनुसार कोई विशेष बात देखना है। उदाहरण के लिये ताजमहल एक सगमरमर की इमारत है जिसको देखने बहुत से लोग जाते है। व्यक्तित्व की विभिन्न विशेषताओ के अनुसार भिन्न-भिन्न लोग ताजमहल मे भिन्न-भिन्न बातें पाते हैं। भावुक व्यक्ति उसको भावनाओं के एक साकार स्मारक के रूप मे देखता है जबकि आर्थिक और राजनैतिक प्रश्नों को अत्यधिक महत्व देने वाले व्यक्ति को वह शोषण का प्रतीक भी मालूम पड़ सकता है। यह तो एक स्थूल वस्तु का उदाहरण हुआ परन्तु इससे यह स्पष्ट हुआ कि मनुष्य किसी भी वस्तु को ज्यों का त्यों नही देखता बल्कि उसमे अपने व्यक्तित्व की विशेषताओ को भी आरोपित करता है। इस आरोपण का विश्लेषण करके और अन्य लोगो के आरोपण से उसकी तुलना करके व्यक्तित्व की अनेक विशेषताओं की जांच की जाती है।

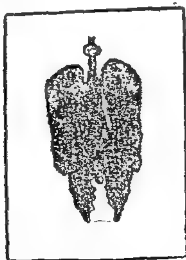
आरोपणात्मक पद्धतियों में दो परीक्षण अधिक प्रसिद्ध हैं :—

(१) रोर्शा का स्याही धब्बा परीक्षण (Rorschach's Ink Blot Test)।

(२) मरे का प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण (Murray's Thematic Apperception Test)। इसको संक्षिप्त रूप में टी० ए० टी० भी कहते हैं। सामान्य रूप से व्यक्तित्व की परीक्षा में इन दो परीक्षणों का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है, अतः यहाँ पर इनका संक्षिप्त वर्णन किया जायेगा।

आरोपणात्मक प्रविधि के परीक्षण

(१) रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण—इस परीक्षण को एक स्विस विद्वान हरमन रोर्शा (Herman Rorschach) ने प्रचलित किया। रोर्शा ने १० प्रामाणिक स्याही-धब्बे कार्डों का प्रयोग किया जो कि अब भी प्रयोग किये जाते हैं। इन धब्बों में कोई चित्र नहीं बनाया गया है। इनमें पाँच पूरी तरह काले हैं, दो काले और लाल हैं और तीन में अनेक रंग हैं। व्यक्तित्व की जाँच करने के लिये इन दस कार्डों को प्रयोज्य के सामने एक-एक करके रखा जाता है और उससे यह पूछा जाता है कि उसे उस धब्बे में क्या-क्या दिखलाई पड़ता है। ये कार्ड निश्चित समय के अन्तर से प्रस्तुत किये जाते हैं। इसके बाद ये कार्ड फिर से एक-एक करके प्रयोज्य के सामने रखे जाते हैं और उससे यह पूछा जाता है कि उसने पहली बार जो-जो कुछ देखा वह उस धब्बे में कहाँ था? इन धब्बों के प्रति प्रयोज्य की प्रतिक्रिया का अर्थ निर्धारित



चित्र १३—रोर्शा का एक स्याही धब्बा

करने के लिये मनोवैज्ञानिक स्थान, निर्धारक गुण तथा विषय का विश्लेषण करता है। स्थान के विश्लेषण में यह देखा जाता है कि प्रयोज्य में धब्बे के किसी विशेष भाग के प्रति प्रतिक्रिया है अथवा सम्पूर्ण धब्बे के प्रति। सामान्य रूप से यह माना जाता है

कि अधिक पूर्ण प्रतिक्रिया करने वाला व्यक्ति अधिक सैद्धान्तिक है। निर्धारित गुण के विश्लेषण से यह देखा जाता है कि प्रयोज्य में प्रतिक्रिया धब्बे की बनावट के कारण है अथवा उसके विभिन्न रगो या गति के कारण। विषय के विश्लेषण में यह देखा जाता है कि प्रयोज्य धब्बे में मनुष्य की आकृति देखता है अथवा पशु की या किसी और की।

उपरोक्त विश्लेषण के साथ-साथ यह भी देखा जाता है कि प्रत्येक धब्बे के प्रति प्रतिक्रिया में प्रयोज्य का औसत रूप से कितना समय लगा उसने कुल कितनी प्रतिक्रियायें की तथा प्रतिक्रियायें सामान्य रूप की है अथवा नही। इन सब बातो मे प्रयोज्य की चेतन और अचेतन विशेषताओ की जाच की जाती है।

स्याही धब्बा परीक्षण मे सबसे बडी कठिनाई यह है कि प्रयोज्य की प्रतिक्रियाओं की व्याख्या बहुत आत्मगत (Subjective) हो जाती है, जिससे प्रयोज्य के व्यक्तित्व की विशेषताओ का ठीक-ठीक पता नही चलता। परन्तु फिर भी इस परीक्षण को अधिक से अधिक वैज्ञानिक बनाने की चेष्टा की जा रही है।

(२) मरे प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण—इस परीक्षण के जन्मदाता मरे ने कुछ चित्रो की सहायता से व्यक्तित्व की विशेषताओ की जाच की। मरे के ये चित्र



चित्र स० १४—मरे का एक चित्र

अब भी प्रामाणिक माने जाते है। इन चित्रो को देखकर प्रयोज्य आरोपण के द्वारा चित्र पात्रो के से अपना एकीकरण कर लेता है। प्रयोज्य के सामने एक-एक चित्र

उपस्थित किया जाता है और उसको निश्चित काल, जैसे पाच मिनट के अन्दर उस चित्र के आधार पर एक कहानी लिखनी होती है। आपरोण के द्वारा इस कहानी मे प्रयोज्य न जानते हुये भी अपने व्यक्तित्व की अनेक विशेषताओं को व्यक्त करता है। उसको सोचने का समय नही मिलता। अत. कहानी मे उसकी स्वाभाविक इच्छायें, सवेग, स्थाई भाव आदि व्यक्त होते है। इन कहानियों के आधार पर मनोवैज्ञानिक प्रयोज्य के व्यक्तित्व का विश्लेषण करता है और उसकी विशेषताओं का पता लगाता है।

मरे प्रासगिक अन्तर्बोध परीक्षण मे भी रौर्शा परीक्षण की तरह काफी जटिलता मिलती है। इसके द्वारा व्यक्तित्व परीक्षण सख्यात्मक न होकर गुणात्मक होता है। अत इसमे गलतियाँ हो जाना स्वाभाविक है, परन्तु फिर भी इसमे कोई सदेह नही है कि अनुभवी और कुशल मनोवैज्ञानिक इस परीक्षण से प्रयोज्य के व्यक्तित्व की अनेक विशेषताओ का पता लगा सकता है। इस परीक्षण की सहायता से प्रोशैन्सकी (Proshansky) ने श्रम के प्रति लोगो की मनोवृत्ति का अध्ययन किया। फ्रॉम (Fromm), डूबिन (Dubin) और मरे (Murray) ने भी इसका उल्लेखनीय प्रयोग किया है। प्रोशैन्सकी ने पत्र-पत्रिकाओ से निकाले हुये श्रम आन्दोलन सम्बन्धी चित्र विद्यार्थियो को दिखलाकर मजदूरो के प्रति उनकी मनोवृत्तियो का अध्ययन किया है।

अच्छे परीक्षण की विशेषतायें

अच्छे परीक्षण की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित है—

(१) विश्वसनीयता (Reliability)—जिस परीक्षण से प्राप्त फलाक जितने ही अधिक विश्वसनीय होते है उनमे उतनी ही अधिक विश्वसनीयता होती है। विश्वसनीय होने का अर्थ यह है कि यदि कोई परीक्षण किसी व्यक्ति को दो बार दिया जाय तो दूसरी बार भी उसको वही अक प्राप्त होने चाहिये जो कि पहली बार प्राप्त हुये है।

(२) प्रामाणिकता अथवा वैधता (Validity)—किसी परीक्षण मे प्रामाणिकता तभी मानी जा सकती है जबकि उससे उसी तत्व का परीक्षण हो जिसके लिये उसे बनाया गया है। उदाहरण के लिये बुद्धि परीक्षणो से बुद्धि का सही माप हो सकने पर ही उनको प्रामाणिक कहा जा सकता है।

(३) वस्तुनिष्ठता (Objectivity)—*परीक्षण मे वस्तुनिष्ठता तभी हो सकती* है जबकि उसके हर एक प्रश्न का उत्तर निश्चित और स्पष्ट हो तथा उसके विषय मे परीक्षको मे मतभेद न हो। इससे यह लाभ होता है कि परीक्षण के परिणाम पर परीक्षक के व्यक्तिगत विचारो का कोई प्रभाव नही पडता और चाहे जितने परीक्षको द्वारा जचवाया जाने पर भी परीक्षार्थी को उस परीक्षण मे एक से ही अक मिलते है।

(४) व्यापकता (Comprehensiveness)—अच्छे परीक्षण की एक अन्य विशेषता व्यापकता है। व्यापकता का एक अर्थ यह है कि परीक्षण जिस तत्व की

परीक्षा के लिये बनाया गया है उसके सभी पहलुओं को सम्मिलित कर ले। इस प्रकार व्यापक परीक्षण मे परीक्षा की जाने वाली योग्यता के सभी पहलुओं से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं ताकि मापित योग्यता का कोई पहलू छूट न जाये।

(५) विभेदकारी शक्ति (Discriminating Power)—इसका तात्पर्य परीक्षण में ऐसी शक्ति से है जिससे कम और अधिक योग्यता वाले परीक्षार्थियो मे भेद किया जा सके अर्थात् दोनों को क्रमश कम और अधिक अक मिलें।

(६) उपयोगिता (Usability)—इसका तात्पर्य इस विशेषता से है कि परीक्षण का आसानी से प्रयोग किया जा सके। इसके लिये यह आवश्यक है कि उसके आदेश सरल हों, विधि सुगम हो, समय कम लगे और खर्च भी अधिक न हो।

प्रामाणिकता

(Validity)

व्यक्तित्व की विशेषताओं, बुद्धि तथा रुचि आदि के परीक्षणों के विवरण से यह स्पष्ट है कि सभी तरह के परीक्षणो मे एक-सी प्रामाणिकता नही होती। कोई परीक्षण कहाँ तक प्रामाणिक है यह इस बात से जाना जाता है कि उसके परिणामो के आधार पर दिया गया निर्णय कहाँ तक यथार्थ होता है। उदाहरण के लिये उसी बुद्धि परीक्षण को प्रामाणिक माना जा सकता है जिससे बुद्धि की सही परीक्षा हो सकती हो। जिस परीक्षण से जिस अश मे बुद्धि की सही परीक्षा हो सकती हो उसको उसी अश मे प्रामाणिक माना जायेगा। इस तरह प्रामाणिकता परीक्षण का वह गुण है जिसके आधार पर उस पर आधारित निर्णय का सही या गलत होना निश्चित किया जाता है। उदाहरण के लिये रुचि पत्रियो की प्रामाणिकता बुद्धि परीक्षणो से कम है। यहाँ पर एक कठिनाई है। मान लीजिये कि एक विशेष परीक्षण से कुछ विद्यार्थियो की बुद्धि की परीक्षा की गई। अब वह परीक्षण प्रामाणिक है अथवा नही यह इस बात पर निर्भर करेगा कि विद्यार्थियो मे वास्तव में उतनी बुद्धि है या नही जितनी कि उस परीक्षण के परिणाम से मालूम पडती है। यहा पर यह कठिनाई है कि यह कैसे मालूम किया जाय कि विद्यार्थियो मे उतनी बुद्धि है या नही जितनी कि परीक्षण में मालूम पडती है। स्पष्ट है कि परीक्षण की प्रामाणिकता की जाच के लिये किसी न किसी स्वतन्त्र कसौटी का होना आवश्यक है। विद्यार्थी की बुद्धि सम्बन्धी परीक्षण के उदाहरण मे परीक्षाफल परीक्षण की प्रामाणिकता की एक कसौटी हो सकता है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि यदि परीक्षण के प्राप्ताको का और परीक्षण फल का सह-सम्बन्ध (Correlation) हो तो परीक्षण प्रामाणिक है।

प्रामाणिकता क्या है ?

परन्तु जैसा कि उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है, प्रामाणिकता एक सापेक्ष शब्द है अर्थात् किसी भी परीक्षण में पूर्ण प्रामाणिकता नही हो सकती। इसलिये जब किसी परीक्षण को प्रामाणिक कहा जाय अथवा उसमे प्रामाणिकता का अभाव बतलाया जाय तो यह स्पष्ट करना बहुत जरूरी है कि उसमे किस अर्थ मे प्रामाणिकता है और

प्रामाणिकता के प्रकार

किस अर्थ में उसका अभाव है। स्पष्ट है कि प्रामाणिकता कई तरह की होती है। स्थूल रूप से मनोवैज्ञानिकों ने निम्नलिखित पांच प्रकार की प्रामाणिकता मानी है—

(१) **रूप प्रामाणिकता** (Face Validity)—रूप प्रामाणिकता, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, परीक्षण के रूप से सम्बन्धित प्रामाणिकता है। इस तरह की प्रामाणिकता उसी परीक्षण में कही जायेगी जिसमे दिया हुआ विषय अथवा पद (Item) देखने में प्रामाणिक मालूम हो।

(२) **अन्तर्वस्तु सम्बन्धी प्रामाणिकता** (Content Validity)—दूसरी तरह की प्रामाणिकता अन्तर्वस्तु सम्बन्धी प्रामाणिकता है। जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, यह प्रामाणिकता परीक्षण की अन्तर्वस्तु से सम्बन्धित है। इस प्रामाणिकता के लिये परीक्षण इस तरह के होने चाहियें कि उनके पदों से उस बात की पूरी जांच हो सके जिसके लिये वह परीक्षण बनाया गया है। उदाहरण के लिये बुद्धि परीक्षण मे अन्तर्वस्तु सम्बन्धी प्रामाणिकता कही जायेगी जो इस प्रकार बनाया गया हो कि उसमें बुद्धि से सम्बन्धित सभी बातों की परीक्षा होती हो।

(३) **तात्त्विक प्रामाणिकता** (Factorial Validity)—इसमें तत्वों की प्रामाणिकता सम्मिलित है। इनकी जाच के लिये तत्व विश्लेषण (Factor Analysis) द्वारा परीक्षणों का अनेक परीक्षणों में उभयनिष्ठ तत्व से सह-सम्बन्ध (Correlation) ज्ञात किया जाता है।

(४) **पूर्वानुमान सम्बन्धी प्रामाणिकता** (Predictive Validity)—पूर्वानुमान सम्बन्धी प्रामाणिकता सबसे अधिक प्रचलित प्रामाणिकता है। इसमें उपयुक्त कसौटी (Criterion) के आधार पर फलाकों (Scores) का कसौटी से सह-सम्बन्ध (Correlation) निकलता है। इसमें फलाकों के चुनाव में बड़ी सावधानी की जरूरत है। कसौटी और फलाक मे सह-सम्बन्ध से जो गुणक प्राप्त होता है उसे प्रामाणिकता गुणक (Validity Coefficient) कहा जाता है। प्रामाणिकता गुणक ·५ से ·८ तक होता है। इससे कम गुणक आने पर वह बेकार होता है और सामान्य रूप से इससे अधिक गुणक नही मिलता।

(५) **सामयिक प्रामाणिकता** (Concurrent Validity)—इसको पद की प्रामाणिकता भी कहते हैं। यह पीछे बताई गई पूर्वानुमान सम्बन्धी प्रामाणिकता से मिलती जुलती है। इसमें पूर्वानुमान सम्बन्धी प्रामाणिकता के समान परीक्षण का किसी मानदण्ड से सह-सम्बन्ध पता लगाया जाता है। परन्तु इस प्रकार समानता के साथ-साथ इन दोनों प्रकार की प्रामाणिकता में कुछ अन्तर भी है। अन्तर यह है कि पूर्वानुमान सम्बन्धी प्रामाणिकता मे तो मानदण्ड भविष्य में होना है जबकि सामयिक प्रामाणिकता मे मानदण्ड वर्तमान मे होता है। उदाहरण के लिये यदि किसी निर्धारण मानदण्ड से परीक्षण करने पर कुछ व्यक्तियो मे मानसिक दोष दिखलाई पड़ते हैं और मानसिक चिकित्सक द्वारा परीक्षा किये जाने पर भी उनमे मानसिक दोष पाये जाते हैं तो यहां पर निर्धारण मानदण्ड मे सामयिक प्रामाणिकता मानी जायेगी।

प्रामाणिकता के विभिन्न प्रकारों के उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्रामाणिकता किसी विशेष संदर्भ में होती है। अर्थात् प्रत्येक परीक्षण एक विशेष प्रयोजन के लिये और एक विशेष आयु के लोगों के लिये प्रामाणिक होता है। भिन्न-भिन्न प्रसंग और भिन्न-भिन्न आयु के व्यक्तियों के लिये वह अप्रामाणिक भी हो सकता है। अतः किसी परीक्षण को प्रामाणिक कह देना सर्वथा अपर्याप्त है उसके साथ यह भी बतलाना आवश्यक है कि वह किस प्रयोजन के लिये किस आयु के लोगों के लिये प्रामाणिक है।

विश्वसनीयता
(Reliability)

प्रामाणिकता के साथ-साथ हर बार परीक्षण में विश्वसनीयता होनी भी जरूरी है। तभी उस परीक्षण पर निर्भर रहा जा सकता है। विश्वसनीयता का अर्थ किसी परीक्षण के उस गुण से है जिससे कि उस पर विश्वास किया जा सकता हो। यह गुण उसी परीक्षण में माना जायेगा जिसके द्वारा हर बार परीक्षण करने पर वही फलांक प्राप्त हों। उदाहरण के लिये यदि एक बुद्धि परीक्षण से एक बार परीक्षा करने पर किसी व्यक्ति के कुछ फलांक आये और दोबारा करने पर उससे भिन्न फलांक आये तो स्पष्ट है कि वह परीक्षण विश्वसनीय नहीं है। परीक्षण की यह विश्वसनीयता उसके किसी एक अंग पर नहीं बल्कि उसके सभी अंगों पर निर्भर करती है। कोई भी अंग गलत होने पर परीक्षण की विश्वसनीयता कम हो जाती है। इसलिये परीक्षण के विभिन्न अंगों में आन्तरिक संगति (Internal Consistency) और समरूपता (Uniformity) जरूरी है। इसी तरह के विश्वसनीय परीक्षण के ही आधार पर निर्देशन दिया जा सकता है।

विश्वसनीयता क्या है ?

विश्वसनीयता की जांच चार तरह से की जा सकती है। ये चार तरीके निम्नलिखित हैं :—

(१) परीक्षण पुनर्परीक्षण विधि (Test Retest Method)—विश्वसनीयता की जाँच का एक उपाय यह है कि एक ही समूह पर दो भिन्न-भिन्न अवसरों पर परीक्षण का प्रयोग किया जा सकता है और प्राप्त परिणामों की तुलना की जाती है। उदाहरण के लिये, मान लीजिये कि एक समूह का बिने परीक्षण से बुद्धि परीक्षण किया गया। अब कुछ समय बाद इसी समूह की फिर बिने परीक्षण से ये परीक्षा की गई। यदि दोनों अवसरों पर बुद्धि-लब्धि में अन्तर आता है तो परीक्षण विश्वसनीय नहीं है।

विश्वसनीयता की जांच के उपाय

(२) समानान्तर परीक्षण विधि (Parallel Form Method)—विश्वसनीयता की परीक्षा करने का एक तरीका यह है कि जिस परीक्षण की विश्वसनीयता की परीक्षा करनी हो उससे मिलता-जुलता एक दूसरा परीक्षण तैयार किया जाता है।

अब मौलिक और रूपान्तरित परीक्षणों के द्वारा एक ही समूह की परीक्षा की जाती है। इसके बाद इन दोनों परीक्षणों के परिणामों की तुलना करके परीक्षण की विश्वसनीयता की जाच कर ली जाती है। गुलिकसन (Gulliksen) ने एक से अधिक समान्तर परीक्षण बनाने की सलाह दी है।

(३) अर्द्ध विच्छेदित विधि (Split-Half Method)—विश्वसनीयता की जांच का एक अन्य उपाय यह है कि जिस परीक्षण में अनेक प्रकरण हों उसमें विषम और सम प्रकरणों के परिणाम की तुलना करके विश्वसनीयता की परीक्षा की जाती है।

(४) अन्तरपदीय एकरूपता (Inter Item Consistency)—मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विश्वसनीयता जाचने की इस विधि में केवल एक परीक्षण एक बार प्रयोग किया जाता है। परीक्षण के प्रत्येक पद मे प्राप्त अको का परस्पर सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है। साथ ही प्रत्येक प्रश्न मे प्राप्त अको का पूरे परीक्षण में प्राप्त अको से भी सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है। इस विधि से विश्वसनीयता की जांच करने के लिये सांख्यिकी का प्रयोग करने वाले कुछ सूत्र क्यूडर और रिचार्डसन नामक मनोवैज्ञानिकों ने बनाये हैं।

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, विश्वसनीयता ज्ञात करने के साथ-साथ विश्वसनीयता का अर्थ भी बदल जाता है। अत केवल यह कह देना पर्याप्त नही है कि किसी परीक्षण में विश्वसनीयता है। साथ ही यह बतलाना भी जरूरी है कि विश्वसनीयता किस अर्थ मे है अर्थात् उसका किस विधि से पता लगाया गया है।

विश्वसनीयता की जांच की उपरोक्त विधियो मे से तीसरी विधि का सबसे अधिक प्रचार है क्योंकि यह सबसे अधिक आसान भी है। इस विधि मे समूह को परीक्षण के लिये बार-बार इकट्ठा नही करना पडता। विश्वसनीयता अनुबन्ध गुणक (Coefficient of Correlation) मे जानी जाती है। इस अनुबन्ध गुणक को विश्वसनीयता गुणक (Reliability coefficient) कहा जाता है।

इस तरह विश्वसनीयता और प्रामाणिकता दोनो ही परीक्षण के आवश्यक गुण हैं। विश्वसनीयता परीक्षण के पैमाने ((Scale) या संरचना (Structure) मे सबंधित है। प्रामाणिकता उसकी परीक्षण करने की सामर्थ्य से सम्बन्धित है।

सारांश

मनोवैज्ञानिक परीक्षण क्या है—मनोवैज्ञानिक परीक्षण कुछ ऐसे उद्दीपनों का संगठन है जिनसे परीक्षार्थी मे कुछ मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को पृथक् करने वाली अनुक्रियायें उत्पन्न होती हैं। मनोवैज्ञानिक परीक्षण मनोवैज्ञानिक प्रयोग से भिन्न होता है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का वर्गीकरण—(१) परीक्षण विधि के अनुसार वर्गीकरण—(क) व्यक्तिगत परीक्षण, (ख) सामूहिक परीक्षण। (२) परीक्षण के माध्यम

के अनुसार वर्गीकरण—(क) शाब्दिक परीक्षण, (ख) अशाब्दिक परीक्षण। (३) परीक्षण के उद्देश्य के दृष्टिकोण से वर्गीकरण—(क) बुद्धि परीक्षण, (ख) मानसिक योग्यताओं के परीक्षण। (ग) रुचि परीक्षण। (घ) अभिरुचि परीक्षण। (ङ) व्यक्तित्व परीक्षण।

बुद्धि और बुद्धि परीक्षण

बुद्धि क्या है—(१) बुद्धि नई परिस्थिति में अभियोजन करने की योग्यता है। (२) बुद्धि गत अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता है। (३) बुद्धि अमूर्त चिन्तन की योग्यता है। (४) बुद्धि अनेक शक्तियों का समुदाय है।

बुद्धि-लब्धि—यह मानसिक आयु और वास्तविक आयु के बीच का अनुपात है। इसको निकालने के लिये मानसिक आयु को वास्तविक आयु से भाग देकर १०० से गुणा कर दिया जाता है। बुद्धि-लब्धि के अनुसार व्यक्तियों का वर्गीकरण किया गया। बुद्धि-लब्धि और स्कूल के कार्य में सफलता मे अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। देखा गया है कि पिता के व्यवसाय और सन्तान की बुद्धि-लब्धि में कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य होता है।

बुद्धि परीक्षणों के प्रकार—(१) शाब्दिक व्यक्ति-बुद्धि परीक्षण, (२) अशाब्दिक व्यक्ति-बुद्धि परीक्षण, (३) शाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षण, (४) अशाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षण।

शाब्दिक व्यक्ति बुद्धि परीक्षण—इसका एक उदाहरण टरमैन मैरिल स्केल का हिन्दी अनुशीलन है।

अशाब्दिक व्यक्ति-बुद्धि परीक्षण—इसके उदाहरण क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण हैं, जैसे—(१) पिन्टनर पैटर्सन क्रियात्मक मानदण्ड, (२) मैरिल पामर ब्लॉक बिल्डिंग परीक्षण, (३) पोर्टियस भूलभुलैया परीक्षण, (४) आकार फलक परीक्षण। (५) भाटिया की क्रियात्मक परीक्षण की बैटरी। (i) कोहज ब्लॉक डिजाइन टैस्ट, (ii) एलैगजैण्डर पास एलौंग टैस्ट, (iii) पैटर्न ड्राइङ्ग टैस्ट, (iv) तत्कालीन स्मृति परीक्षण, (v) चित्र निर्माण परीक्षण।

व्यक्ति-बुद्धि परीक्षणों में कठिनाइयां—(१) समय की कठिनाइयां, (२) अनुभवी परीक्षकों की आवश्यकता।

शाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षण—(१) आर्मी एल्फा और आर्मी बीटा परीक्षण, (२) नौ सेना और सेना सामान्य वर्गीकरण।

अशाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षण में कठिनाइयाँ—(१) प्रयोज्य के सहयोग सम्बन्धी कठिनाई, (२) प्रयोज्य के संतुलन सम्बन्धी कठिनाई, (३) प्रयोज्य की आसानी सम्बन्धी कठिनाइयां, (४) प्रयोज्य द्वारा नकल की सम्भावना।

अशाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षण—(१) कैटेल का कल्चर फ्री परीक्षण, (२) एन० आई० आई० पी० का परीक्षण, (३) शिकागो अशाब्दिक परीक्षण, (४) रैवन का प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज।

अशाब्दिक समूह-बुद्धि परीक्षण की विशेषतायें—(१) भिन्न-भिन्न व्यक्ति समूहों की तुलना, (२) निरक्षर सैनिकों की परीक्षा, (३) बालकों की बुद्धि परीक्षा, (४) कुछ विशेष वर्गों को परामर्श।

विशेष मानसिक योग्यताओं के परीक्षण

निर्देशन में बुद्धि से भी अधिक विशेष मानसिक योग्यताओं की परीक्षा आवश्यक है। सामान्य रूप से विशेष मानसिक योग्यतायें ११ वर्ष की आयु में स्पष्ट होने लगती हैं। थर्सटन ने सात मूल मानसिक योग्यतायें बतलाई हैं और एस० आर० ए० प्राथमिक मानसिक योग्यताओं के परीक्षण बनाये हैं। थर्सटन की परीक्षणमाला के अतिरिक्त विभिन्न मानसिक योग्यताओं के परीक्षण इस प्रकार हैं—(१) आन्तरिक्षिक योग्यता परीक्षण, एन० एन० आई० आई० पी० आकार सम्बन्धी परीक्षण मिनेसोटा कागज तथा आकार पटल तथा मिनेसोटा आन्तरिक्षिक योग्यता सम्बन्धी परीक्षण, (२) यान्त्रिक योग्यता परीक्षण, मिनेसोटा यान्त्रिक संयोजन परीक्षण, (३) गत्यात्मक योग्यता परीक्षण, स्थिरता परीक्षण तथा आकोनर चिमटी दक्षता परीक्षण, (४) लिपिक परीक्षण—इसका उदाहरण मिनेसोटा लिपिक परीक्षण है, (५) कलात्मक अथवा सौन्दर्यात्मक योग्यता परीक्षण—इसके उदाहरण हैं सीशोर संगीत योग्यता माप तथा मायर कला निर्णय परीक्षण।

रुचि के परीक्षण

रुचि परीक्षण का एक उदाहरण स्ट्रांग का व्यावसायिक रुचि का रिक्त पत्र है। एक दूसरा उदाहरण क्यूडर व्यावसायिक पसन्द लेखा है। इनके अलावा उत्तर-प्रदेश मनोविज्ञानशाला का व्यावसायिक प्रीफ्रेंस रिकार्ड भी महत्वपूर्ण है।

रुचि परीक्षणों की सीमायें—(१) व्यवसाय का विवरण एकत्र करने में कठिनाई, (२) उत्तरों की विश्वसनीयता में संदेह, (३) रुचि की परिवर्तनशीलता, (४) रुचि और सफलता में अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। (५) व्यवसायों का वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है।

व्यक्तित्व परीक्षण

व्यक्तित्व क्या है—व्यक्तित्व एक व्यक्ति के व्यवहारों, रूपों, रुचियों, सामर्थ्यों, योग्यताओं, अभिरुचियों आदि बाहरी और आन्तरिक लक्षणों के प्रतिमानों का संकलित, समग्र रूप है, जो कि परिवेश में उसके विशिष्ट व्यवहार से प्रकट होता है।

व्यक्तित्व परीक्षण की विधियां—(१) जीवन वृत्त विधि, (२) साक्षात्कार विधि, (३) प्रश्नावली विधि, (४) निर्माण परीक्षण विधि, (५) पेंसिल कागज विधियां, (६) व्यक्तित्व परिमापियां, (७) मूल्यांकन विधि, (८) परिस्थिति परीक्षण, (९) मनोविश्लेषणात्मक विधि, (१०) प्रक्षेपी विधियां।

अच्छे परीक्षण की विशेषतायें—(१) विश्वसनीयता, (२) प्रामाणिकता

अथवा वैधता, (३) वस्तुनिष्ठता, (४) व्यापकता, (५) विभेदकारी शक्ति, (६) उपयोगिता।

प्रामाणिकता—परीक्षणों की प्रामाणिकता इस बात पर निर्भर है कि उनके आधार पर दिया गया निर्णय कहाँ तक यथार्थ है। प्रामाणिकता के प्रकार हैं—(१) रूप प्रामाणिकता, (२) अन्तर्वस्तु सम्बन्धी प्रामाणिकता, (३) तात्विक प्रामाणिकता, (४) पूर्वानुमान सम्बन्धी प्रामाणिकता, (५) सामयिक प्रामाणिकता।

विश्वसनीयता—जिस परीक्षण से अनेक बार परीक्षण करने पर एक ही परिणाम आए वह विश्वसनीय है।

विश्वसनीयता की जांच की विधियां—(१) परीक्षण-पुनर्परीक्षण विधि, (२) अर्द्धविच्छेदित परीक्षण विधि, (३) समान्तर परीक्षण विधि, (४) अन्तरपदीय एकरूपता की विधि।

७

उद्योग में निर्देशन, व्यावसायिक और व्यक्तिगत

(Guidance in Industry : Vocational and Personal)

आजकल उद्योगो मे व्यावसायिक और व्यक्तिगत निर्देशन का व्यापक रूप मे प्रयोग किया जाता है। पहले से सही व्यवसाय चुनने और दूसरे से कर्मचारियो की व्यक्तिगत समस्याओ को सुलझाने में सहायता मिलती है। पहले से व्यावहारिक जीवन मे सफलता मिलती है दूसरे से मानसिक स्वास्थ्य बना रहता है और समायोजन की समस्यायें सुलझती हैं। दोनो से निपुणता बढती है।

व्यावहारिक जीवन मे अधिक से अधिक सफलता का मूलमन्त्र यह है कि व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुकूल काम का चुनाव करे। यदि काम सामर्थ्य के अनुकूल हुआ तो व्यक्ति उसको आसानी से कर सकता है और उसमे रुचि अनुभव करता है। ऐसी हालत मे कम परिश्रम करने पर भी अधिक सफलता मिलने की सम्भावना होती है। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति जिसमे प्रशासन की योग्यता है साधारणतया अच्छा शासक होता है और अवसर मिलने पर अच्छा प्रशासन कर पाता है। यह एक सामान्य बात है कि प्रत्येक व्यवसाय मे कुछ विशेष गुणो की आवश्यकता होती है। प्रत्येक व्यक्ति अच्छा दूकानदार नही हो सकता और न प्रत्येक पढा लिखा व्यक्ति अच्छा मैनेजर हो सकता है क्योंकि अच्छा दूकानदार या अच्छा मैनेजर होने के लिये इन कामो से सम्बन्धित कुछ विशेष गुणो की आवश्यकता होती है। अत प्रश्न यह रह जाता है कि विशेष व्यक्ति के अनुकूल कौन सा काम है। इस बारे मे वैज्ञानिक रूप से कुछ कहने के लिये व्यक्ति की विभिन्न योग्यताओ और प्रवृत्तियो की परीक्षा की जरूरत है। यह काम मनोविज्ञान करता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणो का विस्तृत विवरण पिछले अध्याय मे दिया गया है।

कोई व्यक्ति ऐसा नही है जिसकी जिन्दगी मुश्किलो से खाली हो। श्रमिक हो या सुपर वाइजर, मैनेजर हो या कारीगर, सभी के जीवन मे कुछ निजी कठिनाइयाँ बराबर बनी रहती है। अधिकतर लोग इन समस्याओ से किसी न किसी प्रकार निवट लेते हैं परन्तु बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो इन समस्याओ को स्वयं नही सुलझा सकते। इस तरह उद्योग मे कुछ कर्मचारियो को बहुधा और बहुत से कर्मचारियो को कभी न कभी मनोवैज्ञानिक के निर्देशन की जरूरत होती है जिससे कि वे अपनी निजी

समस्याओं को सुलझा सकें। ये समस्यायें व्यवहार की समस्यायें है, चाहे यह व्यवहार आन्तरिक हो या बाहरी। स्पष्ट है कि निजी समस्याओं को सुलझाने के लिये मनोविज्ञान की जरूरत है।

निर्देशन क्या है ?

व्यावसायिक तथा निजी समस्याओं मे मनोविज्ञान की सहायता के उपरोक्त दिग्दर्शन मे निर्देशन शब्द का प्रयोग किया गया है। व्यवसाय के क्षेत्र मे व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) तथा निजी जीवन मे व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance) की आवश्यकता होती है। यह निर्देशन क्या है ? निर्देशन की परिभाषा मानव क्रियाओं की शैक्षिक, व्यावसायिक, मनोरंजन सम्बन्धी और सामुदायिक सेवा समूह विषयक कार्य प्रणालियो मे चुनाव करने, तैयार करने, प्रवेश करने और प्रगति करने मे व्यक्ति की सहायता करने की प्रक्रिया के रूप मे की जा सकती है। यह सहायता मनोवैज्ञानिक द्वारा निजी सेवा के रूप मे दी जाती है। यह सेवा परामर्श के रूप में होती है। इससे समस्यायें नही सुलझती वल्कि व्यक्ति को अपनी समस्यायें सुलझाने मे सहायता मिलती है। हसबैंड ने निर्देशन की परिभाषा करते हुये लिखा है, "निर्देशन को व्यक्ति को उसके भावी जीवन के लिये तैयार करने, समाज मे उसको उसके स्थान के लिये फिट करने मे सहायता देने के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है।"[1] इस तरह निर्देशन व्यक्ति को उसके भावी जीवन के लिये तैयार करता है। उससे व्यक्ति को यह पता चलता है कि उसको भविष्य में कौन-सा व्यवसाय करना चाहिए और अपनी भिन्न-भिन्न समस्याओं को सुलझाने के लिए उसको क्या-क्या उपाय करने चाहियें। प्रत्येक समाज मे व्यक्ति की एक स्थिति होती है और उसके अनुरूप उसके कुछ कार्य होते हैं। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति अपने परिवार मे अध्यक्ष होता है। इससे उसका यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह परिवार मे सबकी जरूरतें पूरी करे और सबके समुचित विकास का ध्यान रखे, परन्तु एक व्यक्ति हर समय एक ही स्थिति मे नही रहता। एक समय मे या भिन्न-भिन्न समय मे एक ही व्यक्ति पिता की स्थिति मे, पुत्र की स्थिति मे, पति की स्थिति मे, अध्यापक तथा वकील की स्थिति मे तथा देश के नागरिक की स्थिति इत्यादि अनेक स्थितियों मे रहता है। इन सब स्थितियों के अनुरूप उसके अलग-अलग कार्य होते है। जो व्यक्ति समाज मे अपनी स्थितियों के अनुकूल कार्य करता है उसी को समाज मे फिट कहा जा सकता है। इन भिन्न-भिन्न स्थितियो मे अपने कर्तव्यों को करने मे व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता होती है। इस तरह मनोवैज्ञानिक का निर्देशन व्यक्ति को समाज मे उसकी स्थिति के उपयुक्त बनाने मे उसकी सहायता करना है। कुछ स्थितियाँ तो अनिवार्य होती हैं परन्तु कुछ चुनी भी जाती हैं। हर

1. "Guidance may be defined as assisting the individual to prepare for his future life, to fit him for his place in society."

—Husband, *Applied Psychology*, p. 15

एक व्यक्ति हर एक स्थिति के लिये उपयुक्त नही होता। उदाहरण के लिये सभी व्यक्ति डाक्टर, वकील या अध्यापक नही बन सकते। किसी व्यक्ति को किसी स्थान के उपयुक्त बनाने के दो पहलू हैं। एक तो यह कि उसकी योग्यता उस स्थान के उपयुक्त हो और दूसरे यह कि वह उस स्थान के उपयुक्त बनने की चेष्टा करे। इसमे दूसरे पहलू की कुछ सीमायें हैं। कितनी भी चेष्टा करने पर प्रत्येक व्यक्ति कलाकार या साहित्यकार नही बन सकता केवल यही क्या प्रत्येक व्यक्ति दूकानदार तथा मैनेजर नहीं बन सकता क्योकि प्रत्येक व्यक्ति मे प्रत्येक व्यवसाय के लिये जरूरी योग्यता नही होती। अत: किसी स्थिति के उपयुक्त सिद्ध होने के लिए व्यक्ति को अपनी सामर्थ्यो और योग्यताओ के अनुरूप स्थिति चुननी चाहिये। इस चुनाव मे मनोविज्ञान व्यक्ति की सहायता करता है। इस तरह निर्देशन मे व्यक्ति को ऐच्छिक तथा अनैच्छिक सभी स्थितियो मे फिट होने मे सहायता मिलती है। जैसा कि पीछे दी गई परिभाषा मे कहा गया है निर्देशन व्यक्ति को उसके भावी जीवन के लिये तैयार करता है। भावी जीवन के लिये तैयार करने का तात्पर्य भविष्य का उत्तर-दायित्व निभाने की योग्यता उत्पन्न करना है। ये भावी जिम्मेदारियाँ कई तरह की हो सकती है। उदाहरण के लिये—साधारणतया सभी बालक-बालिकाये युवा होकर विवाह करते है, परिवार बसाते हैं और सन्तानोत्पत्ति करते हैं। इस प्रकार भविष्य मे प्रत्येक व्यक्ति पर बालको से सम्बन्धित, जीवन साथी से सम्बन्धित तथा परिवार से सम्बन्धित उत्तरदायित्व आता है। साधारण स्थिति मे सभी युवको को और बहुत-सी युवतियो को भी भविष्य मे कोई न कोई व्यवसाय करना ही पडता है। बडा होकर *प्रत्येक बालक देश का एक नागरिक बनता है और नागरिको के अधिकारो के साथ* उस पर नागरिक का उत्तरदायित्व भी आ जाता है। इस प्रकार किसी व्यक्ति को भावी जीवन के लिये तैयार करने का तात्पर्य उसको जीवन की प्रत्येक स्थिति मे चाहे वह परिवार मे हो, आर्थिक क्षेत्र मे हो राजनैतिक क्षेत्र मे हो अथवा दूसरे किसी भी क्षेत्र मे हो, उन सबके अनुरूप उत्तरदायित्व को निभाने योग्य बनाना है। इसके लिये प्रत्येक बालक-बालिका को अपनी शिक्षा के अनुरूप व्यवसाय का चुनाव करना चाहिए जिससे कि वे भविष्य मे अपनी स्थितियों के अनुरूप कार्यों को कर सकें। उनको यह निश्चय कर लेना चाहिये कि वे अपनी निजी समस्याओ तथा दूसरो से अपने सम्बन्धो मे आने वाली समस्याओ से भली प्रकार निबट सके। निर्देशन इन सभी कार्यों मे व्यक्ति की सहायता करता है।

निर्देशन निजी सहायता है।

निर्देशन के अर्थ की उपरोक्त विस्तृत व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि उससे जीवन के लक्ष्य निश्चित करने मे, जीवन मे सामजस्य स्थापित करने मे तथा सब तरह की *समस्याओ को सुलझाने में सहायता मिलती हैं।* जोन्स के शब्दो मे, "निर्देशन वह निजी सहायता है जो कि जीवन के लक्ष्यो को विकसित करने मे, अनुकूलन करने मे और लक्ष्यो की प्राप्ति मे उनके सामने आने वाली समस्याओ को

सुलझाने में एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को दी जाती है।"[2] इस तरह निर्देशन एक निजी सहायता है, यद्यपि कभी-कभी निर्देशन सामूहिक स्तर पर भी दिया जाता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान व्यक्तिगत वैभिन्य (Individual Differences) की धारणा पर आधारित है, सामान्य अनुभव और वैज्ञानिक खोज दोनों से यह सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति की कुछ अपनी योग्यतायें, अपनी समस्यायें और अपनी कठिनाइयाँ होती हैं जो कि दूसरों से कुछ न कुछ भिन्न होती है। स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति को निजी मशवरा और निजी निर्देशन की आवश्यकता है। यह निजी सहायता एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को दी जाती है। यह एक व्यक्ति मनोवैज्ञानिक अथवा मनोविज्ञान को जानने वाला व्यक्ति है और दूसरा व्यक्ति वह है जिसको मनोवैज्ञानिक परामर्श की आवश्यकता है। इस तरह निर्देशन मनोवैज्ञानिक द्वारा अन्य व्यक्ति को दी जाने वाली सहायता है। विस्तृत अर्थों में, निर्देशन में मनोविज्ञान को जानने वाले प्रत्येक व्यक्ति के परामर्श को गिना जा सकता है। उदाहरण के लिये यदि पिता अपने पुत्र को उसकी किसी समस्या को सुलझाने में मशवरा देता है तो यह भी एक निर्देशन है चाहे यह निर्देशन मनोविज्ञान के बारे में कितनी ही गलत धारणाओं पर आधारित हो, परन्तु निर्देशन का यह व्यापक अर्थ उसका सामान्य अर्थ है। शास्त्रीय अध्ययन में शब्द को उसके सामान्य अर्थ में न लेकर विशेष अर्थों में लिया जाता है और इसलिये सबसे पहले उसकी परिभाषा की जाती है। मनोविज्ञान में निर्देशन का विशेष अर्थों में प्रयोग किया जाता है। मनोविज्ञान में निर्देशन उस निजी सहायता को कहा जाता है जो एक मनोवैज्ञानिक (साधारण व्यक्ति नहीं) किसी व्यक्ति को देता है। यह निर्देशन एक परामर्श के रूप में होता है जिससे कि निर्देशित व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों में अनुकूलन करने में सहायता मिलती है। यदि देखा जाय तो अनुकूलन ही मानव जीवन की मूल समस्या है। जो व्यक्ति अपनी परिस्थितियों से अनुकूलन नहीं कर पाता वह असफल होता है, स्वयं दुख उठाता है, दूसरों को दुख देता है और असामान्य कहा जाता है। इस प्रकार व्यावहारिक मनोविज्ञान व्यक्ति को उसके अनुकूलन करने में सहायता देकर समाज को सुख-शान्ति और व्यवस्था बढ़ाता है। मानव जीवन की समस्याओं का कभी अन्त नहीं होता क्योंकि समस्यायें बढ़ती रहती हैं। उदाहरण के लिए एक बालक के सामने बहुत कम समस्यायें रहती हैं। उसको यही कठिनाई होती है कि कक्षा का कार्य किस तरह किया जाये, अपने साथियों से किस तरह निबटा जाय इत्यादि। उसके सामने गृहस्थी के झंझटों की कोई समस्या नहीं होती, परन्तु क्रमशः ये समस्यायें सबके सामने आती हैं। सामान्य रूप से भी सभी की शादियाँ होती हैं, बच्चे होते हैं, बच्चों की पढ़ाई

2. "Guidance is the personal help that is given by one person to another in developing life goals, in making adjustment and in eovlving problems that confront him in the attainment of goals." —Jones A. J. *Principles of Guidance*, Mac Graw Hill Book Co. New York, (1951), p. 85.

होती है, उनको बीमारियाँ भी होती है, वे बडे होते है, उनकी शादियाँ होती है, उनके बच्चे होते है, इस तरह एक से दूसरे नित्य नई समस्या का यह सिलसिला चलता ही रहता है और इन्सान कभी उनसे खाली नही बैठता। मानव मनोविज्ञान ही ऐसा है। अभी एक इच्छा उठती है, उस की पूर्ति के लिये किसी चीज की जरूरत होती है, हम उस चीज की खोज मे लग जाते हैं, थोडी या बहुत कोशिश के बाद वह चीज मिल जाती है और हमारी इच्छा पूरी हो जाती है, परन्तु यह कहानी यही समाप्त नही हो जाती। एक इच्छा पूरी होने के बाद दूसरी इच्छा उठती है और फिर वही लक्ष्य, लक्ष्य की खोज, खोज मे कठिनाइयाँ, कठिनाइयो का अतिक्रमण, वस्तु की प्राप्ति, इच्छा की सन्तुष्टि और अस्थाई सन्तोष की अनुभूति, परन्तु फिर किसी अन्य इच्छा का उठना और यह क्रम चलता ही रहता है। स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति के सामने नित्य नये लक्ष्य आते है जिनको पूरा करने मे उसको नित्य नई कठिनाइयो का सामना करना पडता है। जैसा कि जेम्स ने अपनी परिभाषा मे बतलाया है निर्देशन लक्ष्य की प्राप्ति मे आने वाली इन समस्याओ को सुलझाने मे सहायता करता है।

(अ) समस्याओं के अनुसार निर्देशन का वर्गीकरण

जैसा कि बतलाया जा चुका है, जब कोई व्यक्ति अपनी कुछ समस्याओ को स्वय नही सुलझा सकता तो उसे एक विशेषज्ञ के रूप मे मनोवैज्ञानिक के निजी परामर्श की आवश्यकता पडती है। यह निजी परामर्श ही निर्देशन है। इस प्रकार निर्देशन कैसा होगा, यह इस बात पर निर्भर है कि वह किस समस्या के प्रसग मे दिया जा रहा है। यू तो मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे उपस्थित होने वाली समस्याओ का वर्णन करना कठिन है परन्तु फिर भी कुछ मनोवैज्ञानिको ने समस्याओ का वर्गीकरण करने की चेष्टा की है। उदाहरण के लिये मनोवैज्ञानिक जोन्स (Jones) ने जीवन की समस्याओं को उनकी प्रकृति के के आधार पर आठ क्षेत्रो मे विभाजित किया है —

(१) स्वास्थ्य तथा शारीरिक विकास से सम्बन्धित, (२) घर तथा परिवार से सम्बन्धित, (३) अवकाश के समय से सम्बन्धित, (४) व्यक्तित्व सम्बन्धी, (५) धार्मिक, (६) विद्यालय सम्बन्धी, (७) सामाजिक, (८) व्यावसायिक। समस्याओ के वर्गीकरण से निर्देशन के प्रकारो का भी वर्गीकरण किया जा सकता है। उदाहरण के लिये *व्यावसायिक* क्षेत्र मे *व्यावसायिक* और शैक्षिक क्षेत्र मे शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता पडती है। मनोवैज्ञानिको ने अनेक प्रकार के निर्देशन माने हैं। उदाहरण के लिये मायर्स (Myers) ने निम्नलिखित आठ प्रकार के निर्देशन बतलाये हैं :—

१. व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance),
२ शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance),
३. मनोरजनात्मक निर्देशन (Recreational Guidance),

४. नागरिकता निर्देशन (Civil Guidance),
५. सामुदायिक सेवा निर्देशन (Community Service Guidance),
६. सामाजिक और नैतिक निर्देशन (Social and Moral Guidance),
७. स्वास्थ्य निर्देशन (Health Guidance),
८. नेतृत्व निर्देशन (Leadership Guidance)।

प्रस्तुत अध्याय मे निर्देशन के तीन प्रकारो का वर्णन किया गया है। उत्तर-प्रदेश मनोविज्ञानशाला में भी निर्देशन कार्यों को इन्ही तीन वर्गो मे रखा गया है। अन्य प्रदेशो मे भी निर्देशन कार्य इन्ही तीन भागो मे बाँटा जाता है। ये तीन प्रकार है :—१ शैक्षिक निर्देशन, २ व्यावसायिक निर्देशन तथा ३ व्यक्तिगत निर्देशन।

यदि ध्यान मे देखा जाय तो उपरोक्त तीनो वर्गो मे सभी प्रकार के निर्देशन आ जाते है। उदाहरण के लिये शिशु निर्देशन (Child Guidance) को ही लीजिये, जिसके लिये आजकल जगह-जगह पर क्लीनिक (Clinics) खोले जा रहे है तो यह मालूम होगा कि इसमे समस्याये या तो शिक्षा सम्बन्धी होती है या व्यक्तिगत। अत शिशु निर्देशन शैक्षिक और व्यक्तिगत निर्देशन के अन्तर्गत ही आ जाता है। इसी प्रकार स्वास्थ्य निर्देशन, मनोरजनात्मक निर्देशन, नागरिकता निर्देशन, समाज सेवा निर्देशन, सामाजिक और नैतिक निर्देशन तथा नेतृत्व निर्देशन आदि निर्देशन के विभिन्न प्रकार व्यक्तिगत निर्देशन के अन्तर्गत गिने जा सकते है।

विभिन्न निर्देशनों का परस्पर सम्बन्ध

निर्देशन के विभिन्न क्षेत्रों को अलग-अलग बाटने का तात्पर्य यह नही है कि वे क्षेत्र एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं। वास्तव मे निर्देशन एक गतिशील और विकासमान प्रत्यय है जिनमे मानव जीवन के सभी पक्षो मे दी गई सलाह आ जाती है परन्तु फिर भी सुविधा की दृष्टि से निर्देशन को विभिन्न वर्गो मे बाँट दिया गया है, यथा शैक्षिक निर्देशन इत्यादि। शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन और व्यावसायिक-निर्देशन मे बडा निकट सम्बन्ध है। इसी तरह इन दोनो का व्यक्तिगत निर्देशन से बडा निकट सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का मूलाधार यह है कि मनुष्य की विभिन्न समस्याये एक दूसरे से सम्बन्धित होती है। उदाहरण के लिय यदि एक व्यक्ति को यह निश्चय करने मे कठिनाई होती है कि उसे कौन-सा पाठ्य-क्रम चुनना है या कौन सा व्यवसाय ग्रहण करना है आदि तो इनके कारण व्यक्तिगत भी हो सकते है। हो सकता है कि कोई युवक किसी युवती के प्रेम मे पड जाने के कारण अपनी पढाई या कैरियर के बारे मे नही सोचता। हो सकता है कि किसी निकट सम्बन्धी की मृत्यु के कारण उसको जीवन मे अन्धेरा ही अन्धेरा दिखाई पडता हो। यहाँ पर यह समस्या व्यक्तिगत समस्या है और इस प्रकार के व्यक्ति के लिये शिक्षा सम्बन्धी तथा व्यावसायिक निर्देशन व्यक्तिगत निर्देशन पर आधारित होगा। दूसरी ओर अनेक व्यक्तिगत समस्यायें शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन के अभाव के कारण भी हो सकती है। उदाहरण के लिये एक लडका स्कूल से भाग जाता है, इधर-उधर आवारागर्दी करता

है, उसका पढने मे मन नही लगता, वह नाना प्रकार के अपराधो मे पड गया है अथवा उसका व्यवहार असामाजिक है। इन सब व्यक्तिगत समस्याओ के मूल मे यह कारण भी हो सकता है कि उसने अपने पाठ्य-क्रम का ठीक से चुनाव न किया हो। इसी तरह कुछ व्यक्तिगत समस्याओ का कारण व्यावसायिक निर्देशन का अभाव भी हो सकता है। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति अपने विद्यार्थी जीवन मे बहुत अच्छा खिलाडी था। उसको ऐसी नौकरी मिलनी चाहिये कि वह आगे भी खेलो मे भाग लेता रहे या कम से कम ऐसी नौकरी करे जिसमे उसे एक जगह जम कर न बैठना पडे, नेतृत्व करने का अवसर मिले, प्रेरणा, साहस और धैर्य इत्यादि स्पोर्ट्समैन सुलभ गुणो की आवश्यकता हो, परन्तु वह इस तरह की नौकरी नही करता या उसके काम करने की परिस्थिति इस तरह की नही है। इससे वह चिडचिडा हो जाता है, उसका मानसिक सन्तुलन कम होने लगता है तथा अनेक व्यक्तिगत समस्यायें पैदा हो जाती है। यहाँ पर ये व्यक्तिगत समस्यायें उचित व्यावसायिक निर्देशन के अभाव के कारण है। इसी तरह शैक्षिक, व्यावसायिक और व्यक्तिगत निर्देशन परस्पर सम्बन्धित है।

निर्देशन का उपरोक्त वर्गीकरण निर्देशन की समस्याओ के अनुसार किया गया है। निर्देशन विधि के दृष्टिकोण से निर्देशन को निम्नलिखित दो वर्गों मे बाँटा जा सकता है —

(ब) निर्देशन विधि के अनुसार वर्गीकरण (१) वैयक्तिक निर्देशन (Individual Guidance),
(२) सामूहिक निर्देशन (Group Guidance)।

शैक्षिक, व्यावसायिक और व्यक्तिगत निर्देशन का विस्तृत वर्णन करने के पूर्व निर्देशन विधि के दृष्टिकोण से किये गये निर्देशन के इस वर्गीकरण को समझ लेना भी उपयुक्त होगा।

वैयक्तिक निर्देशन वैयक्तिक निर्देशन विधि मे मनोवैज्ञानिक निर्देशन पाने वाले व्यक्ति से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करता है। वह उसके घर जाकर उसकी पारिवारिक परिस्थितियो का अध्ययन करता है। इसके लिए वह उसके माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यो से साक्षात्कार (Interview) करता है। पारिवारिक के अलावा व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक पृष्ठ-भूमि का भी अध्ययन किया जाता है। इस के लिए उसके पास-पडोस का निरीक्षण करना पडता है और उसके जीवन-वृत्त (Case History) सम्बन्धी सभी तत्वो का सग्रह किया जाता है। जिन विद्यालयो मे उसने शिक्षा प्राप्त की हो वहाँ से उसके व्यवहार और शिक्षा सम्बन्धी सम्प्राप्ति (Scholastic Attainments) के विषय मे सूचनायें एकत्रित की जाती है। उसके अध्यापको से भी उसके विषय मे जानकारी प्राप्त की जाती है।

इस प्रकार निरीक्षण मे तथा अन्य उपायो से व्यक्ति के विषय मे सामग्री एकत्रित करने के बाद उसके वैयक्तिक परीक्षण भी लिये जाते हैं। इसके लिए उसे

बुद्धि, विशेष मानसिक योग्यताओं, रुचियों, अभिरुचियों तथा व्यक्तित्व के परीक्षण दिये जाते है। अनेक बार साक्षात्कार के द्वारा भी उसके विषय मे व्यक्तिगत रूप से बहुत-सी बातें पता लगाई जाती है। इस प्रकार व्यक्तिगत निर्देशन मे व्यक्ति के विषय में निम्नलिखित सामग्री एकत्रित की जाती है :—

(१) उसकी बुद्धि, मानसिक योग्यताओं, रुचियों, अभिरुचियों तथा व्यक्तित्व से सम्बन्धित सूचनायें।

(२) पारिवारिक परिस्थिति सम्बन्धी सूचनायें।

(३) सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि सम्बन्धी समस्यायें।

(४) अन्य सूचनायें।

इन सूचनाओं को एकत्रित करने के बाद इनका सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है और फिर समस्याओं को दूर करने के लिए उपचारात्मक प्रयत्न किये जाते है। इन प्रयत्नों में युक्तिपूर्ण तर्क, सुझाव, मनोविश्लेषण आदि मुख्य हैं।

इन गुणों के होते हुए भी इस विधि मे निम्नलिखित दोष है :—

१. इसमे समय अधिक लगता है। अत बहुत से व्यक्तियों को परामर्श देने के लिये बडी सख्या मे मनोवैज्ञानिको की आवश्यकता होती है।

२. इस प्रकार यह विधि अधिक खर्चीली भी है।

३. इसके *लिये पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों की आवश्यकता* होती है।

व्यक्तिगत विधि में ये दोष सामूहिक निर्देशन मे नही दिखलाई पडते क्योंकि सामूहिक निर्देशन मे अनेक लोगों को एक साथ निर्देशन दिया जाता है। यहाँ सामूहिक

सामूहिक निर्देशन विधि

निर्देशन कहने मे यह भ्रम नही होना चाहिये कि निर्देशन समूह को भी दिया जाता है। वास्तव मे निर्देशन तो व्यक्ति को ही दिया जाता है, क्योंकि वह मनोवैज्ञानिक द्वारा दी गई व्यक्तिगत सहायता है। सामूहिक निर्देशन विधि मे समूह मे निर्देशन दिया जाता है। परन्तु यह निर्देशन समूह के प्रत्येक व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने के लिये ही दिया जाता है। अन्तर केवल यह है कि सामूहिक निर्देशन मे ये समस्यायें समूह के सभी सदस्यों मे लगभग एक-सी ही होती है। स्पष्ट है कि समस्या एक-सी होने पर व्यक्तियों को अलग-अलग निर्देशन देकर समय और धन का अपव्यय करना आवश्यक नही है। अतः सामूहिक निर्देशन का महत्व निर्विवाद है। उससे समय और धन की बचत होगी।

परन्तु फिर सामूहिक निर्देशन मे उन सब गुणों का अभाव रहता है जो व्यक्तिगत निर्देशन मे दिखलाई पडते हैं। व्यक्तिगत सम्पर्क कम होने के कारण उपचारात्मक प्रयत्न उतने सफल नही हो सकते जितने कि व्यक्तिगत निर्देशन में होते हैं। सामूहिक परीक्षण दिये जाने से व्यक्ति के विषय मे उतनी अधिक यथार्थ जानकारी भी नही हो सकती जितनी व्यक्तिगत निर्देशन मे हो पाती है। अत. सामूहिक

निर्देशन केवल उन्ही परिस्थितियों में उपयुक्त होगा जहाँ समस्यायें ऐसी हो जिनमें व्यक्तिगत अन्तर बहुत कम हो और जो जटिल न हो।

व्यावसायिक निर्देशन

व्यावसायिक निर्देशन क्या है ?

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (International Labour Organisation) की आम सभा ने १९४९ मे अपनी व्यावसायिक निर्देशन सम्बन्धी सिफारिश मे व्यावसायिक निर्देशन को "व्यक्ति की विशेषताओं और व्यावसायिक अवसर (Occupational Opportunity) से उसके सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुये व्यावसायिक चुनाव और प्रगति से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने मे एक व्यक्ति को दी गई सहायता" कहा है। इस तरह व्यावसायिक निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति को व्यवसाय के द्वारा अपना निजी विकास करने और सन्तोष प्राप्त करने मे सहायता देकर राष्ट्र की जनशक्ति का पूर्ण और प्रभावशाली उपयोग होने मे सहायता देना है। राष्ट्र और व्यक्ति के लाभ के लिये हर एक व्यक्ति को अपनी योग्यताओं के अनुरूप व्यवसाय चुनना चाहिये। सभी लोग सभी तरह के काम नही कर सकते। विशेष प्रकार के कामो के लिये विशेष प्रकार की योग्यताओं की जरूरत होती है। यहां यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि इसमें निर्देशन की क्या बात है, प्रत्येक व्यक्ति स्वय यह जान सकता है कि उसकी योग्यता क्या है और उसके अनुरूप व्यवसाय चुन सकता है। परन्तु यदि देखा जाय तो वस्तु-स्थिति ऐसी नही है। साधारणतया विरले ही लोग यह जानते हैं कि उनकी योग्यता क्या है ? अधिकतर व्यक्ति या तो अपनी योग्यता के बारे में गलत अनुमान लगाते है, कम अनुमान लगाते है या अधिक अनुमान लगा लेते है। कहावत है कि मनुष्य को अपनी आख मे पड़ा तिनका नही दिखलाई पडता है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य की दृष्टि अपने दोषो पर कम जाती है। विश्वविद्यालय मे एम० ए० की परीक्षा देने वाले किसी भी विद्यार्थी से यह पूछिये कि आप एम० ए० पास करने के बाद क्या करेंगे तो यही उत्तर मिलेगा कि पहले तो आई० ए० एस० या पी० सी० एस० के कम्पीटीशन मे बैठूगा और अगर बदकिस्मती से उसमें नही आया तो फिर रिसर्च करूगा और कही प्रोफेसर बन जाऊगा, जैसे यह सब उसके अपने ही हाथ की बात हो। आप यदि उससे यह पूछना चाहे कि यदि इनमें से दोनों काम न हुये तो वह क्या करेगा तो यदि वह आपको भला बुरा न कहने लगे तो समझिये कि शिष्टाचारवश ही ऐसा हुआ है। तात्पर्य यह है कि प्रतियोगिताओं मे असफल होने वाले बहुत कम विद्यार्थी यह सोचते हैं कि उनमे प्रतियोगिता मे सफलता के लिये आवश्यक योग्यताओं का अभाव है। असफल होने पर भी कुछ लोग परीक्षकों को दोष देते हैं तो कुछ लोग अपनी किस्मत को कोसते हैं। शायद ही कोई ऐसा विद्यार्थी हो जो यह मान ले कि वास्तव मे वह उसके योग्य नही था। इसके यह अर्थ नही है कि आज की प्रतियोगितायें व्यक्तियो की योग्यता की वास्तविक परख हैं। इस उदाहरण का तात्पर्य केवल यह

है कि व्यवसाय चुनते समय साधारणतया युवक युवतियाँ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार नहीं करते। व्यावसायिक निर्देशन इसी समस्या के सुलझाव में सहायता करता है। वैज्ञानिक परीक्षाओं द्वारा परामर्शदाता व्यक्ति की योग्यताओं का सही-सही पता लगाता है और यह सलाह देता है कि उसको किस व्यवसाय में जाना चाहिये। प्रयोगों द्वारा स्थूल रूप से यह भी पता लगा लिया जाता है कि किसी व्यवसाय में किस-किस योग्यता की कितनी-कितनी आवश्यकता है। उदाहरण के लिये विभिन्न व्यवसायों में यह निश्चित करने की चेष्टा की गई है कि उनमें कितनी बुद्धि-लब्धि की आवश्यकता है। निम्नलिखित तालिका में यह बतलाया गया है कि किस व्यवसाय में जाने के लिये व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि कितनी होनी चाहिये :—

संख्या	व्यवसाय	बुद्धि-लब्धि
१	शासन कार्य तथा अन्य व्यावसायिक कार्य	१५० या अधिक
२	निम्न व्यावसायिक और औद्योगिक कार्य	१३० से १५० तक
३	क्लर्की तथा उच्च श्रेणी का कुशल कार्य	११५ से १३० तक
४	कुशल कार्य	१०० से ११५ तक
५	अर्द्ध कुशल कार्य	८५ से १०० तक
६	निर्बुद्धि कार्य	७० से ८५ तक
७	मेहनत मजदूरी का कार्य	५० से ७० तक

इसी तरह व्यवसाय से अन्य मानसिक योग्यताओं के सम्बन्ध के विषय में भी परीक्षा की गई है। उदाहरण के लिये इन्जीनियरिंग तथा अन्य औद्योगिक कार्यों में व्यक्ति में यान्त्रिक कार्य-कुशलता की आवश्यकता है। जिन लोगों में यह कुशलता बहुत कम होती है उनसे इन्जीनियरिंग या कारीगरी के काम में सफलता की आशा नहीं की जा सकती। कुछ कार्यों में जैसे घड़ी की मरम्मत, शल्य-क्रिया (Surgery) तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान आदि में व्यक्ति में बहुत बारीक कार्य करने की कुशलता होनी चाहिये। इस तरह की कुशलता के अभाव में कोई भी व्यक्ति सफल डाक्टर, घड़ीसाज या प्रयोगकर्त्ता बनने की आशा नहीं कर सकता। इसी तरह भिन्न-भिन्न व्यवसायों में भिन्न-भिन्न विशेष योग्यताओं की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि व्यावसायिक निर्देशन का कितना अधिक महत्व है। इसका अर्थ यह नहीं है कि परामर्शदाता व्यक्ति की अभिरुचि पर गौर नहीं करता। परामर्श देने में अभिरुचि का भी ख्याल रखा जाता है, परन्तु यह निश्चित है कि केवल अभिरुचि मात्र से किसी व्यक्ति को किसी कार्य में सफलता नहीं मिल सकती। इस तरह परामर्शदाता को व्यक्ति की अभिरुचि तथा योग्यता की विस्तृत जानकारी एकत्र करनी होती है और उसके आधार पर उसको व्यवसाय सम्बन्धी निर्देशन देना होता है। व्यवसाय सम्बन्धी निर्देशन यह नहीं बतलाता कि अमुक व्यक्ति को डाक्टर बनाना चाहिये और अमुक व्यक्ति को क्लर्क। वह तो एक

सुझाव मात्र है। उसकी भी अपनी सीमायें हैं। परामर्शदाता केवल यह निर्देशन देता है कि अमुक व्यक्ति में अमुक वर्ग के व्यवसाय की आवश्यक योग्यतायें अधिक है और इसलिये यदि वह उस व्यवसाय में जाये तो उसकी सफलता की सम्भावना अधिक है।

औद्योगिक मनोविज्ञान के राष्ट्रीय इन्स्टीट्यूट (National Institute of Industrial Psychology) ने व्यावसायिक निर्देशन के सम्बन्ध में सबसे पहले प्रयोग किया। व्यावसायिक निर्देशन का उद्योगों में बड़ा व्यापक प्रयोग किया गया है। हर एक कारखाने में अलग-अलग तरह के बीसों कार्य होते हैं जिनके लिये अलग-अलग योग्यता वाले व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। इन अलग-अलग कार्यों के लिये विशेष व्यक्तियों का चुनाव व्यावसायिक चुनाव (Personnel Selection) कहलाता है। यह व्यावसायिक चुनाव व्यावसायिक निर्देशन पर आधारित है। यहाँ पर व्यावसायिक निर्देशन और व्यावसायिक चुनाव में अन्तर का ध्यान रखना चाहिये। दोनों में यह मालूम करना आवश्यक है कि विशेष व्यावसायिक चुनाव के लिये व्यक्ति में कौन सी योग्यतायें होनी चाहियें, परन्तु व्यवसाय चुनाव में व्यवसाय की विशेषता समझकर उम्मीदवार व्यक्तियों में से उपयुक्त को विशेष व्यवसाय के लिये चुना जाता है। व्यावसायिक निर्देशन में व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुकूल व्यावसायिक शिक्षा अथवा व्यवसाय ग्रहण करने का परामर्श दिया जाता है। व्यावसायिक निर्देशन और व्यावसायिक चुनाव व्यावसायिक मनोविज्ञान (Vocational Psychology) की दो शाखायें हैं। ये दोनों शाखायें अन्योन्याश्रित हैं क्योंकि सही काम के लिये सही आदमी और सही आदमी के लिये सही काम की व्यवस्था करने के लिये जहाँ एक ओर व्यक्ति का विश्लेषण करने की आवश्यकता होती है वहाँ दूसरी ओर व्यवसाय के विश्लेषण (Job Analysis) की आवश्यकता पड़ती है।

व्यावसायिक चुनाव

व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया

व्यावसायिक निर्देशन के पीछे दिये गये विवरण से स्पष्ट है कि इसके लिए दो प्रकार की सामग्री एकत्रित होनी चाहिए—एक तो व्यक्ति के विषय में आवश्यक जानकारी और दूसरे व्यवसाय जगत के विषय में आवश्यक जानकारी। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन के दो पहलू हैं :—

(अ) व्यक्ति का अध्ययन।

(ब) व्यवसाय जगत का अध्ययन।

व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया

व्यावसायिक निर्देशन देने से पूर्व व्यक्ति की शिक्षा, बुद्धि, मानसिक योग्यताओं अभिरुचियों, रुचियों, शारीरिक विकास, स्वास्थ्य, स्वभाव, व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेष-

(अ) व्यक्ति का अध्ययन ताओं तथा आर्थिक स्थिति इत्यादि के विषय में पर्याप्त जानकारी होना आवश्यक है क्योंकि इनमें अन्तर से व्यावसायिक निर्देशन में भी अन्तर हो जायेगा।

(१) **शिक्षा**—भिन्न-भिन्न व्यवसायों में जाने के लिये व्यक्ति में भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा सम्बन्धी योग्यताओं की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये वकील, प्रोफेसर, इंजीनियर, डाक्टर आदि के व्यवसायों के लिये उच्च शिक्षा आवश्यक है जबकि दूसरी ओर क्लर्क, ओवरसियर, मिस्त्री, कम्पाउण्डर, अध्यापक आदि के कार्यों के लिये सामान्य शिक्षा में ही काम चल सकता है। इसके अलावा कुछ व्यवसाय ऐसे भी है जिनमें थोड़ी बहुत शिक्षा ही काफी है जैसे दूकानदारी, सेल्समैन का काम इत्यादि। भिन्न-भिन्न व्यवसायों में शिक्षा के भिन्न-भिन्न स्तर के इस महत्व के कारण ही नौकरियों के विज्ञापन में यह भी दिया रहता है कि प्रार्थी कहाँ तक शिक्षित होना चाहिये। उदाहरण के लिये हाई-स्कूल और इण्टरमीडियेट कक्षा के विद्यालयों में अध्यापक होने के लिये कम से कम ग्रेजुऐट होना जरूरी होता है जबकि डिग्री कालिजों में ग्रेजुऐट अध्यापक नहीं हो सकता। डाक्टरों के लिये डाक्टरी परीक्षाओं की डिग्रियाँ और इंजीनियरों के लिये इंजीनियरी परीक्षाओं की डिग्रियाँ जरूरी मानी जाती हैं।

(२) **प्रशिक्षण**—शिक्षा से तात्पर्य केवल डिग्री से नहीं होता। आजकल अधिकतर व्यवसायों में डिग्री के अलावा प्रशिक्षण (Training) को भी आवश्यक माना जाता है यहाँ तक कि हाई स्कूल के अध्यापक पद के लिये भी प्रशिक्षित लोग पसन्द किये जाते हैं। कुछ व्यवसायों में तो प्रशिक्षण अनिवार्य होता है, जैसे बिजली मिस्त्री का काम, कम्पाउण्डर का काम, स्टेनोग्राफर का काम, इत्यादि। आजकल व्यवसायों में प्रशिक्षण का रिवाज बढ़ता जा रहा है। कुछ व्यवसायों में भर्ती होने के बाद हर एक कर्मचारी को कुछ महीनों का प्रशिक्षण दिया जाता है और इसके बाद ही उसका काम सौंपा जाता है।

(३) **बुद्धि का स्तर**—शिक्षा सम्बन्धी योग्यताओं के साथ-साथ भिन्न-भिन्न व्यवसायों में बौद्धिक स्तर का भी अन्तर होता है। उदाहरण के लिये डाक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रोफेसर, मैनेजर, प्रशासक आदि के पद के लिए अत्यन्त उच्च बौद्धिक स्तर होना आवश्यक है। दूसरी ओर मजदूर, चपरासी अथवा घरेलू नौकर के काम के लिये कम बुद्धि से भी काम चल सकता है। अन्य व्यवसायों में सामान्य बौद्धिक स्तर होना आवश्यक है। स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति को विशेष व्यवसाय में जाने की सलाह देने से पहले यह जानना जरूरी है कि उसका बौद्धिक स्तर कैसा है ?

(४) **विशेष मानसिक योग्यतायें**—व्यक्तियों में बौद्धिक स्तर का ही नहीं बल्कि विशेष मानसिक योग्यताओं का भी अन्तर पाया जाता है। उदाहरण के लिये यान्त्रिक योग्यता सभी लोगों में नहीं होती और न सभी लोगों में एक सी शाब्दिक योग्यता होती है। भिन्न-भिन्न व्यवसायों में भिन्न-भिन्न मानसिक योग्यता की

आवश्यकता पडती है जैसे अध्यापक, वकील आदि के लिये शाब्दिक योग्यता और डाक्टर, इजीनियर के लिए यान्त्रिक योग्यता आवश्यक है। अत: व्यवसाय के चुनाव के पूर्व व्यक्ति की मानसिक योग्यताओ का भी पता लगाना आवश्यक है।

(५) अभिरुचियाँ—व्यवसाय मे सफलता उसके प्रति अभिरुचि पर भी बहुत कुछ निर्भर है। कलात्मक अभिरुचि के अभाव मे किसी भी व्यक्ति से अच्छा कलाकार होने की आशा नही की जा सकती। सामान्यतया हर एक व्यक्ति को उसी व्यवसाय मे जाना चाहिए जिसके प्रति उसमे अनुकूल अभिरुचि हो। अत: व्यावसायिक निर्देशन से पूर्व व्यक्ति की अभिरुचि का भी पता लगाना आवश्यक है।

(६) रुचियाँ—रुचि से व्यवसाय मे सफलता की आशा बढ जाती है। रुचिकर काम को लोग बहुत उत्साह और लगन मे करते है जबकि अरुचिकर व्यवसाय कितना भी उत्तम होने पर भी बोझ मालुम पडता है। काम में सफलता के लिये यह आवश्यक है कि रुचि के अनुसार काम किया जाए या मिले हुए काम मे रुचि विकसित कर दी जाय। रुचि परिवर्तनशील होती है और कभी-कभी ऐसे कामों मे भी रुचि उत्पन्न की जा सकती है जिनमे पहले से रुचि न हो, परन्तु फिर भी यदि पहले से किसी काम मे रुचि है और उसमे सम्बन्धित अन्य योग्यतायें भी व्यक्ति मे है तो उसका उसी व्यवसाय मे जाना अधिक उचित है। कहना न होगा कि व्यावसायिक निर्देशन देने से पूर्व व्यक्ति की रुचियो का पता लगाना भी आवश्यक है।

(७) शारीरिक विकास और स्वास्थ्य—यूँ तो प्रत्येक व्यवसाय मे शारीरिक विकास और स्वास्थ्य का भी कुछ न कुछ महत्व अवश्य होता है परन्तु कुछ व्यवसायो मे तो सफलता अधिकतर इन्ही पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिये सेना तथा पुलिस विभाग मे सफलता के लिये शारीरिक विकास और स्वस्थ्य भी बहुत अच्छा होना चाहिये। इसके अभाव मे व्यक्ति मे चाहे कितनी भी अन्य योग्यतायें हों उसको पर्याप्त सफलता नही मिल सकती। अत व्यवसाय का चुनाव करने मे व्यक्ति के शारीरिक विकास और स्वास्थ्य पर नजर रखना भी आवश्यक है।

(८) स्वभाव—व्यक्तियो के स्वभाव मे पर्याप्त अन्तर दिखलाई पडता है। कुछ लोग स्वभावतया अन्तर्मुखी और कुछ बहिर्मुखी होते हैं। भिन्न-भिन्न व्यवसायो में भिन्न-भिन्न स्वभाव के लोग फिट हो सकते हैं। उदाहरण के लिये दूकानदार एजेन्ट, शासक और नेता आदि बनने के लिये बहिर्मुखी स्वभाव की आवश्यकता है, जबकि दूसरी ओर अन्तर्मुखी स्वभाव के लोग कलाकार, लेखक, विद्वान, विशेषज्ञ, आदि बन सकते है। स्वभाव विरुद्ध व्यवसाय चुनने पर व्यक्ति प्रसन्न नही रह पाता और उसका काम उसे बोझ-सा लगता है। यदि व्यवसाय स्वभावानुकूल है तो व्यक्ति उसमे बडे उत्साह और लगन से लगा रहता है। अत व्यावसायिक निर्देशन देने के पूर्व व्यक्ति के स्वभाव की भी जाँच की जानी चाहिये।

(९) व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषतायें—यह एक सामान्य बात है कि प्रोफेसर, लेखक, नेता, दूकानदार, श्रमिक आदि के भिन्न-भिन्न कार्मो मे व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न

गुणो की आवश्यकता होती है। अतः व्यवसाय के चुनाव मे व्यक्ति के गुणो का भी ध्यान रखा जाता है।

(१०) **आर्थिक स्थिति**—यूँ तो व्यवसाय के चुनाव मे व्यक्ति की आर्थिक स्थिति को महत्व देना नितान्त अनुचित और अनावश्यक है। परन्तु भारत जैसे देश मे जहाँ पर छात्रवृत्तियो की व्यवस्था बहुत कम है वहा व्यवसाय के चुनाव मे आर्थिक स्थिति का भी ध्यान रखना पडता है। उदाहरण के लिये मामूली हैसियत के लोग अपने लडको को इजीनियरिंग अथवा डाक्टरी शिक्षा नही दे सकते। जो लोग आर्थिक स्थिति के निम्न होने के कारण ऊँची शिक्षा नही प्राप्त कर सकते उनको ऐसे व्यवसायो मे जाने की सलाह देना व्यर्थ है जिनमे उच्च शिक्षा की आवश्यकता होती है। अत व्यक्ति को ऐसे ही व्यवसाय मे जाने की सलाह दी जानी चाहिये जिसके लिये आवश्यक शिक्षा और प्रशिक्षण आदि के लिये उसके पास पर्याप्त आर्थिक साधन हो। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि आर्थिक स्थिति केवल कुछ परिस्थितियो मे ही किसी व्यवसाय मे जाने मे बाधक हो सकती है। ऐसे बहुत से उदाहरण है जिनमे गरीब परिवार के लोगो ने भी अपने अध्यवसाय और लगन के बल पर अत्यन्त उच्च शिक्षा प्राप्त की। सच तो यह है कि मनोवैज्ञानिक को आर्थिक स्थिति के कारण किसी व्यक्ति को किसी व्यवसाय से रोकने के बजाय उस व्यक्ति को उस व्यवसाय मे जाने के लिये छात्रवृत्ति तथा अन्य सहायता दिलाने का प्रयास करना चाहिये। भारत मे इस दिशा मे बडा अभाव है और इसीलिए बहुत से लोग केवल आर्थिक स्थिति के कारण ही अपनी योग्यताओ, रुचियो और अभिरुचियो के अनुरूप व्यवसाय मे नही जा पाते।

(१०) **अन्य आवश्यक बातें**—उपरोक्त बातो के साथ-साथ व्यावसायिक निर्देशन मे व्यक्ति के सम्बन्ध मे कुछ अन्य बातो का ध्यान रखना भी आवश्यक है। उदाहरण के लिये व्यवसाय के निर्देशन मे व्यक्ति की आयु का भी ध्यान रखना चाहिए क्योकि बहुत-सी नौकरियो मे प्रवेश पाने के लिये कम से कम और अधिक से अधिक आयु की सीमा निश्चित होती है। इससे कम या अधिक आयु होने पर व्यक्ति किसी भी तरह इन नौकरियो में नही जा सकता। अत उसको इनमे जाने की सलाह देने का प्रश्न ही नही उठता। व्यावसायिक निर्देशन मे व्यक्ति के लिंग पर भी बहुत कुछ निर्भर है क्योंकि कुछ व्यवसाय पुरुषो के लिये अधिक उपयुक्त होते हैं जबकि अन्य व्यवसाय विशेषतया स्त्रियो के लिए उपयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिये अस्पतालो में रोगियो की सेवा और परिचर्या का कार्य अधिकतर स्त्रियो को सौपा जा सकता है। दूसरी ओर सेना तथा पुलिस मे कुछ विशेष कार्यों को छोडकर अधिकतर कार्यों के लिये पुरुष ही अधिक उपयुक्त रहते हैं।

व्यक्ति के विषय मे आवश्यक जानकारी एकत्रित करने के बाद व्यावसायिक निर्देशन मे दूसरा पहलू व्यवसाय जगत का अध्ययन है। जहा मनोवैज्ञानिक को

निर्देशन पाने वाले व्यक्ति के विषय मे व्यापक जानकारी होनी चाहिये वहाँ उसे व्यवसायो के विषय मे भी व्यापक ज्ञान होना चाहिये । तभी वह उपयुक्त व्यावसायिक निर्देशन दे सकता है । मनोवैज्ञानिक को केवल यही जानना

(ब) व्यवसाय जगत का अध्ययन

जरूरी नही है कि व्यवसाय कितने और किस प्रकार के है, बल्कि यह भी जानना जरूरी है कि भिन्न-भिन्न व्यवसायों मे किस प्रकार शिक्षा, प्रशिक्षण, बुद्धि, मानसिक योग्यतायें, रुचि, अभिरुचि, व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषतायें आदि अपेक्षित हैं, उनमे कार्य करने की परिस्थितियाँ कैसी है, इत्यादि ।

आजकल भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से विभिन्न व्यवसायो के वर्गीकरण किये गये है । वर्गीकरण मे यह लाभ है कि व्यक्ति को विशेष दृष्टिकोण से ऐसे व्यवसायो का पता चल जाता है जिनमे से किसी को भी वह चुन सकता

व्यवसायों का वर्गीकरण

है । इस प्रकार जहा उसका चुनाव का क्षेत्र सीमित हो जाता है वहाँ साथ ही साथ उसको चुनने के लिए अनेक विकल्प भी मिल जाते है । अब इन विभिन्न व्यवसायो पर दृष्टि डालना उपयुक्त होगा ।

(अ) रुचि के अनुसार वर्गीकरण—रुचि के दृष्टिकोण से व्यवसायो को निम्न-लिखित वर्गों मे बाँटा गया है—

(१) बाल जीवन से सम्बन्धित व्यवसाय
(२) यान्त्रिक व्यवसाय
(३) गणनात्मक व्यवसाय
(४) वैज्ञानिक व्यवसाय
(५) प्रवर्तन सम्बन्धी व्यवसाय
(६) क्रयात्मक व्यवसाय
(७) साहित्यिक व्यवसाय
(८) संगीतात्मक व्यवसाय
(९) समाज सेवा सम्बन्धी व्यवसाय
(१०) लिपिक सम्बन्धी व्यवसाय

इनमे से हर एक वर्ग मे पाँच स्तर के व्यवसाय होते है जिनको अगले वर्गी-करण मे बतलाया गया है ।

(ब) शिक्षा स्तर, बौद्धिक क्षमता, प्रशिक्षण, आयु तथा सामाजिक सम्मान पर आधारित वर्गीकरण—व्यवसायो का यह वर्गीकरण बेकमैन (Beckman)[3] ने उपस्थित किया है । यह वर्गीकरण अग्रलिखित है—

3 Beckman, R. O., *A New Scale for Gauging Occupational Rank*, Personnel Journal, (1934) pp 225—233

(१) **प्रशासकीय, प्रबन्ध सम्बन्धी तथा प्रोफेशनल व्यवसाय** (Executive, Managerial and Professional)—इस वर्ग मे निम्नलिखित तीन प्रकार के व्यवसाय आते हैं—

(i) **भाषा सम्बन्धी**—जैसे वकील, जज, सम्पादक, लेखक, प्रोफेसर आदि।

(ii) *विज्ञान सम्बन्धी*—जैसे डाक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक, एकाउण्टेन्ट इत्यादि।

(iii) **प्रशासकीय अथवा प्रबन्ध सम्बन्धी**—जैसे विभिन्न प्रकार के प्रशासक अथवा मैनेजर इत्यादि।

(२) **व्यापार और उप-प्रोफेशनल व्यवसाय** (Business and sub-professional)—इसमे निम्नलिखित दो प्रकार के व्यवसाय आते है—

(i) **व्यापार सम्बन्धी**—जैसे व्यापारी, दूकानदार, एजेन्ट इत्यादि।

(ii) **उप-प्रोफेशनल व्यवसाय**—जैसे अभिनेता, फोटोग्राफर, डिजाइनर, इत्यादि।

(३) **कुशल व्यवसाय** (Skilled Occupations)—इनमे निम्नलिखित दो प्रकार के व्यवसाय आते हैं—

(i) **शारीरिक श्रम सम्बन्धी**—जैसे बिजली मिस्त्री, रगरेज, मशीनमैन तथा प्रेस के कुशल व्यवसाय इत्यादि।

(ii) **बौद्धिक**—जैसे क्लर्क, सुपरवाइजर, स्टैनोग्राफर, खजान्ची इत्यादि।

(४) **अर्धकुशल व्यवसाय** (Semi-Skilled Occupations)—जैसे पुलिसमैन बस कण्डक्टर, ड्राइवर, गार्ड आदि।

(५) **कुशलताहीन व्यवसाय** (Un-skilled Occupations)—जैसे मजदूर, चपरासी, चौकीदार आदि का काम।

(ब) **कार्य के स्वरूप के अनुसार वर्गीकरण**—कार्यों के स्वरूप के अनुसार व्यवसायो को निम्नलिखित चार वर्गों मे बाँटा गया है—

(१) **सामाजिक व्यवसाय**—इनमे व्यक्ति मे सामाजिक गुणो की आवश्यकता होती है क्योकि उसे तरह-तरह के लोगो से मिलना-जुलना पडता है। इनके उदाहरण हैं—वकील, नेता, दूकानदार, एजेण्ट, शासक, मैनेजर, अध्यापक इत्यादि के व्यवसाय।

(२) **हस्तकौशल वाले व्यवसाय**—इनमे यन्त्रो की सहायता से तरह-तरह के ऐसे काम करने पडते हैं जिनमे हस्तकौशल की आवश्यकता पडती है, जैसे मिस्त्री, बढई, राज, जिल्दसाज, ओवरसियर, इन्जीनियर इत्यादि के व्यवसाय।

(३) **कार्यालय से सम्बन्धित व्यवसाय**—इस वर्ग मे आफिसो से सम्बन्धित सभी तरह के काम आ जाते है जैसे मुनीम, खजान्ची, क्लर्क इत्यादि के व्यवसाय।

(४) **लिखने-पढने तथा चिन्तन से सम्बन्धित व्यवसाय**—इनमे ऐसे व्यवसाय

आते है जिनका लिखने-पढने अथवा चिन्तन से सम्बन्ध होता है, जैसे दार्शनिक, साहित्यकार, आविष्कारक, कवि, लेखक व वैज्ञानिक इत्यादि के व्यवसाय।

व्यवसायो के उपरोक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि बहुत-से व्यवसाय ऐसे होते है जो कार्य की प्रकृति, दशा, अपेक्षित कुशलता, रुचि, मानसिक योग्यताओ तथा व्यक्तित्व की विशेषताओ आदि के दृष्टिकोण से समान होते हैं। इस तरह के समान व्यवसायो को मिलाकर एक व्यवसाय परिवार (Job Family) बनता है। एक व्यवसाय परिवार मे उच्च, मध्यम तथा निम्न दोनो कार्य के स्तर (Level of work) हो सकते हैं। स्पष्ट है कि व्यावसायिक निर्देशन मे पहले तो व्यक्ति के लिये व्यवसाय परिवार चुनना पड़ेगा और फिर यह देखना होगा कि उस व्यवसाय परिवार मे वह किस स्तर का कार्य कर सकता हैं।

व्यवसाय परिवार

यहाँ पर प्रश्न उठता है कि व्यवसायों के विषय में इतनी व्यापक जानकारी प्राप्त करने के लिये साधन कौन-से होंगे ? निम्नलिखित साधनो से व्यवसायो के विषय मे जानकारी प्राप्त की जा सकती है—

व्यवसायो के विषय में ज्ञान के स्रोत

(१) पत्र-पत्रिकाओ के द्वारा
(२) सरकार द्वारा प्रकाशित सूचनाओ के द्वारा
(३) रेडियो वार्ता के द्वारा
(४) रोजगार के दफ्तरों से
(५) व्यापारिक तथा औद्योगिक सस्थाओ द्वारा प्रसारित सूचनाओ से
(६) विशेषज्ञो की वार्ताओ के द्वारा
(७) कल-कारखानो के निरीक्षण से तथा उसमे काम करने वाले लोगों से
(८) स्वय किसी व्यवसाय मे काम करके
(९) निर्देशन मनोवैज्ञानिक तथा व्यावसायिक परामर्शदाता से

उपरोक्त स्रोतो मे व्यवसाय के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् व्यवसाय चुना जा सकता है। व्यवसाय चुनने मे, जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना आवश्यक है—

व्यावसायिक चुनाव में स्मरणीय बातें

(१) कार्य की प्रकृति (Nature of work)—इसमे कार्य का प्रकार, परिवर्तन, उत्तरदायित्व, कर्तव्य, रुचि इत्यादि आते हैं।

(२) कार्य करने की दशायें (Working Conditions)—इसमे भौतिक और मनोवैज्ञानिक दोनो प्रकार की आवश्यकतायें आती हैं जिनका वर्णन आगे 'उद्योग मे मनोविज्ञान' शीर्षक अध्याय मे किया गया है।

(३) व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यक विशेषतायें (Necessary Personality Traits)—जैसे अच्छा स्वभाव, व्यवहार कुशलता, नेतृत्व शक्ति इत्यादि।

(४) बौद्धिक स्तर (Level of Intelligence)

(५) मानसिक योग्यतायें (Mental Abilities)

(६) रुचियां और अभिरुचियां (Interests and Aptitudes)

(७) आवश्यक शिक्षा और प्रशिक्षण (Necessary Education and Training)

(८) आय, पदोन्नति के अवसर पर और कार्य का स्थायित्व (Income, chances of promotion and permanency of work)

(९) प्रवेश की विधि (Procedure of Entrance)

(१०) आवश्यक शारीरिक विकास और स्वास्थ्य का स्तर (Necessary Physical Development and level of Health)

(११) सामाजिक सम्मान (Social Prestige)

(१२) व्यवसाय की माग (Demand of the Job)

इस प्रकार एक ओर व्यक्ति विश्लेषण करके और दूसरी ओर व्यवसाय विश्लेषण करके व्यवसाय का चुनाव किया जाता है। व्यक्ति विश्लेषण से मालूम होता है कि विशेष व्यक्ति मे क्या-क्या योग्यतायें और विशेषतायें हैं। व्यवसाय विश्लेषण से विशेष व्यवसाय के लिये अपेक्षित गुणों और योग्यताओं का पता लगता है। अब केवल यह काम शेष रह जाता है कि जिस व्यक्ति मे जिस व्यवसाय के उपयुक्त गुण और विशेषतायें हो उसके लिये व्यवसाय चुन लिया जाय। इस पुस्तक मे आगे 'कर्मचारी वरण' शीर्षक अध्याय मे कर्मचारी वरण के विवरण मे कर्मचारी विश्लेषण और कार्य-विश्लेषण की प्रक्रियाओं के अध्ययन से व्यावसायिक निर्देशन के ये दोनों पहलू और भी भली प्रकार समझ मे आ जायेंगे।

अन्य निर्देशनों के समान व्यावसायिक निर्देशन भी दो विधियों से दिया जा सकता है—वैयक्तिक विधि तथा सामूहिक विधि। व्यावसायिक निर्देशन विधि मे निम्नलिखित सोपान होते हैं—

व्यावसायिक निर्देशन विधि के सोपान

(१) अनुस्थापन वार्तायें—इनमे मनोवैज्ञानिकों की वार्ताओं के अलावा विशेषज्ञों द्वारा वार्तायें तथा सिनेमा, भ्रमण, निरीक्षण और व्यवसाय पुस्तिकाओं की सहायता से आवश्यक सूचनायें दी जा सकती हैं।

(२) मनोवैज्ञानिक परीक्षण

(३) विद्यालयों से तथ्यों का सकलन

(४) परिवार से तथ्यों का सकलन

(५) साक्षात्कार

(६) व्यक्ति के विषय मे प्राप्त तथ्यों का पार्श्व चित्र बनाना।

(७) प्रस्थापन—उपरोक्त सोपानों के अलावा व्यावसायिक निर्देशन मे एक आवश्यक सोपान प्रस्थापन भी है अर्थात् निर्देशन मनोवैज्ञानिक व्यावसायिक निर्देशन

देने के साथ-साथ व्यक्ति को विशेष व्यवसाय प्राप्त करने मे भी सहायता देता है। इसके लिये वह रोजगार कार्यालयो और सेवायोजको से सम्पर्क रखता है।

(८) अनुवर्ती अध्ययन।

व्यक्तिगत निर्देशन

निर्देशन का एक प्रमुख क्षेत्र व्यक्तिगत निर्देशन है। व्यक्तिगत निर्देशन, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, परामर्शदाता द्वारा उसकी निजी समस्याओ के सुलझाव के बारे मे दिया हुआ निर्देशन है। इससे व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियो से अनुकूलन करने मे सहायता मिलती है। साधारणतया कुछ न कुछ समस्याये सभी के जीवन मे आती है, परन्तु सभी लोग सभी समस्याओ को स्वय नही सुलझा पाते। जिन समस्याओ मे व्यक्ति को कोई रास्ता नही दिखलाई पडता उनमे उसको विशेषज्ञो की राय की जरूरत पडती है। मनोवैज्ञानिक ही वह विशेषज्ञ है जो व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक समस्याओं के बारे मे परामर्श दे सकता है।

व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता

उद्योगो मे कर्मचारियो की व्यक्तिगत समस्याओ को सुलझाने के लिये उन्हे व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता पडती है। व्यक्तिगत समस्याये कौन-कौन-सी हैं अथवा कितनी है, इस विषय मे कोई भी विवेचना पूर्ण नही हो सकती क्योकि जहाँ एक ही व्यक्ति के जीवन मे भिन्न-भिन्न समय पर सैकडो भिन्न भिन्न समस्याये आती है वहाँ भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के जीवन मे ये समस्याये भिन्न-भिन्न रूप लेकर आती है। इस प्रकार व्यक्तिगत समस्यायें और उनके विविध रूप इतने अधिक है कि उनका वर्णन करना लगभग असभव ही है, फिर भी मनुष्य की मुख्य व्यक्तिगत समस्याओ को अवश्य छाँटा जा सकता है। स्थूल रूप से मनुष्य की व्यक्तिगत समस्याये दो तरह की हो सकती है—(१) निजी, (२) सामाजिक। निजी समस्याओं के भी स्थूल रूप मे दो वर्ग किये जा सकते हैं—(१) शारीरिक समस्यायें, जैसे स्वास्थ्य, रोग, विकास आदि मे सम्बन्धित समस्यायें और (२) मनोवैज्ञानिक समस्यायें, जैसे—यौन समस्याये तथा अन्य मूल प्रवृत्तियो को सतुष्ट करने की समस्यायें। मनोवैज्ञानिक समस्याओ मे सवेगात्मक अनुकूलन की समस्यायें भी बडी महत्वपूर्ण है क्योकि इनके न सुलझने से सारे व्यक्तित्व पर बुरा प्रभाव पडता है। निजी से अधिक सामाजिक समस्यायें व्यक्ति को परेशान किये रहती है। सच पूछिये तो मानव जीवन जन्म से मृत्यु तक सामाजिक तथा अन्य परिस्थितियो से अनुकूलन करने की एक प्रक्रिया है। ये सामाजिक परिस्थितियाँ बराबर बदलती रहती हैं और बदलती हुई परिस्थितियो मे व्यक्ति के सामने नवीन समस्यायें आती रहती हैं। कब कौन-सी समस्या उसके व्यक्तित्व को नितान्त विघटित कर देगी इस बारे मे निश्चित रूप से कोई भविष्यवाणी नही की जा सकती। अधिकतर मनोवैज्ञानिक इस बात को मानते हैं कि मनुष्यो मे से अधिकतर व्यक्तियो को कभी न कभी किसी न किसी समस्या के बारे मे व्यक्तिगत निर्देशन की जरूरत होती है। निर्देशन के बिना भी जीवन चलता रहता है यह दूसरी बात है। जीवन तो

गरीबी, बेकारी, रोग, कलह सभी मे चलता है, परन्तु विज्ञान की सहायता से मनुष्य जीवन को श्रेष्ठतर बनाना चाहता है। मनोवैज्ञानिक का निर्देशन उन व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने मे सहायक होता है जिनके न सुलझने पर व्यक्ति का जीवन भार हो जाता है, उसका विकास कुंठित हो जाता है चाहे वह जीता भले ही रहे और बाहर से अच्छा भला भी मालूम पडे। सामाजिक अनुकूलन के कई पहलू हैं क्योंकि व्यक्ति की सामाजिक परिस्थितियों के अलग-अलग दायरे हैं। स्थूल रूप से सामाजिक समस्याओं मे घरेलू समस्यायें, यदि विद्यार्थी अवस्था है तो स्कूल की समस्यायें, व्यवसाय है तो व्यावसायिक समस्यायें तथा नैतिक और आदर्श सम्बन्धी समस्यायें भी आती हैं। इनमे घरेलू समस्यायें सबसे मुख्य और विविध हैं। इनमे माता-पिता और बालको के सम्बन्ध, पति-पत्नी के सम्बन्ध, भाई-बहन के सम्बन्ध, परिवार की आर्थिक स्थिति, सदस्यों का परस्पर अनुकूलन आदि अनेक समस्यायें आती हैं। इनमे से कोई भी समस्या किसी भी व्यक्ति को परेशान कर देने के लिये काफी है। उदाहरण के लिए पति-पत्नी के परस्पर अनुकूलन की समस्या ही कितने ही लोगों को जीवन भर क्लेश और कलह मे घुटने को मजबूर करती है।

व्यक्तिगत निर्देशन का महत्व

बहुधा व्यक्तिगत समस्याओं मे सामान्य व्यक्ति स्वयं उल्टा सीधा उपाय निकालने की चेष्टा करता है या अपने इष्ट मित्रों की सलाह लेता है या बडो से या अध्यापकों से परामर्श लेता है। यह परामर्श व्यावहारिक रूप मे काम चलाऊ होने पर भी वैज्ञानिक दृष्टि से ठीक होना कठिन है। यदि पति-पत्नी के अनुकूलन की समस्या को ही लिया जाय तो इसके बारे मे इष्ट मित्र, बडे-बूढे या अध्यापक जो बतलायेंगे उससे किसी व्यक्ति को सही मार्गदर्शन मिलना कठिन है, क्योंकि ये सब लोग अपने-अपने अनुभव के आधार पर राय देते हैं और होता यह है कि किन्ही भी दो पति-पत्नी के परस्पर सम्बन्ध एक-से नही होते। एक विशेष पति-पत्नी के सम्बन्ध की समस्या एकदम विशेष और निजी समस्या है। अन्य लोगों के उदाहरण से उसमें कुछ न कुछ सुझाव अवश्य मिल सकता है, परन्तु दूसरों के उदाहरण पर आँख बन्द करके अमल करना खतरे से खाली नही है। स्पष्ट है कि ऐसी परिस्थिति मे या तो व्यक्ति विस्तृत अध्ययन और मनोवैज्ञानिक ज्ञान के द्वारा स्वयं अपनी समस्या सुलझाये और यदि उसको इतना विशेष ज्ञान होगा ही तो फिर समस्या उठेंगी ही क्यो। अस्तु, स्पष्ट है कि इस तरह की समस्या मे व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक के विशेष परामर्श की जरूरत है। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि परामर्श समस्या को पूरी तरह हल नही कर सकता। मनोवैज्ञानिक निर्देशन केवल सुझाव के रूप मे होता है यद्यपि यह सुझाव ऊंचे वैज्ञानिक स्तर का होता है। इस सुझाव का लाभ उठाने के लिये व्यक्ति मे अपनी ही समझदारी, नमनीयता और कौशल की आवश्यकता है।

व्यक्तिगत निर्देशन मे सबसे पहली शर्त यह है कि जिस व्यक्ति को निर्देशन

देना है उसको पूरी तरह समझ लिया जाय। उस व्यक्ति को स्वय यह चाहिये कि वह अपना सारा जीवन वृत्त, तात्कालिक परिस्थिति, भावनायें, विचार, क्रियायें तथा मुख्य-मुख्य सभी बातें मनोवैज्ञानिक को विस्तार से बतला दे और इस बारे में कुछ भी छिपाने की कोशिश न करे, चाहे उसको कहने मे उसे कितना भी संकोच लगता हो क्योकि वास्तव में यह देखा गया है कि व्यवहार के मूल कारण बहुधा ऐसी ही बातो मे होते हैं जिनसे मनुष्य भागना चाहता है, जिसको वह दूसरों को बतलाना तो क्या उनके बारे में सोचना भी नहीं चाहता। सक्षेप में, व्यक्तिगत निर्देशन मे मनोवैज्ञानिक को व्यक्ति के सहयोग से तथा विभिन्न परीक्षणों की सहायता से उसके बारे मे विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। स्थूल रूप से व्यक्तिगत निर्देशन मे पाँच सोपान (Steps) होते हैं —

व्यक्तिगत निर्देशन की प्रक्रिया

१ तथ्यों को एकत्रित करना (Gathering the Facts)

२ समस्या का निदान (Diagnosis of the Problem)

३. फलानुमान (Prognosis)

४ चिकित्सा (Therapy)

५ अनुवर्ती अध्ययन (Follow-up Studies)

१ तथ्यो को एकत्रित करना (Gathering the Facts) —तथ्य एकत्रित करना व्यक्तिगत निर्देशन का सबसे महत्वपूर्ण और पहला कदम है। ये तथ्य दो तरह के हो सकते है, *एक तो उस विशेष समस्या से सम्बन्धित और दूसरा, व्यक्ति के जीवन वृत्त से सम्बन्धित।* समस्या से सम्बन्धित तथ्य भी स्थूल रूप से दो प्रकार के हो सकते है, एक तो व्यक्ति तथा उसकी विशेषताओ से सम्बन्धित और दूसरे समस्या की बाहरी परिस्थिति से सम्बन्धित। इन सभी तरह के तथ्यो की जानकारी के लिये मनोवैज्ञानिक को निरीक्षण, साक्षात्कार तथा विभिन्न परीक्षणो से काम लेना पड़ता है। साक्षात्कार केवल व्यक्ति से ही नही किया जाता बल्कि बहुधा उसके माता-पिता और अन्य निकट सम्बन्धियो तथा मित्रो आदि से भी साक्षात्कार के द्वारा उसके बारे मे बहुत-सी जानकारी प्राप्त की जाती है। साक्षात्कार मे यह जरूरी है कि मनोवैज्ञानिक कम से कम बोले, ऐसे प्रश्न करे जिनसे सही बातें निकाली जा सकती हो और जिस व्यक्ति का साक्षात्कार किया जा रहा है उसे अधिक से अधिक बोलने दे। शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन तथा व्यावसायिक निर्देशन के समान ही व्यक्तिगत निर्देशन मे भी साक्षात्कार का अवसर सूचनाओ का परिपार्श्व चित्र बनाने के बाद ही आता है। इस परिपार्श्व चित्र में व्यक्ति के परिवार, स्कूल तथा योग्यताओ के बारे में विस्तृत जानकारी एकत्रित की जाती है। इसमें सचित वृत्त, अभिभावक पत्री और अध्यापक पत्री के अतिरिक्त अनेक परीक्षणो के परिणाम भी सम्मिलित होते हैं। परिपार्श्व चित्र की रूपरेखा कुछ अग्रलिखित विवरण की तरह होती है—

(अ) शारीरिक विवरण—शारीरिक विवरण में व्यक्ति की आयु, लिंग तथा शारीरिक स्वास्थ्य के विषय मे विवरण सम्मिलित है।

(ब) पारिवारिक विवरण :—पारिवारिक विवरण मे वंश-परम्परा, माता-पिता (सगे या सौतेले, जीवित या मृत), भाई-बहिन (संख्या और आपस के सम्बन्ध), परिवार का आर्थिक स्तर, परिवार का सामाजिक स्तर तथा परिवार के सदस्यो के परस्पर सम्बन्ध आदि के बारे मे तथ्य एकत्रित किये जाते है।

(स) सामाजिक विकास का इतिहास :—इसमे विद्यार्थी का अपनी कक्षा के साथियो से सम्बन्ध तथा स्कूल के बाहर अन्य मित्रों से सम्बन्ध शामिल है। यदि परामर्श चाहने वाला व्यक्ति विद्यार्थी नही है तो उसके पडौसियो तथा परिवार से बाहर के सम्बन्धियो से उसके सम्बन्ध की भी जाँच की जायेगी।

(द) विद्यालय के जीवन का इतिहास :—इसमे विद्यार्थी के प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा कालेज और विश्वविद्यालय के जीवन का इतिहास अर्थात् परीक्षाओ के परिणाम तथा पाठ्यक्रमेतर कार्यक्रमो मे भाग लेना आदि आता है। यदि व्यक्ति विद्यार्थी नही है तो उसके परिवार से बाहर के जीवन के बारे मे जानकारी प्राप्त की जानी चाहिये। यदि वह किसी व्यवसाय या नौकरी मे लगा हुआ है तो उस बारे में विस्तृत जानकारी जैसे आय का स्तर, काम करने की परिस्थितियाँ, व्यवसाय अथवा नौकरी मे अन्य लोगो से सम्बन्ध आदि के बारे मे विस्तृत जानकारी एकत्रित करनी जरूरी है।

(इ) मानसिक योग्यतायें .—विभिन्न परीक्षणो द्वारा मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की बुद्धि के स्तर, विशेष योग्यताओं तथा अभिरुचियो आदि के बारे में सूचनायें इकट्ठी करता है।

(उ) व्यक्ति के गुण :—व्यक्तिगत समस्याओ में व्यक्तित्व के गुणो का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग होता है। अत मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की रुचियो, सवेगात्मक परिपक्वता, प्रेरणाओ, लक्ष्यो तथा आदर्शों आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करता है।

सूचनायें एकत्रित करने मे उनका रिकार्ड रखना बडी महत्वपूर्ण बात है। साक्षात्कार मे भी मनोवैज्ञानिक को चाहिये कि वह अपनी स्मरण-शक्ति पर अत्यधिक निर्भर न रहकर अधिक से अधिक बातो को लिख ले। इस काम मे व्यक्ति का सहयोग प्राप्त करना बडा जरूरी है। परामर्शदाता को चाहिये कि इस तरह नोट करे कि बतलाने वाले व्यक्ति को उसमे कोई असमजस न पैदा हो। जिन बातो को लिखने से बतलाने वाले को सकोच हो सकता है उनके लिए टेप रिकार्डर (Tape Recorder) का व्यक्ति को बतलाये बिना प्रयोग किया जा सकता है। जो बातें इस तरह की नही हैं उनमें व्यक्ति को लिखने का महत्व बतलाकर नोट किया जा सकता है। उदाहरण के लिये परामर्शदाता को चाहिये कि वह व्यक्ति की प्रशसा करे, उसको प्रोत्साहित करे और इस बात पर जोर दे कि उसके द्वारा बतलाई जाने वाली छोटी-छोटी बातें भी इतनी महत्वपूर्ण हैं कि उनका लिखना जरूरी है।

(२) समस्या का निदान (Diagnosis of the Problem)—तथ्य एकत्रित करने के बाद अब मनोवैज्ञानिक का अपना निजी काम प्रारम्भ होता है। उसको इन तथ्यों में सिलसिला ढूंढना है जिससे कि उनमें छिपे प्रतिमान (Pattern) प्रकट हो जायें। इन प्रतिमानों के प्रकट होने से समस्या के विभिन्न कारण मालूम पड़ेंगे। इस तरह प्रतिमानों का प्रकट करना ही कारणों का निदान है। यह निदान समस्या के उपचार की पृष्ठभूमि है। जितना ही अच्छा निदान होगा उतना ही सरल उपचार किया जा सकता है। बल्कि यूँ कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी कि अच्छा निदान हो जाने के बाद मनोवैज्ञानिक का आधा काम खत्म हो जाता है।

(३) फलानुमान (Prognosis)—फलानुमान, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, परामर्श के फल का अनुमान लगाना है। मनोवैज्ञानिक यह अनुमान लगाता है कि वह व्यक्ति की समस्या का समाधान कहाँ तक कर सकता है अथवा उसको उस समाधान में कहा तक सफलता मिलने की आशा है। उदाहरण के लिये किसी विद्यार्थी के गणित मे प्राप्त हुये पिछली कक्षाओं के अंकों को देखकर तथा उसकी मानसिक योग्यताओं के परीक्षण के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भविष्य में गणित मे उसकी सफलता कहाँ तक हो सकती है।

(४) चिकित्सा (Therapy)—अब चिकित्सा का अवसर आता है अर्थात् मनोवैज्ञानिक को समस्या का सन्तोषजनक उपचार करना होता है। समस्या के बारे में एकत्रित की गई सूचनाओं के परिपार्श्व पत्र को देखकर तथा मनोवैज्ञानिक से साक्षात्कार होने के बाद परामर्शेच्छु (Counselee) अपनी समस्या को बहुत कुछ तो स्वय ही समझ जाता है और कभी-कभी उसका समाधान भी निकाल लेता है। सच पूछिये तो मनोवैज्ञानिक को यह चेष्टा करनी चाहिये कि निदान के प्रतिमानों को देखकर परामर्शेच्छु स्वय अपनी समस्याओं को समझले और स्वय ही उसका निदान भी खोज निकाले। ऐसा होने पर जहाँ उसको इस बात की प्रसन्नता होगी कि उसने स्वय अपनी समस्या का हल कर लिया है वहाँ समस्या के सुलझाने में उसका उत्साह भी अधिक होगा और वह पूरे मनोयोग से काम करेगा। मनोविश्लेषण विधि में मानसिक रोगों का उपचार करने में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रॉयड यही करते थे। जब उनके रोगी अपने रोग के अचेतन कारण को समझ लेते थे तो उनका रोग बहुत कुछ दूर हो जाता था। यदि मनोवैज्ञानिक स्वय उपचार के विषय में परामर्श देता है तो इसमें यह खतरा है कि विभिन्न अभिवृत्तियों के अनुसार कुछ व्यक्ति उसकी उपेक्षा भी कर सकते हैं, परन्तु फिर भी यदि परामर्शेच्छु स्वय समस्या का उपचार समझने में असमर्थ हो तो मनोवैज्ञानिक को ही परामर्श देना होता है। ऐसी परिस्थिति में अच्छा यह है कि परामर्श उपदेश सा न मालूम पड़े, उससे व्यक्ति की किसी बुराई की ओर संकेत न किया जाये, उसको सफलता की आशा बधाई जाय और बात इस तरह रखी जाय जैसे कि वह मनोवैज्ञानिक की ओर से नहीं बल्कि परामर्शेच्छु की ओर से ही उसकी अपनी बात है।

(५) अनुवर्ती अध्ययन (Follow-up Studies)—उपचार के साथ ही व्यक्तिगत निर्देशन की समस्या समाप्त नही हो सकती क्योकि मनोवैज्ञानिक का कार्य केवल परामर्श देना ही नही है बल्कि यह देखना भी है कि उस परामर्श से वास्तव मे कितनी सफलता होती है। अत. उसको उपचार के बाद भी व्यक्ति से बराबर सम्पर्क बनाये रखना पड़ता है और इस विषय मे छानबीन करनी पड़ती है कि समस्या कहाँ तक सुलझी है। इससे जहाँ परामर्शेच्छु व्यक्ति की और भी सहायता की जा सकती है वहाँ मनोवैज्ञानिक का अपना अनुभव भी बढ़ता है क्योकि आखिरकार निर्देशन मे बहुत कुछ प्रयत्न और भूल से सीखना पड़ता है। मानव मनोविज्ञान इतना जटिल है कि उसको कुछ नियमो से नही बाधा जा सकता। निर्देशन मे सफलता मनोवैज्ञानिक के अपने अनुभव और अन्तर्दृष्टि पर निर्भर होती है तथा जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इन दोनों के विकास मे उसको अनुवर्ती अध्ययन से सहायता मिलती है। कहना न होगा कि अनुवर्ती अध्ययन के बिना व्यक्तिगत निर्देशन एकदम अधूरा है।

अनुवर्ती अध्ययन मे मुख्य रूप से निम्नलिखित पद्धतियो का प्रयोग किया जाता है—

(१) पत्रो द्वारा अनुवर्ती अध्ययन (Follow-up through letters)—जैसा कि इस विधि के नाम से स्पष्ट है, इसमे परामर्शेच्छु से पत्रो के द्वारा सम्पर्क स्थापित किया जाता है। इन पत्रो से सूचनायें तो बहुत थोड़ी मिलती है परन्तु फिर भी कुछ न कुछ सूचनाये तो प्राप्त होती ही है। जरूरत पड़ने पर इन पत्रो के आधार पर परामर्शेच्छु को और भी परामर्श दिया जा सकता है या उससे मिला जा सकता है।

अनुवर्ती अध्ययन की पद्धतियां

(२) प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)—प्रश्नावली विधि मे, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, परामर्शेच्छु को एक प्रश्नावली भेजी जाती है और उससे उसका उत्तर मगाया जाता है। इसमे प्रश्न बहुधा इस तरह के रखे जाते है जिनका उत्तर अल्प, सरल और स्पष्ट हो। बहुधा हाँ, नही मे ही उत्तर दिया जाता है। यह प्रश्नावली परामर्शेच्छु की समस्या के विभिन्न पहलुओ की प्रगति से सम्बन्धित होती है। मनोवैज्ञानिक यह मालूम करता है कि प्रगति कहाँ तक हुई है और यदि नही हुई है तो क्यो। प्रश्नावली विधि से यह लाभ है कि इससे पत्रो की अपेक्षा विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाती है परन्तु इसमे एक बड़ी कमी यह है कि बहुत कम प्रश्नावलियाँ लौटाई जाती है।

(३) कार्ड फाइल विधि (Card File Method)—इस विधि मे साक्षात्कार का विवरण अर्थात् परामर्शदाता का नाम तथा पता और परामर्शेच्छु का नाम तथा पता, साक्षात्कार के उद्देश्य और समस्या का विवरण लिखा रहता है। इसको निर्देशन विभाग के केन्द्रीय सदन मे रखा जाता है जिससे परामर्शेच्छु जब चाहे परमर्शदाता से सम्पर्क स्थापित कर सके। फाइल विधि मे टिक्लर फाइल (Tickler File) का भी

उपयोग किया जाता है। टिकलर फाइल मे परामर्शदाता अपनी मेज पर या खुली अलमारी मे हर एक परामर्शेच्छु की एक फाइल रखता है और उसमे उससे दोबारा सम्पर्क स्थापित करने की तिथियाँ लिख ली जाती है। यह फाइल परामर्शदाता के लिये है। यह उसको अपने पिछले परामर्शित व्यक्तियो से सम्पर्क स्थापित करने को उत्तेजित (Tickle) करती है।

उपरोक्त तीनो विधियाँ विशेष रूप से प्रचलित है और लाभदायक है। इन मुख्य विधियों के अलावा कुछ और भी विधियाँ है जिनसे परामर्शदाता और परामर्शेच्छु मे सम्पर्क स्थापित किया जाता है। उदाहरण के लिये अमेरिका मे कभी-कभी परामर्शदाता टेलीफून से ही परामर्शेच्छु व्यक्ति से बहुत-सी बाते पूछ लेते हैं।

सारांश

निर्देशन की आवश्यकता—व्यावहारिक जीवन की अनेक कठिनाइयों को लोग स्वयं नहीं सुलझा सकते। अतः उन्हे मनोवैज्ञानिक के निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

निर्देशन क्या है—निर्देशन किसी भी व्यक्ति को उसकी समस्याओं को सुलझाने में परामर्श के रूप मे मनोवैज्ञानिक की निजी सेवा है।

भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से निर्देशन का वर्गीकरण इस प्रकार है—

(अ) समस्याओं के अनुसार निर्देशन का वर्गीकरण—(१) व्यावसायिक निर्देशन, (२) शैक्षिक निर्देशन, (३) मनोरंजनात्मक निर्देशन, (४) नागरिकता निर्देशन, (५) सामुदायिक सेवा निर्देशन, (६) सामाजिक और नैतिक निर्देशन, (७) स्वास्थ्य निर्देशन, (८) नेतृत्व निर्देशन।

प्रस्तुत अध्याय में निर्देशन को तीन भागों में बाँटा गया है—(१) शैक्षिक, (२) व्यावसायिक, (३) वैयक्तिक। ये तीनो प्रकार परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं।

(ब) निर्देशन विधि के अनुसार वर्गीकरण—(१) वैयक्तिक निर्देशन, (२) सामूहिक निर्देशन।

व्यावसायिक निर्देशन

व्यावसायिक निर्देशन क्या है—व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति को व्यावसायिक चुनाव और प्रगति से सम्बन्धित समस्याओ को सुलझाने में उनकी विशेषताओं और अवसरो को ध्यान में रखते हुये दी गई सहायता है।

व्यावसायिक निर्देशन के दो पहलू हैं—(१) व्यक्ति का अध्ययन, (२) व्यवसाय जगत का अध्ययन।

(१) व्यक्ति का अध्ययन—इसमे व्यक्ति के विषय में इन बातो की जानकारी आवश्यक है—(१) शिक्षा, (२) प्रशिक्षण, (३) बुद्धि का स्तर, (४) विशेष मानसिक योग्यतायें, (५) अभिरुचियाँ, (६) रुचियाँ, (७) शारीरिक विकास

और स्वास्थ्य, (८) स्वभाव (९) व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषतायें, (१०) आर्थिक स्थिति, (११) अन्य आवश्यक बातें।

(२) व्यावसायिक जगत का अध्ययन—इनमें विभिन्न व्यवसायों के विषय में व्यापक जानकारी प्राप्त की जाती है।

व्यवसायों के वर्गीकरण—(अ) रुचि के अनुसार वर्गीकरण, (ब) शिक्षा स्तर बौद्धिक क्षमता, प्रशिक्षण, आयु तथा सामाजिक सम्मान पर आधारित वर्गीकरण—(१) प्रशासकीय प्रबन्ध सम्बन्धी तथा प्रोफेशनल व्यवसाय, (२) व्यापार तथा उपप्रोफेशनल व्यवसाय, (३) कुशल व्यवसाय, (४) अर्द्धकुशल व्यवसाय, (५) कुशलताहीन व्यवसाय। (स) कार्य के स्वरूप के अनुसार वर्गीकरण—(१) सामाजिक व्यवसाय, (२) हस्तकौशल वाले व्यवसाय, (३) कार्यालय से सम्बन्धित व्यवसाय, (४) लिखने-पढ़ने तथा चिन्तन से सम्बन्धित व्यवसाय।

व्यवसायों के विषय में ज्ञान के स्रोत—(१) पत्र-पत्रिकायें, (२) सरकारी सूचनायें, (३) रेडियो वार्तायें (४) रोजगार के दफ्तर, (५) व्यापारिक और औद्योगिक संस्थायें, (६) विशेषज्ञों की वार्तायें (७) कल-कारखाने, (८) स्वयं किया हुआ काम, (९) निर्देशन मनोवैज्ञानिक।

व्यावसायिक निर्देशन में स्मरणीय बातें—(१) कार्य की प्रकृति, (२) कार्य की दशायें, (३) व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यक विशेषतायें, (४) बौद्धिक स्तर, (५) मानसिक योग्यतायें, (६) रुचियां और अभिरुचियां, (७) शिक्षा और प्रशिक्षण (८) आय, पदोन्नति और स्थायित्व (९) प्रवेश की विधि, (१०) शारीरिक विकास और स्वास्थ्य, (११) सम्मान, (१२) मान।

व्यावसायिक निर्देशन विधि के सोपान—(१) अनुस्थापन वार्तायें, (२) मनोवैज्ञानिक परीक्षण, (३) विद्यालय के तथ्यों का संकलन, (४) परिवार के तथ्यों का सकलन, (५) साक्षात्कार, (६) पार्श्व-चिन्ह, (७) प्रस्थापन, (८) अनुवर्ती अध्ययन।

वैयक्तिक निर्देशन—

वैयक्तिक निर्देशन क्या है—वैयक्तिक निर्देशन परामर्शदाता द्वारा व्यक्ति को अपनी निजी समस्याओं के सुलझाने के बारे में दिया हुआ निर्देशन है। निजी और सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में इससे बड़ी सहायता मिलती है।

व्यक्तिगत निर्देशन प्रक्रिया के सोपान—(१) तथ्यों को एकत्रित करना (अ) शारीरिक विवरण, (ब) पारिवारिक विवरण, (स) सामाजिक विकास का इतिहास, (द) विद्यालय के जीवन का विकास, (इ) मानसिक योग्यतायें, (उ) व्यक्तित्व के गुण। (२) समस्या का निदान, (३) फलानुमान, (४) चिकित्सा, (५) अनुवर्ती अध्ययन।

अनुवर्ती अध्ययन की विधियां—(१) पत्रों द्वारा अनुवर्ती अध्ययन, (२) प्रश्नावली विधि, (३) कार्ड फाइल विधि।

अभ्यास के लिए प्रश्न

प्रश्न १. मनोविज्ञान से हमें अपने व्यवसाय में किस प्रकार सहायता मिलती है ? अपने उत्तर को उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए ?

Q. 1 How can Psychology help us in our vocation ? Give suitable illustrations in support of your answer.

प्रश्न २. व्यावसायिक निर्देशन के प्रमुख तत्व क्या हैं ? एक व्यक्ति को कब अपना व्यवसाय चुनना चाहिए ?

Q. 2 What are the chief factors in vocational guidance ? When should a person choose his vocation ?

प्रश्न ३. व्यावसायिक निर्देशन तथा व्यावसायिक चयन में स्पष्ट भेद बताइए। इन दोनों के योग से व्यक्ति-नियोजन (Personal selection) की समस्या किस प्रकार सुलझती है ?

Q. 3. Make a clear difference between vocational guidance and vocational selection Show how both of them together solve the problem of personal selection

८

कार्य का परिवेश

(Work Environment)

भिन्न-भिन्न कारखानो मे, दफ्तरो मे तथा अन्य व्यवसायो मे कर्मचारी के कार्य करने की कुछ दशाये होती है। उदाहरण के लिए उसको एक विशेष मात्रा के प्रकाश मे, एक विशेष स्थान पर कोई विशेष काम करना पडता है। कार्य के स्थान की हवा कैसी है अर्थात् वहाँ स्वच्छ हवा का उचित प्रबन्ध है या नही, इससे कर्मचारी के स्वास्थ्य पर बडा प्रभाव पडता है। कार्य करने के स्थान पर प्रकाश का कैसा प्रबन्ध है इससे कर्मचारी के नेत्रो की ज्योति के साथ-साथ उसकी थकान और उसकी कार्यक्षमता तथा उसके कार्य के गुण पर प्रभाव पडता है। यह सभी लोग जानते हैं कि कभी-कभी शोर काम मे बाधक होता है। इसलिये कार्य की दशाओ मे यह भी देखा जाता है कि कार्य के स्थान पर कितना शोर रहता है। कुछ विशेष तापमान व्यक्ति की कार्यक्षमता के लिये हानिकारक होते है और कुछ विशेष तापमान मे वह अधिक अच्छा काम कर सकता है। इसलिये कार्य की दशाओ मे तापमान का भी अध्ययन किया जाता है। इन भौतिक दशाओ के अलावा बहुत सी मनोवैज्ञानिक दशायें भी कर्मचारी को और उसके कार्य को प्रभावित करती है जैसे अधिकारियो का व्यवहार, कर्मचारियो के परस्पर सम्बन्ध, कर्मचारियो का पारिवारिक जीवन, कार्य मे प्रलोभन इत्यादि।

कार्य के परिवेश

इस प्रकार कार्य करने के परिवेश को दो भागो मे बाटा जा सकता है—

(१) भौतिक दशायें (Physical Conditions),

(२) मनोवैज्ञानिक दशाये (Psychological Conditions)।

कार्य के भौतिक परिवेश मे मुख्य दशायें निम्नलिखित है—

(१) प्रकाश की तीव्रता, स्थिति, वितरण और रग (Intensity, Location, Distribution and Colour of Light)

(२) तापमान (Temperature)

(३) वायु सचार (Ventilation)

(४) कोलाहल (Noise)

(५) कार्य के घण्टे (Working Hours)

(६) कार्य के बीच मे आराम (Rest Pauses)

(७) संगीत (Music)

(८) अन्य भौतिक दशायें (Other Physical Conditions)

कार्य के मनोवैज्ञानिक परिवेश मे मुख्य दशायें निम्नलिखित है—

(१) अधिकारियों का व्यवहार (Behaviour of the Authorities)

(२) कर्मचारियो के परस्पर सम्बन्ध (Mutual Relations of the Employees)

(३) सुरक्षा (Security)

(४) आवश्यकताओ की पूर्ति (Satisfaction of Needs)

(५) प्रलोभन (Incentives)

कार्य की भौतिक दशायें

(Physical Conditions of Work)

अब कार्य के भौतिक परिवेश की विभिन्न दशाओं का सक्षेप मे वर्णन किया जायेगा—

(१) प्रकाश—प्रकाश की व्यवस्था मे निम्नलिखित कारक महत्वपूर्ण है —

(i) प्रकाश की तीव्रता—भिन्न-भिन्न कामो मे और भिन्न-भिन्न आयु के लोगो के लिये प्रकाश की तीव्रता भिन्न-भिन्न तरह की होनी चाहिये। साधारण रूप मे ३५ वर्ष से अधिक आयु के लोगो को अपेक्षाकृत अधिक तीव्र प्रकाश की आवश्यकता पडती है। इसी प्रकार यदि कार्य बारीक है तो उसमे भी प्रकाश तीव्र होना चाहिये। कम आयु के लोगो को और मोटे काम मे तीव्र प्रकाश की जरूरत नही है। प्रकाश कभी भी इतना तीव्र नही होना चाहिये कि उससे चकाचौंध उत्पन्न हो और न कभी इतना मन्द होना चाहिये कि उसमे काम करने से आंखो पर जोर पडे। जिन कामो मे तीव्र प्रकाश की जरूरत पडती है उनमे नेत्रो की रक्षा करने के लिये विशेष तरह के चश्मे इस्तेमाल किये जा सकते हैं।

(ii) प्रकाश की स्थिति—प्रकाश की स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि प्रकाश सीधे आँखो पर न पडे बल्कि उस यन्त्र पर पडे जिससे काम लिया है परन्तु यन्त्र पर भी ऐसा प्रकाश नही पडना चाहिये जिससे कि चकाचौंध पैदा हो। इसलिये प्रकाश का समान रूप से वितरण होना चाहिये। समान वितरण के लिये बल्ब के प्रकाश की अपेक्षा ट्यूब (Tube) का प्रकाश अधिक अच्छा रहता है।

(iii) प्रकाश का वितरण—दिन मे प्रकाश स्वयं ही समान रूप से वितरित होता है। जहाँ रात्रि मे काम किये जाते हैं वहाँ प्रकाश के वितरण पर विशेष रूप से ध्यान रखने की जरूरत है।

(iv) प्रकाश का रंग—प्रकाश की तीव्रता, स्थिति और वितरण के साथ-साथ उसके रग के सम्बन्ध मे भी ध्यान रखना जरूरी है। इस बारे मे एक सामान्य सिद्धात यह है कि जो प्रकाश दिन के प्रकाश से जितना ही अधिक मिलता-जुलता होगा वह

उतना ही अच्छा रहेगा। इसलिये सफेद प्रकाश सर्वोत्तम माना गया है। रंगीन प्रकाश मे केवल हल्का पीला प्रकाश उत्तम है। अन्य सभी प्रकार के प्रकाश आँखो को कुछ न कुछ हानि पहुंचाते हैं।

(२) **तापमान**—काम करने के स्थान के तापमान का कर्मचारी के शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पडता है। आवश्यकता से अधिक और आवश्यकता से कम तापमान होने पर बीमारियाँ और दुर्घटनाये बढ जाती है। उचित तापमान होने पर श्रमिको का स्वास्थ्य अच्छा रहता है और दुर्घटनायें भी कम होती है। एच० एम० वर्नन (H. M. Vernon) ने ब्रिटेन के खान मजदूरो के विषय मे यह पता लगाया कि ७५ डिग्री (७५°F) से अधिक तापमान होने पर अधिक दुर्घटनायें होती हैं। तापमान का दूसरा प्रभाव कर्मचारियो की अनुभूति पर भी पडता है। अधिक या कम तापमान होने पर कर्मचारी को तकलीफ महसूस होती है जिससे कि उसके कार्य के गुण और मात्रा मे कमी आ जाना स्वाभाविक है। तापमान का कमरे में वायु के सचार पर भी प्रभाव पडता है। कमरे मे वायु का सचार ठीक होने के लिये भी यह आवश्यक है कि कमरे मे उपयुक्त तापमान हो।

(३) **वायु संचार**—काम करने के स्थान पर शुद्ध हवा का आना बहुत जरूरी है। ऐसा न होने पर कर्मचारियो मे सुस्ती और थकान बढने लगती है। खानो में, कल कारखानो मे और उन दफ्तरो मे जहां बहुत से लोग बहुत समय तक काम करते है वायु काफी दूषित हो जाती है। इसके लिये वायु को बाहर फेंकने वाले पखो का प्रयोग किया जाना चाहिए। काम करने के स्थान पर यातायात का पर्याप्त इन्तजाम होना चाहिए। वायु मे आक्सीजन की मात्रा कम होने पर उसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है। पौफेनबर्जन (Poffenberger) के अनुसार, जब वायु मे आक्सीजन की मात्रा १४ प्रतिशत से कम होने लगती है तभी उसमे काम करने वालो पर बुरा प्रभाव पडने लगता है। वायु सचार का शरीर के तापमान पर प्रभाव पडता है। वायु सचार ठीक न होने पर त्वचा का तापमान भी ठीक नही रह पाता जिससे सुस्ती और थकावट बढती है। इस सम्बन्ध मे वायु की नमी की मात्रा का भी ध्यान रखना जरूरी है। आवश्यकता से अधिक नमी होने पर उसका बुरा प्रभाव पड सकता है।

(४) **कोलाहल**—अत्यधिक शोर या जरूरत से ज्यादा कोलाहल आमतौर से ध्यान बटाता है और काम मे बाधा डालता है। इसलिये आजकल सभी उद्योगो में कोलाहल की मात्रा का अध्ययन किया जाता है और आवश्यकता से अधिक कोलाहल को नियन्त्रित करने का उपाय किया जाता है। परन्तु कभी-कभी बराबर होने वाला कोलाहल कार्य मे कोई बाधा नही डालता, बल्कि उल्टे कोलाहल के भग होने से ध्यान भग होता है। वास्तव मे बात यह है कि केवल बहुत जोर का कोलाहल ही काम मे बाधक होता है और उसका कानो पर भी बुरा प्रभाव पडता है। इन सब बातो को ध्यान मे रखकर कोलाहल का नियन्त्रण किया जाना चाहिये।

(५) **कार्य के घण्टे**—जिन व्यवसायो मे कार्य के घण्टे इतने अधिक होते है कि

कर्मचारी अत्यधिक थक जाते है और उनकी क्षमता दिन पर दिन घटने लगती है उनमे मानवीय सम्बन्धो मे तरह-तरह की समस्यायें दिखाई पड़ती है। मजदूर की शक्ति से अधिक काम के घण्टे होने से उसका स्वास्थ्य और सामर्थ्य घट जाते हैं और वह चिड़चिडा भी हो जाता है। इसलिए आजकल हर एक प्रगतिशील देश मे सरकार नियम बनाकर भिन्न-भिन्न व्यवसायो मे और भिन्न-भिन्न आयु के कर्मचारियो के लिये तथा विभिन्न लिंग के कर्मचारियों के लिये कार्य के अधिकतम घण्टे निश्चित कर देती है। इनसे अधिक काम लेना या तो गैर-कानूनी माना जाता है या उसके लिये श्रमिक को अतिरिक्त पारिश्रमिक देने की व्यवस्था की जाती है। इन नियमो का उल्लंघन करने पर व्यवसायो के मालिको को दण्ड दिया जाता है।

(६) **कार्य के बीच में आराम**—कोई भी आदमी, चाहे उसकी सामर्थ्य कितनी भी अधिक क्यो न हो, लगातार बहुत घण्टो तक काम नही कर सकता। कुछ घण्टे कार्य करने के बाद हर एक को आराम की जरूरत पड़ती है। प्रयोगो से यह मालूम हुआ है कि लगातार काम करने की अपेक्षा काम के बीच-बीच में आराम लेकर काम करने से काम अधिक अच्छा और अधिक मात्रा मे होता है। काम के बीच मे आराम देने से उत्पादन मे दस से बीस प्रतिशत की वृद्धि पाई गई है। इस काम मे कितने समय के बाद, किस व्यक्ति को कितने आराम की जरूरत है, यह व्यक्ति की सामर्थ्य और काम की प्रकृति पर निर्भर है। कठिन कामों में आसान कामों की अपेक्षा शीघ्र और अधिक समय तक आराम की जरूरत है। इसी तरह स्त्रियो, बालकों और बूढो को अपेक्षाकृत शीघ्र और अधिक आराम की आवश्यकता होती है। आजकल साधारणतया हर एक व्यवसाय मे काम के बीच मे एक या दो बार १५ मिनट से लेकर एक घण्टे तक का अवकाश दिया जाता है जिससे कि कर्मचारी जलपान, भोजन आदि ले सके और आराम कर सके। काम के बीच मे अवकाश देने से थकान तो दूर होती ही है, साथ ही साथ ऊब भी कम हो जाती है और काम मे रुचि तथा उत्साह बढते है।

(७) **संगीत**—आजकल काम की दशाओ मे सगीत की भी गिनती की जाती है। केर (W. A. Keir) तथा स्मिथ (H. C. Smith) ने अपने प्रयोगो से यह निष्कर्ष निकाला कि सगीत से कर्मचारी की मानसिक स्थिति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और उत्पादन में भी कुछ न कुछ वृद्धि होती है। यू भी काम करने वालो को, विशेष रूप से मजदूरों को, काम करते हुए गाते देखा जा सकता है। भारतवर्ष मे स्त्रियां चक्की पीसते समय, खेतो मे काम करते समय तथा अन्य अवसरो पर गाती हुई देखी जा सकती है। सगीत मे लय का काम की गति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। भारतवर्ष मे टाटा स्टील कारखाने मे सगीत की व्यवस्था है। पश्चिमी देशो मे विशेषकर अमेरिका में कारखानो मे सगीत का प्रयोग बराबर बढ़ता जा रहा है। स्मिथ (H C. Smith) ने अपनी प्रश्नावली के द्वारा एक हजार श्रमिकों का सगीत के सम्बन्ध मे मत सग्रह किया। इससे मालूम हुआ कि ९८ प्रतिशत कर्मचारी काम के

घण्टों मे सगीत से आनन्द प्राप्त करते हैं। काम पर सगीत के प्रभाव के सम्बन्ध मे अभी बराबर अनुसंधान किये जा रहे है।

(८) **अन्य भौतिक दशाये**--उपरोक्त भौतिक दशाओ के अलावा अन्य भौतिक दशाओ का भी कर्मचारियो पर प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिये यदि शौचालय, मूत्रालय, स्नानागार, जल-पानगृह, कैन्टीन आदि की व्यवस्था हो तो कर्मचारियो के कार्य का समय अधिक रोचक हो जाता है और उनकी बहुत सी परेशानियां भी दूर हो जाती है। कार्य करने के स्थान पर बदबू नही होनी चाहिये। गदगी और धूल का कर्मचारियो की मन स्थिति पर बुरा प्रभाव पडता है।

मनोवैज्ञानिक परिवेश
(Psychological Environment)

कार्य के मनोवैज्ञानिक परिवेश की दशाओं का प्रभाव निम्नलिखित है—

(१) **अधिकारियों का व्यवहार**—अधिकारियो के व्यवहार का कर्मचारियो की मन:स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। यदि व्यवहार अच्छा रहा तो कर्मचारियो मे उत्साह और आनन्द बना रहता है। यदि व्यवहार बुरा हुआ तो बहुधा अधिकारियो और कर्मचारियो मे झगडा होने की नौबत आ जाती है और कुछ न कुछ तनातनी बराबर बनी रहती है। यह आवश्यक नही है कि अच्छे व्यवहार के लिये कर्मचारियो से ढिलाई के साथ काम लिया जाय, क्योकि ऐसी हालत मे सुस्त और मक्कार कर्मचारी निश्चिन्त ही कम कार्य करेंगे। इसलिये अधिकारियो को कर्मचारियो के काम पर बराबर नजर रखनी चाहिये। परन्तु उनकी गलतियाँ बतलाने मे बडी चतुरता से काम लेना चाहिये। जो लोग कर्मचारियो को बराबर डाँटते फटकारते हैं उनका कर्मचारियो से बहुधा सघर्ष होता रहता है। अधिकारी के चापलूसी पसन्द, क्रोधी अथवा चिडचिडे होने पर कर्मचारी मन लगाकर काम नही करते। अधिकारियों का व्यवहार अच्छा होने पर कर्मचारी तो प्रसन्न रहते ही है साथ-साथ उत्पादन का गुण और मात्रा भी बढती है।

(२) **कर्मचारियो के परस्पर सम्बन्ध**--कार्य करने की मनोवैज्ञानिक दशाओ से कर्मचारियों के परस्पर सम्बन्ध पर भी प्रभाव पड़ता है। जहाँ एक से अधिक कर्मचारी काम करते है वहाँ पर उनके सम्बन्ध अच्छे होने पर काम मे उत्साह और आनन्द बना रहता है। सम्बन्ध खराब होने पर काम की हानि होती है और सामूहिक उत्तरदायित्व वाले काम तो बहुत ही पिछड जाते है।

(३) **व्यवसाय में सुरक्षा**—व्यवसाय मे सुरक्षा का कर्मचारी की मन.स्थिति पर बडा प्रभाव पडता है। जिस व्यवसाय मे कोई सुरक्षा न हो, जिसमे यह पता न हो कि मालिक कब नौकरी से निकाल देगा उसमे कर्मचारी कैसे दिल लगाकर काम कर सकता है और काम मे उसका उत्साह कैसे बना रह सकता है? अत: व्यवसाय मे सुरक्षा बडी जरूरी है। एक निश्चित समय के बाद सभी कर्मचारियों को उनके व्यवसाय पर स्थाई रूप से नियुक्त कर देना चाहिये। आजकल अधिकतर देशो मे

सरकार ने इस सम्बन्ध मे कानून भी बना रखे है। व्यवसाय की सुरक्षा के अलावा बेकारी मे सुरक्षा, बुढापे मे सुरक्षा और अपाहिज हो जाने की दशा मे सुरक्षा भी महत्वपूर्ण है। आजकल सभी प्रगतिशील देशो मे सरकार और सेवा योजको की ओर से इस प्रकार की सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध होता है। ऐसा न होने पर कर्मचारी को भविष्य की चिन्ता लगी रहती है और वह अपने को असहाय समझता है।

(४) **आवश्यकताओं की पूर्ति**—हर एक व्यक्ति की निजी और अपने परिवार सम्बन्धी कुछ आवश्यकतायें होती हैं। उसको और उसके बच्चो को रोटी कपडा चाहिये, मकान चाहिये तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्याप्त धन चाहिए। इसके अलावा आत्म-सम्मान आदि की आवश्यकताओ की पूर्ति भी जरूरी है। आजकल प्रगतिशील देशो मे सेवायोजको को इस दिशा मे भी कर्मचारियो का ध्यान रखना पडता है। इसके लिये उनको कर्मचारियो के कल्याण की अनेक योजनाये चलानी पडती है। इन योजनाओं मे कुछ रुपया तो अवश्य खर्च होता है परन्तु इनसे कर्मचारियो को बडा लाभ होता है। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होने से वे मालिको का सम्मान करते है। उनका सुख और आनन्द बना रहता है और वे जी लगाकर काम करते है। उनको मालिको मे विश्वास रहता है और इसीलिये वे ऐसे काम नही करते जिनसे मालिको को नुकसान हो।

(५) **उद्योग मे प्रलोभन**—मनुष्य के जीवन मे प्रेरणाओ का बडा महत्व है। प्रेरणा के बगैर न तो कोई अधिक परिश्रम कर सकता है और न अपने काम को बेहतर बनाने की कोशिश कर सकता है। उद्योग और व्यवसाय मे इस तरह की प्रेरणा नाना प्रकार के प्रलोभनो से मिलती है, जैसे वेतन वृद्धि, अधिकारियों द्वारा प्रशंसा, पदोन्नति अथवा लाभांश (Bonus) दिलाना। आजकल उद्योग मे प्रलोभनो का भी विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रगतिशील देशो मे अधिकतर उद्योगो मे उत्पादन बढने पर श्रमिको को लाभांश दिया जाता है। अधिकतर व्यवसायो मे अच्छा काम दिखाने पर कर्मचारी की पदोन्नति की जाती है। समझदार अधिकारी लोग कर्मचारियो के अच्छे काम की सदैव प्रशसा करते है। विशेष अच्छा काम दिखाने पर कर्मचारी का वेतन भी बढाया जाता है।

उद्योग और व्यवसाय मे ऊपर बतलाई गई भौतिक और मनोवैज्ञानिक सभी दशाओ का बडा महत्व है। आजकल मनोवैज्ञानिको ने इस ओर उद्योगपतियों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया है। केवल आर्थिक दृष्टि के ही नही बल्कि मानवता की दृष्टि से भी यह जरूरी है कि कर्मचारियो को अच्छी भौतिक और मनोवैज्ञानिक दशाओ मे काम करने का अवसर मिले। देश के नागरिक होने के नाते कर्मचारियो के लिये इस प्रकार की व्यवस्था सरकार द्वारा भी कराई जानी चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था होने पर उद्योग के क्षेत्र मे सघर्ष घटते है और उत्पादन बढता है जिससे कर्मचारी, सेवा योजक (Employer) और सरकार सभी को लाभ होता है।

पदोन्नति के अवसर
(Chances of Promotion)

हर एक कर्मचारी यह चाहता है कि उसको समय-समय पर पदोन्नति के अवसर दिये जायें। पदोन्नति का अर्थ, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, ऊंचा पद मिलना या दिया जाना है। हर एक व्यवसाय में नौकरियों की अनेक श्रेणियां (Grades) होती है जिनमे एक क्रम (Order) होता है। उदाहरण के लिये प्रशासकीय सेवाओ में तहसीलदार से ऊंचा डिप्टीकलक्टर का पद और डिप्टी-कलक्टर से ऊंचा कलक्टर का पद होता है। इसी प्रकार कलक्टर से ऊपर कमिश्नर और कमिश्नर से ऊपर गवर्नर होता है। इसी प्रकार सेना में लेफ्टिनेन्ट, कैप्टेन, कर्नल, मेजर, जनरल इत्यादि विभिन्न पद होते हैं। हर एक व्यवसाय में ऊंचे पदाधिकारी का वेतन भी अधिक होता है और अधिकार भी अधिक होते हैं। इसलिये स्वाभाविक है कि हर एक कर्मचारी अपने से ऊंचा पद प्राप्त करना चाहता है।

पदों की श्रेणियां और क्रम

परन्तु पदोन्नति का अर्थ केवल ऊंचा पद मिलना ही नहीं है। यद्यपि आमतौर से पदोन्नति का अर्थ ऊंचा पद मिलने से लगाया जाता है परन्तु वेतन मे वृद्धि, अधिक अवकाश, कार्य करने की उन्नत दशायें तथा सम्मान वृद्धि आदि को भी पदोन्नति मे गिना जाना चाहिये। वाल्टर्स (Walters) ने निम्नलिखित ८ प्रकार की पदोन्नति का वर्णन किया है—[1]

पदोन्नति के प्रकार

(१) वेतन या पारिश्रमिक मे वृद्धि,
(२) पद, अधिकार या उत्तरदायित्व मे वृद्धि,
(३) काम करने के समय मे कमी या अवकाश मे वृद्धि,
(४) उत्तम स्थान या विभाग मे तबादला,
(५) काम करने या रहने की परिस्थिति मे उन्नति,
(६) अधिक प्रशिक्षण और अनुभव के अवसर मिलना,
(७) पद तथा लाभ की अधिक सुरक्षा,
(८) सेवा काल की वृद्धि।

इस प्रकार यदि कर्मचारी का वेतन या पारिश्रमिक बढा दिया जाय तो उसकी पदोन्नति मानी जायेगी। पदोन्नति मे उसको ऊंचा पद, अधिकार या अधिक जिम्मेदारी दी जा सकती है। उसका काम करने का समय कम किया जा सकता है। दूसरे शब्दो मे, उसका अवकाश बढाया जा सकता है। पदोन्नति के रूप मे किसी व्यक्ति का किसी अच्छी जगह या अच्छे विभाग मे तबादला किया जा सकता है। तबादले वाली नौकरियों मे पदोन्नति की यह रीति ही सबसे अधिक प्रचलित है। अधिकतर दफ्तरो मे किसी के अच्छे काम को देखकर उसके काम करने की परिस्थिति

1 Walters J E. *Applied Personal Administration*, Wiley, (1931), p. 97

में उन्नति की जा सकती है अथवा उसके रहने की परिस्थिति में उन्नति की जा सकती है। अच्छा काम दिखाने वाले कर्मचारियों को प्रशिक्षण पाने और अनुभव करने के अवसर दिये जाते हैं। प्रशिक्षण और अनुभव बढने से कर्मचारी को पदोन्नति के और भी अवसर मिलते है। लगभग सभी नौकरियो मे नियुक्ति के बाद एक निश्चित समय तक अच्छा काम दिखाने पर कर्मचारी के पद को स्थायी और सुरक्षित कर दिया जाता है। व्यवसाय की सुरक्षा के रूप मे भी पदोन्नति दी जा सकती है। अच्छा काम दिखाने पर कुछ कर्मचारियो का सेवा काल बढा दिया जाता है। बहुत से लोगों को रिटायर होने की आयु आने के बाद भी काम करने का अवसर दिया जाता है।

पदोन्नति के उपरोक्त रूपो में भिन्न-भिन्न कर्मचारी भिन्न-भिन्न व्यवसाय मे भिन्न-भिन्न रूप को महत्व देते हैं। कुछ लोग आर्थिक लाभ को सबसे अधिक महत्व देते है। कुछ लोग सम्मान वृद्धि को उससे ऊंचा समझते है। दूसरी ओर कुछ लोग इन दोनो से काम करने की परिस्थितियो में उन्नति को महत्व देते हैं। यह आवश्यक नही है कि एक विशेष प्रसग मे पदोन्नति उपरोक्त रूपो में से कोई एक ही दी जाय। बहुधा पद बढने के साथ-साथ अधिकार, जिम्मेदारी और वेतन भी बढते है और कार्य करने की परिस्थितियाँ भी उन्नत होती है। इस प्रकार बहुधा पदोन्नति के उपरोक्त रूपो में से कर्मचारी को एक से अधिक मिलते हैं।

पदोन्नति के आधार

हर एक व्यवसाय मे चुनाव और नियुक्ति के समान ही पदोन्नति के कुछ निश्चित नियम होते है। उदाहरण के लिये अधिकतर व्यवसायो मे वरिष्ठता (Seniority) के आधार पर समय-समय पर हर एक कर्मचारी की पदोन्नति होती रहती है। परन्तु लगभग सभी नौकरियो मे पदोन्नति करने में कर्मचारी की वरिष्ठता के साथ-साथ उसकी योग्यता का भी ध्यान रखा जाता है। कभी-कभी तो योग्यता के आधार पर कुछ लोगो को वरिष्ठ कर्मचारियो से भी ऊँचा स्थान दे दिया जाता है। निजी व्यवसायो मे योग्यता के साथ-साथ काम को भी बडा महत्व दिया जाता है। कर्मचारियों के अधिक और अच्छा काम करने पर मालिक को लाभ होता है। अतः वह आसानी से उसका वेतन बढा सकता है या उसको लाभ मे अधिक हिस्सा दे सकता है। परन्तु कुछ व्यवसायो और सरकारी विभागो मे जहाँ पर कि स्वय मालिक काम को कभी नही देखता या जहाँ पर कोई व्यक्ति मालिक नही है या जहाँ पर मालिक अत्यधिक खुशामद-पसन्द है, वहाँ पदोन्नति काम, योग्यता या वरिष्ठता से नही बल्कि अधिकारियो की खुशामद से होती है। जिन व्यवसायो मे पदोन्नति के कोई निश्चित नियम नही होते वहाँ पदोन्नति अधिकारियो की मेहरबानी पर निर्भर होती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पदोन्नति मुख्य रूप से अग्रलिखित बातो पर निर्भर होती है :—

(१) वरिष्ठता (Seniority),
(२) योग्यता (Ability),
(३) अच्छा और अधिक कार्य (Better and more Work),
(४) अधिकारियों की मेहरबानी (Kindness of the Authorities)।

(१) वरिष्ठता से पदोन्नति—अधिकतर व्यवसायों में और नौकरियों में हर साल कर्मचारियों का वेतन कुछ न कुछ बढ़ता रहता है। इस प्रकार वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति सब कहीं दी जाती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति होना बहुत आवश्यक है। हर एक कर्मचारी यह चाहता है कि उसके कार्यकाल को देखकर उसको नये लोगों से ऊँचा पद दिया जाय। जहाँ पर वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति के विषय में कोई निश्चित नियम नहीं होता वहाँ कर्मचारियों में असन्तोष बढ़ने लगता है और वे काम में कम उत्साह दिखलाते हैं। साथ ही साथ वे किसी एक व्यवसाय पर लग कर काम करने की कोशिश नहीं करते। इससे व्यवसाय को भी हानि पहुँचती है क्योंकि काम सीखने में हर एक आदमी को कुछ समय लगता है और यदि पुराने लोग बराबर छोड़ते रहें और नये लोग आते रहें तो काम का नुकसान होगा। इसीलिये हरएक व्यवसाय में वरिष्ठता के साथ वेतन बढ़ता है और बहुत से व्यवसायों में वरिष्ठता के साथ पद भी बढ़ता है। परन्तु वरिष्ठता को पदोन्नति का एकमात्र आधार समझना गलत है। जिस तरह वरिष्ठ व्यक्ति ऊँचा पद चाहता है उसी तरह अधिक योग्य कर्मचारी भी ऊँचा पद चाहता है। यदि उसको योग्यता के आधार पर ऊँचा पद न मिले और उसे वर्षों तक उसके लिये इन्तजार करना पड़े या कम योग्य वरिष्ठ कर्मचारी को वह पद दे दिया जाय तो उसमें असंतोष बढ़ता है। वह उतना मन लगाकर काम नहीं करता और अपने अयोग्य वरिष्ठ अधिकारी का अनुशासन भी नहीं मानता। इसलिये वास्तव में वरिष्ठता के साथ-साथ पदोन्नति में योग्यता का भी ध्यान रखा जाना चाहिये।

(२) योग्यता के आधार पर पदोन्नति—पदोन्नति का दूसरा मुख्य आधार योग्यता है। योग्यता के आधार पर कुछ लोग अपने व्यवसायों में थोड़े समय में ऊँचे से ऊँचे पद प्राप्त कर लेते हैं। किसी भी व्यवसाय में केवल वरिष्ठता के आधार पर कोई भी व्यक्ति निम्नतम पद से उच्चतम पद पर नहीं पहुँच सकता। इसके लिये योग्यता की जरूरत है। परन्तु ऐसा नहीं है कि वरिष्ठता का कोई महत्व ही न हो। बहुत से व्यवसायों में अनुभव का भी बहुत महत्व होता है। दूसरे, वर्षों तक सच्चाई और ईमानदारी के साथ काम करने के बाद हरएक कर्मचारी स्वभावतया पदोन्नति चाहता है और यदि उसको पदोन्नति नहीं मिलती तो उसमें असन्तोष बढ़ता है। वरिष्ठता और योग्यता में से पदोन्नति के चुनाव के लिये कौन सी कसौटी अच्छी है, इस विषय में कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता। साधारण रूप से वरिष्ठता के साथ वेतन बराबर बढ़ता रहना चाहिये। किन्तु अधिक जिम्मेदारी या व्यापक अधिकार वाले ऊँचे पद सौंपे जाने से पहले व्यक्ति की योग्यता का ध्यान रखना भी बड़ा जरूरी है।

(३) **काम के आधार पर पदोन्नति**—हरएक व्यवसाय और नौकरी मे अधिकारी लोग यह चाहते है कि कर्मचारी अच्छे से अच्छा काम करे। निजी व्यवसायो मे तो मालिक कर्मचारियो से केवल एक ही बात चाहता है और वह है अधिक और अच्छा काम। इसलिये निजी व्यवसायो मे बहुधा उसी के आधार पर पदोन्नति दी जाती है। पदोन्नति की यह रीति साधारणतया सभी जगह अच्छी सिद्ध होती है क्योकि एक तो इससे अधिक और अच्छा काम करने वालो का उत्साह बढता है और दूसरे लोगो के सामने अधिक और अच्छा काम करने का प्रलोभन उपस्थित होता है। इससे एक को देखा-देखी अन्य लोग भी अधिक और अच्छा काम करने की कोशिश करते है।

(४) **मेहरबानी से पदोन्नति**—अधिकारियो की मेहरबानी पदोन्नति का सबसे गलत और बुरा आधार है यद्यपि आजकल इसका बहुत अधिक रिवाज है। सरकारी नौकरियो मे तथा अर्ध-सरकारी नौकरियो मे अधिकतर बडे अफसरो की खुशामद करने वाले, उनकी दावते करने वाले, उनको और उनके घर वालो को समय-समय पर भेट देने वाले तथा अन्य प्रकार से लाभ पहुचाने वाले कर्मचारियो को सबसे पहले और सबसे अधिक पदोन्नति मिलती है। इसके बिना योग्य, अधिक तथा अच्छा काम करने वाला वरिष्ठ कर्मचारी भी वर्षो अपने पद पर पडा सडता रहता है इससे दूसरे कर्मचारियो के सामने भी गलत उदाहरण उपस्थित होता है और वे काम करने की जगह अधिकारियो की खुशामद मे लगे रहने की अधिक कोशिश करते हैं।

पदोन्नति की रीति

पदोन्नति के उपरोक्त आधारो से पदोन्नति की रीति भी मालूम पडती है। वास्तव मे जिस तरह नियुक्ति के समय कर्मचारी का चुनाव करना पडता है। उसी तरह पदोन्नति के समय भी चुनाव करना पडता है। दोनो ही दशाओ मे बडी समझदारी और कुशलता से चुनाव किया जाना चाहिये। आमतौर से कर्मचारी की नियुक्ति मे जितनी सावधानी से काम लिया जाता है उसकी पदोन्नति मे उतनी सावधानी नही बरती जाती। बहुधा वरिष्ठता के आधार पर ही पदोन्नति मे चुनाव होता है। पदोन्नति की यह विधि सबसे अधिक प्रचलित है। योग्यता के आधार पर पदोन्नति देना भी एक अच्छी रीति है। पदोन्नति की तीसरी उत्तम रीति काम की मात्रा और गुण को देखकर पदन्नोति करना है। परन्तु केवल अपनी खुशी से, अपनी इच्छा से, सिफारिशो से, खुशामद से खुश होकर या अपने किसी स्वार्थ के कारण पदोन्नति देना सर्वथा अवांछनीय है। पदोन्नति की यह रीति एकदम गलत है। यह अवैज्ञानिक है, अनैतिक है और हानिकारक भी है।

पदोन्नति का महत्व

पदोन्नति का हर एक व्यवसाय मे बडा महत्व है। उसका औचित्य इस मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है कि काम, योग्यता या वर्षों तक सेवा के आधार पर हर एक कर्मचारी पदोन्नति चाहता है। पदोन्नति प्रलोभन का काम करती है। पदोन्नति मिलने से कर्मचारियो का उत्साह बढता है और वे और भी अच्छा और अधिक काम करने की कोशिश करते है। पदोन्नति के बारे मे निश्चित नियम होने से कर्मचारियो मे आत्म-

विश्वास और सुरक्षा की भावना बनी रहती है। वे निश्चित नियमों के अनुसार पदोन्नति की चेष्टा में लगे रहते हैं और पदोन्नति न मिलने पर भी असन्तुष्ट नहीं होते बल्कि दुगने उत्साह से कोशिश करते हैं। इसलिये हरएक व्यवसाय में पदोन्नति के नियम निश्चित और स्पष्ट होने चाहिये जिससे किसी को कोई शिकायत न हो। वरिष्ठता, योग्यता और काम की अधिक मात्रा और गुण पदोन्नति का औचित्य स्थापित करते हैं। परन्तु खुशामद या किसी स्वार्थ के आधार पर दी गई पदोन्नति सर्वथा अनुचित है। इससे कर्मचारियों में प्रेरणा मारी जाती है और काम ठीक से नहीं होता। स्पष्ट है कि पदोन्नति हरएक व्यवसाय में मालिक और कर्मचारी दोनों के लिये कितनी महत्वपूर्ण है। मालिक उसके आधार पर अच्छे कर्मचारियों का चुनाव कर सकता है और उसे काम में लाभ होता है। कर्मचारी की काम में प्रेरणा बनी रहती है और वह अपना काम और भी अधिक और अच्छा करने की कोशिश करता है। परन्तु पदोन्नति का लाभ तभी होता है जबकि उसके नियम निश्चित हों और सभी कर्मचारियों को स्पष्ट हों। पदोन्नति का आधार सही, उचित और वैज्ञानिक होने पर ही उससे पूरा लाभ हो सकता है।

सारांश

कार्य के परिवेश को दो वर्गों में बांटा जा सकता है—भौतिक दशायें और मनोवैज्ञानिक दशायें। भौतिक दशाओं में प्रकाश की तीव्रता, स्थिति, वितरण और रंग, तापमान, वायु संचार, कोलाहल, कार्य के घण्टे, कार्य के बीच में आराम, संगीत तथा अन्य भौतिक दशायें सम्मिलित हैं। मनोवैज्ञानिक परिवेश में अधिकारियों का व्यवहार, कर्मचारियों के परस्पर सम्बन्ध, सुरक्षा, आवश्यकताओं की पूर्ति और प्रलोभन आते हैं। भौतिक और मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार के परिवेश कार्य को प्रभावित करते हैं।

पदोन्नति—मनोवैज्ञानिक परिवेश में उद्योग में प्रलोभन में पदोन्नति सम्मिलित है। इससे कार्य को प्रोत्साहन मिलता है। पदोन्नति की विधि और प्रकार से काम करने की दशाओं में परिवर्तन हो जाता है। पदोन्नति से अनेक प्रकार के लाभ होते हैं जिनमें वेतन वृद्धि और अधिकारों में वृद्धि सम्मिलित है। पदोन्नति के विभिन्न रूपों के महत्व में अन्तर है। पदोन्नति का पूरा लाभ तभी होता है जबकि उसके नियम न्याय पर आधारित होते हैं। उसका आधार सही, उचित और वैज्ञानिक होना चाहिए।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. कार्य के वातावरण को प्रभावित करने वाले शारीरिक तथा मानसिक तत्वों में विभेद स्पष्ट कीजिये तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन कीजिए।

Q. 1. Distinguish between the physiological and psychological factors of working environment and discuss their interrelationship. (Agra 1967, 63)

प्रश्न २. औद्योगिक वातावरण के भौतिक पक्षो की सूची बताइये और उनमे से किन्ही दो के कार्य क्षमता पर होने वाले प्रभाव की पूर्ण चर्चा कीजिए।

List the physical aspects of industrial environment that affect efficiency of work and discuss any two of them fully.

(Vikram 1968)

प्रश्न ३. एक उद्योग मे कार्यकर्ताओ के 'भौतिक वातावरण' तथा "मानसिक वातावरण" मे स्पष्ट रूप से प्रभेद कीजिये।

Distinguish clearly between the 'mental environment' and material environment of workers in an industry (Agra 1960)

प्रश्न ४. कार्य परिस्थिति के शारीरिक एव मनोवैज्ञानिक तत्वों मे भेद बताइये तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना कीजिये। उपयुक्त उदाहरण दीजिये।

Distinguish between the physiological and psychological factors of working environment and discuss their inter-relationship. Give suitable illustrations. (Agra 1963)



९

व्यावसायिक प्रवरण : कार्य विश्लेषण और कर्मचारी विश्लेषण

(Vocational Selection : Job Analysis and Worker's Analysis)

आधुनिक मनोविज्ञान ने यह भली-भाति सिद्ध कर दिया है कि लोगो की योग्यतायें, व्यक्तित्व के गुण, सामर्थ्य तथा रुचियां एक दूसरे से भिन्न-भिन्न होती हैं।

व्यावसायिक प्रवरण की समस्या

दूसरी ओर विभिन्न उद्योगो मे भिन्न-भिन्न कामो के लिए कुछ विशेष योग्यताओ, व्यक्तित्व के गुणो और रुचियो की जरूरत होती हैं। इसलिये यह जरूरी हो जाता है कि विशेष काम के लिये विशेष प्रकार की योग्यता और गुण रखने वाले व्यक्ति का चुनाव किया जाये। इस प्रकार व्यावसायिक प्रवरण (Vocational Selection) की समस्या उपस्थित होती है। व्यावसायिक प्रवरण की समस्या के दो पहलू हैं, एक तो नकारात्मक (Negative) और दूसरा स्वीकारात्मक (Positive)। नकारात्मक पहलू मे किसी विशेष काम के लिए प्रार्थी लोगो मे से अनुपयुक्त व्यक्तियो को छाटकर अलग कर देना पडता है। स्वीकारात्मक पहलू मे प्रार्थियो मे से उपयुक्त व्यक्तियों को चुनना पडता है। इस चुनाव मे प्रार्थियो की रुचियो, आवश्यकताओ, योग्यताओ और अभिरुचियो आदि पर नजर रखनी पडती है।

व्यावसायिक प्रवरण क्यों आवश्यक है?

यह व्यावसायिक प्रवरण क्यो किया जाता है, इसका मुख्य कारण व्यक्तिगत भिन्नता (Individual Difference) का तथ्य है। अनेक प्रयोगो से यह मालूम हुआ है कि आनुवंशिकता (Heredity) के भेद से लोगो की योग्यताओ मे बहुत अन्तर पड जाता है। कुछ योग्यतायें जन्मजात होती हैं और प्रशिक्षण से उनमे अधिक अन्तर नही किया जा सकता। इसी प्रकार मनुष्य की अभिरुचियाँ, मानसिक झुकाव आदि उसके बचपन के कुछ वर्षो मे ही दिखाई पडने लगते हैं और न्यूनाधिक रूप मे बड़े होने पर भी वैसे ही रहते हैं। इन अभिरुचियो का व्यक्तिगत जीवन मे बडा महत्व होता है। आमतौर से जिस व्यक्ति की जिस ओर अभिरुचि और मानसिक झुकाव होता है वह उसी काम को अधिक अच्छी तरह कर सकता है। सभी लोग कुशल इन्जीनियर नही बन सकते और न सभी लोग कुशल मैनेजर

बन सकते है। कुछ बालको मे शुरू से ही हस्तकौशल और विज्ञान की ओर अच्छी रुचि दिखलाई पडती है। ऐसे ही बालक आगे चलकर वैज्ञानिक अथवा इन्जीनियर बन सकते है। इन सब मनोवैज्ञानिक तथ्यो से स्पष्ट है कि यह सोचना गलत है कि चाहे जिस आदमी को चाहे जिस काम पर लगाया जा सकता है और प्रशिक्षण देकर चाहे जिस काम के योग्य बनाया जा सकता है। इसलिये आजकल उद्योग के क्षेत्र मे व्यावसायिक प्रवरण का सब कहीं रिवाज है।

व्यावसायिक प्रवरण के दो पहलू

व्यावसायिक प्रवरण के कार्य के दो पहलू है। एक ओर तो इसमे उद्योग के हर एक काम का विवेचन करके और विश्लेषण करके यह पता लगाया जा सकता है कि उसके लिये कर्मचारियो मे किन-किन योग्यताओ की जरूरत पडती है। दूसरी ओर उम्मीदवारो मे से हर एक की परीक्षा करके यह निश्चय किया जाता है कि उसमे कौन-कौन सी योग्यतायें हैं। पहला काम कार्य विश्लेषण (Job Analysis) और दूसरा काम कर्मचारी विश्लेषण (Worker's Analysis) कहलाता है। व्यावसायिक प्रवरण की प्रक्रिया को अच्छी तरह से समझने के लिये उसके इन दो पहलुओ को विस्तार से समझना जरूरी है।

कार्य विश्लेषण
(Job Analysis)

कार्य विश्लेषण के उद्देश्य

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कार्य विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य व्यावसायिक प्रवरण होता है। परन्तु उसके कुछ अन्य उद्देश्य भी हो सकते हैं जैसे कार्य विधि में सुधार, कर्मचारियो को प्रशिक्षण, कर्मचारियो की पदोन्नति, दुर्घटना रोकना और स्वास्थ्य रक्षा आदि।

कार्य विश्लेषण क्या है ?

कार्य विश्लेषण की परिभाषा करते हुये ब्लम (Blum) ने लिखा है, "एक कार्य विश्लेषण एक कार्य के विभिन्न तथ्यों का सूक्ष्म अध्ययन है। उसका सम्बन्ध केवल कार्य के कर्तव्यो और दशाओ के विश्लेषण से ही नहीं होता है बल्कि कर्मचारी की व्यक्तिगत विशेषताओ से भी होता है।"[1] जैसा कि कार्य विश्लेषण की इस परिभाषा से स्पष्ट है, इससे यह मालूम पड़ता है कि विशेष कार्य अथवा व्यवसाय मे व्यक्ति के क्या कर्तव्य होगे और उसे कैसी परिस्थितियों मे काम करना पडेगा। उससे यह भी मालूम पडता है कि भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये कर्मचारियों मे कौन-कौन सी व्यक्तिगत विशेषतायें होनी चाहियें। हैकेट (Hackett, I. D.) के अनुसार कार्य विश्लेषण के अन्तर्गत "कार्य के मूल तत्वों का निर्धारण और स्पष्टीकरण हो जाता है साथ ही कर्मचारी मे अपेक्षित योग्यता का भी पता

चल जाता है जिससे वह उस कार्य को सफलतापूर्वक कर सके।"[1] अतः स्पष्ट है कि कार्य विश्लेषण के दो पहलू है, एक तो कार्य के कर्तव्यो और दशाओ का विश्लेषण और दूसरे उसके लिये कर्मचारी मे अपेक्षित योग्यताओ का विश्लेषण।

कार्य विश्लेषण के लाभ

कार्य विश्लेषण के अनेक लाभ हैं। जेरगा (Zerga) ने कार्य विश्लेषण से सम्बन्धित ४०१ लेखो के आधार पर कार्य विश्लेषण के बीस लाभ अथवा उपयोगितायें बतलाई हैं। कार्य विश्लेषण से कार्य कुशलता बढती है। कार्य विश्लेषण से कर्मचारियो में सद्भावना बढती है क्योकि उपयुक्त कार्य मिलने से हर एक प्रसन्न रहता है। कार्य विश्लेषण से यह निश्चित किया जा सकता है कि उस कार्य के लिये कर्मचारी को क्या पारिश्रमिक मिलना चाहिये। कार्य विश्लेषण से व्यवसायो का वर्गीकरण किया जाता है और उनके लिये आवश्यक विशेषताओ और योग्यताओ को निश्चित किया जा सकता है। कार्य विश्लेषण से यह निश्चित किया जा सकता है कि किस काम मे कर्मचारी को कितने समय तक किस तरह के प्रशिक्षण की आवश्यकता है। कार्य विश्लेषण से हर एक कार्य के कर्तव्य निश्चित होते है। उसमे हर एक कार्य मे कर्मचारियो के उत्तरदायित्व निश्चित होते हैं।

कार्य के विभिन्न अवयव

अब सबसे पहले कार्य विश्लेषण मे कार्य के विभिन्न अवयवों (Components) के सम्बन्ध मे उल्लेख किया जायेगा। इस सम्बन्ध मे एकत्रित की जाने वाली सूचनाओ के शीर्षक निम्नलिखित है—

(१) कार्य का नाम (Identification of the Job)
(२) कर्मचारियो की सख्या (Number of Employees)
(३) कर्तव्यो का विवरण (Statement of Duties)
(४) काम मे आने वाले यन्त्र (Machines Used)
(५) क्रियाओ का विश्लेषण (Analysis of Operations)
(६) कार्य की दशायें (Conditions of Work)
(७) वेतन और प्रलोभन (Pay and Incentives)
(८) अन्य समान व्यवसायो से सम्बन्ध मे कार्य का स्थान (Relation to other Allied Jobs)
(९) स्थानान्तरण और पदोन्नति के अवसर (Opportunities for Transfer and Promotion)

1. "A Job analysis is an accurate study of the various components of a job. It is concerned not only with an analysis of the duties and conditions of work, but also with the individual qualifications of the worker." —M L. Blum

(१०) प्रशिक्षण का काल और उसकी प्रकृति
(Time and Nature of Training)

(११) व्यक्तिगत योग्यतायें (Personal Requirements)
(क) सामान्य-आयु, लिंग, राष्ट्रीयता, वैवाहिक स्थिति आदि
(General Age, Sex, Nationality, Marital Status etc.)
(ख) शारीरिक (Physical) योग्यता
(ग) शैक्षिक (Educational) योग्यता
(घ) पूर्व अनुभव (Previous Experience)
(ङ) सामान्य तथा विशेष मानसिक योग्यतायें
(General and Special Abilities)
(च) स्वभाव एव चरित्र सम्बन्धी योग्यतायें
(Temperamental and Character Requirements)

जैसा कि उपरोक्त सूची से स्पष्ट है, कार्य विश्लेशण मे कार्य के बारे मे सूचनाओं का विस्तारपूर्वक सग्रह किया जाता है।

कार्य विश्लेषण मे अनेक विधियो का प्रयोग किया जाता है। मुख्य विधियाँ निम्नलिखित हैं—

कार्य विश्लेषण की विधियां

(१) वैयक्तिक मनोरेखाकन विधि (Individual Psychographic Method)
(२) प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)
(३) कार्य मनोरेखाकन विधि (Job Psychographic Method)
(४) परीक्षण विधि (Job Analysis by Test)
(५) गति अध्ययन विधि (Motion Study Method)

अब इन विधियो का सक्षिप्त वर्णन किया जायेगा—

(१) वैयक्तिक मनोरेखाकन विधि—इस विधि मे विशेष कार्य मे सफल किसी कर्मचारी की मानसिक विशेषताओ का पता लगाया जाता है। इन विशेषताओं की एक सूची बनाई जाती है और उनको ग्राफ (Graph) कागज पर चित्रित किया जाता है। इससे भविष्य मे उस कार्य के लिये कर्मचारी चुनने मे सहायता मिलती है।

(२) प्रश्नावली विधि—प्रश्नावली विधि मे, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, कार्य से सम्बन्धित व्यक्तित्व के विभिन्न गुणो के आधार पर कुछ प्रश्नो की एक सूची बना ली जाती है। इस सूची को उस कार्य को करने वाले कर्मचारियो को दे दिया जाता है और उनसे उसके उत्तर लिखने के लिये कहा जाता है। जो उत्तर मिलते हैं उनके आधार पर कार्य मे आवश्यक विशेषताओ की एक सूची बना ली जाती है। अब इसकी सहायता से भविष्य मे उस कार्य के लिये कर्मचारियो को नियुक्त किया जा सकता है।

(३) **कार्य मनोरेखांकन विधि**—वाइटलीज (Viteles) के अनुसार कार्य मनोरेखाकन विधि मे तीन बातें आवश्यक हैं—

(अ) मानसिक गुणो का सुगम वर्गीकरण।
(ब) प्रामाणिक मूल्यांकन टेकनीक।
(स) प्रदिक्षित निरीक्षको द्वारा प्रत्यक्ष पर्यावलोकन।

इस प्रकार इस विधि मे कुछ विशेषज्ञ निरीक्षण कार्य का विश्लेषण करते हैं। वे एक प्रामाणिक मूल्याकन टैकनीक निकालते हैं। वे एक ऐसी सूची बनाते हैं जिसमे कार्य के लिये आवश्यक सभी मानसिक गुणों का सुगम वर्गीकरण दिया रहता है। इन गुणो का एक रेखा-चित्र बना लिया जाता है जिससे कर्मचारियो के चुनाव मे सहायता मिलती है।

(४) **परीक्षण विधि**—परीक्षण विधि मे विशेष कार्य मे आवश्यक योग्यताओं को लेकर कुछ विश्वसनीय और प्रामाणिक परीक्षायें बना ली जाती है। इन परीक्षाओ की सहायता से कर्मचारियो का चुनाव किया जाता है।

(५) **गति अध्ययन द्वारा कार्य विश्लेषण**—इस विधि से विशेष काम मे कर्मचारी की गति और उस पर लगा समय नोट किया जाता है। इस प्रकार मे भिन्न-भिन्न कर्मचारियो की गति और समय को नोट करके उनकी तुलना सुगम की जाती है। गति और समय के इस अध्ययन से कार्य विश्लेषण और कर्मचारियो के वरण मे सहायता मिलती है।

कार्य विश्लेषण मे उपरोक्त विधियो मे से किसी भी एक या अधिक से परिस्थिति के अनुसार काम लिया जा सकता है।

कर्मचारी विश्लेषण
(Worker's Analysis)

कर्मचारी विश्लेषण में आवश्यक तत्व

व्यावसायिक प्रवरण मे दूसरा पहलू कर्मचारी विश्लेषण का है। कर्मचारी विश्लेषण मे, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, प्रार्थी कर्मचारी के गुण, योग्यतायें, अनुभव तथा अन्य बातो के बारे मे विस्तृत विवरण एकत्रित किया जाता है। स्थूल रूप से कर्मचारी विश्लेषण मे निम्न-लिखित बातो की जानकारी की जाती है—

(१) कर्मचारी की आयु (Age)
(२) कर्मचारी की जाति (Caste)
(३) कर्मचारी का लिंग (Sex)
(४) कर्मचारी की राष्ट्रीयता (Nationality)
(५) शारीरिक स्वास्थ्य तथा शारीरिक विशेषतायें (Physical Health and characteristics)
(६) कर्मचारी की शिक्षा और प्रशिक्षण (Fducation and Training)
(७) कर्मचारी का अनुभव (Experience)

(८) कर्मचारी की बुद्धि का स्तर (Level of Intelligence)

(९) कर्मचारी की मानसिक योग्यतायें तथा उनका स्तर (Mental Abilities and their level)

(११) कर्मचारी की रुचियाँ तथा अभिरुचियाँ (Interests and Aptitudes)

(१२) कर्मचारी को व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषतायें (Personality Traits)

कर्मचारी के सम्बन्ध मे उपरोक्त जानकारी एकत्रित करने से यह निश्चित किया जा सकता है कि वह किस तरह के कार्य के योग्य है और किस तरह के कार्य के योग्य नही है। कर्मचारी विश्लेपण से यह भी मालूम होता है कि विशिष्ट व्यक्ति को विशेष व्यवसाय मे जाने के लिये कितने समय के और किस प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता है। कर्मचारी विश्लेपण से इस बात का भी कुछ न कुछ अनुमान लगाया जा सकता है कि विशेष कर्मचारी को विशेष काम के लिये कितना पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए। कर्मचारी विश्लेपण व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताओ का चित्र उपस्थित करता है। इसलिये इसको व्यक्ति विश्लेपण (Individual Analysis) भी कहा जाता है।

कर्मचारी विश्लेपण आजकल वैज्ञानिक स्तर पर किया जाता है। इसलिए इसमे कुछ विशेष विधियाँ इस्तेमाल की जाती हैं। स्थूल रूप से कर्मचारी विश्लेपण की मुख्य विधियाँ (Methods) निम्नलिखित हैं—

कर्मचारी विश्लेषण की विधियां

(१) आवेदन रिक्त पत्र (Application Blank)

(२) संस्तुति पत्र (Letters of Recommendation)

(३) शैक्षिक आलेख (Academic Records)

(४) मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Tests)

(५) शारीरिक परीक्षण (Physical Tests)

(६) सामूहिक परीक्षण (Group Tests)

(७) मूल्यांकन (Rating)

(८) साक्षात्कार (Interview)।

यह आवश्यक नही है किसी कर्मचारी की योग्यताओ का विश्लेपण करने के लिये उपरोक्त सभी विधियो का इस्तेमाल किया जाय। विशेष परिस्थिति के अनुसार इनमे से किसी भी विधि का इस्तेमाल किया जा सकता है। अब इन सब विधियो को संक्षेप मे समझ लेना प्रासंगिक होगा।

(१) आवेदन रिक्त पत्र—आजकल कर्मचारी विश्लेपण मे सबसे पहले कर्मचारी को एक आवेदन रिक्त पत्र भरना पडता है। इस आवेदन रिक्त पत्र के द्वारा विभिन्न प्रकार की सूचनाओ का पता लगाया जाता है। कभी-कभी तो इससे व्यक्ति का पूरा पिछला इतिहास ही पता लगा लिया जाता है। आवेदन-पत्र मे उम्मीदवार अपनी आयु, लिंग, जाति, राष्ट्रीयता, पिछला अनुभव, शिक्षा का स्तर, प्रशिक्षण, व्यक्तिगत इतिहास आदि के विषय मे सूचनायें देता है। आवेदन-पत्र मे किस तरह की सूचनायें दी जानी जरूरी हैं यह भिन्न-भिन्न व्यवसायों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार

से निश्चित किया जाता है। जिन व्यवसायो मे कर्मचारी की अभिरुचियो, मानसिक झुकाव, रूचि आदि का भी महत्व होता है उनमे आवेदन-पत्र मे उनके विषय मे भी लिखना होता है। बहुत से सेवा योजक यह विस्तारपूर्वक नही बतलाते कि कर्मचारी को आवेदन-पत्र मे किन-किन बातों का उल्लेख करना है। व्यवसाय के विज्ञापन मे वे केवल दो चार बातें ही लिखकर छोड देते हैं। इस तरह का आवेदन-पत्र वैज्ञानिक नही होता। आवेदन-पत्र मे हर एक आवश्यक बात के बारे मे विस्तारपूर्वक उल्लेख होना चाहिये। इस दिशा मे अनुसन्धान करने से अलग-अलग व्यवसायो के उपयुक्त आवेदन-पत्रो की रूपरेखा बनाई जा सकती है और उनके अनुसार प्रार्थियों को भरने के लिये आवेदन-पत्र के रिक्त पत्र (Blank Forms) दिये जा सकते हैं। बहुधा आवेदन-पत्र मे लिखे गए तथ्यो के पक्ष मे प्रमाण-पत्र भी पेश करने पड़ते है।

(२) **संस्तुति पत्र**—कर्मचारी विश्लेपण मे संस्तुति-पत्र भी सहायक होते है। इनमें उम्मीदवार अपने पिछले सेवायोजक (Employer), अपने स्कूल या कालिज के प्रधानाचार्य या कुछ सम्मानित और प्रतिष्ठित व्यक्तियो के सिफारिश के पत्र पेश करता है। इन पत्रो मे सिफारिश के साथ-साथ व्यक्ति की कुछ योग्यताओ को भी प्रमाणित किया जाता है। कभी-कभी इस तरह के पत्रो मे बहुत-सी भ्रामक बातें भी शामिल होती है। उदाहरण के लिये व्यक्ति मे ऐसे बहुत से गुण बतलाये जाते है जो कि उसमे नही होते अथवा उसके गुणो को बहुत बढा-चढा कर बताया जाता है। ऐसे संस्तुति पत्र कार्य विश्लेपण मे सहायता देने की अपेक्षा बाधक ही सिद्ध होते हैं परन्तु यदि संस्तुति-पत्र प्रामाणिक हो तो उनसे व्यक्ति के विश्लेपण मे सहायता मिल सकती है।

(३) **शैक्षिक आलेख**—भिन्न-भिन्न व्यवसायो के लिये शिक्षा के भिन्न-भिन्न स्तर की आवश्यकता होती है। शैक्षिक आलेख व्यक्ति की शिक्षा सम्बन्धी योग्यता के प्रमाण-पत्र होते हैं। इनमे कभी-कभी विद्यालयों मे सचित जीवन-वृत्त (Cumulative Records) भी शामिल होते हैं।

(४) **मनोवैज्ञानिक परीक्षण**—परन्तु व्यक्ति विश्लेपण की सबसे प्रामाणिक और महत्वपूर्ण विधि मनोवैज्ञानिक परीक्षण है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण मे उम्मीदवार की *मानसिक योग्यता, रुचि, व्यक्तित्व* तथा विशेष तौर से अभिरुचि की परीक्षा की जाती है। इन परीक्षणो के जो परिणाम आते हैं उनका बडी होशियारी से प्रयोग किया जाना चाहिये क्योकि कभी-कभी उनमे कुछ गलतियाँ भी हो सकती हैं।

(५) *शारीरिक परीक्षण*—*कुछ व्यवसायो में* कुछ विशेष शारीरिक योग्यताओं की आवश्यकता होती है जैसे रेलवे गार्ड की नेत्र शक्ति सामान्य होनी चाहिये। इससे व्यक्ति विश्लेपण में भिन्न-भिन्न व्यवसायों में उम्मीदवारो को भिन्न-भिन्न प्रकार की शारीरिक परीक्षायें होती है। आजकल सरकारी नौकरियो मे शारीरिक परीक्षा लगभग अनिवार्य ही हो गई है।

(६) **सामूहिक निरीक्षण**—कुछ व्यवसायो मे कर्मचारियों को सामूहिक रूप से काम करना पडता है अथवा उनका दूसरे कर्मचारियो से अधिक सम्बन्ध आता है।

ऐसे व्यवसायों में कर्मचारियों में कुछ सामूहिक व्यवहार सम्बन्धी योग्यताओं की भी आवश्यकता होती है। इनकी जानकारी के लिए उम्मीदवारों का सामूहिक निरीक्षण किया जाता है अर्थात् समूह में उनके व्यवहार की जाच की जाती है।

(७) मूल्यांकन—कर्मचारी विश्लेषण में उम्मीदवारों के स्कूल कालिजों के अध्यापकों, प्रधानाचार्यों तथा मनोवैज्ञानिकों के मूल्यांकन का भी महत्व होता है। इसलिए कभी-कभी कर्मचारी विश्लेषण में इनकी भी सहायता ली जाती है।

(८) साक्षात्कार—अन्त में आजकल अधिकतर व्यवसायों में नियुक्ति करने से पहले सेवा योजक तथा कुछ विशेषज्ञ लोग उम्मीदवारों से साक्षात्कार करते हैं। साक्षात्कार में, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, साक्षात्कारकर्त्ता व्यक्ति अथवा समूह और प्रार्थी आमने-सामने बैठकर बातचीत करते हैं। साक्षात्कार में सभी लोग प्रार्थी से किसी न किसी तरह का प्रश्न करते हैं। जब एक व्यक्ति प्रश्न करता होता है तो उस समय भी ऐसी बातें मालूम होती हैं जो किसी भी अन्य विधि से मालूम नहीं हो सकती थी। इससे व्यक्ति के आत्म-विश्वास, आत्म नियन्त्रण, अनुशासनप्रियता, तत्परता, सुरुचि, वेशभूषा, आचार, व्यवहार, व्यक्तित्व की आकर्षकता तथा शिष्टाचार आदि बहुत-सी बातों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। परन्तु इसके लिए साक्षात्कार करने वाले लोग भी प्रशिक्षित और समझदार होने चाहियें अन्यथा साक्षात्कार में प्रार्थी के विषय में बहुत कुछ भ्रम हो सकता है।

व्यावसायिक प्रवरण के दोनों पहलू अर्थात् कार्य विश्लेषण और कर्मचारी विश्लेषण के उपरोक्त विस्तृत विवेचन से व्यावसायिक प्रवरण की विधि स्पष्ट हो जाती है। कार्य विश्लेषण और कर्मचारी विश्लेषण के बाद व्यावसायिक प्रवरण में अब केवल इतना ही शेष रह जाता है कि कर्मचारी विश्लेषण से जो व्यक्ति विशेष कार्य के लिए सबसे अधिक उपयुक्त पाया जाये उसको उस कार्य पर नियुक्त कर दिया जाये।

सारांश

व्यावसायिक प्रवरण की समस्या के दो पहलू हैं—नकारात्मक और स्वीकारात्मक पहले में अनुपयुक्त व्यक्तियों को अलग कर देना होता है और दूसरे में उपयुक्त व्यक्तियों को चुना जाता है। व्यावसायिक प्रवरण इसलिये आवश्यक है क्योंकि व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण व्यक्तियों में अलग-अलग प्रकार की योग्यतायें होती हैं। व्यावसायिक प्रवरण के दो पहलू हैं-कार्य विश्लेषण और कर्मचारी विश्लेषण।

कार्य विश्लेषण—कार्य विश्लेषण कार्य के विभिन्न तत्वों का सूक्ष्म विश्लेषण है। इससे कार्य कुशलता बढती है और प्रशिक्षण का समय, पारिश्रमिक की दर, उत्पादन योग्यता आदि अनेक बातें निश्चित की जा सकती हैं। कार्य के विभिन्न अवयव हैं। इनका विश्लेषण करने के लिए—(१) वैयक्तिक मनोरेखांकन विधि, (२) प्रश्नावली विधि, (३) कार्य मनोरेखांकन विधि, (४) परीक्षण विधि, (५) गति अध्ययन विधि का प्रयोग किया जाता है।

कर्मचारी विश्लेषण—कर्मचारी विश्लेषण में प्रार्थी व्यक्ति के गुणों, योग्यताओं, अनुभव तथा अन्य बातों के बारे में विस्तृत विवरण एकत्रित किया जाता है। कर्मचारी विश्लेषण के लिए—(१) आवेदन रिक्त पत्र, (२) संस्तुति पत्र, (३) शैक्षिक आलेख, (४) मनोवैज्ञानिक परीक्षण, (५) शारीरिक परीक्षण, (६) सामूहिक परीक्षण, (७) मूल्यांकन, (८) साक्षात्कार का प्रयोग किया जाता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

प्रश्न १. कार्य विश्लेषण और कर्मचारी विश्लेषण मे अन्तर बतलाइये तथा किसी एक की विधि संक्षेप मे बताइये।

Distinguish between job analysis and worker's analysis, and describe briefly how either is carried out. (Vikram 1968)

प्रश्न २. व्यावसायिक चुनाव के साधारण नियम क्या हैं ? व्यावसायिक चुनाव मे कृत्यक विश्लेषण का महत्व बताइये।

What are the general principles of vocational selection. Indicate the importance of job analysis for vocational selection. (Agra 1962)

प्रश्न ३. उद्योग मे व्यावसायिक निर्देशन तथा चयन का क्या मूल्य है ?

Estimate the value of vocational guidance and selection in industry ? (Agra 1968)

प्रश्न ४. कार्य विश्लेषण क्या है ? उसके महत्व की विवेचना कीजिये।

What is job analysis ? Illustrate it and discuss its importance. (Karnatak 1966, 1969, Utkal M. A. 1965)

१०

साक्षात्कार
(Interview)

कर्मचारी वरण मे प्रार्थी व्यक्ति के विषय मे विस्तार से पता लगाने के लिये साक्षात्कार प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। जब कही किसी उद्योग या दफतर मे कोई जगह खाली होती है तो उसका विज्ञापन कर दिया जाता है। विज्ञापन को पढ कर प्रार्थी व्यक्ति रिक्त स्थान पर नियुक्त किए जाने के लिए प्रार्थना पत्र भेजते है और उसमे व्यक्तिगत आलेख उपस्थित करते हैं। इस व्यक्तिगत आलेख से प्रार्थी की शैक्षिक योग्यताएँ, पिछला अनुभव, यदि पिछली नौकरी छोडी हो तो नौकरी छोडने का कारण, वर्तमान स्थान पर काम करने की इच्छा का कारण इत्यादि अनेक बातें पता लग जाती है किन्तु कही भी केवल प्रार्थना पत्र और व्यक्तिगत आलेख के आधार पर नियुक्ति नही की जाती, उसके लिए साधारणतया साक्षात्कार आवश्यक माना जाता है। यह साक्षात्कार कभी कम्पनी का मालिक, कभी प्रबन्धक, कभी प्रतिनिधि और कभी साक्षात्कार के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति करते हैं। इसी प्रकार कभी साक्षात्कार लम्बे काल तक चलता है और कभी प्रार्थी का केवल कुछ मिनट उपस्थित होना ही पर्याप्त माना जाता है। कहीं-कही पर साक्षात्कार की प्रक्रिया में प्रार्थी व्यक्ति को एक से अधिक बार साक्षात्कारकर्ता के सम्मुख उपस्थित होना पडता है। साक्षात्कार विधि कहा तक वैज्ञानिक है, इसकी प्रामाणिक जाच नही हो सकी है और इस विषय मे बहुत कम वैज्ञानिक अध्ययन किये गये हैं किन्तु आश्चर्य का विषय है कि जाच न होने के बावजूद भी अधिकतर सेवा योजक साक्षात्कार को भर्ती करने की सबसे अच्छी विधि अथवा भर्ती करने की विधि का अनिवार्य अग मानते है। साक्षात्कार के आधार पर चाहे जिस प्रार्थी को चुन लिया जाता है और कभी-कभी तो इसमे उसके व्यक्तिगत आलेख पर भी कोई ध्यान नही दिया जाता। साक्षात्कार प्रणाली पर विश्वास का एक मुख्य कारण यह है कि प्रार्थी व्यक्ति के सामने उपस्थित होने से और उससे आमने-सामने बात करके सेवा योजक अपने चुनाव के बारे मे सतुष्ट हो जाता है। एक अन्य कारण यह है कि बहुधा सेवायोजक यह समझते है कि उन्हे मानव चरित्र और व्यवहार मे इतनी अन्तर्दृष्टि प्राप्त है कि वे शक्ल देखकर और दो चार बातें करके ही यह निश्चित कर सकते हैं कि कौन सा व्यक्ति किस स्थान के योग्य है। यह आत्मविश्वास इतना दृढ होता है कि इसकी

जाँच की आवश्यकता नहीं समझी जाती और यदि कभी-कभी साक्षात्कार की प्रामाणिकता के विरुद्ध प्रमाण भी मिलते हैं तो उनसे साक्षात्कार मे सन्देह करने के स्थान पर उन प्रमाणों को ही संदिग्ध माना जाता है।

साक्षात्कार क्या है ?

साक्षात्कार की परिभाषा करते हुए समाजशास्त्री पोलिन यग ने लिखा है, "साक्षात्कार एक व्यवस्थित विधि मानी जा सकती है जिसके द्वारा एक व्यक्ति एक अपेक्षाकृत अजनबी के आन्तरिक जीवन में न्यूनाधिक कल्पनात्मक रूप से प्रवेश करता है।"[1] इस प्रणाली मे साक्षात्कारकर्ता और साक्षात्कारदाता आमने-सामने बैठ कर बातें करते है जिससे उनमे भौतिक और सामाजिक दूरी घट जाती है और भावात्मक सम्बन्ध बन जाता है जब कि व्यक्तिगत आलेख मे लिखी हुयी सूचनाओ की संवेगात्मक पृष्ठभूमि का कुछ भी पता नही चलता। साक्षात्कार मे साक्षात्कारकर्ता अपने प्रश्नों के उत्तर मे साक्षात्कारदाता के वचन सुनने के साथ-साथ उसके हाव-भाव पर भी गौर कर सकता है जिससे बडी महत्वपूर्ण बातें पता चलती है। जहाँ कहीं साक्षात्कार लेने में प्रश्नो से अधिक साक्षात्कार की परिस्थिति का महत्व होता है वहा तो इस व्यक्तिगत सम्पर्क का महत्व और भी बढ जाता है। इस दृष्टि से गुडे और हाट की साक्षात्कार की यह परिभाषा उचित मालूम पडती है कि "मूल रूप से साक्षात्कार सामाजिक अनुक्रिया की एक प्रक्रिया है।"[2] साक्षात्कार मे दो व्यक्ति एक दूसरे के सम्मुख उपस्थित मात्र नही होते बल्कि उनमे परस्पर उत्तेजना और अनुक्रियाएं होती हैं जिनमे केवल साक्षात्कारकर्ता ही साक्षात्कार दाता, को प्रभावित नही करता बल्कि साक्षात्कारदाता भी साक्षात्कारकर्ता को प्रभावित करता है। इसीलिए जब कभी साक्षात्कार मे प्रश्न पहले से निश्चित् नही होते तो प्रश्नो का प्रकार बहुधा साक्षात्कारदाता के द्वारा उत्पन्न की गयी उत्तेजना पर ही निर्भर होता है।

साक्षात्कार के उद्देश्य

साक्षात्कार की चर्चा करते हुये बिंघम और मूर ने लिखा है, "साक्षात्कारकर्ता उन लक्षणों की खोज करता है जिनसे किसी स्थान पर उपयुक्तता या अनुपयुक्तता सूचित होती है। प्रार्थी से वह जो सूचना प्राप्त करता है उससे उसे उस मानसिक चित्र के विस्तार को पूरा करने मे सहायता मिलती है जिसकी पूर्ति का वह प्रयास कर रहा है। यह वह चित्र है जो कि प्रार्थी को किसी स्थान पर फिट करता है या उसे विचार से बाहर निकाल देता है।"[3] स्पष्ट है कि साक्षात्कार का

---

1. "The interview may be regarded as a systematic method by which a person enters more or less imaginatively into the inner life of a comparative stranger," Young, P. V., *Scientific Social Surveys and Research*, p. 205

2. "Interviewing is fundamentally a process of social interaction."—Goode, W. J. and P. K. Hatt, *Methods in Social Research*, p 186

3. "The interviewer looks for symptoms that indicates fitness or unfitness for a job. The information he secures from an applicant helps to fill out

मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना है कि प्रार्थी व्यक्ति विज्ञापित स्थान पर नियुक्त किये जाने के लिये कहा तक उपयुक्त है। संक्षेप मे साक्षात्कार के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(१) **सम्मुख सम्पर्क द्वारा सूचना प्राप्त करना** :—साक्षात्कार मे साक्षात्कारदाता और प्रार्थी व्यक्ति आमने-सामने उपस्थित होते है और साक्षात्कारकर्ता अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये आवश्यक सूचनाये प्रार्थी व्यक्ति से पूछ लेता है।

(२) **व्यक्तिगत सूचनाओं का पता लगाना** :—अनेक बातें ऐसी होती हैं जो लिख कर नही पूछी जाती और न जिन्हे व्यक्ति लिखकर बतला ही सकता है किन्तु प्रार्थी की नियुक्ति के लिये इनका पता लगाना आवश्यक होता है। ऐसी व्यक्तिगत सूचनायें साक्षात्कार से ही पता लगायी जा सकती हैं। कभी-कभी इन व्यक्तिगत सूचनाओ को प्राप्त करने में प्रार्थी के वचनो से सहायता न मिलने पर भी उसके हाव-भाव तथा व्यवहार से सहायता मिल जाती है।

(३) **परिकल्पनाओं की जांच** :—अनेक बार विशिष्ट स्थान के लिये उपयुक्त कर्मचारी के विषय मे सेवायोजक कुछ परिकल्पनायें (Hypotheses) बना लेते हैं। ये परिकल्पनायें कहा तक सही है, इसकी जांच साक्षात्कार से हो जाती है। दूसरी ओर साक्षात्कार के आधार पर नयी परिकल्पनायें बनाने मे भी सहायता मिलती है।

(४) **प्रार्थना पत्र की सूचनाओं की जांच** :—अनेक बार साक्षात्कार मे प्रार्थी द्वारा प्रार्थना पत्र मे दिये गये व्यक्तिगत आलेख मे दी गयी सूचनाओ की जाच की जाती है। किसी सूचना मे सन्देह होने पर उसकी प्रामाणिकता की जाच साक्षात्कार द्वारा की जा सकती है।

(५) **अवलोकन का अवसर** :—साक्षात्कार का एक उद्देश्य सेवा योजक को भावी कर्मचारी के अवलोकन का अवसर प्रदान करना है जिससे वह यह अनुमान लगा सकता है कि कारखाने की या दफ्तर की विशिष्ट परिस्थिति मे वह कर्मचारी अपने कार्यों को पूरा करने के लिये कहा तक उपयुक्त है। अनेक गुण लिखकर पता नही लगाये जा सकते। उनकी जाच साक्षात्कार मे ही होती है विशेषतया व्यक्तित्व के सामाजिक गुण साक्षात्कार मे ही पता लगाये जा सकते है क्योकि साक्षात्कार की परिस्थिति एक सामाजिक परिस्थिति होती है।

(६) **मौखिक तथा शाब्दिक व्यवहारों का अध्ययन** :—किसी व्यक्ति की उपयुक्तता की जांच करने के लिये उसके मौखिक तथा शाब्दिक व्यवहारों का अध्ययन करना आवश्यक है क्योकि इससे यह पता चल जाता है कि उसमे विशिष्ट पद के उपयुक्त व्यक्तिगत और सामाजिक गुण कहा तक पाए जाते हैं।

---

the details of a mental picture which he is trying to complete. It is a picture which fits the applicant into the job or which rules him out of consideration."
—Bingham, W. V. and B. V. Moore, *How to Interview*, New York (1931), pp. 75-76

साक्षात्कार के प्रकार

भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से साक्षात्कारो को भिन्न-भिन्न प्रकारो मे विभाजित किया गया है। सक्षेप मे साक्षात्कार के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं :—

(१) अव्यवस्थित साक्षात्कार (Unsystematic Interview) :—यह *साक्षात्कार, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, व्यवस्थित नही होता।* इसमे साक्षात्कार द्वारा प्राप्त की जाने वाली सूचनायें पहले से निश्चित् नही की जाती और साधारणतया प्रार्थी से यह बात नजर में रखकर बात की जाती है कि वह विशिष्ट स्थान के लिये कहा तक उपयुक्त है। इस बात की जाँच करने में प्रार्थी से कौन-कौन से प्रश्न किये जाने चाहियें, इसका निश्चय साक्षात्कारकर्ता पर ही छोड़ दिया जाता है। इससे एक लाभ यह होता है कि साक्षात्कारकर्ता प्रार्थी की उपस्थिति की सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप चाहे जिस तरह से प्रश्न कर सकता है किन्तु यह तभी सम्भव है जबकि साक्षात्कारकर्ता को मानव व्यवहार मे पर्याप्त अन्तर्दृष्टि हो। साक्षात्कार लेने की विशेष योग्यता के अभाव मे अव्यवस्थित साक्षात्कार से लाभ नही हो सकता। बहुधा होता यह है कि वरिष्ट अधिकारी, जो कि स्वय पहले उस स्थान पर काम कर चुके होते हैं, प्रार्थी व्यक्तियो का साक्षात्कार लेते है। इसमे महत्व पूर्ण बात यह मानी जाती है कि इस स्थान पर काम करने का अनुभव होने के कारण उन्हे यह पता रहता है कि उसमें सफलता प्राप्त करने के लिये किन-किन गुणो की आवश्यकता है। किन्तु यह अनुमान सब साक्षात्कारकर्ताओ के विषय में ठीक नही है। विशिष्ट पद पर कुछ वर्ष काम करने मात्र से यह अनुभव होना आवश्यक नही है कि उस पर सफलता प्राप्त करने के लिये *किन-किन गुणों की आवश्यकता है। दूसरे, यदि यह पता भी हो तो प्रार्थी व्यक्ति* मे इन गुणो का पता लगाने के लिये उससे क्या प्रश्न किये जाने चाहियें इसका ज्ञान अप्रशिक्षित साक्षात्कारकर्ताओ को शायद ही कभी होता है। अस्तु, प्रशिक्षण के अभाव मे अव्यवस्थित साक्षात्कार विशेष लाभदायक नही होता। इसमे बहुधा साक्षात्कारकर्ता ऐसे ही प्रश्न पूछते है जो मौके पर उन्हे सूझ जाते है। अब यह भाग्य की बात है कि किस प्रार्थी से ऐसा प्रश्न पूछा गया जिसका उत्तर आसानी से दिया जा सकता है और किससे ऐसा प्रश्न पूछा गया जिसका उत्तर देना कठिन है। चूकि साक्षात्कार एक विशिष्ट *वैज्ञानिक कार्य है इसलिये उसे पहले से व्यवस्थित* किया जाना चाहिये और उसमे योजनापूर्वक चलना चाहिये। अव्यवस्थित साक्षात्कार को अनौपचारिक साक्षात्कार (Informal Interview) भी कह सकते है क्योकि इसमे साक्षात्कारकर्ता को प्रश्नों के क्रम, शब्दावली, आकार, प्रकार और सख्या आदि निश्चित् करने का पूर्ण अधिकार होता है। कर्मचारी वरण मे साक्षात्कार निदानात्मक, उपचारात्मक, अनुसन्धानात्मक अथवा जिज्ञासा पूर्ति के हेतु साक्षात्कार से भिन्न होता है। इसमे गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनो ही प्रकार की सामग्री एकत्रित की जाती है।

अव्यवस्थित साक्षात्कार को अनिर्देशित साक्षात्कार (Nondirected Interview) भी कहा जा सकता है क्योकि यह अनियन्त्रित, असंचालित और अनिर्दिष्ट होता है। अव्यवस्थित साक्षात्कार की उपरोक्त आलोचना से यह नही समझना चाहिए कि यह सभी परिस्थितियो मे अनुचित है, ऐसा नही है। इसके विषय मे केवल यही कहा जा सकता है कि अप्रशिक्षित और अनुभवहीन साक्षात्कारकर्ताओ के हाथ मे कर्मचारी वरण की यह प्रणाली विभिन्न प्रार्थियो मे ठीक से भेद नही कर पाती। इसलिए जहा तक हो सके साक्षात्कार पूर्वआयोजित और व्यवस्थित होना चाहिये।

(२) **व्यवस्थित साक्षात्कार** (Systematic Interview)—व्यवस्थित साक्षात्कार मे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, साक्षात्कार की प्रक्रिया सावधानी पूर्वक पूर्वायोजित होती है और प्रशिक्षित तथा कुशल साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार लेते हैं। अव्यवस्थित साक्षात्कार की तुलना मे साक्षात्कार के इस प्रकार का महत्व स्पष्ट है क्योकि किसी भी काम को चाहे जैसे करने के स्थान पर योजनापूर्वक करना लगभग सदैव अच्छा होता है। किन्तु साक्षात्कार की योजना कैसे बनायी जाए यह बहुत कुछ कार्य विश्लेषण पर निर्भर होता है। कार्य विश्लेषण से कार्य के विभिन्न अगो का पता लग जाता है और यह मालूम हो जाता है कि विशिष्ट पद पर काम करने वाले व्यक्ति से किन-किन कार्यो को करने की आशा की जाती है। अब साक्षात्कार करने मे प्रार्थी व्यक्तियो मे इन गुणो की खोज की जा सकती है। कहना न होगा कि कार्य विश्लेषण मे साक्षात्कारकर्ता को जितनी ही अधिक अन्तर्दृष्टि होगी साक्षात्कार भी उतना ही व्यवस्थित और सुआयोजित हो पाएगा। कार्य के बाद साक्षात्कार के प्रश्नों का विश्लेषण किया जाना चाहिए जिससे उनके लक्ष्य स्पष्ट हो जाएँ और यह भी जाच हो जाए कि विशिष्ट प्रश्न से विशिष्ट लक्ष्य पूरा भी होता है या नही इसके साथ-साथ इससे यह भी पता चलता है कि साक्षात्कार के द्वारा किन-किन क्षेत्रो की जाच की जानी है और कौन से क्षेत्र अन्य प्रकार की प्रणाली के लिए छोड दिये जाने चाहियें। इससे साक्षात्कार का समय निश्चित् करने मे भी सहायता मिलती है क्योंकि जानकारी प्राप्त करने के क्षेत्रो के महत्व के अनुपात मे उनके विषय मे प्रश्न करने का समय निश्चित किया जा सकता है। यह कार्य जितना ही अधिक यथार्थता से किया जाएगा साक्षात्कार से उतनी ही अधिक सफलता होगी। साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कारदाता का विश्वास प्राप्त करना चाहिए, तब ही वह उसके प्रश्नो का सही उत्तर देगा। साक्षात्कार की व्यवस्था मे केवल प्रश्नो के क्षेत्र निश्चित् करना ही काफी नही है। जहा तक हो सके प्रश्नो की भाषा, क्रम तथा अन्य बातें भी विस्तारपूर्वक निश्चित् कर ली जानी चाहिए। इन सब बातो को सही प्रकार से करना साक्षात्कारकर्ता के प्रशिक्षण पर निर्भर है। यह कार्य भार चाहे जिस व्यक्ति को नही सौंपा जा सकता।

(३) प्रतिमानित साक्षात्कार (Standardised Interview)—किन्तु व्यवस्थित साक्षात्कार प्रतिमानित साक्षात्कार नहीं है। उसे औपचारिक साक्षात्कार (Formal Interview) या निर्देशित साक्षात्कार (Directed Interview) अवश्य कहा जा सकता है। प्रतिमानित साक्षात्कार में पूछे जाने वाले सभी प्रश्न और उनका क्रम पहले से ही निश्चित होता है और साक्षात्कारकर्ता सभी प्रार्थियों से एक-एक करके वे सब प्रश्न पूछता है और उनके उत्तर नोट करता है। यह काम छपी हुई प्रश्नावली से भी किया जा सकता है किन्तु व्यवस्थित साक्षात्कार का कार्य छपी हुई प्रश्नावली से नहीं किया जा सकता क्योंकि उसमें प्रश्नों को पहले से ही निश्चित् नहीं किया जाता। इस अन्तर से व्यवस्थित और प्रतिमानित साक्षात्कार में निम्नलिखित अन्तर स्पष्ट होते हैं :—

(१) जब कि व्यवस्थित साक्षात्कार प्रश्नों की सामान्य रूप रेखा मात्र ही निश्चित करता है और विशिष्ट प्रश्नों का उत्तरदायित्व साक्षात्कारकर्ता पर छोड़ देता है, प्रतिमानित साक्षात्कार में प्रश्न और उनके क्रम पहले से ही निश्चित होते हैं।

(२) इस प्रकार व्यवस्थित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता को प्रतिमानित साक्षात्कार की तुलना में अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।

(३) स्वतन्त्रता से उत्तरदायित्व बढ़ता है। इसलिए व्यवस्थित साक्षात्कार में साक्षात्कारदाता में प्रतिमानित साक्षात्कार की तुलना में अधिक योग्यता होनी चाहिए।

(४) प्रतिमानित साक्षात्कार की तुलना में व्यवस्थित साक्षात्कार में साक्षात्कारदाता का दृष्टिकोण अधिक नमनीय होता है और वह अपने प्रश्नों को विशिष्ट प्रार्थी की आवश्यकताओं के अनुरूप बदल सकता है।

(५) प्रतिमानित साक्षात्कार की तुलना में व्यवस्थित साक्षात्कार में प्रार्थी को अपना पक्ष उपस्थित करने का अधिक अवसर मिलता है क्योंकि वह उन बातों पर अधिक जोर दे सकता है जिनसे उसका पक्ष पुष्ट होता है।

साक्षात्कार प्रणाली के अंग

साक्षात्कार की प्रक्रिया में तीन कारक काम करते हैं प्रार्थी व्यक्ति, साक्षात्कारकर्ता और साक्षात्कार की प्रक्रिया। साक्षात्कार प्रणाली के गुण दोषों की परीक्षा करने के लिए इन तीनों अंगों की विस्तार से जांच आवश्यक है। ये तीनों अंग परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। किस साक्षात्कारकर्ता के प्रश्न के उत्तर में कोई प्रार्थी क्या कहेगा यह साक्षात्कारकर्ता की व्यक्तिगत विभिन्नताओं के साथ बदल जाता है। इसी तरह साक्षात्कारदाता की व्यक्तिगत विभिन्नताओं के साथ-साथ साक्षात्कारकर्ता के प्रति उसकी अनुक्रियाएं बदल जाती हैं। साक्षात्कार की प्रणाली भी प्रार्थी व्यक्ति के प्रारम्भिक उत्तरों के अनुसार बदल जाती है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य भाग साक्षात्कारकर्ता का होता है। जहा वह प्रार्थी को विशिष्ट प्रश्न का उत्तर देने को प्रोत्साहित

करता है वहाँ वह उत्तर देने मे बाधक भी हो सकता है। साक्षात्कार की परिस्थिति मे प्रार्थी का व्यवहार बहुत कुछ साक्षात्कारकर्ता के हावभाव पर निर्भर होता है किन्तु इस हाव-भाव का किस प्रार्थी पर क्या असर पडेगा यह प्रार्थी की व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर निर्भर है। अब साक्षात्कार के इन तीनो अगो का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया जा सकता है।

प्रार्थी व्यक्ति

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, साक्षात्कार की परिस्थिति मे प्रार्थी व्यक्ति कैसा व्यवहार दिखलाता है यह उसकी व्यक्तिगत विभिन्नताओ पर निर्भर है। अस्तु, केवल साक्षात्कार मात्र से उसकी योग्यताओ, रुचियो और व्यक्तित्व के विषय मे सही-सही अनुमान नही लगाया जा सकता। कभी-कभी साक्षात्कार की परिस्थिति मे जिन लक्षणो का पता चलता है वे प्रार्थी व्यक्ति के स्थायी लक्षण होते है। स्पष्ट है कि उसकी कार्य के लिये उपयुक्तता इन स्थायी लक्षणो के आधार पर निश्चित नही की जा सकती। अस्तु, प्रार्थी व्यक्ति के चरित्र, व्यक्तित्व, कुशलता आदि से सम्बन्धित अधिक स्थायी लक्षणो का पता लगाया जाना चाहिए। इसके लिए प्रार्थी व्यक्ति के व्यवहार मे स्थायी और अस्थायी लक्षणो की जाच आवश्यक है। इस जाच के लिए कभी-कभी साक्षात्कार मे एक ही प्रश्न को अनेक रूपो मे उपस्थित किया जाता है। कभी-कभी एक से अधिक बार साक्षात्कार करके प्रार्थी व्यक्ति के स्थायी लक्षणो का पता लगाया जाता है। यह दूसरी विधि पहली विधि से कही अधिक उपयुक्त है क्योकि इससे प्रार्थी के व्यवहार को कई बार निरीक्षण करने का अवसर मिलता है जिससे अधिक सही अनुमान लगाया जा सकता है। कभी-कभी अनेक व्यक्ति अलग-अलग प्रार्थी से साक्षात्कार करते है और उन सबके निष्कर्षो पर एक साथ विचार करके प्रार्थी के स्थायी लक्षणो को निश्चित् किया जा सकता है।

प्रार्थी व्यक्ति से प्रश्नो के उत्तर प्राप्त करने के लिये और उसे उसके पक्ष को सही रूप मे उपस्थित करने मे सहायता देने के लिये साक्षात्कारकर्ता को उसे प्रोत्साहित करना चाहिये। ऐसा न होने पर उसके अनेक गुण छिपे ही रह जायेंगे और सही व्यक्ति का चुनाव नही होगा। किन्तु यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रोत्साहन ऐसी ही बातें बतलाने के लिये दिया जाना चाहिये जिनका उस पद के लिये आवश्यक कुशलता से निकट सम्बन्ध है। कभी-कभी साक्षात्कार मे अनेक कारको के कारण प्रार्थी व्यक्ति सही-सही जवाब नही देता। हो सकता है कि वह पहले से ही अच्छी नौकरी पर हो और वैसे ही साक्षात्कार देने आगया हो किन्तु यदि ऐसा व्यक्ति साक्षात्कार मे उत्साह नही दिखा रहा है तो इससे यह नही कहा जा सकता कि वह विशिष्ट पद के लिये उपयुक्त व्यक्ति नही है। ऐसी स्थिति मे साक्षात्कारकर्ता को प्रार्थी को प्रोत्साहित करना चाहिये ताकि वह अपने पक्ष को अधिक से अधिक स्पष्ट रूप मे उपस्थित कर सके।

साक्षात्कार का उद्देश्य प्रार्थी से अनेक बातो का सही-सही पता लगाना है। किन्तु सही जानकारी केवल प्रार्थी पर ही निर्भर नही होती, वह साक्षात्कारकर्ता

और साक्षात्कार प्रणाली पर भी निर्भर होती है। कभी-कभी प्रार्थी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के कुछ लक्षणो और शाब्दिक योग्यता की कमी के कारण अपनी योग्यताओ का सही चित्र उपस्थित नही कर पाता। कुछ लोग आमने-सामने उपस्थित होने की स्थिति मे खुल कर बात नही कर सकते विशेषतया जब कि साक्षात्कारकर्ता पद और आयु मे तथा सामाजिक आर्थिक स्थिति मे प्रार्थी व्यक्ति से बहुत अधिक ऊचा होता है। कभी-कभी उससे ऐसे प्रश्न पूछे जाते है जिनका उत्तर उसकी समझ मे नही आता। कुछ प्रश्नो से उसे बडी परेशानी पैदा होती है। अस्तु, यदि ऐसे प्रश्न पूछने आवश्यक है जिनका सम्बन्ध प्रार्थी व्यक्ति के चरित्र अथवा व्यक्तित्व के दोषो से हो तो उन्हे पूछने मे बडी चतुराई से काम लेना चाहिये ताकि प्रार्थी व्यक्ति उत्तेजित न हो। प्रश्नों की भाषा यथासम्भव ऐसी हो कि प्रार्थी व्यक्ति उनका अर्थ समझ ले और सही उत्तर दे सके। फिर भी यदि प्रार्थी व्यक्ति किसी कारण से अपने को अभिव्यक्त नही कर पाता तो कितना भी प्रयास करने पर साक्षात्कार के परिणाम अच्छे नही आते।

जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, साक्षात्कार की सफलता केवल प्रार्थी व्यक्ति की योग्यता पर निर्भर नही होती। साक्षात्कार मे कैसे प्रश्न पूछने चाहिये और कैसा व्यवहार करना चाहिये यह साक्षात्कारकर्ता पर निर्भर है और इससे बहुत अन्तर पडता है। यदि साक्षात्कार अव्यवस्थित है तब तो उसकी सफलता साक्षात्कारकर्ता पर बहुत ही अधिक निर्भर होती है। कुछ साक्षात्कारकर्ता प्रार्थी व्यक्ति को केवल देखने मात्र से कुछ पूर्वाग्रह बना लेते है और उनके आधार पर तोड मरोड कर प्रश्न पूछते है। यदि साक्षात्कारकर्ता के व्यवहार से प्रार्थी व्यक्ति उत्तेजित हो जाता है तो भी प्रश्नो के सही उत्तर नही देता। अस्तु, साक्षात्कार की सफलता बहुत कुछ साक्षात्कारकर्ता की कुशलता पर निर्भर है।

प्रार्थी व्यक्ति और साक्षात्कारकर्त्ता के अतिरिक्त साक्षात्कार की सफलता साक्षात्कार प्रणाली पर भी निर्भर है। कुछ गुण तो ऐसे है जो चुनाव की इस प्रणाली मे पाये ही नही जाते और उन्हे किसी भी तरह साक्षात्कार मे उत्पन्न नही किया जा सकता। उदाहरण के लिये स्मृति का ज्ञान साक्षात्कार की तुलना मे स्मृति परीक्षणों से अधिक आसानी से हो सकता है। अस्तु, साक्षात्कार परीक्षणो का स्थान नही ले सकता। इसी तरह जो बाते प्रमाण पत्रों से मालूम पडती है उनकी जाच केवल साक्षात्कार के आधार पर नही की जा सकती। अस्तु, साक्षात्कार प्रणाली से प्रार्थी व्यक्ति के बारे मे कुछ थोडी सी बातो का ही पता लगाया जा सकता है और फिर जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, यदि किसी कारण से प्रार्थी व्यक्ति साक्षात्कार मे अपनी योग्यताओ को भली प्रकार अभिव्यक्त करने मे असफल होता है तो साक्षात्कार से कोई लाभ नही होता।

साक्षात्कार विधि की सीमायें

साक्षात्कार के विभिन्न पहलुओ के उपरोक्त विवेचन से उसकी सीमायें स्पष्ट होती हैं। इस सम्बन्ध मे मुख्य बातें अग्रलिखित हैं :—

(१) संदिग्ध जानकारी—साक्षात्कार द्वारा प्राप्त हुई जानकारी अनेक कारणों से संदिग्ध होती है और प्रमाण-पत्रों से प्रार्थी के कथनों का समर्थन हुये बिना उन पर यकीन नहीं किया जा सकता।

(२) असत्य को प्रोत्साहन—लिखते समय प्रत्येक व्यक्ति सावधानी से काम लेता है क्योंकि असत्य बातें लिखने से उसका प्रमाण मौजूद रहता है जिससे उसका झूठ पकड़ा जा सकता है। साक्षात्कार में प्रार्थी व्यक्ति को अतिशयोक्ति और कल्पना के आधार पर झूठी जानकारी देने का प्रोत्साहन मिलता है।

(३) प्रार्थी को सहमति की समस्या—कुछ बातें ऐसी हैं जिनको आमने-सामने कहने में व्यक्ति को सन्तोष होता है। प्रार्थी को इस प्रकार की बातें बतलाने के लिये राजी करना साक्षात्कार प्रणाली में एक समस्या बन जाता है।

(४) कुशल साक्षात्कारकर्ता की आवश्यकता—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, साक्षात्कार विधि की सफलता साक्षात्कारकर्ता की चतुराई, बुद्धि और कुशलता पर निर्भर है।

(५) साक्षात्कारकर्ता का अत्यधिक महत्व—इस विधि में साक्षात्कारकर्ता को अनावश्यक रूप से अत्यधिक महत्व दिया जाता है यहाँ तक कि प्रार्थी व्यक्ति का भविष्य उसी पर निर्भर हो जाता है और यदि वह पहले से ही कुछ बातें मानकर चल रहा है तो प्रार्थी व्यक्तियों के साथ बड़ा अन्याय हो जाता है।

(६) अधिक व्यय-साध्य विधि—साक्षात्कार द्वारा चुनाव में एक समय में एक व्यक्ति साक्षात्कार के लिए उपस्थित होता है। कभी-कभी साक्षात्कार करने वाले अनेक होते हैं। इस प्रकार साक्षात्कार में कर्मचारी वरण में बहुत समय लगता है और इसलिए यह विधि खर्चीली हो जाती है।

उपरोक्त सीमाओं के बावजूद कर्मचारी वरण की अन्य विधियों की तुलना में साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया जाता है क्योंकि उससे कुछ विशिष्ट लाभ हैं जो अन्य विधियों में दिखाई नहीं पड़ते। इन लाभों की चर्चा इस अध्याय के अन्त में की जाएगी।

साक्षात्कार की प्रणाली

जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, साक्षात्कार प्रणाली से प्रार्थी व्यक्ति के बारे में आवश्यक तथ्य एकत्रित किए जाते हैं और उसे विज्ञापित पद के कर्त्तव्यों का ज्ञान करा दिया जाता है। कभी-कभी साक्षात्कार का उद्देश्य यह सिद्ध करना होता है कि चुनाव निष्पक्ष रूप से किया जा रहा है। साक्षात्कार प्रणाली के मुख्य सोपान निम्नलिखित हैं—

(१) कार्य के विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करना—किसी भी कार्य के लिए सही कर्मचारी का चुनाव करने से पहले साक्षात्कारकर्ता को यह पता होना चाहिए कि उस कार्य में कर्मचारी को क्या-क्या करना है। अस्तु साक्षात्कार प्रणाली में सबसे पहला सोपान विशिष्ट कार्य के विषय में आवश्यक जानकारी प्राप्त करना है। इससे यह

पता चलेगा कि उसमे व्यक्ति के क्या-क्या उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य है और उस पर सन्तोषजनक रूप से कार्य करने के लिये उसमे कौनसे गुण होने चाहिए। कार्य के विषय मे जानकारी से साक्षात्कार का आयोजन करने मे सहायता मिलती है और कार्य की दृष्टि से प्रार्थी व्यक्ति की योग्यताओ का सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

(२) जाच के लिये योग्यताओं के क्षेत्रो का आयोजन —कार्य के विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके साक्षात्कारकर्त्ता यह निश्चित् कर सकता है कि उसे योग्यताओ के किन-किन क्षेत्रो मे प्रार्थी व्यक्तियो को जाच करनी है। इससे वह ऐसे प्रश्न का निर्माण कर सकता है जिनके उत्तर से कार्य मे सफलता का सीधा सम्बन्ध है। अस्तु, कार्य के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात साक्षात्कारकर्त्ता को योग्यताओ के उन क्षेत्रो का आयोजन कर लेना चाहिए जिनमे प्रार्थी व्यक्ति की जाच की जानी है। इस आयोजन से साक्षात्कारकर्ता को प्रश्न पूछने के सम्बन्ध मे निर्देशन मिल जायेगा और एक ऐसी पृष्ठभूमि प्राप्त होगी जिसमे वह प्रार्थी व्यक्ति का सही मूल्यांकन कर सकता है। इसी पृष्ठभूमि मे वह प्राप्त सूचना का समर्थन भी करेगा। बिंघम और मूर के अनुसार इस प्रकार के आयोजन से स्वाभाविक और उन्मुक्त वाद-विवाद मे कोई बाधा नही पडती बल्कि सहायता ही मिलती है। यह ठीक भी है क्योकि आयोजन से प्रार्थी और साक्षात्कारकर्ता दोनो को ही यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके वाद-विवाद का क्षेत्र क्या है।

(३) साक्षात्कार के पूर्व जानकारी प्राप्त करना —साक्षात्कार मे इतना समय नही होता कि सभी बातो का पता लगाया जा सके। इसलिये बहुत सी जानकारी साक्षात्कार के पूर्व ही आवेदन-पत्र द्वारा पता लगा ली जाती है। इस आवेदन पत्र मे प्रार्थी व्यक्ति का नाम, पता, पिछले कार्य का अनुभव, जहां-जहां वह कार्य कर चुका है उन स्थानो के पते, शैक्षिक योग्यताए और अन्य आवश्यक बातो के बारे मे पूछा जाता है। चूंकि भिन्न-भिन्न उद्योगो मे प्रार्थी व्यक्ति के बारे मे भिन्न-भिन्न बातो को जानना आवश्यक होता है इसलिये अधिकतर सेवा योजक प्रार्थी व्यक्तियो को छपा हुआ आवेदन रिक्त पत्र प्रदान करते है और प्रार्थी व्यक्ति को इसमे खाली जगहो को भर देना होता है। कहीं-कहीं पर आवेदन-पत्र मे कुछ प्रश्न भी दिए रहते हैं जिनके उत्तरो से प्रार्थी व्यक्ति की विशिष्ट पद के लिये योग्यता का पता चलता है। कुछ कामो मे प्रार्थियो के चेहरे मोहरे और शारीरिक आकार-प्रकार का भी महत्व होता है। इनमे आवेदन-पत्र में फोटोग्राफ लगाने के लिये स्थान दिया जाता है। उदाहरण के लिए हवाई-जहाज की नौकरियों में ऐयर होस्टेस के लिए प्रार्थना पत्र देने वाली लडकियो को अपना पूर्ण आकार का चित्र भी भेजना पड़ता है क्योकि चुनाव करने मे उनके शारीरिक सौन्दर्य को भी महत्व दिया जाता है कुछ नौकरियो मे विशेष प्रकार के चरित्र गुणों का विशेष महत्व होता है। इनसे सम्बन्धित आवेदन पत्रो मे इस विषय मे जानकारी प्राप्त की जाती है।

आवेदन पत्र से प्राप्त की हुयी जानकारी का उचित उपयोग तभी हो सकता है जबकि उसका निर्माण करते समय उसकी प्रामाणिकता की जाच कर ली जाए। इस बारे मे निम्नलिखित बातें ध्यान रखनी चाहियें—

(१) आवेदन रिक्त पत्र मे दिये हुए उत्तरो से प्रार्थी व्यक्ति की अभिरुचि पर विशेष प्रकाश नही पडता।

(२) आवेदन रिक्त पत्र में दिये गये अनेक प्रश्नो के उत्तरो का विशिष्ट कार्य से कोई सम्बन्ध नही होता।

(३) आवेदन पत्र मे दिये हुये उत्तर कार्य मे सफलता के प्रमाण नही होते और न उनसे कोई सह सम्बन्ध ही होता है।

(४) पूर्व परीक्षण के अभाव मे आवेदन रिक्त पत्र मे दिये हुये प्रश्न विश्वसनीय नही होते।

(५) आवेदन रिक्त पत्र मे दी हुयी जानकारी यथार्थ होनी आवश्यक नही है। स्मृति के दोष, जान बूझकर झूठ बोलना या प्रश्न को न समझने के कारण अथवा उनका उत्तर देने की योग्यता न होने के कारण प्रार्थी व्यक्ति ऐसी जानकारी उपस्थित कर सकता है जो बिल्कुल विश्वसनीय नही है।

अस्तु, आवेदन-पत्र को वैज्ञानिक ढग से बनाया जाना चाहिये। इसमे सबसे पहले कार्य से सम्बन्धित व्यवहार के क्षेत्रो का पता लगाया जाना चाहिये। इसके बाद प्रार्थी व्यक्ति के जीवन चरित्र के विषय मे सूचनायें प्राप्त की जानी चाहिये। इसके बाद विभिन्न प्रश्नों को ऐसे कर्मचारियो को उत्तर देने के लिये देना चाहिये जिनकी कार्य मे सफलता पता लग चुकी हो। इसके बाद अन्त मे विशेष प्रश्नो का कार्य की सफलता से सम्बन्ध व्यावहारिक विश्लेषण मे पता लगाया जाना चाहिये। इसके बाद भी अनुवर्ती अध्ययन आवश्यक है ताकि यह पता चल जाय कि प्रार्थना रिक्त पत्र मे दिये हुये विभिन्न प्रश्नो का किसी कार्य मे वास्तविक सफलता से क्या सम्बन्ध है। प्रार्थना रिक्त पत्र मे साधारणतया प्रार्थी की आयु, वैज्ञानिक स्थिति, बच्चो की सख्या अन्य आश्रितो की सख्या, ऊचाई, भार, पहले किये हुये कार्य, शिक्षा के वर्ष, शिक्षा सस्थाओ मे प्राप्त किये हुये स्थान, व्यावसायिक प्रशिक्षण, पिछली नौकरियो मे औसत मासिक वेतन, पिछली नौकरियो पर कितने वर्ष काम किया है, जीवन बीमा की रकम, ऋण की रकम, विभिन्न सस्थाओ की सदस्यता, पहले किये हुये कामो के प्रकार और यदि पहले कोई नौकरी छोड चुका हो तो उसके कारण पूछे जाने चाहियें। आवेदन रिक्त पत्र मे विभिन्न प्रश्नो को उनके वजन के अनुसार क्रम दिया जाना चाहिये। यह वजन विभिन्न कार्यों मे भिन्न-भिन्न होगा क्योकि विभिन्न कार्यों मे भिन्न-भिन्न योग्यताओं की आवश्यकता होती है।

(३) **प्रश्न पूछने की प्रक्रिया**—प्रामाणिक आवेदन रिक्त पत्र के द्वारा प्रार्थी व्यक्ति के विषय मे आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद अब साक्षात्कार मे

प्रश्न पूछने की बारी आती है। ये प्रश्न पूछने मे किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए यह पूरी तरह से निश्चित नही किया जाता क्योकि व्यक्तिगत विभिन्नताओ के कारण प्रत्येक प्रार्थी साक्षात्कार मे एक नयी परिस्थिति उत्पन्न करता है। सच तो यह है कि *साक्षात्कार मे प्रश्न पूछना विज्ञान नहीं बल्कि कला है।* यह कला साक्षात्कार कर्ता की अपनी योग्यता पर निर्भर करती है। साक्षात्कार मे प्रार्थी और साक्षात्कार-कर्ता मे वार्तालाप होता है। साधारणतया इसमे प्रार्थी को ही अधिक से अधिक बोलने का अवसर दिया जाना चाहिए किन्तु सभी साक्षात्कारकर्त्ता यह बात नही समझते। *उरब्राक (Uhrbrok) ने अपने अध्ययनो मे देखा कि औसत रूप में साक्षात्कार-कर्ता ही साठ प्रतिशत वार्तालाप करते थे।* सबसे कम बोलने वाला साक्षात्कारकर्ता ४७ प्रतिशत बोला और सबसे अधिक बोलने वाले ने ८३ प्रतिशत वार्तालाप किया।[4] प्रश्न पूछने मे प्रार्थी व्यक्ति को अधिक से अधिक बोलने देने का अवसर देने के अलावा यह भी जरूरी है कि उससे वह उत्तर प्राप्त किया जाय जो वह वास्तव मे देना चाहता है। यदि उत्तेजनावश या किसी अन्य सकोच से वह सही उत्तर नही दे सका है तो इस से जहाँ उसे उपयुक्त पद प्राप्त नही होता वहाँ साक्षात्कारकर्ता भी सही व्यक्ति को खो देता है।

साक्षात्कारकर्ता का चुनाव और प्रशिक्षण

साक्षात्कार प्रणाली के विभिन्न सोपानो के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इसकी सफलता साक्षात्कारकर्ता पर निर्भर होती है। साक्षात्कारकर्ताओ मे अनेक व्यक्तिगत विभिन्नताए पायी जाती हैं जिनसे साक्षात्कार की वैज्ञानिकता पर प्रभाव पडता है। जहाँ एक साक्षात्कारकर्ता का मूल्याकन विश्वसनीय हो सकता है वहाँ दूसरे के बारे मे यही बात नही कही जा सकती। कुछ लोग यह समझते हैं कि साक्षात्कारकर्ताओ मे इन व्यक्तिगत अन्तरो का विशेष महत्व नही है किन्तु यह बात प्रमाणो से सिद्ध नहीं हुयी है। साक्षात्कार के विषय मे जो अध्ययन किये गये हैं उनमे यह मालूम होता है कि भिन्न-भिन्न साक्षात्कार मे विश्वसनीयता और प्रामाणिकता मे भारी अन्तर पाया जाता है। विश्वसनीयता और प्रामाणिकता की कसौटी यह है कि साक्षात्कार मे सबसे अधिक उपयुक्त पाया हुआ व्यक्ति काम करने पर भी सबसे अधिक सफलता प्राप्त करे किन्तु ऐसा नही होता। अनेक प्रयोगो मे यह देखा गया है कि भिन्न-भिन्न साक्षात्कारकर्ताओ ने अलग-अलग व्यक्तियो का मूल्याकन अलग-अलग तरीके से किया। इस सम्बन्ध मे हालिंगवर्थ ने ५७ प्रार्थियो के १२ विक्रय मैनेजरो द्वारा किए गये मूल्याकनों की तुलना की।[5] यह मूल्याकन निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट होता है। जैसा कि इस तालिका को देखने से पता चलता है विक्रय मैनेजरो के मूल्याकन मे कोई भी समानता दिखलायी नही पडती। उदाहरण के लिए

---

4 Uhrbrock, R. S , Analysis of Employment interviews *Personnel*, J , 12, 98—101, (1933).

5. Hollingworth, H. L , *Judging Human Character*, Appleton century Crofts 1922.

विक्रय मैनेजर 'के' ने पहले प्रार्थी को समूह मे सबसे अच्छा पाया जबकि विक्रय मैनेजर 'एल' उसे सबसे बुरा पाता है। यही बात अन्य व्यक्तियों के मूल्यांकन में भी देखी जा सकती है।

प्रार्थी व्यक्ति	विक्रय मैनेजरो द्वारा मूल्यांकन											
	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J	K	L
प्रथम	५३	१०	६	२१	१६	९	२०	२	२६	२८	१	५७
द्वितीय	३३	४६	६	५६	२६	३२	१२	३८	९	२७	२२	२३
तृतीय	५४	४१	३३	१९	२८	४८	८	१०	२६	८	१९	५६
चतुर्थ	४३	११	१३	११	३७	४०	३६	४६	१	१५	२९	२५

इसी प्रकार कार्नहाऊजर ने एक ही समूह के व्यक्तियो का उन्ही साक्षात्कार कर्ताओं से दुबारा साक्षात्कार कराया। यह देखा गया कि इन दो साक्षात्कारो मे सह-सम्बन्ध कम से कम ४२ और सबसे अधिक ७८ था।[6] यहाँ पर यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि यह सम्बन्ध इसलिये सम्भव हो सका क्योंकि जब साक्षात्कारकर्ताओं ने उन्ही व्यक्तियो का फिर से साक्षात्कार किया जिनका साक्षात्कार वे पहले ही कर चुके थे तो उनका अपने पिछले अनुमानो से प्रभावित होना अनिवार्य था। स्पष्ट है कि अव्यवस्थित साक्षात्कार की विश्वसनीयता बहुत कम होती है। इसीलिए आजकल व्यवस्थित साक्षात्कार अच्छा समझा जाता है। किन्तु मूल्यांकन मे यह अन्तर केवल व्यवस्थित साक्षात्कार के कारण ही नही होता। इसका कारण साक्षात्कारकर्ताओं की व्यक्तिगत भिन्नताए भी होती हैं। कभी-कभी तो सेवा योजक परीक्षाए पास करने के बाद भी साक्षात्कारकर्ताओं के मूल्यांकन मे अन्तर देखा जाता है। अस्तु, इस प्रणाली से लाभ उठाने के लिए योग्य साक्षात्कारकर्ताओं का चुनाव भी महत्वपूर्ण बात है। यह योग्यता इस बात पर निर्भर है कि वे प्रार्थी व्यक्ति की विशेष काम मे सफलता के विषय मे कहाँ तक भविष्यवाणी कर सकते हैं। साक्षात्कारकर्ताओं का चुनाव करने के लिए कोई भी वैज्ञानिक विधि नही निकाली जा सकी है। अधिकतर पिछले अनुभव और प्रशिक्षण के आधार पर या विशेष कार्य का विशेषज्ञ होने के कारण किसी व्यक्ति को साक्षात्कारकर्ता बना दिया जाता है। यहा यह ध्यान रखना आवश्यक है कि किसी

6 Kornhauser, A. W., Reliability of average ratings, J. *Personnel Research*, 5 309—317 (1928).

काम का विशेषज्ञ होना एक बात है और प्रार्थी व्यक्ति से ऐसे प्रश्न पूछना दूसरी बात कि जिनसे उसकी विशिष्ट कार्य मे योग्यता स्पष्ट होती हो। यह साक्षात्कारकर्ता के विशेषज्ञ होने पर नही बल्कि उसकी सूझ-बूझ और मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि पर निर्भर है। फिर भी साक्षात्कारकर्ताओं के मूल्याकनो की जाच करके और उन्हे विशेष प्रकार का प्रशिक्षण देकर उनकी विश्वसनीयता बढायी जा सकती है। स्पीलमैन और बर्ट के अनुसार साक्षात्कार करने के अभ्यास के बढने के साथ-साथ साक्षात्कारकर्ताओ की भी विश्वसनीयता बढती जाती है।[7] यह बात अन्य वैज्ञानिको के अध्ययनो से ही पुष्ट हुयी है। अस्तु, आजकल साक्षात्कारकर्ताओ को प्रशिक्षण देने पर जोर दिया जाता है। इस प्रशिक्षण मे उसे निम्नलिखित बातें सिखायी जानी चाहिए—

(१) साक्षात्कारकर्ता को व्यक्तिगत विभिन्नताओं की प्रकृति और महत्व का व्यापक ज्ञान प्राप्त कराया जाना चाहिए।

(२) साक्षात्कारकर्ताओ को मूल्याकन के मौलिक सिद्धान्त समझाये जाने चाहिये।

(३) साक्षात्कारकर्ता को उस कार्य का पूरी तरह ज्ञान होना चाहिये जिसके लिये उसे उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव करना है।

(४) साक्षात्कारकर्ता को परीक्षा के रूप मे साक्षात्कार करने का अवसर देना चाहिए और उसके कार्य का निरीक्षण और मूल्याकन करके उसे उसकी गल्तियो से परिचित कराया जाना चाहिए। इन गल्तियो को दूर करने का अनेक बार अभ्यास कराने से साक्षात्कार करने की योग्यता बढेगी।

अनेक व्यक्तियों द्वारा साक्षात्कार

साक्षात्कारकर्ता की व्यक्तिगत विभिन्नताओ के कारण इस प्रणाली की विश्वसनीयता की कमी पूरा करने का एक उपाय एक से अधिक साक्षात्कारकर्ताओ द्वारा साक्षात्कार किया जाना है। यह विधि विशेषतया उन नौकरियो मे चुनाव के लिए प्रयोग की जाती है जिनमे अत्यन्त उच्च स्तर का उत्तरदायित्व होता है और जिनके लिए आवश्यक योग्यताओ को कर्मचारी वरण की अन्य विधियो से पता नही लगाया जा सकता। यहा पर सबसे बडी कठिनाई यह है कि अनेक बार भिन्न-भिन्न साक्षात्कारकर्ता एक ही व्यक्ति मे परस्पर विरोधी लक्षण पाते है। फिर, प्रत्येक साक्षात्कारकर्ता अपने विशेष मानसिक झुकाव के कारण कुछ बातो की ओर ध्यान देता है और अन्य बातो की ओर कोई ध्यान नही देता। इससे एक लाभ अवश्य होता है कि जो बात एक साक्षात्कारकर्ता की नजर मे छूट जाती है वह दूसरे के ध्यान मे आ सकती है और इस प्रकार प्रार्थी व्यक्ति के विषय मे अधिक पूर्ण चित्र उपस्थित हो सकता है। अस्तु, आजकल सब कही ऊचे पदो पर चुनाव करने के लिए एक से

---

7 Spielman, W., and C. Burt, The estimation of character qualities in vocational guidance, *Ind, Fatigue Research Ed* No 33, (1926).

अधिक व्यक्ति साक्षात्कार करने बैठते है। अनेक साक्षात्कारकर्ता होने पर सामूहिक परिस्थिति निर्माण हो जाती है और उससे कुछ नयी बातें सामने आती है।

सामूहिक साक्षात्कार

साक्षात्कार का एक अन्य प्रकार सामूहिक साक्षात्कार अथवा परिस्थिति परीक्षण है। इसमे अनेक प्रार्थी व्यक्ति एक साथ साक्षात्कार के लिए उपस्थित होते है। साधारणतया उन्हे वाद-विवाद या ऐसा ही कोई सामूहिक कार्य करने के लिए दिया जाता है और यह देखा जाता है कि इस सामूहिक परिस्थिति मे वे कैसे काम करते हैं। जिन प्रार्थियो मे नेतृत्व का गुण होता है वे दूसरो से आगे दिखलाई पडते है और कुछ लोग सामूहिक कार्य मे बहुत ही कम भाग लेते है। किन्तु सामूहिक परिस्थिति मे किसी व्यक्ति के व्यवहार की जाच की विश्वसनीयता असदिग्ध नही है। यह ठीक है कि इससे व्यापक सामाजिक परिस्थिति मे व्यक्ति के व्यवहार की जाच हो पाती है किन्तु दूसरी ओर सामूहिक परिस्थिति मे प्रत्येक व्यक्ति की अलग-अलग स्थिति और उसके गुण दोषो के अनुसार उनका व्यवहार अलग-अलग हो सकता है जो कि उनकी अपनी योग्यता के कारण नही बल्कि बहुत कुछ उनकी स्थायी, सामूहिक परिस्थिति के कारण होता है। फिर, यदि वाद-विवाद मे कोई व्यक्ति अधिक बोलता है तो इससे नेतृत्व का गुण पूरी तरह स्पष्ट नही होता। अस्तु, सामूहिक साक्षात्कार विधि कहां तक उपयुक्त है, इस विषय मे पूर्व परीक्षण किए बिना कोई भी बात निश्चित् रूप से नही कही जा सकती।

साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी का मूल्याकन—

साक्षात्कार प्रणाली मे अन्तिम सोपान साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी का मूल्याकन है। यह मूल्याकन दो विधियो से किया जाता है—विश्लेषणात्मक विधि और सकलित विधि। पहले प्रकार मे प्रार्थी की अलग-अलग योग्यताओ के योग या समूह को उसकी योग्यता मान लिया जाता है। दूसरे प्रकार मे प्रार्थी व्यक्ति के सम्पूर्ण चित्र के आधार पर उसका मूल्याकन किया जाता है। इन दोनो विधियो मे से कौनसी विधि अधिक उपयुक्त है, इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

(१) **विश्लेषणात्मक विधि (Analytic Method)**—इस विधि मे कार्य को विभिन्न विशिष्ट पहलुओ मे बाट दिया जाता है और प्रत्येक पहलू मे प्रार्थी व्यक्ति की योग्यताओ की जाँच की जाती है। अन्त मे इन अलग-अलग प्राप्ताको को जोड कर प्रार्थी व्यक्ति की योग्यता का मूल्याकन किया जाता है। इस प्रणाली का एक विशेष लाभ यह है कि इससे प्रार्थी व्यक्ति की योग्यता के विभिन्न पहलुओ की जाच हो जाती है क्योकि कुछ कामो मे कुछ विशिष्ट योग्यताओ की अधिक आवश्यकता पडती है। यहां पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रार्थी का अन्तिम मूल्याकन करते समय उसकी उन विशेष योग्यताओ को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए जिनका विशिष्ट कार्य मे सफलता से सीधा सम्बन्ध है। ऐसा न होने पर केवल अलग-अलग योग्यताओ के जोड से उसकी भावी सफलता का अनुमान नही लगाया जा सकता।

(२) संकलित विधि (Integrative Method)—व्यक्ति एक संकलित पूर्ण है और उसे कृत्रिम रूप से टुकड़ो में बांटकर अध्ययन करने से उसका सही चित्र उपस्थित नही हो सकता। संकलित विधि में प्रार्थी का मूल्यांकन साक्षात्कारकर्ता द्वारा उसके सम्पूर्ण चित्र पर निर्भर होता है। कुछ बातें ऐसी होती हैं जो दूसरी बातों मे कमी को पूरा करती हैं। उदाहरण के लिये हो सकता है कि किसी प्रार्थी को किसी पद के लिये आवश्यक पूर्व अनुभव न हो किन्तु अत्यधिक प्रेरणा और अत्यन्त अच्छे गुण होने के कारण अनुभव हीन होने पर भी वह व्यक्ति दूसरो से अधिक अच्छा है। इस प्रकार संकलित विधि मे प्रार्थी के सम्पूर्ण चित्र पर जोर दिया जाता है जब कि इसमे किसी एक पहलू में प्राप्तांक कम हो सकते हैं। प्रार्थी का कुल मिलाकर क्या मूल्यांकन होता है यह महत्वपूर्ण बात होती है।

वास्तव मे कर्मचारी वरण मे साक्षात्कार के मूल्यांकन की उपरोक्त दोनों विधियों को प्रयोग किया जाता है। बहुधा अप्रशिक्षित साक्षात्कारकर्ता प्रार्थी के किसी एक अथवा अनेक पहलुओं का ही अध्ययन करते हैं, सम्पूर्ण चित्र उनकी दृष्टि मे नही आता। दूसरी ओर अनुभवी और प्रशिक्षित साक्षात्कारकर्ता विशेष क्षेत्र मे योग्यता का मूल्यांकन भी सम्पूर्ण चित्र की पृष्ठभूमि में करते है। इस प्रकार साक्षात्कार से मिली सामग्री के आधार पर मूल्यांकन करने मे विश्लेषणात्मक और संकलित दोनो ही विधियों से काम लिया जाना चाहिये। जहाँ विश्लेषणात्मक विधि मे प्रार्थी के विषय मे विस्तारपूर्वक जानने का अवसर मिलता है वहा संकलित सम्पूर्ण चित्र की अनुपस्थिति में यह जानकारी पर्याप्त नही है।

साक्षात्कार मे कितना समय दिया जाता है यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। समय इतना होना चाहिये कि प्रार्थी को अपना पक्ष उपस्थित करने का पर्याप्त अवसर मिल जाए। जब कभी प्रार्थियों की संख्या बहुत अधिक होती है तो उन्हें बहुत कम समय दिया जाता है। समय की इस कमी के कारण उनकी योग्यताओं का ठीक-ठीक मूल्यांकन नही हो पाता। सन् १९२९ मे वैस्टर्न एलेक्ट्रिक कम्पनी ने बाइस हजार कर्मचारियों का चुनाव करने के लिये १,७६,००० प्रार्थियों को साक्षात्कार के लिये बुलाया। पहले चालीस प्रतिशत व्यक्तियों के साक्षात्कार मे एक मिनट का समय दिया गया और बाकी बचे हुये व्यक्तियों को प्रत्येक व्यक्ति पांच मिनट दिया गया। इसी वर्ष न्यूयार्क की मैसी कम्पनी ने १,७६,००० प्रार्थियों को साक्षात्कार के लिये बुलाया और पहले चरण मे एक मिनट, दूसरे में पांच और छ: मिनट तथा तीसरे मे बीस से पच्चीस मिनट समय दिया।[8] इस प्रकार के उदाहरण भारतवर्ष में भी देखे जा सकते हैं। कभी-कभी तो साक्षात्कार के लिये इतने अधिक व्यक्ति बुला लिये जाते हैं कि समय की कमी के कारण अनेक व्यक्तियों को एक साथ साक्षात्कार के लिये पेश किया जाता है। यह नितान्त अनुचित है। साक्षात्कार के

8. Bingham, W. V. and B. V. Moore, *How to Interview*, New York (1931), p 58.

लिये बुलाने से पहले ही आवेदन रिक्त पत्रों में दी हुई सूचनाओं के आधार पर उपयुक्त व्यक्तियों को छांट लिया जाना चाहिये और केवल इतने ही प्रार्थी बुलाये जाने चाहियें जिनको साक्षात्कार के लिये पर्याप्त समय दिया जा सके। कुछ कम्पनियां लगभग प्रत्येक प्रार्थी को साक्षात्कार के लिये बुला लेती हैं ताकि यदि वह न भी चुना गया तो भी उसे यह विश्वास हो जाये कि कम्पनी ने निष्पक्ष रूप से चुनाव किया है और उसे अपना पक्ष प्रस्तुत करने का पूरा अवसर दिया है। कम्पनी का नाम रोशन करने का यह तरीका किसी भी तरह उचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह प्रार्थियों के साथ खिलवाड़ है।

साक्षात्कार में त्रुटियां

साक्षात्कार प्रणाली में कुछ ऐसी त्रुटियां हैं जिनके कारण उसकी प्रामाणिकता कम हो जाती है। संक्षेप में ये त्रुटियां निम्नलिखित हैं —

(१) **सम्बद्ध प्रतिक्रियायें (Conditioned Reactions)** :—साक्षात्कार के लम्बे अनुभव के कारण साक्षात्कारकर्ता को विशेष गुणों, आकृतियों, हाव-भाव, नामों, उपनामों, वस्त्रों, चाल-ढाल, व्यवहार आदि के प्रति सम्बद्ध प्रतिक्रियायें बन जाती हैं जिनके कारण वे उन व्यक्तियों को विशिष्ट कार्य के योग्य अथवा अयोग्य समझने लगते हैं। कुछ लोगों का यह दावा है कि वे एक नजर डाल कर ही सही कर्मचारी का चुनाव कर सकते हैं। ऐसे लोग प्रार्थी के उत्तर पर भी कोई ध्यान नहीं देते और न अपने प्रश्नों के विषय में ही गम्भीरता दिखलाते हैं। इनका चुनाव सोच-विचार का नहीं बल्कि उनकी सम्बद्ध प्रतिक्रिया का परिणाम होता है। स्पष्ट है कि यह विधि नितान्त अवैज्ञानिक है।

(२) **सामान्य आदतों में विश्वास (Belief in General habits)** :—कुछ लोगों का यह विचार है कि व्यक्तियों में सामान्य आदतें होती हैं। उदाहरण के लिये जो प्रार्थी कपड़े पहनने में पूरी सावधानी बर्तता है वह अन्य कामों में भी पूरी सावधानी बरतेगा। इसी तरह यह मान लिया जाता है कि जो व्यक्ति साक्षात्कार में उत्तेजित नहीं होता वह किसी भी परिस्थिति में उत्तेजित नहीं होगा अथवा जो व्यक्ति सामूहिक साक्षात्कार में दूसरों से आगे बढ़कर काम करता है वह कार्य की वास्तविक परिस्थितियों में भी नेतृत्व के गुण दिखलायेगा। इस प्रकार की सामान्य आदतों में विश्वास तथ्यों पर आधारित नहीं है क्योंकि बहुधा यह देखा जाता है कि जो व्यक्ति एक क्षेत्र में कार्य को पूरी तरह करता है वह दूसरे क्षेत्र में ऐसा नहीं करता, जो एक परिस्थिति में नेतृत्व दिखलाता है वह दूसरी परिस्थिति में सबसे पीछे रह जाता है, जो कपड़ों की ओर ध्यान नहीं देता वह कभी-कभी काम में सबसे अच्छा होता है। अस्तु, साक्षात्कार के एक मिनट या पांच मिनट में प्रार्थी व्यक्ति की आदतों को पढ़ने की कोशिश करके उसमें कुछ सामान्य आदतें मान बैठना नितान्त अनुचित है।

(३) **शाब्दिक कठिनाइयां (Verbal Difficulties)** :—साक्षात्कार में प्रार्थी को प्रश्नों का उत्तर देना होता है। प्रश्नों के उत्तर किस तरह दिये जाने चाहियें यह

अनुभव अनेक बार साक्षात्कार में उपस्थित होने पर मिलता है। इसीलिये अनुभवी प्रार्थी ऐसे उत्तर देते हैं कि उनमे कम योग्यता होने पर भी उनको चुन लिया जाता है। दूसरी ओर नये व्यक्ति साक्षात्कार में ऐसे उत्तर देते है जिनके कारण उनमे बहुत सी योग्यता होने पर भी उन्हे नौकरी के लिये नही चुना जाता। उदाहरण के लिए साक्षात्कार में प्रश्नो के ऐसे उत्तर देना कि साक्षात्कारकर्ता बुरा मान जाए प्रार्थी के पक्ष मे नही होता भले ही वह अपनी ओर से सच्ची बात कह रहा हो। इसीलिये आजकल सरकारी नौकरियो मे साक्षात्कार के लिये जाने से पहले बहुत से प्रार्थी शिष्टाचार के नियमो, चाल-ढाल, वेश भूषा आदि के बारे में विस्तार से मालूम करते हैं ताकि जो योग्यतायें उनमे नही भी हैं उन्हें भी दिखला सकें। इनका उद्देश्य साक्षात्कार मे अपने गुणो को प्रदर्शित करना नही होता बल्कि साक्षात्कार-कर्ता को इस भ्रम में डालना होता है कि उनमें वे गुण है। स्पष्ट है कि इसमे साक्षात्कार का उद्देश्य असफल हो जाता है।

(४) **संवेगात्मक प्रतिक्रियायें** (Emotional Responses)—कुछ विशेष कारणो से कुछ प्रार्थी साक्षात्कार कक्ष मे जाते ही घबरा जाते हैं। उनमें आत्मविश्वास नही होता या एक दो प्रश्नों के जवाब देने मे असफल होने से वे आत्मविश्वास खो बैठते हैं और फिर इस प्रकार पेश आते हैं कि उनके सब गुण अवगुण बन जाते हैं और योग्यता होते हुए भी उनका चुनाव नही होता। कुछ साक्षात्कारकर्ता जान बूझ कर प्रार्थी को घबरा देते हैं, उससे ऐसे प्रश्न करते हैं और उसके उत्तरों पर ऐसी टिप्पणी करते हैं कि उसे अपमान अनुभव होता है और वह मानसिक सतुलन खो बैठता है। प्रार्थी व्यक्ति के सवेगो से यह खिलवाड नितान्त अनैतिक है भले ही उसका चुनाव किया जाय या न किया जाय।

(५) **अनुकरण की प्रवृत्ति** (Tendency to Imitate)—साक्षात्कार एक सामाजिक परिस्थिति है जिसमे प्रार्थी और साक्षात्कारकर्ता दोनो पर एक-दूसरे के व्यवहार का प्रभाव पडता है और अचेतन रूप से उन्हे अनुकरण का सुझाव मिलता है। इसीलिए जब एक बिगडता है तो दूसरा भी बिगड उठता है, जिससे साक्षात्कार का उद्देश्य ही असफल हो जाता है।

(६) **कार्य के अच्छे पहलू को उपस्थित करना** (Presenting good aspect of work)—कार्य के बारे मे बतलाने मे कर्मचारी को उसके अच्छे और बुरे दोनो ही पहलुओ से परिचित कर दिया जाना चाहिए। बहुधा होता यह है कि जब कि उसे अच्छे पहलू से परिचित करा दिया जाता है वह कठिनाइयो से परिचित नही होता। इसका परिणाम यह होता है कि जब वह काम पर लग जाता है तो उसे बडी परेशानियों का सामना करना पडता है।

(७) **योग्यता के स्तर सम्बन्धी कल्पना** (Imagination of the level of ability)—चूंकि बहुधा साक्षात्कारकर्ता विशेष काम का विशेषज्ञ होता है इसलिए उस काम पर चुने जाने वाले व्यक्ति की योग्यता के स्तर की कल्पना करने मे वह

अतिशयोक्ति से काम लेता है जिसका परिणाम यह होता है कि वह अधिकतर प्रार्थियो को उसके योग्य नही पाता।

(८) व्याख्या की कठिनाई (Difficulty of Explanation)—प्रार्थी के किस उत्तर की क्या व्याख्या की जानी चाहिए यह उसी को अच्छी तरह पता होता है और यदि उसने सही शब्द नही चुने हैं तो बहुधा उसके उत्तर की उल्टी व्याख्या हो जाती है। साक्षात्कार की इस कठिनाई को तभी दूर किया जा सकता है जबकि साक्षात्कार-कर्त्ता प्रार्थी को समझने मे सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रक्खे।

साक्षात्कार की त्रुटियों को दूर करना

साक्षात्कार की उपरोक्त त्रुटियों को दूर करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिको ने महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। इनमें मुख्य निम्नलिखित हैं:—

(१) योग्य साक्षात्कारकर्ता का चयन—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, साक्षात्कार करने का कार्य चाहे जिस व्यक्ति को नही दिया जाना चाहिए। इसके लिए ऐसे योग्य साक्षात्कारकर्ता का चुनाव किया जाना चाहिए जिसका व्यक्तित्व और चरित्र उच्च हो, जो कार्य का विशेषज्ञ हो और मानव-मनोविज्ञान मे गहरी अन्तर्दृष्टि रखता हो। वह आत्मनियन्त्रित और ईमानदार होना चाहिए। उसमें प्रार्थियो की बात को सहानुभूतिपूर्वक सुनकर उनकी योग्यता का सही अनुमान लगाने की योग्यता होनी चाहिए। अस्तु, प्रार्थियो का चुनाव करने से पहले विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणो के द्वारा साक्षात्कारकर्ता का चुनाव किया जाना चाहिए।

(२) साक्षात्कारकर्ता का प्रशिक्षण—योग्य साक्षात्कारकर्ता का चुनाव करने के बाद उसे विशिष्ट पद के लिए साक्षात्कार करने का अवसर देने के पूर्व उससे सम्बन्धित बातो की जानकारी कराई जानी चाहिए। इस प्रशिक्षण के अभाव में वह योग्य होने पर भी वर्तमान कार्य को ठीक प्रकार नही कर सकेगा।

(३) उचित प्रश्नों का चुनाव—साक्षात्कार की त्रुटियो से बचने के लिए यह आवश्यक है कि प्रश्नो को पहले से ही चुन लिया जाए। ऐसे प्रश्न चुने जाने चाहिए जो उन गुणो पर विशेष प्रकाश डालते हों जिनका विशिष्ट कार्य मे सफलता से निकट सम्बन्ध है।

(४) प्रश्नों की भाषा पर ध्यान देना—प्रश्नो के चुनाव के बाद उनकी भाषा पर ध्यान दिया जाना चाहिये। भाषा ऐसी हो कि साक्षात्कारकर्ता जो बात पूछना चाहता है उसके प्रश्न से प्रार्थी वही अर्थ लगाये।

(५) साक्षात्कार विधियों का मानकीकरण—साक्षात्कार विधियो को प्रामाणिक बनाने के लिये भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिको ने अलग-अलग सुझाव दिये हैं। एण्डरसन के अनुसार प्रश्न करते समय साक्षात्कारकर्ता को यह ध्यान देना चाहिये कि प्रार्थी व्यक्ति उसके प्रश्न का ठीक-ठीक अर्थ समझ रहा है कि नही। इस सम्बन्ध मे एस० ए० क्वीन ने यह सुझाव उपस्थित किया है कि साक्षात्कारकर्ता को प्रश्नों

को कार्डों पर छपवा लेना चाहिये और ये कार्ड साक्षात्कार के समय प्रार्थियों को दिये जाने चाहिये ताकि वे दिये हुए प्रश्नों को ठीक से समझ लें। साक्षात्कार के मानकीकरण के लिये यह सुझाव महत्वपूर्ण है।

(६) **एक दूसरे में रुचि लेना** :—साक्षात्कार की प्रक्रिया के दो अंग हैं—प्रार्थी और साक्षात्कारकर्ता। साक्षात्कार की सफलता में इन दोनों का ही हाथ है। इसलिये इन दोनों को एक दूसरे में रुचि लेनी चाहिये ताकि प्रार्थी का पक्ष अधिक से अधिक स्पष्ट रूप में उपस्थित हो सके।

(७) **उचित समय और स्थान** :—सही परिणाम प्राप्त करने के लिये साक्षात्कार का समय और स्थान उचित होना चाहिये। ऐसे समय साक्षात्कार अनुचित है जबकि व्यक्ति थका हुआ हो। अस्तु, साक्षात्कार के लिये ऐसा समय चुनना चाहिये जिसमें प्रार्थी व्यक्ति अपने को अधिक से अधिक अच्छी तरह उपस्थित कर सके। जब बहुत बड़ी संख्या में लोग साक्षात्कार के लिए बुलाए जाते हैं तो जिन लोगों का नम्बर बहुत देर में आता है वे इन्तजार में थक जाने के कारण अपने पक्ष को अच्छी तरह उपस्थित नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में साक्षात्कार अगले दिन के लिये स्थगित कर दिया जाना चाहिये। साक्षात्कार का स्थान ऐसा होना चाहिये जहाँ व्यर्थ शोर न हो और ध्यान न बटे। तभी प्रार्थी व्यक्ति अपने को सही रूप में उपस्थित कर पाएगा।

(८) **प्रार्थी की मानसिक दशा की जाँच** :—साक्षात्कार से तभी लाभ हो सकता है जबकि प्रार्थी व्यक्ति स्वस्थ मानसिक दशा में हो। अस्तु, साक्षात्कार करने के पूर्व साधारणतया यह जाँच कर लेनी चाहिये कि प्रार्थी किसी प्रकार से दुःखी या मानसिक रूप से अस्वस्थ तो नहीं है। यदि ऐसा हो तो पहले उसे सामान्य स्थिति पर ले आना चाहिये और तब प्रश्न पूछना आरम्भ करना चाहिये।

साक्षात्कार का महत्व—

इस प्रकार यदि साक्षात्कार की त्रुटियों को दूर करने की ओर ध्यान दिया जाय तो कर्मचारी वरण की यह प्रणाली अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। इससे प्रार्थी के व्यक्तित्व के अनेक लक्षणों का पता चलता है। इसमें ऐसी अनेक व्यक्तिगत सूचनायें प्राप्त होती हैं जिनको लिखकर नहीं दिया जा सकता। इससे अभिवृत्तियों, भावनाओं और प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जा सकता है। इसमें व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार अलग-अलग प्रार्थियों से ऐसे प्रश्न पूछे जा सकते हैं जिनसे मतलब की बात निकल आए। जबकि प्रश्नावली विधि में केवल उत्तर मालूम होता है साक्षात्कार में उत्तर देते समय के हाव-भाव और व्यवहार पर भी प्रकाश पड़ता है। साक्षात्कार से कभी-कभी प्रार्थी के मानसिक द्वन्द्वों और संवेगों तथा नेतृत्व के गुण आदि बातों का भी पता चलता है। जब कभी मालिक स्वयं साक्षात्कार के लिये बैठता है तो साक्षात्कार के द्वारा भावी कर्मचारी को मालिक के निकट सम्पर्क में आने का और दोनों को एक दूसरे को समझने का अवसर मिलता है। जब कभी

विशेषज्ञ साक्षात्कार के लिये बैठता है तो विशेषज्ञ से मिलने का अवसर आने से प्रार्थी को लाभ होता है।

साक्षात्कार के उपरोक्त महत्व के कारण आजकल अधिकतर उद्योगो और दफ्तरो मे कही पर यह कर्मचारी वरण की एकमात्र विधि है और कही विधि का अनिवार्य अंग है। अधिकतर कर्मचारी वरण के लिये पहले प्रार्थियो से आवेदन रिक्त पत्र भरवा लिये जाते हैं। इन रिक्त पत्रों मे ऐसे व्यक्तियो को छाँट लिया जाता है जिनकी कार्य मे सफलता की अधिक गुंजायश है। अब साक्षात्कार के द्वारा इनमे से सबमे अधिक उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव कर लिया जाता है। यह ठीक है कि कर्मचारी वरण की इस प्रणाली में वैज्ञानिक दृष्टि से अनेक दोष हो सकते हैं परन्तु व्यावहारिक रूप मे फिर भी यह विधि सबसे अधिक प्रयोग की जाती है।

सारांश

साक्षात्कार सामाजिक अनुक्रिया की एक प्रक्रिया है जिसमें साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कारदाता के उत्तरों और हाव-भावों तथा प्रतिक्रियाओं के आधार पर विशेष कार्य के लिये उसकी उपयुक्तता के विषय में अनुमान लगाता है।

साक्षात्कार के उद्देश्य—(१) सम्मुख सम्पर्क द्वारा सूचना प्राप्त करना, (२) व्यक्तिगत सूचनाओं का पता लगाना, (३) परिकल्पनाओं की जांच, (४) प्रार्थना पत्र की सूचनाओं की जांच, (५) अवलोकन का अवसर, (६) मौखिक तथा शाब्दिक व्यवहारों का अध्ययन।

साक्षात्कार के प्रकार—(१) अव्यवस्थित साक्षात्कार, (२) व्यवस्थित साक्षात्कार, (३) प्रतिमानित साक्षात्कार। इनमें व्यवस्थित साक्षात्कार सबसे अधिक उपयुक्त है।

साक्षात्कार प्रणाली के अङ्ग—(१) प्रार्थी व्यक्ति, (२) साक्षात्कार-कर्ता, (३) साक्षात्कार की प्रक्रिया।

साक्षात्कार विधि की सीमायें:—(१) संदिग्ध जानकारी, (२) असत्य को प्रोत्साहन, (३) प्रार्थी की सहमति की समस्या, (४) कुशल साक्षात्कारकर्ता की आवश्यकता, (५) साक्षात्कारकर्ता का अत्यधिक महत्व, (६) अधिक व्यय साध्य विधि।

साक्षात्कार प्रणाली के मुख्य सोपान—(१) कार्य के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त करना, (२) जांच के लिये योग्यताओं के क्षेत्रों का आयोजन, (३) साक्षात्कार के पूर्व जानकारी प्राप्त करना, (४) प्रश्न पूछने की प्रक्रिया।

साक्षात्कारकर्ता का चुनाव और प्रशिक्षण—साक्षात्कार में सफलता प्राप्त करने के लिये सबसे पहले सही साक्षात्कारकर्ता का चुनाव किया जाना चाहिए। अब इसे विशेष कार्य के लिये साक्षात्कार करने का प्रशिक्षण देना चाहिये। उसे कार्य का पूरी तरह ज्ञान होना चाहिये और व्यक्तिगत विभिन्नताओं तथा मूल्यांकन के

सिद्धान्तों की जानकारी होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त उसे साक्षात्कार करने का लम्बा अभ्यास भी होना चाहिये।

साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी का मूल्यांकन—(१) विश्लेषणात्मक विधि, (२) संकलित विधि।

साक्षात्कार में त्रुटियां—(१) सम्बद्ध प्रतिक्रियायें, (२) सामान्य आदतों में विश्वास, (३) शाब्दिक कठिनाइयां, (४) संवेगात्मक प्रतिक्रियायें, (५) अनुकरण की प्रवृत्ति, (६) कार्य के अच्छे पहलू को उपस्थित करना, (७) योग्यता के स्तर सम्बन्धी कल्पना, (८) व्याख्या की कठिनाई।

साक्षात्कार की त्रुटियों को दूर करना—(१) योग्य साक्षात्कारकर्ता का चयन, (२) साक्षात्कारकर्ता का प्रशिक्षण, (३) उचित प्रश्नों का चुनाव, (४) प्रश्नों की भाषा पर ध्यान देना, (५) साक्षात्कार विधियों का मानकीकरण, (६) एक दूसरे में रुचि लेना, (७) उचित समय और स्थान, (८) प्रार्थी की मानसिक दशा की जांच।

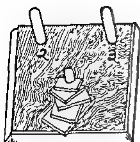
साक्षात्कार का महत्व—साक्षात्कार की त्रुटियों को दूर करके उसकी सीमाओं के बावजूद उसे कर्मचारी वरण की एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली प्रणाली बनाया जा सकता है। आजकल लगभग सब कहीं कर्मचारी वरण में आवेदन रिक्त पत्र भरने के साथ-साथ साक्षात्कार के लिये उपस्थित होना आवश्यक माना जाता है और व्यावहारिक रूप में साधारणतया कर्मचारी वरण की यह विधि उपयुक्त भी सिद्ध होती है।

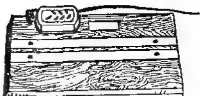
अभ्यास के लिये प्रश्न

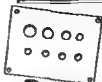
प्रश्न १—कर्मचारी वरण की साक्षात्कार प्रणाली पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

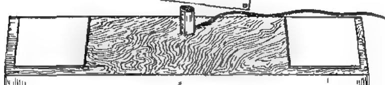
Write a short essay or interview method of personnal se'ection.



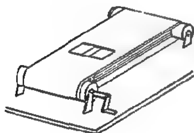






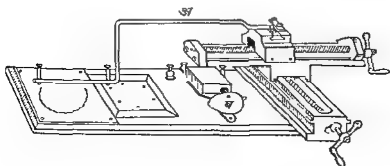


अभिरुचि परीक्षण के उदाहरण—
(अ) समस्या पूर्ति परीक्षण (ब) स्थिरता परीक्षक
(स) स्थिरता परीक्षक (द) स्थिरता परीक्षक



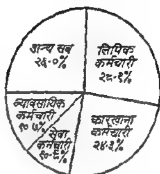
			2	A				
			3	B	7			
	3	1	2	C	7		2	
		2		D	2		3	
	2		1	E		1	7	
	3		7	F	1	3		2
		2		G	2	3	2	
	3		3	H		2		3

मुन्स्टरबर्ग का मोटरमैन चुनाव परीक्षण

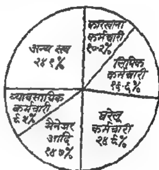


एंजिन लेथ अभिवृत्ति का विसकॉन्सिन परीक्षण









प्राजकल औद्योगिक क्षेत्र मे स्त्रियो की सख्या बराबर बढती आ रही है। उपरोक्त चित्र सयुक्त-राष्ट्र अमरीका के श्रम विभाग द्वारा दी गई सूचनाश्रो पर प्राधारित है। इससे यह मालूम पडता है कि किस आयु समूह मे किस कार्य मे कितनी स्त्रियां लगी हैं।

११

कार्यवक्र

(The Work Curve)

कार्य क्या है ?

कार्य की परिभाषा किसी निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये की गई क्रिया के रूप में की जा सकती है। इस तरह कार्य किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई क्रिया है। उदाहरण के लिए विभिन्न मनुष्य अपनी जीविकोपार्जन के लिये भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं। जीविकोपार्जन के अलावा कार्य के अन्य उद्देश्य भी हो सकते है जैसे विद्या अध्ययन, यश प्राप्ति इत्यादि। यहाँ पर कुछ लोग यह आक्षेप उठा सकते हैं कि खेल में भी तो उद्देश्य होता है तब फिर कार्य की उपरोक्त परिभाषा से वह खेल से भिन्न नही जान पडता। यहां पर दो बातें ध्यान रखनी आवश्यक हैं। एक तो खेल में मिलने वाला आनन्द या उसमे होने वाली शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति खिलाडी को खेल के परिणामस्वरूप मिलते अवश्य हैं परन्तु वह पहले से उनको उद्देश्य बनाकर खेल नही खेलता। दूसरे, खेल और कार्य में सीमा रेखा नही खींची जा सकती। केवल मनोवृत्ति के अन्तर से एक ही क्रिया खेल भी हो सकती है और कार्य भी। उदाहरण के लिए जिस तरह खेल खेलते समय खिलाडी खेल की क्रिया को पूरे मनोयोग से करता है और फल की ओर अधिक ध्यान नही देता उसी तरह कर्मठ व्यक्ति काम करते समय उसे अधिक से अधिक कुशलता से करने की ओर ध्यान देते है उसके परिणाम की ओर इतना ध्यान नहीं देते। और फिर, कितनी भी स्पोर्ट्समैन स्प्रिट से खेलने वाला खिलाडी भी हार जीत की ओर कुछ न कुछ ध्यान तो देता ही है। अस्तु, पीछे जो कार्य की परिभाषा की गई है वह खेल से उसका सापेक्ष (Relative) अन्तर दिखलाती है, दोनों में पूर्ण अन्तर नही है। जहाँ तक खेल के रुचिकर और आनन्दमय होने का प्रश्न है यह बात अनेक प्रकार के कार्यों के विषय में भी देखी जा सकती है। अनेक महान् व्यक्तियों की सफलता का रहस्य यही है कि वे अपने मुख्य कार्य में खेल का सा आनन्द और रुचि लेते हैं।

कार्य और खेल
(Work and Play)

कुछ लोग कहते हैं कि व्यक्ति को खेल को काम और काम को खेल की तरह करना चाहिए। इससे तात्पर्य यह है कि खेल भी पूरे मनोयोग से खेले जाने चाहियें और काम मे भी खेल की तरह आनन्द लिया जाना चाहिए। परन्तु इस कहावत से कभी-कभी यह भ्रम हो सकता है कि खेल और काम मे अन्तर नही करना चाहिये। यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गलत है। खेल और काम मे निम्नलिखित मुख्य अन्तर हैं—

(१) उद्देश्य का अन्तर—किसी बालक को खेल खेलते देखिये और उससे पूछिये कि वह क्या और क्यो कर रहा है तो वह यही उत्तर देगा कि वह खेल-खेल रहा है और वह भी खेल के ही लिए। इस तरह एक खेल एक सामान्य प्रवृत्ति है, वह स्वयं अपना उद्देश्य है। उसको किसी अन्य उद्देश्य से नही खेला जाता। बहुधा वह काम के विरोधी के रूप में देखा जाता है इसलिए लोग खेल में मस्त रहने वाले बालक को कामचोर समझते हैं। अनेक विद्यार्थी स्कूलों से भाग कर दिन भर इधर-उधर खेलते रहते हैं। ताश के खिलाड़ियों से पूछिये कि उनसे क्या लाभ होता है तो यही उत्तर मिलेगा कि खेल कर देखिये। ताश के खेल का आनन्द ही उसका उद्देश्य है। दूसरी ओर कोई भी काम निरुद्देश्य नही किया जाता। पढ़ाई-लिखाई, मेहनत मजदूरी तथा दुनियाँ के सैकड़ो हजारों व्यवसाय किसी न किसी लक्ष्य से किये जाते हैं चाहे वह धनोपार्जन हो या यश प्राप्त करना। कार्य स्वय मे अपना उद्देश्य नही है। कोई भी व्यक्ति काम केवल काम के लिए नही करता, चाहे दाम के लिए करता हो नाम के लिए। वर्तमान काल में परिश्रम का कार्य करते समय व्यक्ति को भविष्य में उसके द्वारा मिलने वाले फल की कल्पना से उत्साह मिलता रहता है। परन्तु खेल खेलते समय प्रत्येक क्षण उसका आनन्द मिलता रहता है, वह भविष्य के लिए नही खेलता। यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है कि अधिकतर खेल में विपक्षी को हराने का उद्देश्य अवश्य होता है। तब फिर उद्देश्य को लेकर खेल और कार्य मे कैसे अन्तर किया जा सकता है। इसके उत्तर में यदि यह पूछा जाय कि विपक्षी को हराने से जीतने वाले को क्या मिलता है और हारने वाला क्या खोता है तो उसके उत्तर में कोई ठोस चीज नही बतलाई जा सकती। वास्तव मे, जैसा कि ड्रेवर ने संकेत किया है, खेल के उद्देश्य काल्पनिक जगत के उद्देश्य हैं, दूसरी ओर काम के उद्देश्य वास्तविक जगत के उद्देश्य होते हैं। बहुधा व्यक्ति को बाध्य होकर कार्य करना होता है, खेल मे किसी तरह की बाध्यता नही होती है।

(२) खेल की सार्थकता खेल की क्रिया में और कार्य की उसके बाहर होती है—ड्रेवर के अनुसार, "खेल मे क्रिया का मूल्य और महत्व स्वयं क्रिया मे पाया जाता है, जबकि कार्य मे क्रिया का मूल्य और महत्व क्रिया से परे एक लक्ष्य मे पाया

जाता है।"[1] इस तरह, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, खेल की क्रिया मे प्रत्येक क्षण उसका आनन्द मिलता है जबकि कार्य करते समय कष्ट होता है और उसका फल कार्य समाप्त हो जाने के बाद, कभी-कभी महीनों बाद मिलता है।

(३) खेल में आनन्द वर्तमान में और कार्य में भविष्य में मिलता है—मनुष्य स्वभाव से ही ऐसी क्रियायें करता है जिनसे उसे सुख मिले और ऐसी क्रियाओं से दूर रहता है जिनसे कष्ट हो। अत. खेल और कार्य दोनो मे बालक का उद्देश्य सुख प्राप्त करना होता है किन्तु जहाँ खेल मे यह सुख तत्काल और वर्तमान मे ही मिलता है, कार्य में यह सुख भविष्य मे प्राप्त होता है और कभी-कभी तो कार्य करने के बाद भी उसके फलस्वरूप सुख नही मिलता बल्कि कभी-कभी दु:ख मिलता है।

(४) खेल से शक्ति बढ़ती और काम से कम होती है—कहावत है कि हर समय काम करने और खेल के अभाव मे बालक सुस्त पड जाता है। खेल एक प्रकार का मनोरजन है। उससे व्यक्ति की थकान दूर होती है और पूर्ण आराम मिलता है। इसलिये बच्चे बूढे सभी खेल चाहते हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि खेलों मे शरीर को थकावट नही होती। खेलो से शरीर थकता अवश्य है परन्तु वह थकान काम की थकान से भिन्न है। खेल की थकान स्वास्थ्यवर्द्धक है। हाँ, प्रतियोगिता वाले खेलो का अत्यधिक अभ्यास करने से शारीरिक विकास को हानि भी पहुँच सकती है। इस तरह वास्तव मे खेल शरीर और मस्तिष्क दोनो के लिए टॉनिक का काम करता है, शर्त यह है कि खेल शक्ति से अधिक न खेले जायें। इसकी पहचान यह है कि खेल खेलने के बाद व्यक्ति मे काम करने का उत्साह और शक्ति और भी बढ़ी हुई मालूम होनी चाहिये। शारीरिक खेलो से शरीर रक्त मे का तेजी से संचार होता है जिनसे शरीर के दूषित पदार्थ बाहर निकलने मे सहायता मिलती है और व्यक्ति अपने आप को हल्का फुल्का महसूस करता है। दिन भर काम से थक जाने के बाद लोग किसी न किसी तरह का मनोरजन चाहते हैं और खेल एक मनोरजन है। दूसरी ओर काम से मनुष्य की क्षमता घटती जाती है। अत व्यक्ति को खेल और काम का समन्वय करना चाहिये।

(५) मनोवृत्ति का अन्तर—खेल और काम मे मनोवृत्ति का अन्तर होता है। जबकि खेल खिलने मे पूर्ण स्वेच्छा होती है, काम बाध्यता से किया जाता है चाहे वह दूसरे के आदेश की बाध्यता हो या अपनी अन्तरात्मा के आदेश की बाध्यता। मनुष्य का मन खेल में स्वभावतया लग जाता है, परन्तु काम मे अधिक समय मन लगाये रखने के लिए उसे प्रयास करना होता है। खेल खेलते समय बालक किसी प्रकार के उत्तरदायित्व का अनुभव नही करता, उसे किसी को जवाब नही देना होता, खेल बिगडने पर उसकी कोई बडी हानि नही होती। परन्तु दूसरी ओर काम करने मे उसे बोझ सा पडता है, काम न होने पर उसे दूसरो को जवाब देना पडता है, उस पर

1. "In play the value and significance of the activity is found in the activity itself, whereas in work the value and significance of activity is found in an end beyond the activity." —Drever.

काम की जिम्मेदारी होती है तथा वह काम से शीघ्र ऊब जाता है। इसलिये विशेषतया शैशवावस्था मे और बाल्यावस्था मे बालक को खेल अधिक और काम बहुत कम दिया जाता है तथा यथासम्भव शिक्षा सम्बन्धी काम को भी थोड़ा बहुत खेल के ढग से प्रस्तुत किया जाता है। किशोरावस्था और प्रौढावस्था मे, जब कि व्यक्ति जिम्मेदारी महसूस करने लगता है, तब उसको बड़े बड़े कठिन काम दिये जा सकते हैं और वह स्वयं उनको करता है।

खेल और कार्य मे उपरोक्त अन्तर के होते हुए भी उनमे मौलिक भेद नही है। उनको एक दम अलग करने के लिये उनमे कोई सीमा रेखा नही खीची जा सकती।

खेल और कार्य में सम्बन्ध

बालक खेल और कार्य दोनो से ही कुछ न कुछ सीखता है, दोनो से ही उसके चरित्र का विकास होता है, दोनों ही उसके लिए आवश्यक और लाभदायक है। फिर, कोशिश करके प्रत्येक व्यक्ति अपने काम मे थोड़ा बहुत खेल का आनन्द प्राप्त कर सकता है। कुशल व्यक्तियो के काम के लिए कहा जाता है कि यह काम तो उनके लिये खेल की तरह है। वास्तव मे काम का थोड़ा बहुत खेल बनाना व्यक्ति की उस काम मे कुशलता पर निर्भर है। सर टी० पी० नन् के शब्दो मे "एक एजेन्ट अपने कार्य को खेल समझता है। यदि वह इच्छापूर्वक उसको उठा सकता हो और छोड़ सकता हो तथा अपनी मर्जी से उसको करने की दशाओ मे परिवर्तन कर सकता हो, वह उसको काम समझता है यदि वह उस पर वाधित आवश्यकता मे लादा गया हो, अथवा यदि वह उसको कर्तव्य या व्यवसाय की भावना से करता हो।"[2] अपने कार्य को कर्तव्य भावना से या व्यवसाय की भावना से करने वाला व्यक्ति शीघ्र थक जाता है और अधिक काम नही कर सकता। दूसरी ओर जो व्यक्ति उसे खेल समझकर तथा पूरी स्वतन्त्रता से करता है, उसकी कुशलता भी बढती है तथा वह अधिक कार्य भी कर पाता है। उदाहरण के लिये बगीचे मे काम करने वाला माली अपने काम को व्यवसाय समझकर भी कर सकता है और खेल समझ कर भी कर सकता है। पहली दशा मे उसे आनन्द नही आयेगा जबकि दूसरी दशा मे उसे आनन्द आता है।

गर्मी आना
(Warming up)

कारखानो मे काम करते हुए श्रमिको के सामने अनेक समस्याये ऐसी उपस्थित होती है जिनका सम्बन्ध कार्य और उससे होने वाली थकान से है। यदि ध्यान से देखा जाये तो श्रमिक का कार्य कभी भी एक सा नही चलता। वह घटता बढता रहता है। घटने से उद्योग को हानि होती है और बढने से उद्योग को लाभ। अतः

2. "An agent thinks of his activity as play if he takes it up or lays it down at choice or vary at will the conditions of its exercise, he thinks of it as work if it is imposed on him by unavoidable necessity, or if he is held to it by a sense of duty or vocation." —T P Nunn

कार्य के घटने बढने का अध्ययन बडा महत्वपूर्ण है। इससे केवल कारखानेदार को ही नही बल्कि श्रमिक को भी आवश्यक सुझाव दिये जा सकते हैं क्योकि कहीं-कहीं पर श्रमिक का वेतन काम के घण्टों से नही बल्कि उत्पादन की मात्रा मे निश्चित किया जाता है। आधुनिक युग मे औद्योगिक मनोविज्ञान मे इस सम्बन्ध मे भी अनेक अध्ययन किये गये हैं।

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, कार्यावधि मे श्रमिक एक सा काम नहीं करता। यदि श्रमिक के कार्य को एक रेखा (Work Curve) बनाई जाय तो उससे उसके कार्य की गति घटती बढती दिखलाई पडती है। इस प्रकार कार्य रेखा से कार्य की गति का पता चलता है। कार्य रेखा देखने से यह ज्ञात होता है कि कार्य के प्रारम्भ मे कार्य काफी तेजी से चलता है। परन्तु यह तेजी एकदम नही आती। तेजी गर्मी आने (Warming up) पर आती है।

यह गर्मी आना क्या है? सभी लोग यह जानते हैं कि जब कोई भी काम शुरू किया जाता है तो उस काम मे कुछ देर बाद तेज गति आती है। यह गति स्फूर्ति का परिणाम है। यह स्फूर्ति ही गर्मी आना है। गर्मी के बिना काम तेजी से नही हो सकता। सब श्रमिको को सब तरह के कामो मे एक सी गति से गर्मी नही आती। भिन्न-भिन्न श्रमिको को भिन्न-भिन्न कामो मे गर्मी आने में भिन्न-भिन्न अवधि की आवश्यकता पडती है। उदाहरण के लिये किसी को काम शुरू करने के १५ मिनट बाद भी गर्मी आ सकती है जबकि किसी को गर्मी आने मे एक घण्टा लगता है। गर्मी आने से काम तेजी से शुरु होता है। इसीलिये काम मे गर्मी लाने के विषय मे भी अनेक अनुसन्धान किये गये हैं। उदाहरण के लिये यह देखा गया है कि काम करने के समय सगीत सुनाई पडने मे कुछ कामो मे गर्मी आती है। बहुधा श्रमिक लोग गर्मी लाने के समय काम करते समय गाते हैं। गर्मी लाने का एक अन्य उपाय टीम स्प्रिट से काम करना है। वास्तव मे कार्य मे गर्मी लाने के लिये मूलरूप से दो बातों की आवश्यकता है—शरीर और मन का थका हुआ न होना और प्रेरणा। यदि शरीर थका है तो कितनी भी प्रेरणा देने पर गर्मी नही आ सकती। इसलिये गर्मी लाने के लिये एक ओर तो श्रमिक का ताजा होना जरूरी है और दूसरी ओर उसमें काम तेजी से करने की प्रेरणा उत्पन्न करना आवश्यक है। आगे थकान के विवेचन मे थकान को दूर करने के उपायो का वर्णन किया जायेगा। गर्मी न आने का एक मूल कारण ऊबना है। कार्य मे ऊब को दूर रखने के लिए प्रभावशाली उपायों पर आगे विचार किया जायेगा। कार्य मे गर्मी लाने के उपायो के विषय मे आजकल मनोवैज्ञानिक बराबर अनुसधान कर रहे हैं। इन अनुसधानो से श्रमिक और सेवायोजक दोनो को ही लाभ होगा।

कार्य को मुख्यतया दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है पेशीगत कार्य और मानसिक कार्य। इससे पहले कि इन दोनों प्रकार के कार्यों का विवेचन किया जाय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कार्य के ये दोनो प्रकार परस्पर इतने घनिष्ठ

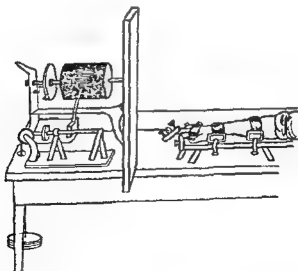
रूप से सम्बन्धित हैं कि इन्हें केवल मौखिक विवेचन के लिये ही अलग किया गया है। पेशीगत कार्य मे, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, शारीरिक शक्ति की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर मानसिक कार्य में मानसिक शक्ति की आवश्यकता होती है परन्तु फिर कोई भी शारीरिक कार्य ऐसा नही है जिसमे कुछ न कुछ मानसिक शक्ति न लगानी पड़े और दूसरी ओर प्रत्येक मानसिक कार्य मे कुछ न कुछ शारीरिक शक्ति की भी आवश्यकता होती है। अस्तु, शारीरिक और मानसिक कार्य परस्पर निर्भर हैं और सर्वथा स्वतन्त्र नही हैं।

पेशीगत कार्य
(Muscular Work)

हमारे सामान्य जीवन मे सुबह से शाम तक सैंकडो पेशीगत कार्य करने की आवश्यकता होती है। हलके या भारी सभी प्रकार के पेशीगत कार्यों में न्यूनाधिक समय में थकान आनी प्रारम्भ हो जाती है और एक सीमा ऐसी आती है जिसके बाद थकान के कारण कार्य रुक जाता है। यह सीमा भिन्न-भिन्न कार्यों मे और एक ही कार्य मे भिन्न-भिन्न व्यक्तियों मे भिन्न-भिन्न होती है।

पेशीगत कार्य में थकान का मापन

पेशीगत कार्य मे होने वाली इस थकान को अर्गोग्राफ (Ergograph) अर्थात् आकुंचन मापक यन्त्र से मापा जाता है। यू तो अर्गोग्राफ अनेक प्रकार के प्रचलित हैं



चित्र १५—मोसो अर्गोग्राफ

परन्तु इनमे मोसो (Mosso) और क्रेपलिन (Kraeplin) का अर्गोग्राफ विशेष प्रसिद्ध है। अर्गोग्राफ का प्रयोग करते समय प्रयोज्य की दाहिनी या बाईं भुजा को इस तरह

स्थिर कर दिया जाता है कि वह बीच वाली उंगली के अलावा हाथ या बांह को हिला डुला नही सकता। अब काम शुरू करने मे पहले अर्गोग्राफ का तालमापक यन्त्र ६०° पर स्थिर कर दिया जाता है। अब प्रयोज्य अर्गोग्राफ मे लगे सूत्र (Thread) को तालमापक की ध्वनि के साथ खीचता है और दूसरी ध्वनि के साथ छोडता है। प्रयोज्य की मध्य उगली को सूत्र खीचने और छोडने मे होने वाला सकुचन और प्रसरण एक सलग्न धूमायित पत्र (Smoked paper) पर चिन्हक के सहारे अकित हो जाता है। मध्य उगली से लगातार बहुत देर तक भारवाहक सूत्र खीचने और छोड़ने के कार्य मे क्रमश. प्रयोज्य थकता जाता है और अन्त में एक स्थिति ऐसी आती है जबकि वह भार खीचने में पूर्णतया असमर्थ हो जाता है। थकान बढ़ने के साथ-साथ अर्गोग्राफ मे चिन्हित रेखा की ऊचाई कम होने लगती है और पूर्ण थकान की स्थिति मे वह एक सरल रेखा मात्र बन जाती है। इस प्रकार अर्गोग्राफ से पेशीगत कार्य पर थकान के प्रभाव का अध्ययन होता है।

पेशीगत थकान मे आराम का प्रभाव

पेशीगत कार्य करते करते पेशियाँ थक जाती हैं। ऐसी स्थिति मे यदि पेशियों को आराम दिया जाय तो थकान बहुत कम हो जाती है अथवा बिल्कुल ही समाप्त हो जाती है। पेशीगत कार्य मे विश्राम का प्रभाव देखने के लिये अनेक प्रयोग किये गये हैं। इनसे विश्राम के काल तथा अवधि के नियम मे महत्वपूर्ण बातें ज्ञात हुई हैं। उदाहरण के लिये एक प्रयोग मे प्रयोज्य को एक छ: किलोग्राम का भार उठाने के लिये दिया गया। भार उठाने मे पेशीगत सकोचन होता था और रखने मे पेशीगत प्रसरण। एक बार भार उठाने के बाद प्रयोज्य को १० सैकिण्ड आराम दिया गया। इससे यह बिना किसी थकान के अनिश्चित काल तक भार उठाने का कार्य करता रहा। अब कुछ समय बाद यही विश्राम का काल १० सैकिण्ड से घटाकर केवल दो सैकिण्ड कर दिया गया। इससे प्रयोज्य एक मिनट मे ही इतना थक गया कि वह आगे भार न उठा सका तथा उसकी थकान दूर करने के लिए उसे दो घन्टे विश्राम करना पड़ा। स्पष्ट है कि कार्य में थकान दूर रखने के लिए विश्राम मात्र नही बल्कि समुचित मात्रा मे और समुचित कार्यावधि के पश्चात् विश्राम देना आवश्यक है।

पेशीगत कार्य में मानसिक कारकों का प्रभाव

पेशीगत कार्य मे थकान कब और कितनी आती है यह बहुत से मानसिक कारकों पर भी निर्भर होता है। उदाहरण के लिए वह देखा गया है कि रुचि और प्रेरणा की अधिकता रहने पर कार्य मे उत्पादन बढ जाता है और थकान बहुत कम आती है। अनेक बार मानसिक थकान से पेशीगत कार्य में बाधा देखी जाती है परन्तु फिर इसके अपवाद भी हैं और कभी-कभी काफी मानसिक कार्य करने के पश्चात् भी प्रयोज्य पेशीगत कार्य बडी कुशलता से करते देखे जाते हैं। फिर भी नि सन्देह कार्य पर मानसिक कारकों का प्रभाव पडता है।

पेशीगत कार्य में अन्य कारक

उपरोक्त कारकों के अलावा अन्य अनेक कारक पेशीगत कार्य मे महत्वपूर्ण

पाये गये है। उदाहरण के लिए यह देखा गया है कि पेशीगत कार्य में लडकियाँ लडको से शीघ्र थक जाती है। लोम्बार्ड (Lombard) के अध्ययनो से विश्राम के अलावा अभ्यास, भोजन और शराब का पेशीगत कार्य पर अनुकूल प्रभाव पडा। हार्ले (Harley) के अध्ययनो से ज्ञात हुआ कि तम्बाकू का पेशीगत कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

हस्त शक्ति मापक द्वारा पेशीगत कार्य का अध्ययन

पेशीगत कार्य के उपरोक्त अध्ययन अर्गोग्राफ से किये हुए हैं। परन्तु अनेक मनोवैज्ञानिको ने हस्तशक्ति मापक (Hand dynamometer) के द्वारा भी पेशीगत कार्य का अध्ययन किया है। इसमे प्रयोज्य यन्त्रक मे फिट करके उसको शक्ति भर खीचता है और फिर छोड देता है। तालमापक ६०° पर रखा जाता है। एक बार यन्त्रक को छोडकर दोबारा खीचने मे चार सैकिण्ड का व्यवधान दिया जाता है। प्रयोज्य यह कार्य एक मिनट तक करता है और प्रत्येक बार यन्त्रक खीचने मे प्रयोज्य की शक्ति किलोग्राम मे अकित कर ली जाती है। यदि विश्राम न देकर यह काम लगातार कराया जाय तो प्रयोज्य क्रमश थकता जाता है और उसकी शक्ति मे कमी दिखाई पडने लगती है। परन्तु यदि प्रत्येक प्रयास के बाद प्रयोज्य को आराम दिया जाय तो वह शीघ्र नही थकता और बहुत समय तक उसकी शक्ति बनी रहती है।

पेशीगत कार्य के अध्ययनों का महत्व

जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, पेशीगत कार्य के अध्ययनो का औद्योगिक मनोविज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्व है। यह एक सामान्य बात है कि यदि पेशीगत कार्य मे थकान को दूर रखा जाय तो कार्योत्पादन (Output) बढ जाता है। अस्तु, विभिन्न कारखानो और दफ्तरो मे पेशीगत कार्य मे थकान दूर करने के अनेक उपाय अपनाये जाते है। कार्यावधि के बीच मे सब नही एक या दो बार विश्राम की व्यवस्था होती है। विश्राम का काल आधे घण्टे से एक घण्टे तक होता है। अल्पाहार आदि की भी व्यवस्था की जाती है। कार्य को रुचिकर बनाने का प्रयास किया जाता है। कही-कही इसके लिये सगीत की व्यवस्था की जाती है। पेशीगत कार्य मे अधिकतर पुरुषो को ही रखा जाता है। स्त्रियो या बालको को केवल सरल पेशीगत कार्य करने को दिये जाते है क्योंकि वे शीघ्र थक जाते है। थकान कम करने के उपायों पर बराबर अनुसधान किया जा रहा है। प्रेरणा के रूपों मे बोनस का महत्व सर्वविदित है। कहना न होगा कि पेशीगत कार्य सम्बन्धी अध्ययनो से भविष्य मे कर्मचारियो की कार्यक्षमता बहुत बढाई जा सकेगी।

मानसिक कार्य
(Mental Work)

मानसिक कार्य क्या है?

मानसिक कार्य, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, वह कार्य है जिसमे मानसिक शक्ति की आवश्यकता पडती है। सभी व्यक्तियो मे मानसिक शक्ति एक सी

नहीं होती अस्तु सभी से समान रूप से मानसिक कार्य की आशा नहीं की जा सकती। मानसिक कार्य के सामान्य उदाहरण लिखने पढने के कार्य हैं। इनमे भी कुछ सरल और हल्के होते हैं तथा अन्य कठिन और जटिल होते हैं। उदाहरण के लिए लिपिक का कार्य सरल है जबकि प्रोफेसर का कार्य जटिल है। इसी प्रकार नोट लेना आसान है किताब लिखना कठिन है। इन सरल और जटिल कार्यों के लिए विभिन्न मानसिक शक्ति वाले व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। अस्तु, शारीरिक कार्य के समान ही मानसिक कार्य की क्षमता मे भी व्यक्तिगत विभिन्नतायें देखी जाती है। इसके अलावा कुछ व्यक्तियो मे कुछ विशेष प्रकार के मानसिक कार्य करने की शक्ति अधिक होती है जबकि वे अन्य प्रकार के मानसिक कार्य नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए सभी सफल शिक्षक सफल लेखक नहीं होते और न सभी सफल लेखक सफल शिक्षक हो सकते है।

मानसिक कार्य का अध्ययन

मानसिक कार्य के अध्ययन की अनेक विधियो मे कुछ मुख्य निम्नलिखित हैं—

(१) **अक्षर निराकरण विधि**—इसमे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है प्रयोज्य को अक्षर निराकरण पत्र मे से निश्चित अक्षरो को काटना होता है। उसे आराम से बैठा दिया जाता है और अक्षर निराकरण पत्र तथा पेंसिल देकर अक्षर काटने को कहा जाता है। यह काम आधा घण्टा या एक घण्टा किसी भी निश्चित समय तक कराया जा सकता है। कार्यविधि समाप्त होने के एक दो मिनट पहले प्रयोज्य को सूचना दे दी जाती है। समय पूरा होने पर प्रयोज्य का अन्तर्निरीक्षण भी नोट कर लिया जाता है। अब काटे हुए अक्षरो की सख्या, छोड़े हुए अक्षरो की सख्या और गलत काटे हुए अक्षरो की सख्या से कार्योत्पादन निकाल कर प्रयोज्य के मानसिक कार्य का अध्ययन किया जाता है।

(२) **गुणा या जोड़ने के द्वारा**—इसमे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, प्रयोज्य को कुछ गुणा या जोडने का कार्य दिया जाता है और सही तथा गलत उत्तरो के आधार पर कार्योत्पादन का मापन किया जाता है।

कार्य वक्र
(Work Curve)

कार्यवक्र, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, ग्राफ कागज पर वह रेखा है जो कि किसी व्यक्ति का कार्योत्पादन दिखलाती है। कार्यवक्र पेशीगत तथा मानसिक कार्य दोनो के ही तैयार किये जा सकते है। किसी भी व्यक्ति के कार्यवक्र मे निम्नलिखित तीन दशायें देखी जा सकती हैं—

(१) **प्रारम्भिक उत्तेज** (Initial Spurt)—किसी भी कार्य को प्रारम्भ करते समय व्यक्ति ताजा होता है और कुछ समय तक उसका कार्योत्पादन तेजी से आगे बढता जाता है, इससे कार्यवक्र आगे बढता दिखलाई पडता है।

(२) पठार (Plateau)—प्रारम्भिक उत्तेज अधिक समय तक नहीं बना रह सकता क्योंकि सभी व्यक्ति प्रत्येक प्रकार के कार्य में क्रमशः थकने लगते हैं जिससे उनके कार्योत्पादन में प्रगति रुक जाती है।

(३) अन्त में अल्पकालीन उत्कर्ष—कोई भी काम करते समय जब कार्यकर्ता को यह ज्ञात होता है कि अब उसका कार्यकाल समाप्त होने वाला है तो वह एक बार पुनः उत्साहपूर्वक कार्य करता है जिससे कार्यवक्र में उत्कर्ष दिखलाई पड़ता है यद्यपि यह उत्कर्ष अल्पकालीन होता है। इसमें थके होने पर भी व्यक्ति उत्साहपूर्वक कार्य करता है।

कार्यवक्र की उपरोक्त रूपरेखा में अनेक कारकों से कार्योत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। कार्यवक्र का अपकर्ष थकान के कारण होता है। अभ्यास होने से थकान देर में आती है। दूसरी ओर थकान अभ्यास के प्रभाव को कम कर देती है। कभी-कभी व्यक्ति थकान की दशा में भी उसी परिमाण में कार्य करते दिखलाई पड़ते हैं परन्तु यह निश्चित है कि ऐसी स्थिति में कार्य का गुणात्मक स्तर अवश्य नीचा होता है। ये कार्योत्पादन को प्रभावित करने वाले कारक कहलाते हैं।

कार्योत्पादन को प्रभावित करने वाले कारक

कार्योत्पादन के सम्बन्ध में विभिन्न प्रयोगों से उसको प्रभावित करने वाले कारकों का पता चला है। इनमें जहाँ कुछ कारक कार्योत्पादन को आगे बढ़ाते हैं वहाँ अन्य उसमें बाधक सिद्ध होते हैं। स्थूल रूप से इनको दो वर्गों में बाँटा जा सकता है व्यक्तिगत (Personal) तथा वातावरणगत (Enviromental) व्यक्तिगत कारक दो प्रकार के होते हैं—मनोवैज्ञानिक और शारीरिक।

(अ) व्यक्तिगत कारक (Personal Factors)

ये, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, वे कारक हैं जो कि स्वयं कार्यकर्ता में होते हैं। कोई भी कार्य कार्यकर्ता की शारीरिक और मानसिक चेष्टा का परिणाम होता है और उसमें शारीरिक तथा मानसिक शक्ति लगानी पड़ती है। अस्तु, व्यक्ति के कार्योत्पादन को प्रभावित करने वाले कारक मनोवैज्ञानिक और शारीरिक होते हैं।

(१) मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)—कार्योत्पादन को प्रभावित करने वाले इन कारकों में वे कारक आते हैं जो कि कार्यकर्ता के मनोविज्ञान से सम्बन्धित हैं। इनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—

(i) प्रेरणा (Motivation)—कार्योत्पादन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक प्रेरणा है। प्रेरणा बढ़ने से कार्योत्पादन बढ़ता और कम होने से कम होता है। यद्यपि अत्यधिक थकान की दशा में केवल प्रेरणा मात्र से कार्योत्पादन नहीं बढ़ाया जा सकता परन्तु सामान्य स्थिति में प्रेरणा का अवश्य प्रभाव पड़ता है। कठिन कार्यों में तो प्रेरणा की और भी अधिक आवश्यकता होती है। सच तो यह है कि जितना ही कठिन कार्य होगा उसमें प्रेरणा का कार्योत्पादन पर उतना ही अधिक प्रभाव होगा।

(ii) उत्प्रेरण (Incitement)—अनेक प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि उत्प्रेरण से कार्योत्पादन मे वृद्धि होती है। इसके अभाव मे कार्य मे कुशल होना बडा कठिन है। निरन्तर कार्य मे इसका प्रभाव कम दिखलाई पडता है परन्तु एक-एक कर होने वाले कार्यों मे इसका प्रभाव स्पष्ट है। राबिन्सन तथा हेरल के प्रयोगो से इस तथ्य की पुष्टि होती है। उत्प्रेरणा का प्रभाव सभी प्रकार के व्यावसायिक कार्यों मे दिखलाई पडता है। इसलिए भिन्न-भिन्न व्यवसायो मे कर्मचारियों को कार्योत्पादन बढाने के लिये और उन्हे कार्य कुशल बनाने के लिए उत्प्रेरण दिया जाता है।

(iii) रुचि (Interest)—यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि रुचि से कार्योत्पादन बढता है और उसके अभाव से कम होता है। रुचि से कार्य मे थकान भी कम आती है और देर से आती है। अनेक प्रयोगो से यह ज्ञात हुआ है कि रुचि से कार्य मे लगन उत्पन्न होती है जिससे कार्योत्पादन बढ़ता है।

(iv) पुरस्कार और दण्ड (Reward and Punishment)—मनुष्य के कार्य के परिणाम उसके कार्योत्पादन को प्रभावित करते हैं। यदि उसे कार्य के फलस्वरूप पुरस्कार मिलता है तो वह उसे और भी दूने उत्साह से करता है। दूसरी ओर यदि उसे कार्य के फलस्वरूप दण्ड मिलता है तो वह उस कार्य को फिर नही दोहराता। पुरस्कार भौतिक जैसे कि धन, वस्तु इत्यादि के रूप मे भी हो सकते है और मौखिक जैसे कि प्रशसा आदि के रूप मे भी हो सकते हैं। विभिन्न व्यक्तियों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के पुरस्कारों का न्यूनाधिक प्रभाव पडता है। परन्तु प्रभावशाली पुरस्कार ऐसा होना चाहिये जो न सर्वसुलभ हो और न अत्यधिक कठिन। वह न इतना सस्ता हो कि उसका कुछ मूल्य ही न हो और न इतना कीमती हो कि व्यक्ति को उसका लालच हो जाये। शिक्षा के क्षेत्र मे विद्यार्थियो के कार्योत्पादन पर पुरस्कार और दण्ड का स्पष्ट प्रभाव देखा जाता है। खेलो मे तो इनका विशेष प्रभाव पड़ता है।

(v) सयोजन (Co-ordination)—किसी भी उद्योग मे कर्मचारियों का कार्योत्पादन कार्य से उनके सयोजन पर निर्भर होता है। क्रेपलिन के प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि सयोजन के अभाव मे नये कर्मचारियो का ध्यान भग अधिक होता है। जब उनका सयोजन हो जाता है तब उनका ध्यान भग कम हो जाता है, काम में मन लगता है और कार्योत्पादन अधिक होता है।

(vi) कर्मचारियों में परस्पर विश्वास का जमना (Rapport)—किसी भी ऐसे काम मे जिसको अनेक कर्मचारी मिलकर करते हैं कर्मचारियो मे परस्पर विश्वास का जमना आवश्यक है। कर्मचारियो मे परस्पर मैत्री और विश्वास के सम्बन्धो से कार्योत्पादन अधिक और अच्छा होता है। दूसरी ओर इस प्रकार के सम्बन्धो के अभाव मे कार्योत्पादन के परिणाम और गुण दोनों का ह्रास होता है।

(iii) **अवरोध** (Blocking)—बिल्स (Bills) के प्रयोगो से कार्योत्पादन पर अवरोध का प्रभाव ज्ञात होता है। बिल्स के अनुसार मनुष्य लगातार बिना किसी रुकावट के कोई मानसिक कार्य नही कर सकता। मानसिक कार्य मे कभी-कभी तो एक मिनट मे चार-पाँच बार अवरोध उपस्थित रहता है। कुछ कार्यों मे कभी-कभी अवरोध का काल एक मिनट तक होता है। अवरोध की कालावधि मे कार्यकर्त्ता के मस्तिष्क की क्रिया स्तब्ध सी रहती है। अवरोध क्यो होता है। इस सम्बन्ध मे निश्चित रूप से अभी कुछ नही कहा जा सकता परन्तु अवरोध की बारम्बारता और अवधि विभिन्न व्यक्तियो मे तथा एक ही व्यक्ति मे भिन्न-भिन्न कार्यों मे भिन्न-भिन्न होती है।

(२) **शारीरिक कारक** (Physiological Factors)—कार्योत्पादन को प्रभावित करने वाले कारणो मे वे कारक हैं जो शारीरिक दशा पर निर्भर है। इनमे मुख्य कारक निम्नलिखित हैं—

(i) **शारीरिक अगों का स्वास्थ्य और क्षमता** (Health and capacity of physical organs)—विभिन्न प्रकार के कार्योत्पादन मे भिन्न-भिन्न शारीरिक अगो जैसे हाथ, पैर, आँख, कान आदि की आवश्यकता होती है। यदि ये शारीरिक अग दुर्बल या अक्षम हैं तो कार्योत्पादन बहुत कम होता है। दूसरी ओर यदि ये शारीरिक अग स्वस्थ और सक्षम होते हैं तो कार्योत्पादन अधिक होता है। अस्तु, कार्योत्पादन की मात्रा और गुण उसमे काम करने वाले शारीरिक अगो के स्वास्थ्य और क्षमता पर निर्भर होते है।

(ii) **उपवास** (Fasting)—कार्योत्पादन पर उपवास का प्रभाव पडता है। ग्लेज (Glaze) के प्रयोगो से ज्ञात हुआ जबकि एक दिन के उपवास से कार्योत्पादन पर कोई विशिष्ट प्रभाव नही पडता इससे अधिक उपवास कार्योत्पादन को कम कर देता है। ग्लेज ने तीन प्रयोज्यों पर प्रयोग करके देखा कि उपवास के कारण सभी का कार्योत्पादन कम हो गया परन्तु उपवास समाप्त करने पर उनकी कार्यकुशलता फिर पहले जैसी हो गई।

(iii) **निद्रा** (Sleep)—नीद का कार्योत्पादन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। आवश्यकता से कम नीद मिलने पर कार्योत्पादन की मात्रा और गुण मे कमी होती है और उपयुक्त नीद का कार्योत्पादन पर अच्छा प्रभाव पडता है।

(iv) **औषधिप्रियता** (Drug Addiction)—लगभग सभी प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ कि औषधिप्रियता कार्योत्पादन के लिये हानिकारक है। छ प्रयोज्यों पर प्रयोग करके हॉलिंगवर्थ (Hollingworth) ने भी इसी निष्कर्ष की पुष्टि की है।

(v) **तम्बाकू सेवन**—कार्योत्पादन पर तम्बाकू सेवन के प्रभाव के विषय मे किये गये प्रयोगो से एक से परिणाम नही मिले हैं। अभ्यस्थ प्रौढ व्यक्तियो के विषय मे किये गये प्रयोज्यों से तम्बाकू का सेवन कार्योत्पादन मे लाभदायक सिद्ध

हुआ है। दूसरी ओर तम्बाकू के अनभ्यस्त नौसिखिये व्यक्तियों के तम्बाकू के व्यवहार से उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति असामान्य हो जाने के कारण कार्योत्पादन पर बुरा प्रभाव पडता है।

(ब) वातावरणगत कारक (Environmental Factors)

कार्योत्पादन को प्रभावित करने वाले वातावरणगत कारको मे उन परिस्थितियो का समावेश है जो कि किसी कार्य को प्रभावित करते है। इनमे से मुख्य कारक निम्नलिखित है—

(१) प्रकाश (Light)—विभिन्न उद्योगो मे कार्य करते समय न्यूनाधिक प्रकाश की आवश्यकता पडती है। इससे अधिक या कम प्रकाश होने पर कार्योत्पादन पर बुरा प्रभाव पडता है। दूसरे, प्रकाश की मात्रा के साथ-साथ उसकी किस्म का भी कार्योत्पादन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। सबसे अच्छा प्रकाश सूर्य का स्वाभाविक प्रकाश है। इसका देखने के साथ-साथ स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव पडता है। इसके अभाव मे श्वेत प्रकाश अच्छा माना जाता है। प्रकाश के प्रकार के साथ साथ कार्योत्पादन के लिये प्रकाश का समुचित वितरण भी महत्वपूर्ण है। कारखानो और दफ्तरो मे प्रकाश का वितरण ऐसा होना चाहिये कि जिन मशीनो से काम लिया जाता हो उन पर पर्याप्त प्रकाश पडे। ऐसा न होने पर कार्योत्पादन तो कम होगा ही साथ ही साथ एक्सीडेन्ट भी अधिक होगे। दूसरी ओर प्रकाश के उपयुक्त वितरण से कर्मचारियो की कार्य कुशलता बढती है और कार्योत्पादन की मात्रा तथा गुण मे वृद्धि होती है।

(२) वातायन (Ventilation)—जहाँ कही काम करने के लिये कुछ लोग एकत्रित हो जाते है वहाँ शुद्ध और पर्याप्त वायु की आवश्यकता होती है और उसके लिये वातायन का विशेष प्रबन्ध करना होता है। दूसरे, अनेक कारखानो मे ऐसी गैसें उत्पन्न होती रहती हैं जिनका बाहर निकलना अत्यन्त आवश्यक है। सभी प्रकार के प्रयोगो से यह ज्ञात होता है कि उपयुक्त वातायन का कार्योत्पादन की मात्रा एव गुण पर अनुकूल प्रभाव पडता है और उपयुक्त वातायन के अभाव मे कार्योत्पादन कम और निम्न कोटि का होता है।

(३) तापक्रम (Temperature)—विभिन्न प्रकार के कार्यों के कारखानो और दफ्तरो मे कार्य-कुशलता बनाये रखने के लिये तापक्रम नियन्त्रित करना पडता है क्योकि आवश्यकता से अधिक उष्ण या शीतल वातावरण मे व्यक्ति के कार्योत्पादन की मात्रा एव गुण दोनो पर बुरा प्रभाव पडता है। उपयुक्त तापक्रम कार्य के प्रकार, कार्य के स्थान, स्थानीय जलवायु के अतिरिक्त कर्मचारियो के स्वास्थ्य पर भी निर्भर होता है परन्तु यह निश्चित है कि प्रत्येक स्थिति मे अच्छे कार्योत्पादन के लिये अनुकूल तापक्रम बनाये रखना आवश्यक है। इसीलिये आजकल अनेक प्रयोगशालाये वातानुकूलित होती है।

(४) कोलाहल (Noise)—कार्योत्पादन पर शोर के प्रभाव के सम्बन्ध मे

किये गये प्रयोगों से यह निश्चित रूप से ज्ञात हुआ है कि एक सीमा से अधिक शोर कार्योत्पादन के प्रतिकूल होता है। यह सीमा क्या है यह कर्मचारी के अभ्यास, कार्य-कुशलता तथा कार्य के प्रकार पर निर्भर है। इस सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण प्रयोग किये गये हैं और कारखानों में कोलाहल कम करने के लिये अनेक उपाय निकाले गये हैं। अनेक प्रयोगशालायें ऐसी बनाई जाती हैं कि उनमे काम करने वालो पर बाहर के शोर का प्रभाव नही पड़ता।

कार्योत्पादन को प्रभावित करने वाले उपरोक्त व्यक्तिगत और वातावरणगत कारकों में केवल मुख्य कारको को ही लिया गया है। वास्तव में ये कारक इतने अधिक हैं कि इनमें से सबका पूरी तरह वर्णन नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध मे विभिन्न उद्योगो से लगे मनोवैज्ञानिक बराबर प्रयोगो के आधार पर शोध करते रहते हैं और उनसे नई नई बातें ज्ञात होती रहती हैं।

(५) विश्रामकाल (Rest Pause)—विभिन्न प्रयोगो से यह ज्ञात हुआ है कि कार्य के बाद आराम कार्योत्पादन पर अनुकूल प्रभाव डालता है जबकि विश्राम काल की अवधि और अवसर उपयुक्त हो। किस व्यक्ति के लिये किस कार्य मे कितने समय के बाद कितना विश्राम काल आवश्यक है, यह प्रयोगो से निश्चित किया जा सकता है और इस सम्बन्ध मे अनेक प्रयोग भी किये गये हैं। वर्नन और बेडफोर्ड (Vernon and Bedford) ने सत्रह बालिकाओं पर अपने एक प्रयोग मे उन्हे प्रत्येक एक घण्टा कार्य करने के बाद दस मिनट का विश्राम देकर कार्योत्पादन मे बीस प्रतिशत की वृद्धि पाई। एक अन्य प्रयोग मे कार्य करने वाली सात बालिकाओ को प्रत्येक घण्टे के बाद विश्राम देने से १३ प्रतिशत की वृद्धि पाई गई। एरभास्की के प्रयोगों में प्रयोज्यों को प्रत्येक एक घण्टे के बाद ५ मिनट और सवा घण्टे के काम के बाद १५ मिनट का विश्राम देकर कार्योत्पादन मे २५ प्रतिशत की वृद्धि देखी गई। ग्राफ (Graff) के प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला कि मानसिक कार्य मे प्रत्येक चालीस मिनट के कार्य के बाद दो मिनट और अस्सी मिनट के कार्य के बाद पाँच मिनट विश्राम देना कार्योत्पादन मे सहायक होता है। अन्य प्रयोगो के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रौढ व्यक्तियों के विषय मे दो घण्टो के कार्य के मध्य ५ से १० मिनट का विश्रामकाल देना लाभदायक होता है। कुछ अन्य प्रयोगो से यह ज्ञात हुआ कि एक निश्चित सीमा से कम या अधिक विश्रामकाल होने पर वह कार्योत्पादन मे सहायक होने के स्थान पर उल्टे बाधक सिद्ध होता है। विश्रामकाल आवश्यकता से अधिक होना इसलिये हानिकारक है क्योंकि उससे कार्यकर्ताओं का उत्तेज समाप्त हो जाता है और उन्हें फिर से नये सिरे से काम शुरू करना पड़ता है। इससे उनमे नीरसता और उपेक्षाभाव भी दिखलाई पड़ते हैं। एम्बर्ग (Amberg) के प्रयोगो मे कार्य के मध्य में ५ मिनट का विश्रामकाल सहायक और १५ मिनट का विश्रामकाल बाधक सिद्ध हुआ। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के विषय मे भिन्न-भिन्न कार्यों मे विश्रामकाल की अवधि और समय

निश्चित किया जा सकता है। मूल बात यह है कि विश्रामकाल ऐसा तो हो कि काम की थकान मिट जाय परन्तु इतना न हो कि सुस्ती आ जाय और काम में रुचि न रहे। व्यक्तिगत रुचियों, सामर्थ्यों, योग्यताओं आदि से विश्रामकाल की अवधि और अवसर में अन्तर हो जाना स्वाभाविक है। अस्तु इस विषय में कर्मचारी स्वय बतला सकते हैं कि उन्हे कितनी देर बाद कितने विश्रामकाल की आवश्यकता है। कितनी देर काम करने के बाद विश्रामकाल दिया जाय इसके लिये सिद्धान्त यह है कि विश्रामकाल कार्योत्पादन अधिकतम होने के बाद दिया जाना चाहिये क्योंकि इसके बाद ही कार्योत्पादन मे अपकर्ष आरम्भ होता है और इस समय विश्राम मिल जाने से अपकर्ष काफी समय के लिये टल जाता है।

(६) सामूहिक परिस्थिति (Group Situation)--मनोवैज्ञानिको ने इस सम्बन्ध में अनेक प्रयोग किये हैं कि व्यक्ति का कार्योत्पादन अकेले अधिक अच्छा होता है या सामूहिक परिस्थिति में। मोदी (Modi) ने हस्तशक्तिमापक यन्त्र की सहायता से पहले कुछ बालको से अकेले और बाद मे एक-एक साथी के साथ पेशीगत कार्य कराकर यह निष्कर्ष निकाला कि अकेले कार्योत्पादन की तुलना में सामूहिक परिस्थिति में कार्योत्पादन ११ प्रतिशत अधिक होता है। ह्विटमोर (Whitmore) के कालेज के विद्यार्थियों पर किये गये प्रयोगो मे सामूहिक परिस्थिति में २६ प्रतिशत की वृद्धि दिखलाई पड़ी। सामूहिक परिस्थिति मे कार्योत्पादन की वृद्धि का मुख्य कारण अन्य लोगो की उपस्थिति से उत्पन्न प्रतिस्पर्धा की भावना है जिसके कारण व्यक्ति अपनी पूरी शक्ति से कार्य करता है। परन्तु इस प्रकार की कार्योत्पादन वृद्धि बहुधा परिमाणात्मक ही होती है जबकि गुणात्मक दृष्टि से बहुधा सामूहिक परिस्थिति मे कार्य का स्तर नीचे गिर जाता है। इसका कारण यह है कि सामूहिक परिस्थिति मे व्यक्ति बार-बार दूसरो पर ध्यान देता है और उनकी तुलना में अधिक काय करने के प्रयास मे कार्य के गुण की ओर कोई ध्यान नही देता। यद्यपि साधारणतया कार्य-कुशल व्यक्ति सामूहिक परिस्थिति मे भी अन्य व्यक्तियो से अधिक कार्य-कुशल दिखलाई पडते हैं परन्तु कभी-कभी कुछ व्यक्ति सामूहिक परिस्थिति की तुलना मे अकेले ही अधिक अच्छा कार्य करते हैं। यह बात जहाँ व्यक्तिगत स्वभाव और काम करने की आदतो पर निर्भर है वहाँ यह विशिष्ट कार्य की प्रकृति पर भी निर्भर होता है। उदाहरण के लिये अधिकतर गुणात्मक मानसिक कार्य जैसे साहित्य की सृष्टि या कलात्मक सृष्टि अकेले मे ही अधिक होते हैं क्योंकि सामूहिक परिस्थिति में इनमे ध्यान बँट जाता है। परन्तु फिर यह बात सभी साहित्यकारो और कलाकारो के विषय मे नही की जा सकती क्योंकि यह कार्य करने की व्यक्तिगत आदतो पर निर्भर है। यान्त्रिक, शारीरिक और परिमाणात्मक कार्य सामूहिक परिस्थितियो मे निश्चय ही अधिक अच्छे होते हैं।

सारांश

कार्य किसी निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये की गई क्रिया है।

कार्य और खेल—कार्य और खेल मे महत्वपूर्ण अन्तर हैं। ये अन्तर

हैं—(१) उद्देश्य का अन्तर, (२) खेल की सार्थकता खेल की क्रिया में और कार्य की उसके बाहर होती है, (३) खेल में आनन्द वर्तमान में और कार्य में भविष्य में मिलता है, (४) खेल से शक्ति बढ़ती है और काम से कम होती है (५) मनोवृत्ति का अन्तर। खेल और कार्य दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

गर्मी आना—कार्य करते समय कुछ समय बाद कार्य में गर्मी आती है। इससे कार्य रेखा तेजी से आगे बढ़ती है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न कार्यों में गर्मी आने में भिन्न-भिन्न समय लगता है। अनेक व्यक्तिगत और परिवेशजनित कारक गर्मी आने को प्रभावित करते हैं।

पेशीगत कार्य—कार्य दो प्रकार का होता है—पेशीगत कार्य और मानसिक कार्य। पेशीगत कार्य में थकान को मापने के लिये अर्गोग्राफ का प्रयोग किया जाता है। पेशीगत थकान आराम करने से दूर हो जाती है। इस पर अनेक मानसिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। पेशीगत कार्य का अध्ययन हस्त-शक्तिमापक यन्त्र के द्वारा किया जाता है। इससे विशेष व्यक्ति की कार्योत्पादन शक्ति का पता चलता है।

मानसिक कार्य—मानसिक कार्य वह है जिसमें मानसिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। मानसिक कार्य का अध्ययन अक्षर निराकरण विधि और गुणा या जोड़ने के द्वारा किया जाता है।

कार्य चक्र—कार्यचक्र से पेशीगत अथवा मानसिक कार्योत्पादन मालूम पड़ता है। इसमें प्रारम्भिक उत्तेज, पठार और अन्त में अल्पकालीन उत्कर्ष दिखलाई पड़ते हैं।

कार्योत्पादन को प्रभावित करने वाले कारक—(अ) व्यक्तिगत कारक—(१) मनोवैज्ञानिक कारक—इनमें प्रेरणा, उत्प्रेरण, पुरस्कार और दण्ड, संयोजन, कर्मचारियों में परस्पर विश्वास का जमना और अवरोध शामिल है। (२) शारीरिक कारक—इनमें शारीरिक अंगों का स्वास्थ्य और क्षमता, उपवास, निद्रा, औषधिप्रियता और तम्बाकू सेवन सम्मिलित हैं।

(ब) वातावरणगत कारक—(१) प्रकाश, (२) वातायन, (३) तापक्रम, (४) कोलाहल, (५) विश्राम काल, (६) सामूहिक परिस्थिति।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. कार्य क्या है ? पेशीगत कार्य और मानसिक कार्य की व्याख्या कीजिये।

What is work ? Explain muscular work and mental work.

प्रश्न २. निम्नलिखित का विवेचन कीजिये—"खेल और कार्य में भेद करना बहुत सरल नहीं है। वास्तव में भिन्नता इस बात में नहीं है कि क्या क्रिया की जाती है वरन इसमें है कि करने का उद्देश्य क्या है।"

Discuss the following : "The distinction between work and play is not easy to draw. Actually the distinction lies not so much in what is done as in the purpose of doing". (Agra 1965)

प्रश्न ३. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—कार्य में गर्मी आना।

Write short note on—Warming up.

प्रश्न ४. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—कार्य वक्र।

Write short note on—Work curve. (Agra 1965)

प्रश्न ५ कार्य वक्र की विशेषताओं की व्याख्या कीजिये। सिद्ध कीजिये कि बीच में विश्राम देने से कार्य की कुशलता तथा मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

Explain the characteristics of a work curve. Prove that the introduction of rest pauses enhances the efficiency and out put of the work. (Agra 1964)

१२

निपुणता और समयगति अध्ययन

(Efficiency and Time and Motion Study)

किसी कारखाने, उद्योग या कार्यालय में कार्य की मात्रा और गुण केवल मशीनों पर निर्भर नही होता। मशीनें चाहे कितनी भी अच्छी हो उत्पादन की मात्रा और गुण अधिक होने के लिये यह आवश्यक है कि उन पर कार्य करने वाले कर्मचारियों में निपुणता हो। अतः औद्योगिक मनोविज्ञान में निपुणता के कारकों और समस्याओं का विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने कर्मचारियों में निपुणता बनाये रखने और बढ़ाने के लिए अनेक उपाय भी सुझाये है।

निपुणता क्या है ?

निपुणता क्या है ? यह कैसे मालूम होती है ? निपुणता व्यक्ति की विशेष कार्य-क्षमता है जिसके कारण वह किसी कार्य को भली प्रकार कर सकता है। निपुणता कोई सामान्य गुण नही है क्योकि कोई भी व्यक्ति सब कामों मे निपुण नही हो सकता। हर एक व्यक्ति कुछ विशेष कामो मे निपुण हो सकता है। भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न कामो मे निपुण होते है और एक ही काम मे भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे भिन्न-भिन्न मात्रा मे निपुणता पाई जाती है। अत. किसी व्यक्ति के विषय मे यह कहना पर्याप्त नही है कि वह निपुण है। उसको निपुण कहने के साथ-साथ यह भी बतलाना आवश्यक है कि वह किस-किस काम मे कितना निपुण है। निपुण व्यक्ति किसी विशेष काम को अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक अच्छा और कम समय मे कर लेता है। अत. निपुणता का अनुमान काम करने मे लगे हुए समय तथा काम की मात्रा और गुण से लगाया जाता है। केवल कम समय मे काम करने मात्र से किसी व्यक्ति को उस काम मे निपुण नही कहा जा सकता जब तक कि वह समय मे कमी करने के साथ-साथ उत्पादन की मात्रा और गुण न बनाये रखे। इसी प्रकार केवल बहुत सा काम करने से ही कोई व्यक्ति निपुण नही कहा जा सकता। स्पष्ट है कि निपुणता के लिए कम समय और अधिक परिमाण तथा उच्च गुण आवश्यक है। जिस व्यक्ति मे विशेष कार्य के सम्बन्ध मे ये तीनो बातें अन्य व्यक्ति से अधिक दिखलाई पडती है उसको उस काम मे अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा निपुण कहा जायेगा। यहां यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि निपुण एक सापेक्ष (Relative) शब्द है। व्यक्ति एक दूसरे की तुलना मे निपुण होते हैं। परन्तु यह तुलना सभी समय और सभी से नही की जाती। जब किसी कारखाने के किसी

कर्मचारी को निपुण कहा जाता है तो उनका तात्पर्य यह होता है कि वह कर्मचारी अन्य व्यक्तियों द्वारा किये जाने वाले काम की औसत मात्रा और गुण से कहीं अधिक मात्रा और गुण सहित उसी काम को कम समय में कर सकता है।

निपुणता की बाह्य दशायें

(External Conditions of Efficiency)

मनोवैज्ञानिकों ने निपुणता बनाये रखने अथवा बढ़ाने के उपाय निकालने के लिये निपुणता की दशाओं अथवा निर्णायक कारकों का अध्ययन किया है। निपुणता एक मनोशारीरिक (Psycho-physical) दशा है अर्थात् उसमें मानसिक और शारीरिक दो पहलू होते हैं। इसीलिए उसकी दशायें या निर्णायक कारक भी स्थूल रूप से दो प्रकार के कहे जा सकते हैं—बाह्य, आन्तरिक। बाह्य दशायें अथवा कारक निम्नलिखित हैं :—

(१) विश्राम (Rest),
(२) कार्य करने का समय (Work period),
(३) स्वास्थ्य (Health),
(४) जलवायु (Climate)।

अब यहाँ इन विभिन्न बाह्य दशाओं का क्रमशः वर्णन किया जायेगा।

(१) विश्राम—थकान सम्बन्धी अध्याय में यह बतलाया गया है कि कार्य में पर्याप्त विश्राम न मिलने से व्यक्ति थक जाता है और उसकी कार्यक्षमता कम हो जाती है। स्पष्ट है कि निपुणता के लिए एक आवश्यक दशा विश्राम है। एक प्रयोग में शैपर्ड ने कालिज के बाहर विद्यार्थियों को चैस्ट-वैस्ट मशीन पर लगातार आठ घण्टे कार्य करने को दिया और दुबारा विश्राम देकर कार्य कराया। इस प्रयोग से यह मालूम हुआ कि लगातार काम करने पर निपुणता कम हो गई। ह्वाट के प्रयोगों से यह मालूम हुआ कि विश्राम मिलने पर श्रमिक की निपुणता ६·३ प्रतिशत तक बढ़ जाती है। बर्नन बैंडफोर्ड ने बिजलीघर में काम करने वाले श्रमिकों को बिना विश्राम और विश्राम सहित कार्य देकर यह परिणाम निकाला कि दूसरी दशा में कार्य अधिक होता है। अन्य प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि मानसिक कार्य में प्रत्येक घण्टे के पश्चात् पाँच मिनट विश्राम करना आवश्यक है और दस मिनट विश्राम अधिक अच्छा है। श्रमिकों को उनके कार्य के घण्टों का १६·६ प्रतिशत विश्राम दिया जाना चाहिए।

यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आवश्यकता से अधिक विश्राम मिलने से कोई लाभ नहीं होता बल्कि उल्टे नुकसान ही हो सकता है, क्योंकि अधिक देर आराम मिलने से चित्त काम से हट जाता है। साधारणतया दस मिनट का विश्राम पर्याप्त है। परन्तु यह समझना भूल है कि भोजन का समय विश्राम का समय है। विश्राम के समय में व्यक्ति को शारीरिक अथवा मानसिक कोई भी काम नहीं दिया जाना चाहिए। श्रमिक के विषय में एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि उसका समय निश्चित होना चाहिये क्योंकि अनिश्चित होने से मानसिक तनाव बना रहता है और

पूरा आराम नही मिलता। किस काम मे कितना आराम मिलना चाहिए इसके विषय मे सभी कामो के लिए कोई एक सा नियम नही हो सकता। यू तो प्रत्येक कार्य में कुछ न कुछ विश्राम मिलना आवश्यक है परन्तु जो काम जितना अधिक कठिन होगा उसमें उतना ही अधिक विश्राम भी मिलना चाहिये।

विश्राम से मुख्य रूप मे निम्नलिखित लाभ होते हैं :—

(अ) उत्पादन की मात्रा और गुण दोनो बढते हैं।

(ब) उद्योग मे दुर्घटनायें कम होती हैं।

(स) अरुचि और ऊब नही होती।

(द) आराम मिलता है और तनाव कम होता है।

(२) **कार्य करने का समय**—निपुणता मे एक अन्य महत्वपूर्ण कारक कार्य करने का समय है। यदि कार्य करने का समय आवश्यकता से अधिक है तो स्वाभाविक है कि कर्मचारी थका हुआ रहेगा और उसकी निपुणता कम होती जायेगी। अनेक प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि श्रमिक से अधिक से अधिक आठ घण्टे काम लेना चाहिए। साधारणतया सप्ताह में ४० घण्टे काम उपयुक्त है। काम के घण्टे इससे बढने से साथ-साथ श्रमिक की तत्परता, निपुणता, स्वास्थ्य, शक्ति और सामर्थ्य आदि गिरती जाती हैं जिससे अन्त मे सेवायोजक को भी हानि होती है। अतः श्रमिक और सेवायोजक दोनो का ही लाभ इसी मे है कि काम के घण्टे आवश्यकता से अधिक न बढाये जायें।

(३) **स्वास्थ्य**—निपुणता के लिए श्रमिक का स्वास्थ्य भी अच्छा होना चाहिए। स्वास्थ्य अच्छा न होने पर वह शीघ्र थक जायगा और कार्य को अच्छी तरह नही कर सकेगा।

स्वास्थ्य के महत्व को समझने के कारण आजकल औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान का विकास हुआ है। इसमें उन सब परिस्थितियो का अध्ययन किया जाता है जिनका श्रमिक के स्वास्थ्य पर प्रभाव पडता है और ऐसी दशायें बनाये रखने की चेष्टा की की जाती है जिनमे श्रमिक का स्वास्थ्य अच्छा रह सके। औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान से श्रमिकों का स्वास्थ्य सुधरने लगा और इससे कार्य की मात्रा और गुण मे भी वृद्धि हुई। औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान के अनुसार उद्योग केन्द्रो मे श्रमिक के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये साधारणतया निम्नलिखित बातो का ध्यान रक्खा जाना चाहिये—

(१) उद्योग केन्द्र मे एक अच्छा डाक्टर रहना चाहिये जिससे किसी भी श्रमिक के बीमार पड़ते ही तुरन्त चिकित्सा की जा सके।

(२) श्रमिको मे सक्रामक रोगो के रोकने की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। किसी भी श्रमिक को ऐसा कोई रोग लगने पर उसको अलग रखा जाना चाहिये और तुरन्त उपचार किया जाना चाहिये।

(३) श्रमिकों को यथासम्भव नशीली वस्तुएँ उपलब्ध नहीं होनी चाहियें, जिनको नशा करने की आदत हो उसे भी छुडाने की चेष्टा की जानी चाहिये।

(४) श्रमिकों को स्वास्थ्य के विषय में और रोगों से बचने के विषय में आवश्यक जानकारी दी जानी चाहिये।

(५) शारीरिक, मानसिक अथवा आर्थिक दृष्टि से पिछडे हुये श्रमिकों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये और उनको विशेष सुविधायें भी दी जानी चाहियें।

(४) जलवायु—निपुणता पर कार्य करने के स्थान की जलवायु का भी विशेष प्रभाव पडता है। इस सम्बन्ध में अनेक बातों को पीछे उद्योग मे मनोविज्ञान शीर्षक अध्याय मे बताया जा चुका है। आधुनिक कारखानो में रोशनी, हवा, पानी, सफाई, तापक्रम, शोर आदि पर आवश्यक नियन्त्रण रखा जाता है। ऐसा न होने पर श्रमिकों के स्वास्थ्य पर और परिणामस्वरूप निपुणता पर बुरा प्रभाव पडता है।

निपुणता के आन्तरिक निर्णायक
(Internal Determinants of Efficiency)

बाह्य दशाओं के अलावा निपुणता की कुछ आतरिक दशायें भी हैं। इनमें मुख्य दशायें निम्नलिखित हैं :—

(१) प्रेरणा (Motivation),
(२) ऊब (Monotony),
(३) एकाग्रता,
(४) सवेगात्मक अनुकूलन (Emotional Adjustment),
(५) अभिरुचि और व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषतायें (Aptitude and Personality Differences)।

(१) प्रेरणा—प्रेरणा का निपुणता से बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसके अभाव में अन्य परिस्थितियाँ रहते हुए भी निपुणता नही रह सकती। प्रेरणा होने पर अन्य आवश्यक दशाओं मे कमी होने पर भी निपुणता बनी रहती है। उद्योग में प्रेरणा देने के उपायों का आगे वर्णन किया गया है। उद्योग मे आवश्यक प्रेरणा के लिये यह जरूरी है कि कर्मचारी की आवश्यकतायें पूरी होती हों, उसका स्वास्थ्य अच्छा हो भविष्य सुरक्षित हो तथा अधिक और अच्छा काम करने पर उसे पदोन्नति और पुरस्कार मिलते हों। यदि पदोन्नति, खुशामद या अन्य बातों से मिलती है तो मेहनती लोगों की प्रेरणा कम हो जाती है। यदि अधिकारियों का व्यवहार खराब है तो भी प्रेरणा नही रहती। इन सब बातो का आगे विस्तार से वर्णन किया गया है।

(२) ऊब—ऊब से निपुणता कम होती है क्योंकि उससे व्यक्ति का मन और शरीर शिथिल हो जाता है। अतः मनोवैज्ञानिकों ने ऊबने के सम्बन्ध मे अनेक प्रयोग किये हैं और उसके कारणों का पता लगाने की चेष्टा की है। काम मे ऊब दूर रखने के लिये अग्रलिखित उपाय प्रयोग किये जा सकते हैं—

(अ) कार्य में विविधता—पीफेनबर्जर (Poffenberger) के अनुसार ऊबने का एक कारण एक से काम को बार-बार करना है। यह एक सामान्य बात है कि कितना भी अच्छा काम होने पर मनुष्य एक से काम से ऊब जाता है। अत काम में रुचि बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि काम मे कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य किया जाय। इसलिये कार्य मे विविधता होने पर ऊब को दूर रखा जा सकता है।

(ग) कार्य के साथ विश्राम—कार्य के साथ विश्राम की पर्याप्त व्यवस्था न होने पर व्यक्ति थक जाता है और ऊबने लगता है। इसलिए ऊबने को रोकने के लिए कार्य के साथ-साथ पर्याप्त विश्राम की भी व्यवस्था होनी चाहिये।

(स) कार्य का समय अधिक न होना—कार्य का समय अधिक होने से भी कर्मचारी उससे ऊब जाता है और थका सा रहता है। अतः यह आवश्यक है कि काम करने के घण्टे अधिक न हों।

(द) मनोरंजन का प्रबन्ध—मनोरजन से व्यक्ति फिर से ताजा हो जाता है। अतः ऊब को दूर रखने के लिये मनोरजन सबसे अधिक आवश्यक है। इसलिये आजकल श्रमिको को तरह-तरह के दिल बहलाव के साधन देने का प्रयास किया जाता है। इससे नवीनता भी मिलती है और रुचि भी बनी रहती है।

(इ) प्रेरणा—ऊब को दूर रखने के लिये तरह-तरह के उपायों से काम में प्रेरणा बनाये रखी जानी चाहिए। कर्मचारी पर भारी दबाव कम से कम होना चाहिये। उसे अधिकतर स्वय अपनी प्रेरणा से काम करना चाहिये।

(उ) बुद्धि, व्यक्तित्व और योग्यताओं के अनुसार काम का चुनाव—यदि कोई काम व्यक्ति की बुद्धि, व्यक्ति की विशेषताओ, सामर्थ्य तथा विशेष योग्यताओं के अनुरूप नही है तो समय बीतने के साथ व्यक्ति उससे ऊबने लगेगा। अत. यह आवश्यक है कि इनको ध्यान मे रखकर ही व्यक्ति को उसके उपयुक्त कार्य दिया जाये।

(३) एकाग्रता—निपुणता के लिये एक अन्य आवश्यक आन्तरिक दशा श्रमिक अथवा कर्मचारी का एकाग्रचित्त होना है। इसके लिये यह जरूरी है कि शोर तथा अन्य बाधाओं को दूर किया जाय। कभी-कभी प्रेरणा का अभाव भी चित्त न लगने का कारण हो सकता है। निपुणता के लिये यह आवश्यक है कि ध्यान बटने के आन्तरिक और बाहरी सभी कारणो को दूर करके कर्मचारी को एकाग्रचित बनने में सहायता दी जाय।

(४) संवेगात्मक अनुकूलन—दुर्घटनाओं के अध्ययन मे बहुधा यह देखा गया है कि उनका कारण ध्यान का एकाग्र न होना, अरुचि, शिथिलता अथवा मानसिक सघर्ष होता है। इन सबके मूल मे बहुधा सवेगात्मक अनुकूलन का अभाव रहता है। अतः निपुणता बनाये रखने के लिये एक आवश्यक दशा सवेगात्मक अनुकूलन भी है। इसको बनाये रखने के लिये सामान्य रूप से श्रमिको की काम करने की दशायें अच्छी होनी चाहिये। साथ ही साथ उनकी व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने मे उन्हे वैयक्तिक निर्देशन भी दिया जाना चाहिये।

(५) अभिरुचियाँ और व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषतायें—अन्त मे निपुणता बहुत कुछ व्यक्तियों की अपनी अभिरुचियों और व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं पर भी निर्भर रहती है। यदि उन्हे इनके अनुरूप काम मिलता है तब तो निपुणता बनी रहती है अन्यथा नही। फिर, कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनमें निपुणता बनाये रखना बडा कठिन होता है यद्यपि प्रयास करने से कुछ सफलता मिल ही सकती हैं।

निपुणता की विभिन्न दशाओं तथा निर्णायक कारकों के उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि औद्योगिक मनोविज्ञान मे इस दिशा मे बराबर प्रयोग किये जा रहे है और व्यवस्थित नियम निकालने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस प्रयास से कर्मचारी और सेवायोजक दोनो को ही लाभ है।

समय-गति अध्ययन

(Time-Motion Studies)

उद्योग मनोविज्ञान मे समय और गति के अध्ययनो से भी निपुणता के विषय में अनेक महत्वपूर्ण बाते ज्ञान हुई हैं। सन् १९१० मे टेलर ने कुछ समय गति अध्ययन किये। अपने अध्ययन मे उसने एक कार्य को छोटे-छोटे मूल अशो मे विभाजित करके यह नोट किया कि प्रत्येक अश को करने मे कितना समय लगता है। इसके बाद उसने उनकी मजदूरी बढाकर और प्रत्येक अश के लिये दिये गये समय को कम करके अध्ययन किया। गति अध्ययन के बाद यह काल अध्ययन था।

टेलर के अध्ययन

परन्तु इस सम्बन्ध मे सबसे महत्वपूर्ण अध्ययन गिलब्रेथ (Gilbreth) का है। गिलब्रेथ ने समय-गति अध्ययन के द्वारा यह जानने की चेष्टा की कि श्रमिक किस प्रकार कम समय मे अधिक से अधिक कार्य कर सकता है। इसके लिये उसने यह देखा कि ऐसा तभी हो सकता है जबकि कार्य करने में सब अनावश्यक गतियो को निकाल दिया जाये और केवल आवश्यक गतियों को ही रहने दिया जाय। ईंटें ढोने वालों पर इस प्रकार के प्रयोग करके गिलब्रेथ ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि अनावश्यक गतियों को निकाल दिया जाय तो जो काम बारह घण्टे मे होता वही पाँच घण्टे मे हो सकता है और १२० ईंट प्रति घण्टे के स्थान पर एक घन्टे मे ३५० ईंटें ढोई जा सकती हैं। अपने इस अध्ययन मे गिलब्रेथ ने साइक्लिग्राफ नामक यन्त्र से गतियो का अध्ययन किया। समय के लिये स्टौपवाच इस्तेमाल की गई। समय-गति अध्ययन में पूरे काम मे होने वाली गतियों को छोटी से छोटी अविभाज्य इकाइयो मे बाँट लिया जाता है। इसके बाद विश्लेषण करके आवश्यक और अनावश्यक गतियो को अलग-अलग कर दिया जाता है और अनावश्यक गतियों को निकाल कर आवश्यक को रहने दिया जाता है। गतियो के निरीक्षण के लिये बाद में स्वचालित (Automatic) कैमरे का और फिर त्रिमति (Tridimensional) कैमरे का प्रयोग किया जाने लगा। आजकल गति अध्ययन में लम्बाई, चौडाई और ऊँचाई के साथ

गिलब्रेथ के अध्ययन

साथ समय भी अंकित हो जाता है। यह पूरा चित्र स्टीरियोक्रोनोसाइकिलग्राफ कहलाता है। इससे किसी काम को समस्त गतियों का एक साथ अध्ययन किया जाता है।

थर्बलिग्स

गतियो के अध्ययन के साथ-साथ गिलब्रेथ ने गतियो के प्रमाणीकरण की भी चेष्टा की। इसके लिये उसने विभिन्न गतियों के लिये प्रतीक निश्चित कर दिये और उनके द्वारा ही गतियो का वर्णन करना प्रारम्भ किया। गिलब्रेथ ने इस तरह के सत्रह गतियो के प्रतीक बनाये।

SYMBOL	NAME OF SYMBOL	SYMBOL	NAME OF SYMBOL
	SEARCH		DISASSEMBLE
	FIND	0	INSPECT
→	SELECT		PRE-POSITION
∩	GRASP		RELEASE LOAD
	TRANSPORT LOADED		TRANSPORT EMPTY
9	POSITION		REST FOR OVERCOMING FATIGUE
#	ASSEMBLE		UNAVOIDABLE DELAY
			AVOIDABLE DELAY
U	USE		PLAN

चित्र सं० १६—थर्बलिग्स

इन प्रतीको को थर्बलिग्स कहा जाता है। इस शब्द मे वे ही अक्षर हैं जो गिलब्रेथ के नाम मे है। केवल उनका क्रम उलट दिया गया है। थर्बलिग्स की सहायता से सिमोचार्ट (Simochart) बनाया जाता है। सिमोचार्ट में रेखांकन विधि के द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों की गतियो को पैमाने के आधार पर उनके अनुपात मे ग्राफ मे भर दिया जाता है और उसके सामने उसका थर्बलिग भी लिख दिया जाता है। सिमोचार्ट से यह ज्ञात हो जाता है कि किसी काम मे किस अंग को कितनी देर तक कौन सी गति करनी पड़ती है।

समय गति अध्ययन उद्योग के क्षेत्र मे बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ है। एक ओर तो उससे कार्य विश्लेषण मे सहायता मिली है, दूसरी ओर उससे अनावश्यक

समय-गति अध्ययनों से लाभ

गतियों को निकाल कर कम समय मे अधिक से अधिक काम करने की विधि निकालने में भी सहायता मिली है। तीसरे, इस विधि से यह भी मालूम होता है कि कर्मचारियों को कैसे प्रशिक्षण दिया जाये। इस विधि से एक अन्य

लाभ यह भी है कि कार्यों का मूल्य और कर्मचारियों का वेतन निश्चित किया जा सकता है।

सारांश

उद्योगों में उत्पादन की मात्रा पर निपुणता का प्रभाव पड़ता है। निपुणता व्यक्ति की विशेष कार्य क्षमता है जिसके कारण वह किसी कार्य को भली प्रकार कर सकता है। निपुणता पर वाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की दशाओं का प्रभाव पड़ता है। बाह्य दशायें हैं—(१) विश्राम, (२) कार्य करने का समय, (३) स्वास्थ्य, (४) जलवायु। आन्तरिक दशायें हैं—(१) प्रेरणा, (२) ऊब, (३) एकाग्रता, (४) संवेगात्मक अनुकूलन, (५) अभिरुचि और व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषतायें।

समय गति अध्ययन—समय गति अध्ययनों से निपुणता के विषय में महत्वपूर्ण बातें मालूम होती हैं। सन १९१० में टेलर ने समय गति अध्ययन किये। इस सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्वपूर्ण अध्ययन गिलब्रेथ के हैं जिनके आधार पर उसने थर्बलिग्स बनाये। समय गति अध्ययन से कार्य विश्लेषण में सहायता मिलती है और कार्यों का मूल्य तथा कर्मचारियों का वेतन निश्चित किया जा सकता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

प्रश्न १. कार्य कुशलता पर महत्वपूर्ण तथ्यों का क्या प्रभाव पड़ता है ? क्या कार्य कुशलता में उन्नति सम्भव है ?

What are the important factors influencing efficiency of work ? Can efficiency be improved ? (Agra 1967)

प्रश्न २. कार्य की दक्षता को प्रभावित करने वाले तथ्य क्या हैं ? इस सम्बन्ध में ध्यानान्तरण तथा संवेगात्मक अवस्था पर विशेष प्रकाश डालिये।

What are the important factors influencing efficiency of work ? *In this connection throw special light on distraction and* emotional state. (Agra 1961)

प्रश्न ३. समय और गति अध्ययन के स्वरूप का विवेचन कीजिए।

Discuss the nature of time and motion study. (Agra 1966, 68)

प्रश्न ४. काल गति अध्ययन का क्या मतलब है ? गति मितव्ययता से उत्पादन किस प्रकार बढ़ता है, कुछ अनुसन्धानों के आधार पर समझाइये।

What is time and motion study ? Cite come studies to show that economy of movement can lead to substantial increase in output. (Vikram 1969)

१३

नीतिमत्ता और कार्य सन्तोष

(Morale and Job Satisfaction)

किसी भी उद्योग में उत्पादन केवल मशीनों पर निर्भर नहीं होता। मशीनों पर काम करने वाले मजदूर होते हैं। मजदूरी के अलावा कारखाने मे क्लर्क, मैनेजर तथा अन्य कर्मचारी होने हैं। कारखाने को भली प्रकार चलाने के लिए यह जरूरी है कि ये सब लोग सगठित रूप से मिलकर काम करें। यह तभी हो सकता है जबकि कर्मचारियो में सन्तोष और उत्साह हो। कारखाने के काम के प्रति कर्मचारियो के दृष्टिकोण का बड़ा महत्व होता है। यही व्यक्तिगत दृष्टिकोण उनकी नीतिमत्ता है।

नीतिमत्ता क्या है ?

नीतिमत्ता उच्च भी हो सकती है और निम्न भी। सफल उद्योगपति अपने कारखानो मे नीतिमत्ता का उच्च स्तर बनाये रखने के लिये सर्दव प्रयत्नशील रहते हैं क्योंकि इससे ही कारखाने ठीक चलते हैं और उनमे उत्पादन की मात्रा और गुण बने रहते हैं। दूसरी ओर नीतिमत्ता गिरने के बाद कारखाने में आये दिन नयी-नयी समस्यायें उत्पन्न होती रहती हैं। कभी उत्पादन कम होता है तो कभी एक्सीडेंट बढ़ जाते हैं। कभी कर्मचारियो मे आपस में झगड़े होते हैं तो कभी हड़ताल हो जाती है। आजकल उद्योगों मे मानव सम्बन्धों के महत्व को सब कहीं माना जाता है। नीतिमत्ता का उच्च स्तर मानव सम्बन्धो के अच्छे होने का प्रमाण है।

उच्च और निम्न नीतिमत्ता

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि नीतिमत्ता का सामाजिक व्यवहार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार उसके दो पहलू हैं—मानसिक और सामाजिक। मानसिक पहलू मे नीतिमत्ता उद्योग की व्यवस्था, उत्पादन और अधिकारियो के प्रति कर्मचारियो की मनोवृत्ति है। सामाजिक पहलू मे नीतिमत्ता कर्मचारियों के सामाजिक व्यवहार से मालूम पड़ती है। इस प्रकार यदि नीतिमत्ता का स्तर ऊँचा है तो कर्मचारियों मे अनुशासन, आज्ञाकारिता और सामूहिक एकता का भाव दिखलाई पड़ता है। यह भाव जितना ही कम होगा नीति मत्ता का स्तर उतना ही नीचा माना जायेगा।

नीतिमत्ता के पहलू

अतः नीतिमत्ता का अधिकारियो के प्रति दृष्टिकोण पर स्पष्ट प्रभाव पडता है। इस सम्बन्ध मे जेनकेन्स (Jenkens) ने एक बडा मनोरजक प्रयोग किया। उसने दो ऐसे समूह लिए जिनमे एक की नीतिमत्ता ऊँची और दूसरे की निम्न स्तर की थी। हर एक समूह मे एक सेनापति और एक कार्यकारी अधिकारी के अलावा १७ कर्मचारी थे। अधिकारियों के प्रति दृष्टिकोण की परीक्षा लेने के लिए गुप्त रूप से हर एक कर्मचारी से उस व्यक्ति का नाम बतलाने को कहा गया जिसके साथ वह वायुयान से यात्रा करना चाहता है और साथ ही अपने समूह के उस व्यक्ति का भी नाम बतलाने को कहा गया जिसके साथ वह यात्रा नही करना चाहता। इस परीक्षा से जो परिणाम आये उनसे यह मालूम हुआ कि उच्च नीतिमत्ता मे अधिकारियों के प्रति अनुकूल और निम्न नीतिमत्ता मे उनके प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति रहती है जिस समूह की नीतिमत्ता उच्च कोटि की थी उसके आठ सैनिको ने सेनापति के साथ और ६ ने कार्यकारी अधिकारी के साथ यात्रा करने की इच्छा प्रकट की। दूसरी ओर जिस समूह मे निम्न कोटि की नीतिमत्ता थी उसमे किसी भी सैनिक ने सेनापति के साथ उडने की इच्छा नही प्रगट की। इसके विरुद्ध नौ सैनिकों ने तो कार्यकारी अधिकारी के साथ उडने मे अपनी अनिच्छा ही दिखाई।

नीतिमत्ता का अधिकारियों के प्रति दृष्टिकोण पर प्रभाव

अधिकारियो के प्रति अनुकूल भाव के साथ-साथ नीतिमत्ता की एक विशेषता यह है कि उसमे निराशा का प्रतिरोध किया जाता है। दूसरे शब्दो मे, नीतिमत्ता उच्च होने पर निराशा पास नही फटकती और उत्साह बना रहता है। कोई समस्या उपस्थित होने पर उसको सुलझाने की कोशिश की जाती है। दूसरी ओर नीतिमत्ता का स्तर नीचा होने पर निराशायें और हताशायें बढती है। लोग भविष्य के प्रति उदास हो जाते है। उन्हे चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पडता है। समस्याओं को सुलझाना तो दूर रहा वे उनकी ओर से आँख ही मूद लेते है। उनमे पलायन, अवगति, निवेपण इत्यादि लक्षण दिखलाई पडते हैं।

नीतिमत्ता और मन स्थिति

इस प्रकार उच्च स्तर की नीतिमत्ता मे कर्मचारियो का सगठन सुदृढ रहता है और वे बदलती हुई परिस्थितियो के साथ भली प्रकार अभियोजन कर लेते हैं। उनमे किसी प्रकार का कोई भेदभाव नही रहता। दूसरी ओर नीतिमत्ता निम्न होने पर अभियोजनशीलता कम हो जाती है।

नीतिमत्ता और अभियोजन

यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि यह आवश्यक नही है कि यदि किसी

विभिन्न कर्मचारियों की नीतिमत्ता मे अन्तर

कारखाने की कुछ परिस्थितियाँ खराब हैं तो सभी कर्मचारियो की नीतिमत्ता का स्तर निम्न ही जायेगा । दूसरी ओर किसी कारखाने मे अधिकतर लोगों का नीतिमत्ता का स्तर ऊंचा होते हुए भी अन्य लोगो का स्तर नीचा हो सकता है । इसका कारण यह है कि व्यक्तिगत विभिन्नताओ के कारण सभी लोगों पर परिस्थितियो का एकसा प्रभाव नही पडता । दूसरी ओर एक ही कारखाने मे काम करने वाले कर्मचारियो की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं । उदाहरण के लिए कुछ व्यक्तिगत कारणो से किसी कर्मचारी को अधिकारी की कृपा दृष्टि मिल जाती है और इसलिए उसमे नीतिमत्ता का स्तर ऊँचा रहता है। अन्य लोगो की नीतिमत्ता का स्तर निम्न होता है क्योंकि वे अधिकारियो के कृपापात्र नही होते । इसी प्रकार एक ही परिस्थिति मे कुछ कर्मचारियो का नीतिमत्ता का स्तर उठ सकता है जबकि दूसरो का स्तर गिर सकता है। उदाहरण के लिए यदि किसी कारखाने में किसी विशेष जाति, धर्म या क्षेत्र के लोगो को विशेष सुविधायें दी जाती हैं तो इससे उन लोगों को बड़ी निराशा होती हैं और वे अधिकारियों के विरुद्ध हो जाते हैं तथा उनकी नीतिमत्ता का स्तर गिर जाता है ।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है नीतिमत्ता के उच्च स्तर मे निम्नलिखित विशेषतायें देखी जा सकती है—

उच्च नीतिमत्ता की विशेषतायें

(१) अधिकारियो के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति ।
(२) आत्म प्रेरित आज्ञाकारिता ।
(३) अधिकारियो के प्रति सम्मान और विश्वास का धनात्मक (Positive) भाव ।
(४) सामूहिक अनुशासन, एकता और अभियोजनशीलता ।
(५) हताशाओ का विरोध और उत्साहशीलता ।
(६) मानसिक शान्ति और सन्तोष ।
(७) कार्य मे सुव्यवस्था और उत्पादकता ।

नार्मन मेयर ने नीतिमत्ता मे टीम स्प्रिट पर बडा जोर दिया है । टीम स्प्रिट रहने से नीतिमत्ता बनी रहती है । टीम स्प्रिट बनी रहने के लिए निम्नलिखित बातों का बना रहना बड़ा जरूरी है ।

उत्कृष्ट नैतिक स्तर के उपादान

(१) **कार्य के प्रति लगन**—इसमे तत्परता और शक्तिशाली प्रेरकों का अस्तित्व सम्मिलित है जिससे कि व्यक्ति निश्चित उद्देश्यों की ओर बराबर बढता रहता है ।

(२) **कार्य से विमुख न होना**—यह नीतिमत्ता बने रहने का गुण है। ऐसी दशा मे असफलता मिलने पर भी लोग कार्य से विमुख नही होते ।

(३) **सहयोग की भावना**—सहयोग की भावना के कारण लोग व्यक्तिगत

रूप मे न सोचकर सामूहिक रूप मे सोचते हैं और समूह की सफलता को अपनी सफलता समझकर अन्य लोगो के साथ सहयोग करते हैं।

उत्कृष्ट नीतिमत्ता के विरुद्ध निकृष्ट नीतिमत्ता की दशा मे निम्नलिखित बातें दिखलाई पडती हैं—

निकृष्ट नीतिमत्ता के लक्षण

(१) अधिकारियो के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति।
(२) आज्ञाकारिता का अभाव या लादी हुई आज्ञाकारिता।
(३) अधिकारियों के प्रति घृणा, द्वेष, सन्देह, और अन्ध-विश्वास।
(४) निराशा, निरुत्साह, नीरसता।
(५) सामूहिक अनुशासन और एकता का अभाव, एकाकी प्रयास।
(६) मानसिक अशाति और असन्तोष।
(७) कार्य मे अव्यवस्था और अनुत्पादकता।
(८) तरह-तरह के जन-प्रवाद फैलाना।
(९) पीठ पीछे अधिकारियो और अन्य कर्मचारियो की निन्दा करना।
(१०) कार्य के प्रति लगन का अभाव।
(११) परस्पर झगडे और असहयोग।

किसी भी उद्योग मे कर्मचारी की नीतिमत्ता के स्तर को जानने के लिये उसमे पीछे बतलाये गए लक्षणो का दिग्दर्शन करना होता है। आजकल नीतिमत्ता को मापने के लिये अनेक वैज्ञानिक विधियो का प्रयोग किया जाता है। इन विधियो से नीतिमत्ता का स्तर ज्ञात होता है और साथ ही निम्न स्तर के कारण भी मालूम पडते हैं जिनको दूर कर नीतिमत्ता का स्तर ऊँचा किया जा सकता है। मुख्य विधियाँ निम्नलिखित हैं—

नीतिमत्ता मापने की विधियाँ

(१) सामान्य कर्मचारी मत सर्वेक्षण।
(२) निर्गमन साक्षात्कार विधि।
(३) अभिवृत्ति मान विधि।
(४) मोरेनो विधि या समाजमिति विधि।

(१) **सामान्य कर्मचारी मत सर्वेक्षण**—नीतिमत्ता के स्तर को मापने की एक अत्यन्त प्रचलित विधि सामान्य कर्मचारी मत सर्वेक्षण विधि है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इस विधि मे सामान्य कर्मचारियो के मतो का सर्वेक्षण किया जाता है। इसके लिये कुछ वैज्ञानिक प्रश्नावलियाँ बनाई जाती हैं जिनसे उद्योग के विभिन्न पहलुओं और अधिकारियों के प्रति कर्मचारियो का मन मालूम हो सके। प्रश्नावलियों का उत्तर देने मे कर्मचारी को अपना नाम नही लिखना पडता। इसमे यह लाभ होता है कि वे निडर होकर अपना मत प्रकट कर सकते हैं। प्रश्नावलियो के उत्तर मिल जाने पर उनसे यह जाना जा सकता है कि कर्मचारियो मे किस बात के बारे मे किस

तरह की शिकायते हैं। यदि किसी बात के विषय मे अधिकतर कर्मचारियों को शिकायत है तो उसमे सुधार करने की कोशिश की जाती है। इस विधि की सफलता इस बात पर निर्भर है कि प्रश्नावलियाँ कहाँ तक वैज्ञानिक हैं और कर्मचारीगण उनमे दिये गये प्रश्नों का कहाँ तक सही उत्तर देते हैं।

(२) **निर्गमन साक्षात्कार विधि**—निर्गमन साक्षात्कार विधि मे, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, उन कर्मचारियों का साक्षात्कार किया जाता है जिनका कम्पनी या कारखाने से निर्गमन हो चुका है अर्थात् जो नौकरी छोड चुके हैं। इसमे एक विशेष लाभ यह है कि नौकरी छोड़कर जाने वाले कर्मचारियों से बहुत से ऐसे कारण मालूम हो सकते हैं जिनको दूर करने से अन्य कर्मचारियों का नौकरी छोडना रोका जा सकता है। इस विधि के इस पहलू पर ड्रेक और रहम ने विशेष जोर दिया। इस विधि मे एक दूसरी विशेषता यह है कि नौकरी छोड देने के बाद कर्मचारी पूरी तरह से निडर होकर कारखाने या कम्पनी के विभिन्न पहलुओं के विषय मे अपनी राय बतला सकता है। इसमे तीसरा लाभ यह है कि नौकरी मे न रहने वाले कर्मचारी के मतो से कम्पनी के सम्मान या अनुशासन को हानि नही होती। इसमे कोई सन्देह नही कि अनेक कर्मचारियो को कुछ ऐसी व्यक्तिगत शिकायतें हो सकती हैं जिनका यथार्थ परिस्थितियो से विशेष सम्बन्ध न हो। परन्तु यदि बहुत से कर्मचारी किसी एक बात को लेकर नौकरी छोडते हैं तो निस्सन्देह नीतिमत्ता के उत्कृष्ट स्तर को बनाये रखने के लिये उस शिकायत को दूर करना जरूरी है। इस प्रकार यह विधि नीतिमत्ता मापने मे और उसका स्तर गिरने के कारणों का पता लगाने मे बडी उपयोगी सिद्ध हुई है। यदि नौकरी छोडकर जाने वाले अधिकाश कर्मचारी कम्पनी या कारखाने के अधिकारियो और काम की प्रशसा करते हैं तो निस्सन्देह इससे नीतिमत्ता का स्तर ऊँचा समझा जा सकता है।

(३) **अभिवृत्ति मान विधि**—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, नीतिमत्ता अधिकारियों और काम तथा व्यवस्था के प्रति कर्मचारी की अभिवृत्ति दिखलाती है। अतः नीतिमत्ता को जानने के लिये कर्मचारियो की अभिवृत्तियों का पता लगाया जाता है। उदाहरण के लिये नीचे दिये हुये कुछ कथनो के प्रति कर्मचारियो के मत को जानकर उनकी अभिवृत्ति ज्ञात हो सकती है।

१—मैं कम्पनी मे मजबूरी से काम करता हूँ।

२—कम्पनी के अधिकारी यथासम्भव कम से कम वेतन देने की नीति मे विश्वास करते हैं।

३—यदि मुझे इसी वेतन पर किसी दूसरी कम्पनी मे काम मिले तो मैं इस कम्पनी का काम छोड सकता हूँ।

४—मुझे अपने अधिकारियों में कोई श्रद्धा या विश्वास नही है।

५—मेरी काम करने की परिस्थितिया किसी भी तरह से अच्छी नही कही जा सकती।

६—मुझे अपने काम में कोई स्वतन्त्रता, आनन्द या सन्तोष नहीं मालूम पड़ता।

उपरोक्त कथनो पर सही या गलत का चिन्ह लगवाकर कर्मचारियों से उनकी अभिवृत्ति मालूम हो सकती है।

यदि अधिकतर कर्मचारी इन पर सही का निशान लगाते हैं तो जाहिर है कि नीतिमत्ता का स्तर नीचा है। नीतिमत्ता के उच्च स्तर की जाच के लिये अथवा अनुकूल अभिवृत्ति का पता लगाने के लिये इसी प्रकार कुछ अन्य कथन छपे रूप मे कर्मचारियो को दिये जा सकते हैं और उन पर सही या गलत का निशान लगवाकर उनकी अभिवृत्ति ज्ञात की जा सकती है। इस विधि मे कथनो के चुनाव का विशेष महत्व है। यदि कथन वैज्ञानिक रीति से चुने जाये तो काम बड़ा आसान हो जाता है। कथन स्पष्ट होने चाहिये ताकि कर्मचारी उनके विषय मे अपनी ठीक राय दे सकें। कर्मचारियो के लिये यह विधि बड़ी आसान है। अशिक्षित कर्मचारी भी कथनो पर बड़ी आसानी से निशान लगा सकते हैं। अन्य विधियों के समान इसमे भी कर्मचारी को अपना नाम नही लिखना पड़ता इसलिये वह निडर होकर अपना मत प्रकट कर सकता है। विभिन्न कथनो का मूल्य पहले से निश्चित कर लिया जाता है और इस प्रकार प्रमाणीकृत रहता है। कर्मचारियो के उत्तर मिल जाने पर विभिन्न कथनों के मूल्य का मध्यमान निकालकर कर्मचारी की अभिवृत्ति जान ली जाती है। यदि अधिकतर कर्मचारियो की अभिवृत्तियाँ विरुद्ध दिखलाई पड़ती है तो नीतिमत्ता का स्तर नीचा माना जाता है और उसके नीचे होने के कारणो का पता लगाकर उन्हे दूर करने की कोशिश की जाती है जिससे नीतिमत्ता का स्तर ऊँचा हो सके। यूं तो प्रत्येक कम्पनी या उद्योग अपने ढग से कथनो की सूची बना सकता है परन्तु इस सम्बन्ध मे अरवाक तथा बर्गन की सूची महत्वपूर्ण है। थर्स्टन और चेव ने इन कथनो की विशद व्याख्या की है।

(४) मोरेनो विधि या समाजमिति विधि—आजकल सामूहिक अध्ययनो मे समाजमितीय विधि का विशेष प्रयोग किया जाता है। नीतिमत्ता के मापने के लिये मोरेनो (Moreno) विधि से कर्मचारियो के सामूहिक सगठन की विशेषताओ के ज्ञात होने से नीतिमत्ता का स्तर जाना जा सकता है। पीछे जो जैनकेन्स के प्रयोग का उदाहरण दिया गया है उसमें सामूहिक सगठन के एक पहलू को ही लिया गया है। इस तरह कर्मचारी को कुछ ऐसे प्रश्न दिये जाते है जिनके उत्तरों से सामूहिक सगठन की विशेषताओ पर प्रकाश पड़ता है। उदाहरण के लिये कर्मचारियों से यह पूछा जा सकता है कि वे किस के साथ काम करना चाहते हैं अथवा किसकी अधीनता मे काम करना उन्हे पसन्द होगा, किस के साथ उठना-बैठना, खाना-पीना आदि उन्हें अच्छा लगता है इत्यादि। इन प्रश्नो से यदि अधिकतर कर्मचारियों का किसी विशेष व्यक्ति के प्रति सम्मान, विश्वास और प्रेम का भाव दिखलाई पड़ता है तो यह समझा जा सकता है कि वह व्यक्ति अधिकारी होने योग्य है। अब यदि वह अधिकारी ही है तो

इससे नीतिमत्ता के उच्च स्तर का पता लगता है क्योंकि जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है। अधिकारियों के प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्कृष्ट नीतिमत्ता का परिचायक है परन्तु यदि यह व्यक्ति अधिकारी नहीं है तो इससे वर्तमान अधिकारियों में अविश्वास दिखलाई पड़ता है जो कि उस विशेष व्यक्ति को अधिकारी बनाकर दूर किया जा सकता है और इस प्रकार नीतिमत्ता का स्तर ऊँचा किया जा सकता है अथवा वर्तमान अधिकारियों को अपने में ऐसे सुधार करने को कहा जा सकता है जिनसे वे कर्मचारियों की श्रद्धा और विश्वास प्राप्त कर सकें। इस प्रकार स्पष्ट है कि मोरेनो विधि से नीतिमत्ता का पता लगाने और नीतिमत्ता का स्तर ऊँचा करने के उपायों का पता लगाने में बड़ी सहायता मिलती है।

नीतिमत्ता के उपादान

नीतिमत्ता के माप की विधियों के दिग्दर्शन के बाद यह जानना प्रासंगिक होगा कि नीतिमत्ता किन तत्वों से निर्धारित होती है। इन तत्वों को स्थूलरूप से निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(अ) भौतिक उपादान—इनमें वे भौतिक परिस्थितियां आती हैं, जिनका नीतिमत्ता पर प्रभाव पड़ता है जैसे काम करने की परिस्थितियां, पद, वेतन वृद्धि देने की विधियां, निरीक्षक या अधिकारी का व्यवहार इत्यादि।

(ब) मानसिक उपादान—इनमें प्रशंसा, सफलता ज्ञान, सहकारी आवश्यकताओं की पूर्ति, सहनशीलता, स्वतन्त्रता, एकता और समरूपता का भाव, प्रेरणा, अध्यवसाय, आत्मविश्वास आदि मनोवैज्ञानिक तत्व आते हैं।

(अ) नीतिमत्ता के भौतिक उपादान

(१) काम करने की परिस्थितियां—जैसा कि नीतिमत्ता के विषय में अब तक किये गये विवेचन से स्पष्ट है, नीतिमत्ता पर काम करने की परिस्थितियों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि काम करने की परिस्थितियाँ अनुकूल और रुचिकर हैं तो नीतिमत्ता का स्तर ऊँचा रहता है। दूसरी ओर यदि काम करने की परिस्थितियाँ प्रतिकूल और अरुचिकर है तो नीतिमत्ता का स्तर गिरने की सम्भावना है। काम करने की दशाओं में भौतिक और मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार की दशायें आती हैं। ये क्रमशः भौतिक उपादानों में और मनोवैज्ञानिक उपादानों में गिनी जायेंगी। इनका विस्तृत वर्णन पीछे दिया जा चुका है। विभिन्न अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि कार्य करने की भौतिक दशाओं का नीतिमत्ता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जैसा कि टिण्डेल और केयर ने अपने अन्वेषणों से सिद्ध किया है, काम करने की परिस्थितियाँ अच्छी होने पर नीतिमत्ता का स्तर ऊंचा होता है। इस सम्बन्ध में केयर ने कर्मचारियों की मनोवृत्ति पर संगीत के प्रभाव की ओर ध्यान दिलाया है। कुलियर के प्रयोगों से यह मालूम पड़ता है कि काम करने की परिस्थितियाँ अरुचिकर होने पर कर्मचारियों की नीतिमत्ता का स्तर गिरता है क्योंकि उनमें चिन्ता, अवसाद, रूखापन, व्याकुलता, अनिद्रा, सुस्ती आदि दिखाई पड़ते हैं।

(२) **पद और पदोन्नति**—अरब्रॉक ने कुछ कम्पनियो के भिन्न-भिन्न पदो पर काम करने वाले कर्मचारियो की नीतिमत्ता का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि फोरमैनो की अभिवृत्ति क्लर्को से और क्लर्को की अभिवृत्ति अन्य कर्मचारियो से अधिक अनुकूल थी। इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कर्मचारियो के पद का भी उनकी नीतिमत्ता पर प्रभाव पडता है। इसका मुख्य मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि यदि मनुष्य को अपनी योग्यता और परिश्रम के अनुरूप पद नही मिलते तो उसका उत्साह घटने लगता है और वह अधिकारियो पर से विश्वास खो बैठता है। अत किसी भी उद्योग मे नीतिमत्ता के स्तर को ऊचा रखने के लिये यह जरूरी है कि कर्मचारियो की योग्यता और परिश्रम के अनुसार उन्हे पद दिये जायँ और उनके पदो मे उन्नति की जाए। पीछे पदोन्नति के प्रसग मे भी इस बात को दिखलाया गया है।

(३) **वेतन वृद्धि**—यह एक सामान्य मनोवैज्ञानिक बात है कि कर्मचारियो के लिये उनके वेतन का बडा महत्व है। सैंफर्ड ने अपने अध्ययनो से इस बात पर जोर दिया है कि कर्मचारियो के वेतन की समय-समय पर जाँच पडताल और उसमे आवश्यक वृद्धि होते रहने से उनकी नीतिमत्ता का स्तर ऊँचा रहता है। इसके विरुद्ध काफी समय तक वेतन न बढने पर उनका उत्साह समाप्त हो जाता है और वे अधिकारियो को दोष देने लगते है। वेतन वृद्धि परिश्रम तथा अन्य गुणो पर निर्भर होनी चाहिये। यदि अधिकारियो की खुशामद से वेतन बढता है तो इससे उन लोगो मे निरुत्साह फैलता है जो खुशामद नही कर सकते। दूसरी ओर जो खुशामद करके वेतन वृद्धि कर भी लेते हैं वे भी नीतिमत्ता के स्तर को ऊँचा नही रख पाते। अत वेतन वृद्धि का नीतिमत्ता पर अच्छा प्रभाव पडने के लिये यह आवश्यक है कि वेतन वृद्धि का आधार उचित और सबके लिए समान हो।

(४) **वेतन देने की प्रणाली**—वेतन वृद्धि के साथ-साथ वेतन देने की प्रणाली का भी नीतिमत्ता पर प्रभाव पडता है। अभी तक हुये अध्ययनो से यह निश्चित नही हो सका है कि वेतन देने की कौनसी विधि सर्वोत्तम है। फिर भी कुछ विधियाँ अन्य विधियों से अधिक अच्छी मालूम पडी हैं। उदाहरण के लिये यहाँ पर लाभाश विधि, कार्यानुसार विधि आदि के गुण-दोषो पर विचार किया जायेगा।

(अ) **लाभांश विधि**—इस विधि मे कम्पनियो और कारखानो मे समय-समय पर सभी कर्मचारियो को बोनस अथवा लाभाश दिया जाता है। इस विधि के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

(१) इससे अधिक और अच्छा काम करने वाले कर्मचारियो को असन्तोष होता है क्योंकि वे देखते हैं कि काम खराब और कम करने वाले लोगो को भी उनके ही बराबर बोनस मिल रहा है।

(२) इस विधि से कर्मचारी अपनी आय के सम्बन्ध मे निश्चिन्त नही रहता

क्योकि न तो लाभांश की मात्रा निश्चित होती है और न उसका समय निश्चित होता है।

उपरोक्त दोषो के होते हुए भी यह ज्ञात हुआ है कि इस प्रणाली से कम से कम एक तिहाई व्यक्ति अवश्य सन्तुष्ट रहते है। इसके अलावा यह विधि आसान भी है। इसलिये आज भी इस विधि का व्यापक रूप से प्रयोग होता है।

(ब) कार्यानुसार पारिश्रमिक देने की विधि—इस विधि मे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, कर्मचारियो को उनके उत्पादन, आय की मात्रा और गुण के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाता है; इस सम्बन्ध मे मैथियुसन ने जो अध्ययन किये है उनसे यह ज्ञात हुआ है कि इस विधि से तभी लाभ हो सकता है जबकि मजदूरी की दर घटने का कोई भय न हो अन्यथा कभी-कभी इस विधि से कर्मचारी अपने काम की गति जान बूझकर धीमी कर देते है क्योकि वे समझते है कि यदि वे अधिक काम करेगे तो उससे उनको मजदूरी तो अधिक मिलेगी परन्तु बाद मे कम्पनी मजदूरी की दर घटा देगी।

स्पष्ट है कि यदि मजदूरी घटने का भय दूर कर दिया जाय तो कार्यानुसार पारिश्रमिक देने की विधि बोनस की विधि से श्रेष्ठ है। परन्तु इसमे निम्नलिखित बातो पर ध्यान रखना आवश्यक है—

(१) उत्पादन की मात्रा के साथ-साथ उसके गुण पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये।

(२) पारिश्रमिक देने मे कर्मचारी को यह भली भाति समझा दिया जाय कि उसको किस काम का किस दर से पारिश्रमिक मिला है जिससे उसके मन मे कोई सन्देह न रह जाय।

(३) पारिश्रमिक के सम्बन्ध मे दरें एक सी रहनी चाहियें और मजदूरी मे किसी प्रकार की कमी होने का भय नही होना चाहिये।

उपरोक्त बातो की व्यवस्था होने पर कार्यानुसार पारिश्रमिक देने की विधि से कर्मचारियो मे नीतिमत्ता का ऊचा स्तर बनाये रखा जा सकता है क्योकि वास्तव मे इस व्यवस्था से कर्मचारी को अपने कामो मे निरन्तर प्रेरणा मिलती है और प्रलोभन बना रहता है।

(स) लाभ में हिस्सा—भौतिक उपादानो मे एक महत्वपूर्ण उपादान लाभ मे हिस्सा भी है। यदि कम्पनी के लाभ मे कर्मचारियो को हिस्सा मिलता है तो इस विषय मे उनसे समानता का व्यवहार होना चाहिये। दूसरे शब्दो मे, सभी कर्मचारियो को बिना किसी भेदभाव के उन्नति करने का और ऊँचा वेतन पाने का अवसर मिलना चाहिये। यदि ऐसा नही होता तो वे कम्पनी के अधिकारियो के प्रतिकूल हो जाते है। जो लोग उन्नति करते हैं उनके प्रति अन्य कर्मचारियो मे ईर्ष्या के भाव जागृत होते हैं। इस प्रकार न तो सामूहिक संगठन और अनुशासन

और न अधिकारियों में विश्वास रह पाता है। अतः कर्मचारियों की वेतन वृद्धि और उन्नति में सभी के लिये एक से नियम होने चाहियें और ये नियम सभी को समझा दिये जाने चाहियें जिससे किसी को कोई शिकायत न रहे।

नीतिमत्ता के भौतिक उपादानों के वर्णन के बाद अब उसके मनोवैज्ञानिक या मानसिक उपादानों का विवेचन किया जायेगा।

नीतिमत्ता के मनोवैज्ञानिक उपादान

(१) प्रशंसा—यह एक सामान्य मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि काम की प्रशंसा होने पर कर्मचारी का उत्साह बढ़ता है।

थौर्नडाइक, हरलॉक इत्यादि अनेक मनोवैज्ञानिकों के अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि कर्मचारियों के काम की प्रशंसा होने पर उनकी प्रेरणा बढ़ती है। वास्तव में पुरस्कार और दण्ड की व्यवस्था का काम पर प्रभाव सर्वविदित है। जिस काम के लिये किसी व्यक्ति को दण्ड दिया जाता है उसको वह फिर नहीं करना चाहता, उसी तरह यदि किसी काम के करने पर पुरस्कार मिलता है तो लोग उसे बार-बार करना चाहते हैं। प्रशंसा एक मनोवैज्ञानिक पुरस्कार है। जिन लोगों का हम सम्मान करते हैं उनकी प्रशंसा का हमारे लिये बड़ा महत्व होता है। यदि कारखाने या कम्पनी के अधिकारी कर्मचारियों के अच्छे काम की तारीफ करते है तो इससे उनमें नीतिमत्ता का उच्च स्तर बना रहता है। दूसरी ओर यदि अच्छा और अधिक काम करने पर भी कर्मचारियों की कोई प्रशंसा नहीं की जाती तो उनका उत्साह घटने लगता है और वे समझते हैं कि उनके काम की कोई कद्र नहीं है।

(२) सफलता ज्ञान—अनेक प्रयोगों से मालूम हुआ है कि यदि कर्मचारी को यह मालूम होता रहे कि उसे अपने काम में कहाँ तक सफलता मिल रही है तो काम में उसकी रुचि और उत्साह बढ़ता है और नीतिमत्ता का ऊँचा स्तर बना रहता है। जिन बड़े-बड़े कारखानों में मजदूर को बनने वाली चीज में केवल एक पुर्जा फिट करना पड़ता है और वह यह नहीं जानता कि चीज कब बनी और कैसी बनी, वहाँ पर उसका काम ऊब पैदा करने वाला हो जाता है। यहाँ पर तात्पर्य केवल परिणाम के ज्ञान मात्र से नहीं है। काम का परिणाम अच्छा भी हो सकता है और खराब भी। असफलता के ज्ञान से नीतिमत्ता कम ही हो सकती है। परन्तु यदि फिर सफलता का विश्वास दिलाया जाय तो नीतिमत्ता बनाए भी रखी जा सकती है। सामान्य रूप से काम में सफलता मिलने से नीतिमत्ता बढ़ती है। सफलता काम का पुरस्कार है और जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है पुरस्कार नीतिमत्ता में सहायक होता है। कोलस्टाड के अध्ययन से यह मालूम हुआ कि अधिक बिक्री वाली दुकानों में कर्मचारियों की नीतिमत्ता का स्तर कम बिक्री वाली दुकानों के कर्मचारियों से कहीं अधिक होता है। इसके मूल में यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि सफलता से कर्मचारी में आत्मविश्वास बढ़ता है, वह अपना महत्व समझता है, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा

बढती है और इन सब को बनाये रखने के लिये वह और भी दुगने उत्साह से काम करता है।

(३) **सहकारी आवश्यकताओं की पूर्ति**—मनुष्य केवल खाना, कपडा आदि भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये ही काम नही करता वह अपने काम से अनेक सहकारी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति चाहता है। वह लोगो से मिलना जुलना, विचारों का आदान-प्रदान, आत्मप्रदर्शन, आत्माभिव्यक्ति तथा सामाजिक सम्मान भी चाहता है। जिस काम में कर्मचारी को यह सब सुलभ होता है उसमे उसकी नीतिमत्ता का स्तर ऊँचा रहता है। दूसरी ओर जहाँ इन बातो की सुविधा नही रहती वहाँ नीतिमत्ता का स्तर ऊचा नही रह सकता। अत कर्मचारियों मे नीतिमत्ता बनाये रखने के लिये अधिकारियों और व्यवस्थापकों को यह ध्यान रखना चाहिये कि उनकी ये सहकारी आवश्यकताये भी पूरी होती चलें।

(४) **अधिकारियों की सहनशीलता और सदव्यवहार**—कर्मचारियो के लिये उनके प्रति निरीक्षकों, मैनेजर तथा अन्य अधिकारियो के व्यवहार का बडा महत्व होता है। अधिकारियों के दुर्व्यवहार होने पर नीतिमत्ता का स्तर ऊँचा नही रह सकता है। यदि वे बात-बात पर कर्मचारियो को डाटते फटकारते हैं तो कर्मचारियो के हृदय मे से उनके लिये सम्मान उठ जाता है। वास्तव मे अधिकारी लोग केवल अपने सद्व्यवहार से ही कर्मचारियो को सन्तुष्ट रख सकते है। ऐसी दशा मे अन्य परिस्थितियाँ खराब होने पर भी कर्मचारी कम्पनी या कारखाने के लिये सब कुछ करने को तैयार रहता है क्योकि वह उसे अपना काम समझता है। दूसरी ओर अधिकारियो के दुर्व्यवहार से कर्मचारियो के आत्म सम्मान को चोट पहुचती है। वास्तव मे अधिकारी बनने के लिये कर्मचारी मे काम मे निपुणता की इतनी अधिक आवश्यकता नही है जितनी कि नेतृत्व के गुणों की आवश्यकता है। समूह मे नीतिमत्ता बनाये रखने मे नेता का भारी हाथ होता है। कम्पनी या कारखाने मे निरीक्षक, मैनेजर आदि अधिकारी ही समूह के नेता होते हैं। इनको मानव मनोविज्ञान का व्यापक ज्ञान होना चाहिये। कर्मचारियो के प्रति उनका व्यवहार ऐसा होना चाहिये कि सामूहिक सगठन में भली प्रकार समायोजन हो सके। अधिकारियो मे सहनशीलता की बडी आवश्यकता है। सहनशीलता होने पर उनका सम्मान बढता ही है कम नही होता परन्तु सहनशीलता का यह अर्थ कदापि नही है कि वे कर्मचारियों की गलतियो पर भी उनको कुछ न कहें। महत्व की बात यह है कि छोटी बात को छोटी और बडी बात को बडी समझी जाये। छोटी-छोटी बातो को लेकर कहना सुनना ठीक नही है परन्तु बड़ी बात को भी कुछ न समझना भी अनुचित है। अधिकारियों में जनतन्त्रीय नेता के गुणों की आवश्यकता है। अमरीका के आयोवा विश्वविद्यालय मे किये गए अध्ययनो तथा लिपिट की खोजों से ज्ञात हुआ है कि जनतन्त्रीय नेता के आधीन काम करने वाला समूह पूरी तरह से संगठित रहता है। इस समूह मे लोग नेता की अनुपस्थिति मे भी अपने-अपने कामो में लगे रहते हैं। नेता और अन्य कर्मचारियो की

और उनकी मनोवृत्ति अच्छी रहती है। इसके विपरीत जो समूह निरकुश नेता के आधीन रहता है उनमे नीतिमत्ता का स्तर नीचा रहता है। इस समूह मे नेता की उपस्थिति होने पर उसके भय के कारण लोग काम करते है परन्तु उसके हटते ही वे काम बन्द कर देते हैं। उनमें नेता के प्रति घृणा, द्वेष और ईर्ष्या आदि के भाव रहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि कर्मचारियो मे नीतिमत्ता का उच्च स्तर बनाये रखने के लिये अधिकारियों के सद्व्यवहार का कितना अधिक महत्व है।

(५) **कर्मचारियों को स्वतन्त्रता**—जिस कम्पनी या कारखाने मे कर्मचारी मशीन का एक पुर्जा बन कर रह जाता है वहाँ उसको अपना काम नीरस और भार मालूम पड़ता है। अत. कर्मचारियो मे नीतिमत्ता का उच्च स्तर बनाये रखने के लिए यह जरूरी है कि उनको अपने काम मे यथासम्भव अधिक से अधिक स्वतन्त्रता दी जाए। अधिकारियो से मिलने-जुलने में भी उन पर रोक-टोक नही होनी चाहिए। इससे उनका अधिकारियों से मेल जोल बढेगा और वे उन्हे अपनी कठिनाइया बतला सकेंगे। स्वतन्त्रता देने का यह अर्थ कदापि नही है कि कर्मचारियो मे अनुशासन न रहे। अनुशासन बनाये रखते हुए जितनी भी स्वतन्त्रता दी जाय उतना ही अच्छा है।

(६) **सगठन और सरूपता का भाव**—पहले बतलाया जा चुका है कि सामूहिक सगठन नीतिमत्ता के उच्च स्तर का लक्षण है। अत कर्मचारियो मे सगठन और एकता की भावना रहना बडा जरुरी है। मे और राइट इत्यादि मनोवैज्ञानिको ने अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि उद्योगों मे कर्मचारियो मे नीतिमत्ता का उच्च स्तर बनाये रखने के लिये यह जरुरी है कि उनमें एकता की भावना और सरूपता की भावना हो। सरूपता का यह अर्थ है कि कर्मचारी कम्पनी या कारखाने से अपना तादात्म्य करले अर्थात् उसकी सफलता को अपनी सफलता और उसकी उन्नति को अपनी उन्नति समझें। ऐसा होने पर वे कठिन से कठिन परिस्थितियो मे भी सगठित रह कर काम करते रहते हैं। सरूपता और एकता की भावना बढाने में कुछ बातों से बडा लाभ होता है। कारखाने या कम्पनी का नाम, उसमे कर्मचारियो की एक सी निश्चित वेशभूषा और बैज आदि से बडा लाभ होता है। इसके अलवा कुछ ऐसे सामूहिक लक्ष्य देखे जा सकते हैं जिनको प्राप्त करने के लिए कर्मचारीगण सामूहिक रूप से कार्य करें। सामान्य लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए प्रयास करने से परस्पर तनाव कम होते हैं और मेल जोल तथा सगठन बढता है। कर्मचारियो को यह अनुभव होना चाहिए कि वे उद्योग के एक आवश्यक और जिम्मेदार अग है। उनको उद्योग के विभिन्न अगो की जानकारी भी दी जानी चाहिए जिससे कि वे उसे अपना उद्योग समझें। कुछ मिल मालिक यह समझते हैं कि मजदूरो को आपस मे लडाते रहने मे ही उनका लाभ है। इससे कुछ छोटे-मोटे फायदे भले ही हो परन्तु अन्त मे यह नीति स्वय मिल के लिए ही हानिकारक है क्योंकि श्रमिको मे सामूहिक सगठन

न रहने पर नीतिमत्ता का स्तर गिरता है और इससे अन्त मे काम की मात्रा और गुण कम होते है।

(७) अन्य उपादान—नीतिमत्ता के निर्णायक उपरोक्त भौतिक और मनोवैज्ञानिक कारको के अलावा कुछ अन्य कारक भी नीतिमत्ता पर प्रभाव डालते है। उदाहरण के लिए सुपर ने अपनी खोजो से आयु और नीतिमत्ता मे सम्बन्ध दिखलाया है। इसी तरह अरब्राक के अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि पुरुष कर्मचारियों की अपेक्षा स्त्री कर्मचारियो मे नीतिमत्ता का स्तर अधिक ऊँचा रहता है। वास्तव मे नीतिमत्ता को बनाये रखने के लिए कर्मचारी के व्यक्तित्व और काम के सभी पहलुओ पर ध्यान देना जरूरी है। इस सम्बन्ध मे अभी बराबर अनुसंधान किए जा रहे हैं जिनसे भविष्य मे इस विषय मे बहुत सी नई बातें ज्ञात हो सकती हैं।

कार्य सन्तोष
(Job Satisfaction)

पीछे नीतिमत्ता के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी उद्योग मे नीतिमत्ता बनाये रखने के लिए कार्य सन्तोष कितना अधिक आवश्यक है। यदि कोई कर्मचारी अपने काम से सन्तुष्ट नही है तो उसके कार्य की गुण और मात्रा दोनों मे ही हानि होती है। दूसरी ओर कार्य सन्तोष बढने से कार्य के गुण और मात्रा बढते हैं। जिन कारखानो मे कार्य सन्तोष पाया जाता है उनमे नीतिमत्ता ऊँची दिखलाई पड़ती है। कार्य सन्तोष के लिये मुख्य रूप से निम्नलिखित बातें आवश्यक है—

(१) शिकायतों का सुना जाना और दूर किया जाना—कर्मचारियो की शिकायतो को ध्यान से सुना जाना चाहिये और उनको दूर करने के उपाय किये जाने चाहियें। जिन कारखानो मे कर्मचारियो की शिकायतो पर कोई ध्यान नही दिया जाता उनमे कर्मचारियो का अधिकारियो पर से विश्वास उठ जाता है और असन्तोष उत्पन्न होता है।

(२) सन्तोषजनक भविष्य—प्रत्येक कर्मचारी को अपने भविष्य की चिन्ता होती है। यदि कारखाने या दफ्तर मे उन्नति करने के नियम स्पष्ट और निश्चित होते है तथा अच्छा काम दिखलाने पर और समय आने पर कर्मचारी को वेतन और पद मे वृद्धि मिलती है तो भविष्य के आशामय होने से कर्मचारी मे सन्तोष बना रहता है। दूसरी ओर यदि कर्मचारी यह जानते हैं कि कितना भी परिश्रम करने पर भी उनका भविष्य अनिश्चित है तो उनमे असन्तोष रहता है।

(३) कर्मचारियों की योग्यताओं और प्रगति की जांच—दफ्तरो अथवा उद्योगो मे काम करने वाला प्रत्येक कर्मचारी यह चाहता है कि उसकी योग्यताओं के अनुरूप उसके पद और वेतन मे वृद्धि होनी चाहिये। यदि उसने कोई नया प्रशिक्षण प्राप्त किया है या नई डिग्री प्राप्त की है तो उसकी योग्यताओ मे इस वृद्धि से उसकी प्रगति होनी चाहिए। जिन संस्थाओ मे अधिकारी वर्ग कर्मचारियो की योग्यताओ का

ध्यान रखते हैं और उनमें वृद्धि के साथ-साथ उनको उन्नति करने के अवसर देते हैं उनमें कर्मचारियों में सन्तोष बना रहता है। दूसरी ओर जहाँ पर ऐसा नहीं होता वहाँ पर एक ओर तो कर्मचारी असन्तुष्ट रहते हैं और दूसरी ओर वे अपनी योग्यताओं को बढ़ाने की ओर कोई ध्यान नहीं देते क्योंकि वे समझते हैं कि योग्यताओं की वृद्धि और प्रगति में कोई सम्बन्ध नहीं है।

(४) **रचनात्मक सुझावों का सम्मान**—विभिन्न स्थितियों में काम करने वाले कर्मचारी ही यह बतला सकते हैं कि काम करने की परिस्थितियों में कौन से सुधार किये जा सकते हैं। यदि कर्मचारियों को सुधार के सुझाव देने के लिये प्रोत्साहित किया जाय तो वे अत्यन्त महत्वपूर्ण सुझाव उपस्थित करते हैं। कारखानों, दफ्तरों और अन्य संस्थानों में कार्य सन्तोष बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारियों के सुझावों पर ध्यान दिया जाए और उनकी प्रशंसा की जाए। रचनात्मक सुझावों की अवहेलना होने पर कर्मचारी असन्तुष्ट रहते हैं क्योंकि उन्हें यह अनुभव होता है कि उनकी परिस्थितियों में कोई भी सुधार नहीं हो सकता।

(५) **कार्य की मैत्रीपूर्ण समीक्षा**—प्रत्येक संस्थान में अधिकारियों को कर्मचारियों के कार्य की आलोचना करनी पड़ती है और उन्हें उनकी गलतियाँ बतलानी होती है। यदि यह कार्य मैत्रीपूर्ण ढंग से और सहायता के तौर पर किया जाए तो काम बन जाता है और कर्मचारियों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। उनमें कार्य सन्तोष बना रहता है। दूसरी ओर यदि उनकी गलतियों के लिये उन्हें झिड़का जाता है या उनकी कटु आलोचना की जाती है तो ऐसी स्थिति में उनमें असन्तोष बढ़ता है।

(६) **वेतन वृद्धि**—प्रत्येक दफ्तर और कारखाने में वेतन वृद्धि की शर्तें और नियम निश्चित होने चाहियें तथा इन पर निष्पक्ष और नियमित रूप से अमल किया जाना चाहिए। यदि कर्मचारियों को निश्चित समय पर और नियमानुसार वेतन वृद्धि मिलती रहती है तो उनमें कार्य सन्तोष बना रहता है। ऐसा न होने पर भारी असन्तोष उत्पन्न होता है। वास्तव में कार्य संतोष में वेतन वृद्धि सबसे अधिक मुख्य कारण है।

(७) **अच्छे कार्य की प्रशंसा**—जिन संस्थानों में औसत से अधिक अच्छा काम दिखलाने पर कोई मान्यता या प्रशंसा नहीं मिलती वहाँ कर्मचारी इस दिशा में कोई प्रयास नहीं करते और यदि करते भी हैं तो उनमें असन्तोष बना रहता है। वास्तव में बहुत से कर्मचारी केवल समय काटने की अपेक्षा पूर्ण मनोयोग से काम करना अधिक अच्छा समझते हैं और यदि उनके अच्छे कार्य को मान्यता दी जाए और उसके लिए उनकी प्रशंसा की जाए तो वे मात्रा और गुण में कार्य का ऊंचा स्तर बराबर बनाए रहते हैं तथा उनमें कार्य संतोष बना रहता है। दूसरी ओर जब अच्छा काम दिखाने पर भी कोई तारीफ नहीं करता तो कर्मचारी का उत्साह मर जाता है।

(८) **योग्यतानुसार पदोन्नति**—प्रत्येक संस्थान में कुछ न कुछ लोग बराबर रिटायर होते रहते है और उनके स्थान की पूर्ति करने के लिए निम्न-पदस्थ कर्मचारियों को अवसर दिया जाता है। यदि पदोन्नति के लिए चुनाव कर्मचारियों की योग्यता के आधार पर होता है तो उनमे कार्य सतोष बना रहता है। दूसरी ओर यदि पदोन्नति मे चाटुकारिता, जातिवाद, क्षेत्रवाद अथवा अन्य प्रकार के भेदभाव काम करते है तो कर्मचारियो मे असन्तोष उत्पन्न होता है।

(६) **कार्य की उचित मात्रा**—कार्य सतोष बनाए रखने के लिये यह आवश्यक है कि काम इतना अधिक न हो कि उसे पूरा करने मे कठिनाई हो जाए क्योकि बहुत दिनो तक शक्ति से अधिक काम करके कोई भी कर्मचारी सतुष्ट नही रह सकता।

(१०) **समान कार्य के लिये समान वेतन**—आजकल लगभग सभी उद्योगो मे मजदूर सघो और कर्मचारियो की यूनियनो का यह नारा है कि समान कार्य के लिये समान वेतन दिया जाए। किसी भी दफ्तर या कारखाने मे कर्मचारी को वह वेतन अवश्य दिया जाना चाहिये जो उस प्रकार के कार्य के लिये अन्य दफ्तरो या कारखानो में दिया जाता है। इस सम्बन्ध मे समानता होने से कर्मचारी असन्तुष्ट रहते हैं भले ही वेतन अपर्याप्त हो किन्तु यदि इस सम्बन्ध मे समानता नही है तो जहा पर वेतन कम होता है वहाँ भारी असतोष फैल जाता है।

(११) **कार्य की समस्याओं मे सहायता लेने की स्वतन्त्रता**—अनेक बार काम के दौरान मे कुछ समस्याये ऐसी आ जाती हैं जिनको कर्मचारी स्वय नही सुलझा सकता। ऐसी स्थिति मे उसे यह स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वह अधिकारियो अथवा अन्य योग्य व्यक्तियो की सहायता प्राप्त कर सके।

(१२) **अनुचित डाट डपट से मुक्ति**—प्रत्येक व्यक्ति आत्मसम्मान से जीना चाहता है। कोई भी कर्मचारी अनुचित डाट डपट होते हुए सतुष्ट नही रह सकता। इसलिये कर्मचारियों मे कार्य सन्तोष बनाए रखने के लिये यह आवश्यक है कि उन्हे डाट डपट से मुक्त रक्खा जाए।

(१३) **दैनिक कार्य घण्टों का संतोषजनक होना**—दफ्तरो या कारखानो मे काम के घण्टो की सख्या और काम के प्रारम्भ होने तथा समाप्त होने का समय ऐसा होना चाहिए जिससे अधिक से अधिक कर्मचारियो को कम से कम असुविधा हो। ऐसा न होने पर असतोष बढ़ता है।

(१४) **अवकाश की सुविधा**—प्रत्येक औद्योगिक सस्थान मे विभिन्न त्यौहारो और सार्वजनिक उत्सवो के अवसरो पर कर्मचारियो को उचित अवकाश दिया जाना चाहिए। आजकल सप्ताह मे एक दिन की पूरी छुट्टी के अलावा १५ दिन मे एक दिन की आधी छुट्टी भी आवश्यक मानी जाती है। विभिन्न त्यौहारो पर दी जाने वाली छुट्टियाँ इनके अलावा होती हैं। इसके अतिरिक्त कर्मचारी आकस्मिक अवकाश और चिकित्सा के लिए अवकाश ले सकता है। स्त्री श्रमिको को गर्भावस्था

में तीन महीने तक अवकाश दिया जाता है। इस प्रकार विभिन्न दफ्तरों और उद्योगों मे साधारणतया अवकाश के विषय मे उदार नीति होने से कर्मचारी सन्तुष्ट रहते हैं।

कार्य सन्तोष को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारको के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कार्य सन्तोष बनाए रखने के लिए कुछ विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी होती हैं। विभिन्न परिस्थितियो मे भिन्न-भिन्न कारक महत्वपूर्ण हो सकते हैं। वेतन वृद्धि सभी जगह महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार पदोन्नति का भारी प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त अन्य कारकों का प्रभाव न्यूनाधिक मात्रा मे भिन्न होता रहता है। उदाहरण के लिये जिन सस्थानो में डिग्रियों का विशेष महत्व है वहाँ पर डिग्री बढने से पदोन्नति मिलना आवश्यक माना जाता है। दूसरी ओर जहाँ किसी प्रकार के प्रशिक्षण या डिग्री की आवश्यकता नही होती वहाँ कार्य सतोष के लिये इस परिस्थिति का प्रश्न ही नही उठता। अन्त मे यह कहा जा सकता है कि कार्य सतोष उन सभी परिस्थितियों पर निर्भर है जिनका नीतिमत्ता पर प्रभाव पडता है।

सारांश

नीतिमत्ता कारखाने के काम के प्रति कर्मचारियों का दृष्टिकोण है। नीतिमत्ता उच्च भी हो सकती है और निम्न भी हो सकती है। उसके दो पहलू हैं—मानसिक और सामाजिक। नीतिमत्ता का अधिकारियो के प्रति दृष्टिकोण पर और कर्मचारी की मानसिक स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। विभिन्न कर्मचारियों की अभियोजनशीलता के अनुसार उनकी नीतिमत्ता में अन्तर देखा जाता है। उत्कृष्ट नीतिमत्ता में अन्य बातों के साथ-साथ टीम स्प्रिट का भी महत्व है। निष्कृष्ट नीतिमत्ता में उच्च के विरुद्ध लक्षण होते हैं। नीतिमत्ता मापने के लिये मुख्य विधियां हैं—१. सामान्य कर्मचारी मत सर्वेक्षण, २ निगमन साक्षात्कार विधि, ३. अभिवृत्ति मान विधि, ४. मौरैनो विधि या समानमिति विधि।

नीतिमत्ता के उपादान—(अ) भौतिक उपादान—१. काम करने की परिस्थितियां, २ पद और पदोन्नति, ३. वेतन वृद्धि, ४. वेतन देने की प्रणाली, (अ) लाभांश विधि, (ब) कार्यानुसार पारिश्रमिक देने की विधि, (स) लाभ में हिस्सा।

नीतिमत्ता के मनोवैज्ञानिक उपादान—१. प्रशसा, २. सफलता ज्ञान, ३. सहकारी आवश्यकताओं की पूर्ति, ४. अधिकारियों की सहनशीलता और सद्व्यवहार, ५. कर्मचारियो की स्वतन्त्रता, ६. संगठन और सफलता का भाव, ७. अन्य उपादान।

कार्य सन्तोष—कार्य सन्तोष से नीतिमत्ता बढ़ती है। कार्य सन्तोष के लिये मुख्य बातें हैं—१. शिकायतों का सुना जाना और दूर किया जाना २. सन्तोषजनक भविष्य, ३. कर्मचारियों की योग्यताओं और प्रगति की जांच, ४. रचनात्मक सुझावों का सम्मान, ५. कार्य की मैत्रीपूर्ण समीक्षा, ६. वेतन वृद्धि, ७. अच्छे कार्य की प्रशसा, ८. योग्य-

तानुसार पदोन्नति, ९. कार्य की उचित मात्रा, १०. समान कार्य के लिये समान वेतन, ११. कार्य की समस्याओं में सहायता लेने की स्वतन्त्रता, १२. अनुचित डाट डपट से मुक्ति, १३. दैनिक कार्य घण्टों का सन्तोषजनक होना, १४. अवकाश की सुविधा।

अभ्यास के लिए प्रश्न

प्रश्न १. कर्मचारियों के अच्छे मनोबल के लिए क्या प्रमुख मनोवैज्ञानिक तत्व हैं?

What psychologicial factors are basic to good morale among workers? (Agra 1964)

प्रश्न २. कर्मचारियों का मनोबल क्या है? उसको कैसे मापा जा सकता है? उद्योग में मौतिमत्ता को निर्धारित करने वाले कारक बतलाइये।

What is workers morale? How it is measured? State the determinants of morale in Industry (Karnatak 1966, 1961)

प्रश्न ३ संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—कार्य संतोष।

Write short on—Job Satisfaction. (Karnatak 1968)

१४

उद्योग में थकान

(Fatigue in Industry)

थकान से तात्पर्य शरीर की काम करने की शक्ति का घट जाना है। थकान की दशा में व्यक्ति काम नहीं कर करता या उसमे कम काम होता है। थके हुये आदमी की चेष्टायें मन्द पड़ जाती हैं। इसलिये थकान की परिभाषा करते हुए औफनर ने लिखा है, "थकान हमारे जीव की ठीक तरह काम करने की घटी हुई सामर्थ्य के साथ मे एक अनुभूति भी होती है जो कि थकान की अनुभूति कहलाती है।"[1] इस प्रकार थकान की पहचान केवल काम करने की शक्ति का घटना मात्र ही नहीं है बल्कि उसके साथ-साथ थकान की अनुभूति भी है। इसी को स्पष्ट करते हुए नौर्मन मायर ने थकान की परिभाषा करने मे दो तत्वो की ओर ध्यान दिलाया है, एक तो थकान के परिणामस्वरूप कार्योत्पादन मे कमी और दूसरे थकान की अनुभूति। यह आवश्यक नही है कि थकान की अनुभूति काम करने के बाद ही हो। *कुछ लोग बिना काम किये भी थकान की अनुभूति करते हैं किन्तु अनुभूति के उपस्थित* रहते थाकन की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती है। उत्पादन की मात्रा मे कमी तो थकान का परिणाम है, उसकी कसौटी नही है। वास्तव मे यह थकान की शारीरिक दशा है जबकि दूसरी ओर थकान की अनुभूति थकान का मानसिक पहलू है।

थकान के प्रकार

(Kinds of Fatigue)

थकान के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं:—

(१) शारीरिक थकान—शारीरिक थकान मे, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, थकान के शारीरिक प्रभाव दिखलाई पड़ते हैं। इसमे शारीरिक सामर्थ्य कम हो जाती है और शारीरिक सामजस्य नही रहता। माँस पेशियों और स्नायु तन्त्र मे दुग्धाम्ल (Lactic Acid) नामक विषैला तत्व उत्पन्न होता है जिसके अत्यधिक बढ जाने से सम्पूर्ण शरीर मे शिथिलता फैल जाती है। जब यह शरीर के किसी विशेष भाग में होता है तो उसी भाग मे थकान मालूम पड़ती है किन्तु यह थकान

1. "Fatigue is the reduced capacity of our organism to work properly, that capacity is accompanied with some feeling also which is know as feeling of fatigue." —*Offner*

बढने के साथ रक्त के दौरान के द्वारा यह सम्पूर्ण शरीर मे फैल जाती है। दुग्धाम्ल के अलावा थकान की दशा मे शरीर मे अमोनिया और कार्बन-डाइ-आक्साइड भी उत्पन्न होती है। इनके जहरीले प्रभाव से शरीर मे रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न होते है जिससे शक्तिदायक पदार्थ कम हो जाते हैं और जहरीले पदार्थ बढ जाते हैं। शारीरिक थकान की दशा की अनेक मनोवैज्ञानिको ने जाँच की है। इस सम्बन्ध मे मिलर, हेल्महोल्ट्ज और वुण्ट के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। मिलर ने थकान की दशा मे तन्तुओ की दशा के विषय मे खोज की। उसके बाद हेल्महोल्ट्ज ने संवेदन तन्तु और क्रिया तन्तु की गति का अध्ययन करके यह पता लगाया कि थकान की दशा मे किसी वस्तु के अनुभव के ज्ञानेन्द्रिय से मस्तिष्क पर पहुचने और स्नायुओ की प्रतिक्रिया होने मे सामान्य दशा से अधिक समय लगता है। हेल्महोल्ट्ज ने मांस पेशियो की सिकुडन को मापने के लिये म्योग्राफ नामक यन्त्र बनाया जिसको १८५८ मे वुण्ट ने अपने अध्ययन में प्रयोग किया। आजकल अर्गोग्राफ की सहायता से शारीरिक थकान मापी जाती है। इसके माप का एक अन्य यन्त्र ह्यूगो क्रोनेकर है।

(२) मानसिक थकान—थकान शारीरिक ही नही होती। कभी-कभी शारीरिक काम न करने पर भी थकान दिखलाई पडती है। यह मानसिक थकान है। अत्यधिक शारीरिक थकान से ही मानसिक थकान बढती है और उसके लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। मानसिक थकान के लक्षण परिश्रान्ति, कार्य करने की अनिच्छा, संवेगात्मक मनस्थिति, ध्यानाभाव और कार्य मे अरुचि तथा मन्द गति तथा विश्राम की इच्छा इत्यादि हैं। कभी कभी मानसिक थकान होते हुए भी कार्योत्पादन में विशेष कमी नही आती। परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। मानसिक थकान का एक उदाहरण ऊब या बोरियत है। इसमे कभी-कभी शक्ति के भली प्रकार न निकल पाने से भी थकान महसूस होती है। मानसिक थकान मे एक महत्वपूर्ण कारण प्रेरणा का अभाव और अनुकूल अभिवृत्ति न होना है। इससे शारीरिक थकान न होते हुए भी व्यक्ति काम से ऊब जाता है। प्रतिकूल अभिवृत्ति होने पर और प्रेरणा के अभाव मे काम की परिस्थितियाँ अच्छी होने पर भी लोग थकान की शिकायत करते हैं।

शारीरिक और मानसिक थकान की उपरोक्त व्याख्या से उनमे भेद भी स्पष्ट होता है। जब कि शारीरिक थकान माँस पेशियों की दशा, रासायनिक परिवर्तन, स्नायु सम्बन्धी थकान, रक्त रसायन मे परिवर्तन और मानसिक दशा मे परिवर्तन आदि से जानी जाती है, मानसिक थकान प्रेरणा के अभाव, प्रतिकूल अभिवृत्ति और सबसे अधिक थकान की अनुभूति से पता लगायी जाती है। जबकि शारीरिक थकान दूर करने का उपाय शारीरिक विश्राम है अथवा पोषक भोजन लेना है, मानसिक थकान विश्राम या खाने से दूर नही होती, उसके लिये प्रेरणा उत्पन्न करने वाले और अनुकूल अभिवृत्ति उत्पन्न करने वाले तत्वों की आवश्यकता है। शारीरिक और मानसिक थकान में उपरोक्त अन्तर से यह नही समझना चाहिये कि ये अलग हैं। वास्तव मे ये घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि वह

थका हुआ है तो उसमें न केवल शारीरिक थकान बल्कि मानसिक थकान भी होती है कभी-कभी तो तीव्र प्रेरणा के कारण मानसिक थकान न होने से शारीरिक थकान भी काफी समय तक नहीं होती। थकान में शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार के लक्षण उपस्थित रहते हैं। वाटसन के अनुसार वाक पेशी के सकोचन से मानसिक थकान होती है। इसी प्रकार मस्तिष्क के उच्च क्षेत्रों में उपस्थित नाडी कोषो के क्षतिग्रस्त हो जाने से भी मानसिक थकान हो जाती है। शारीरिक थकान की स्थिति में मानसिक कार्य और अत्यधिक मानसिक थकान की स्थिति में शारीरिक कार्य अच्छी तरह नहीं किये जा सकते। इसलिए थकान की परिभाषा करने में उसे केवल शारीरिक या केवल मानसिक स्थिति न कहकर एक ऐसी मनोशारीरिक दशा कहा जाना चाहिए जिससे मनुष्य की मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार की कार्य क्षमता घटती है। सच तो यह है कि थकान के शारीरिक और मानसिक पहलुओ को केवल मौखिक दृष्टि से ही अलग किया जा सकता है जब कि वास्तव में वे एक दूसरे से स्वतन्त्र नहीं हैं।

(३) *स्नायु सम्बन्धी थकान*—*मनुष्य का अचेतन मन बड़ा क्रियाशील है परन्तु* उसके काम करने से भी शक्ति का व्यय होता ही है। इससे गिरावट भी महसूस होती है। मानसिक सघर्ष की अवस्था में अचेतन के अत्यधिक थक जाने से भी स्नायु सम्बन्धी थकान होती है।

(४) **ऊब या बोरियत**—ऊब या बोरियत और थकान मे अन्तर है। थकान मे शक्ति व्यय हो जाने से थकावट लगती है। ऊब में शक्ति के भली प्रकार निकल न सकने से हमें थकान महसूस होती है। थकान के कारणों के विषय में भी अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अनुसन्धान किये हैं। यूं तो थकान के कारण अनेक हैं और बहुत से लोगों को काम न होने के कारण भी थकान रहती है परन्तु जहाँ तक कर्मचारी या श्रमिक की थकान का प्रश्न है उसका मुख्य कारण गलत तरीके से अथवा अधिक देर तक बिना विश्राम किए काम करना है। हॉलिंगवर्थ (Hollingworth) ने बिना विश्राम किए काम करने को थकान का मुख्य कारण ठहराया है। लगातार काम करने से मनुष्य का शरीर और मन दोनो थक जाते हैं। परन्तु लगातार काम और अधिक देर तक काम को ही थकान का एकमात्र कारण नहीं माना जा सकता। थकान का एक कारण ऊब या बोरियत हो सकती है; जैसा कि *पीछे बतलाया जा चुका है इस प्रकार की थकान का कारण अरुचि, प्रेरणा का* अभाव, मनोरंजन का अभाव, मानसिक अस्वस्थता अथवा शारीरिक रोग आदि भी *हो सकते हैं। उद्योग मे थकान के कारणों में महत्वपूर्ण कारण हैं—अधिक कार्य,* लगातार कार्य, बिना विश्राम किये कार्य तथा गलत तरीके से कार्य और आवश्यक प्रेरणाओं का अभाव।

थकान की कसौटियां

थकान का होना किन-किन लक्षणों से पहचाना जाता है अर्थात् थकान की

कसौटी क्या है, यह समझाने के लिए थकान के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टि रखना आवश्यक है। चूंकि थकान एक मनो-शारीरिक घटना है इसलिए उसकी कसौटियाँ मानसिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार की होती हैं। संक्षेप में थकान की मुख्य कसौटियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) थकान की अनुभूति—थकान की सबसे बड़ी पहचान यह है कि व्यक्ति उसे अनुभव करता है भले ही वह शारीरिक रूप से थका हुआ न हो। थकान की अनुभूति में काम करने की प्रेरणा कम हो जाती है और आराम करने की इच्छा बढ़ जाती है। इसमें साधारणतया काम की मात्रा में भी कमी आती है यद्यपि ऐसा होना आवश्यक नहीं है। थकान की अनुभूति में कार्य के प्रति अनुभूति भी बदल जाती है और साधारणतया व्यक्ति कोई काम नहीं करना चाहता।

(२) पेशीगत दशा—थकान की दशा में माँस पेशियों में फैलने और सिकुड़ने की शक्ति नहीं रह जाती। अस्तु, शारीरिक रूप से थकान एक पेशीगत दशा है। पेशी के सिकुड़ने और फैलने में कठिनाई थकान की कसौटी है।

(३) रासायनिक परिवर्तन—काम करने से क्रमशः शरीर में दुग्धाम्ल तथा अन्य विषैले पदार्थ बढ़ने लगते हैं। स्वस्थ शरीर में रक्त में आक्सीजन का संचार ठीक प्रकार से होता रहता है जिससे विषैले पदार्थ शरीर से बाहर निकलते रहते हैं। पेशियों के थक जाने से यह कार्य भली प्रकार नहीं हो पाता। शरीर में ग्लाईकोजन नाम के पदार्थ की कमी हो जाती है और जहरीले पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं। इस प्रकार शरीर में रासायनिक परिवर्तन होते हैं। इन रासायनिक परिवर्तनों से भी थकान को पहचाना जा सकता है।

(४) स्नायविक शिथिलता—मानसिक थकान की एक कसौटी स्नायविक शिथिलता है। कभी-कभी यह पेशीगत थकान का भी परिणाम होती है किन्तु इसके अन्य कारण भी हो सकते हैं। स्नायविक शिथिलता में स्नायुओं की प्रतिक्रिया करने की शक्ति बहुत कम हो जाती है जिससे व्यक्ति ठीक प्रकार से काम नहीं कर सकता। अनेक प्रकार के प्रयोगों से यह पता चला है कि थकान की स्थिति में स्नायु और पेशी ठीक प्रकार से प्रतिक्रिया नहीं करते और उनमें उत्तेजित होने की शक्ति नहीं रहती। इस शिथिलता से ज्ञानेन्द्रियों की प्रतिक्रिया में भी कमी आ जाती है। ऐसा विशेषतया गन्ध के प्रति प्रतिक्रिया में दिखलाई पड़ता है। थकान से देखने, सुनने, छूने तथा अन्य संवेदनाओं की शक्ति में भी कमी आ जाती है।

(५) रक्त रसायन में परिवर्तन—थकान के लक्षण थके हुये जीव के रक्त में पाए जाते हैं। यदि थके हुए व्यक्ति के शरीर का कुछ रक्त दूसरे जीव के शरीर में पहुँचा दिया जाए तो उसमें भी थकान के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। यही बात पेशियों के बारे में देखी जाती है। जहाँ रक्त प्रवाह से शरीर में विषैले पदार्थ शरीर से बाहर निकलते हैं वहाँ रक्त प्रवाह थकान को सम्पूर्ण शरीर में बाँट देता है।

इसीलिये शरीर के किसी एक अंग पर विशेष जोर पड़ने पर भी क्रमशः सम्पूर्ण शरीर में थकान मालूम पड़ती है। किसी एक भाग के अत्यधिक कार्य करने से सबसे पहले उस क्षेत्र में थकान के लक्षण बढ़ते हैं और क्रमशः रक्त प्रवाह के माध्यम से ये लक्षण समस्त शरीर में फैल जाते हैं।

(६) **मस्तिष्क की दशा में परिवर्तन**—थकान की एक कसौटी मस्तिष्क की दशा में परिवर्तन है। थकान होने से मानसिक शक्तियों का ह्रास होता है और व्यक्ति की रुचि कम हो जाती है। वह किसी वस्तु पर अधिक समय तक ध्यान नहीं लगा पाता और काम से ऊबने लगता है। थकान के मानसिक दशा पर इस प्रभाव के कारण ही उसे शारीरिक दशा के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक स्थिति भी माना जाता है।

(७) **दुर्घटनाओं की संख्या में वृद्धि**—औद्योगिक क्षेत्र में दुर्घटनाओं का अध्ययन करने से यह ज्ञात हुआ है कि वे प्रातःकाल और तीसरे पहर अधिक संख्या में घटित होती हैं। योरूप में जर्मनी और इंगलैंड तथा अमरीका में औद्योगिक दुर्घटनाओं के अध्ययन करने से इस तथ्य की समान रूप से पुष्टि हुई है। दूसरी ओर थकान के अध्ययन में यह देखा गया है कि थकान भी प्रातःकाल और तीसरे पहर सबसे अधिक होती है। अस्तु, दुर्घटनाओं की संख्या से औद्योगिक थकान का अनुमान लगाया जा सकता है। इसीलिए आजकल प्रातःकाल और तीसरे पहर विश्राम कालों का आयोजन किया जाता है। दुर्घटनाओं का यह प्रतिमान विविध प्रकार के उद्योगों में दिखलाई पड़ता है। जहाँ तक प्रातःकाल दुर्घटनाओं का प्रश्न है यह सब कहीं देखी जाती है। तीसरे पहर के प्रतिमान में विभिन्न उद्योगों में अन्तर पाया जाता है। प्रातःकाल की तुलना में तीसरे पहर दुर्घटनाओं की गति अधिक होने पर भी कुल मिलाकर संख्या में अन्तर नहीं पड़ता। रात्रि की पाली और दिन की पाली में भी दुर्घटनाओं की संख्या में अन्तर देखा जाता है। इस प्रकार दुर्घटनाओं का थकान से स्पष्ट सम्बन्ध है।

यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिये कि दुर्घटनाओं के थकान से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के बावजूद थकान दुर्घटना का एकमात्र कारण नहीं है और इसलिये दुर्घटनायें बढ़ने को थकान बढ़ने की कसौटी नहीं माना जा सकता। थकान के अतिरिक्त अन्य अनेक कारक दुर्घटनाओं में अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए पुरुषों की तुलना में स्त्रियों में दुर्घटनायें होने का एक बड़ा कारण उनका शीघ्र थक जाना है, यह ठीक है कि थकान की स्थिति में व्यक्ति बेचैन हो जाता है हाथ पैरों को ठीक से नहीं चला पाता, उसका ध्यान बँट जाता है और कभी-कभी तो वह काम पर सो जाता है तथा इन सभी कारकों से दुर्घटनायें होती हैं फिर भी केवल थकान को दुर्घटना का कारण नहीं माना जा सकता।

(८) **उत्पादन में कमी**—साधारणतया थकान की परिभाषा करने में उसे उत्पादन में कमी से परिभाषित किया जाता है। जैसा कि पीछे दुर्घटनाओं के विषय

में बतलाया गया है, प्रातःकाल और तीसरे पहर दोनों ही समय-समय गुजरने के साथ साथ उत्पादन का वक्र गिरता जाता है। इसका कारण यह माना जाता है कि थकान बढ़ती जाती है और इसलिये कार्य का वक्र गिरता जाता है। प्रातःकाल में पहले घण्टे में काम तेजी से आगे बढ़ता है क्योंकि यह गर्मी आने (Warming up) का काल है। गर्मी आना अनेक कारणों से हो सकता है जो शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के होते हैं। किस काम में कितनी देर में गर्मी आ जायगी यह जहाँ काम पर निर्भर है वहाँ व्यक्तिगत विभिन्नता पर भी निर्भर है। काम करने के स्थान पर व्यावसायिक परिवेश और कर्मचारी का अच्छा स्वास्थ्य, ये दोनों ही कारक काम की गति के लिए उत्तरदायी हैं। दूसरे और तीसरे घण्टे में साधारणतया उत्पादन सर्वोच्च सीमा पर होता है। तीसरे घण्टे के बाद उत्पादन गिरने लगता है जिसका मुख्य कारण औद्योगिक थकान मानी जाती है। इसीलिये इसके बाद विश्राम काल की व्यवस्था की जाती है। तीसरे पहर काम शुरू होने पर गर्मी आने की घटना लगभग नहीं देखी जाती। काम तेजी से शुरू होता है किन्तु क्रमशः उसकी रफ्तार घटती जाती है और काम के अन्तिम घण्टे में उत्पादन की मात्रा सबसे कम होती है। इसके कारण थकान के अलावा अन्य अनेक भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए अनेक कर्मचारी छुट्टी होने के काफी समय पहले से औजार सम्भालने लगते हैं और काम बन्द करने लगते हैं। इसलिए भी अन्त के घण्टे में उत्पादन बहुत कम होता है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रातःकाल दो घण्टे के बाद और तीसरे पहर उत्पादन घटने को थकान की कसौटी माना जा सकता है।

उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त शारीरिक और मानसिक थकान के सभी लक्षणों को थकान की कसौटी माना जा सकता है। उदाहरण के लिये श्वास, प्रश्वास, रक्त संचार और रक्त चाप में परिवर्तन, अनिच्छा, ध्यानाभाव, मन्दता इत्यादि शारीरिक और मानसिक लक्षणों से थकान की पहचान की जा सकती है। आजकल थकान को मापने के लिये अनेक वैज्ञानिक यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है।

थकान के विभिन्न पहलू

थकान क्या है, इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये थकान के स्वरूप पर वस्तुगत, दैहिक और मानसिक पहलू से विचार करना होगा।

(१) वस्तुगत पहलू—वस्तुगत पहलू में थकान की व्याख्या कार्य करने की क्षमता में कमी के रूप में की जा सकती है। किसी भी कार्य को बहुत समय तक लगातार करते जाने से ऐसा होता है। यदि थोड़ा-थोड़ा काम करके पर्याप्त विश्राम ले लिया जाय तो थकान की नौबत नहीं आती। प्रयोगशालाओं में शारीरिक कार्य-क्षमता में कमी का मापन अर्गोग्राफ या हस्तशक्तिमापक से और मानसिक क्षमता में कमी का मापन अक्षर निराकरण-पत्र अथवा गुणनपत्र की सहायता से किया जाता है। कार्य-क्षमता में कमी से केवल कार्योत्पादन के परिणाम में ही कमी नहीं

होती बल्कि उसका गुणात्मक स्तर भी बढ़ता जाता है क्योंकि गलतियों की संख्या बढ़ती जाती है।

(२) दैहिक पहलू—थकान का दैहिक पहलू उसके शारीरिक प्रभावों से सम्बन्धित है। इस सम्बन्ध में अनेक प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि थकान की स्थिति में शरीर में शक्तिदायी पदार्थ कम हो जाते हैं और विषाक्त पदार्थ बढ़ जाते हैं। शारीरिक दृष्टि से थकान में श्वास, प्रश्वास, रक्त संचार और रक्त चाप बढ़ते देखे जाते हैं। इनके अलावा भी शरीर में अन्य रासायनिक परिवर्तन होते हैं।

(३) मानसिक पहलू—मानसिक पहलू में थकान के लक्षण परिश्रान्ति (Exhaustion), कार्य करने की अनिच्छा, संवेगात्मक झुकाव, ध्यानाभाव तथा मन्दता आदि हैं जिनसे कार्य में अरुचि और विश्राम करने की इच्छा दिखलाई पड़ती है।

थकान के उपरोक्त किसी भी एक पहलू के आधार पर उसकी सर्वांग परिभाषा नहीं बनाई जा सकती। वास्तव में वस्तुगत पहलू थकान की सही पहचान नहीं है। बहुधा मानसिक थकान रहने पर भी कुछ लोगों के कार्योत्पादन में मात्रा अथवा गुण की दृष्टि से कोई कमी नहीं आती। अस्तु, थकान होने पर भी न तो गलतियाँ बढ़ती हैं न काम की मात्रा घटती है। पोफेनबर्जर ने कालिज के १२ विद्यार्थियों पर वाक्य रचना सम्बन्धी प्रयोगों से यह दिखलाया कि थकावट की अनुभूति बढ़ती जाने पर भी वे साढ़े पाँच घण्टे तक निरन्तर एक सी गति से काम करते रहे। दूसरी ओर रीवर्स के प्रयोगों में थकान की अनुभूति न होने पर भी कार्योत्पादन में ह्रास दिखाई पड़ा। अस्तु, थकान की वस्तुगत व्याख्या अनुपयुक्त है।

थकान के मानसिक और शारीरिक पहलुओं के अलग-अलग वर्णन से यह नहीं समझना चाहिए कि ये एक दूसरे से सर्वथा पृथक हैं। दूसरे शब्दों में, यह धारणा गलत है कि थकान केवल शारीरिक या केवल मानसिक हो सकती है। वास्तव में सभी प्रकार की थकान में शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के लक्षण उपस्थित रहते हैं। यह तथ्य प्रयोगों से भी सिद्ध हुआ है। वाटसन के अनुसार वाक पेशी (Vocal Muscle) के संकोचन से मानसिक थकान होती है। इसी प्रकार मस्तिष्क के उच्च क्षेत्रों में उपस्थित नाड़ी कोषों के क्षतिग्रस्त हो जाने से मानसिक थकान होती है। यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि शारीरिक थकान की स्थिति में मानसिक कार्य और अत्यधिक मानसिक थकान की दशा में शारीरिक कार्य कुशलतापूर्वक नहीं किये जा सकते।

अस्तु संक्षेप में, थकान की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि **थकान एक मनोशारीरिक दशा है जिससे मनुष्य की मानसिक और शारीरिक कार्यक्षमता में ह्रास होता है।** इस परिभाषा से स्पष्ट है कि थकान के शारीरिक और मानसिक पहलुओं को केवल मौखिक दृष्टि से अलग किया जा सकता है जबकि यथार्थ में ये

एक दूसरे से स्वतन्त्र नही हैं। थकान दूर करने के उपायों के विषय में यह याद रखना आवश्यक है कि विश्रामकाल तथा कार्य करने की उपयुक्त दशाओं की व्यवस्था आदि से केवल आवश्यक थकान दूर की जा सकती है। दूसरी ओर प्रत्येक प्रकार के कार्य मे कुछ न कुछ थकान आवश्यक और अनिवार्य रूप से आती है। इसको पूरी तरह दूर नही किया जा सकता। दूसरे शब्दो मे, यह सम्भव नही है कि ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी जाये कि थकान आये ही नही। हाँ, उसमे कमी अवश्य की जा सकती है।

थकान का मापन
(Measurement of Fatigue)

थकान के मापन के विषय मे यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इसको तभी निश्चित माना जा सकता है जबकि अन्य कारको के प्रभाव का भी पूरी तरह से पता हो। उदाहरण के लिये कार्योत्पादन वक्र का अपकर्ष थकान का अनिवार्य लक्षण नही है क्योंकि यह मनोवृत्ति, उत्तेज तथा रुचि आदि से परिवर्तन के कारण भी हो सकता है। हमारे पास अभी तक यह जानने का कोई साधन नही है कि कार्योत्पादन से ह्रास वस्तुतः थकान के कारण है या इनमे से किसी कारक के कारण। इसलिये म्यूसिओ (Muscio) नाम का मनोवैज्ञानिक थकान का मापन अवैज्ञानिक मानता है। धर्स (Dhers) के शब्दो मे "Fatigue can neither be scientifically isolated nor measured." अर्थात् थकान न तो वैज्ञानिक रूप से पृथक् की जा सकती है और न नापी जा सकती है। परन्तु फिर भी थकान को अनेक विधियो से न्यूनाधिक सही नापा गया है और ये विधियाँ कामचलाऊ सिद्ध हुई है। मोसो, ग्रैफ्, क्रेपलिन आदि मनोवैज्ञानिको ने थकान के माप के द्वारा अनेक महत्वपूर्ण तथ्यो का पता लगाया है। अस्तु, यहाँ पर थकान के मापन की प्रमुख विधियो का सक्षिप्त उल्लेख प्रासगिक होगा। सामान्य रूप से थकान के पहलुओ के समान उसके मापन की विधियो को भी तीन वर्गो मे बाँटा जा सकता है। (१) वस्तुगत अथवा कर्मशालाभिलेख विधि, (२) शारीरिक विधियाँ, (३) मानसिक विधियाँ।

(१) **वस्तुगत अथवा कर्मशालाभिलेख विधियाँ**—इनमे मुख्यतया वे विधियाँ आती हैं जिनमे कार्योत्पादन मे मात्रा और गुण की दृष्टि से ह्रास का मापन किया जाता है। इनमे अक्षर निराकरण, गुणा, योग आदि के परीक्षण रखे जा सकते है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इन परीक्षणो से निश्चित रूप से यह ज्ञात नही होता कि थकान है अथवा नही क्योंकि कार्योत्पादन मे कमी का कारण थकान न न होकर उत्प्रेरक, उत्तेज और उत्साह की कमी भी हो सकती है। दूसरी ओर थकान रहते हुए भी अभ्यास के कारण कार्योत्पादन की गति बनी रह सकती है।

(२) **शारीरिक विधियाँ**—इनमे थकान के शारीरिक लक्षणो के माप की विधियाँ आती हैं। इनमे नाड़ीगति, रक्त चाप गति, श्वास प्रश्वास गति के माप तथा मूत्र, लार आदि के रासायनिक विश्लेषण की विधियाँ आती हैं। अर्गोग्राफ, हस्तशक्तिमापक तथा मार्टिन तन्यतुला (Martin Spring Balance) आदि यन्त्रक भी इसी

र्गों में रखे जा सकते है। इनके परिणाम भी थकान के कारण न होकर अन्य मानसिक कारणों से हो सकते है।



चित्र सं० १७—थकान के रूप में कार्य की कीमत आंकने का यन्त्र

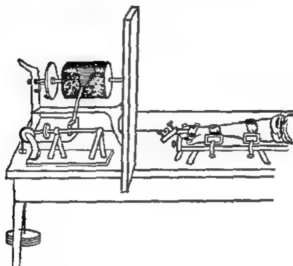
(३) मानसिक विधियां—इनमें थकान की स्थिति के मानसिक लक्षणों के माप की विधियां आती हैं। ये लक्षण है ध्यान, स्मृति, कल्पना, बौद्धिक निर्णय, संवेदनात्मक विवेचन और तर्क शक्ति इत्यादि का ह्रास। परन्तु इसके कारण थकान के अलावा अन्य भी हो सकते है।

थकान के माप की विभिन्न विधियों के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उनके परिणाम सदैव विश्वसनीय नहीं माने जा सकते। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, उनकी वैधता के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि सामान्य स्थिति में थकान के ये माप काम चलाऊ अवश्य सिद्ध हुए हैं। भविष्य में सम्भव है कि इनसे भी अधिक निश्चित माप निकाले जा सकें।

थकान के अर्गोग्राफीय अध्ययन

आजकल थकान को मापने के लिये अर्गोग्राफ का प्रयोग किया जाता है।

इसका प्रयोग सबसे पहले इटली के एक वैज्ञानिक एन्जेलो मौसो (Angelo Mosso) ने किया। एन्जेलो मौसो ने थकान पर एक प्रसिद्ध ग्रन्थ Fatigue लिखा है। अर्गोग्राफ की सहायता से उसने थकान और शरीर के किसी विशिष्ट अंग के कार्य में सम्बन्ध का अध्ययन किया। उसने विशिष्ट पेशी (Muscle) के कार्य का अध्ययन किया और उसमें थकान उत्पन्न की। इस प्रकार उकताहट और ऊब इत्यादि जटिल प्रक्रियाओं को उत्पन्न किये बिना ही उसने सरल रूप में थकान का अध्ययन करने का प्रयास किया।



चित्र सं० १८—मौसो अर्गोग्राफ

अर्गोग्राफ एक सरल यन्त्र होता है। इसमें हाथ को एक फ्रेम से इस तरह लगा दिया जाता है कि वह आराम की स्थिति में रहता है किन्तु गति नहीं कर सकता। अब हाथ की सभी उंगलियां बाँध दी जाती हैं जिससे वे कार्य न कर सकें केवल बीच की उंगली स्वतन्त्र छोड़ दी जाती है। अब इस बीच की उंगली से एक डोरी बाँध दी जाती है जिसके दूसरे सिरे पर एक बोझ होता है। स्वतन्त्र उंगली से इस बोझ को खींचा जाता है। अर्गोग्राफ में यह डोरी एक चक्कर के ऊपर से होती हुई मेज के सिरे पर लगी होती है और इसमें एक वजन बंधा हुआ होता है। मौसो के इस यन्त्र के आधुनिक रूप में उंगली से खींचने का बाध न लेते हुए पेशी के सिकुड़ने और फैलने का आयोजन किया जाता है। मैट्रोनोम के द्वारा निर्धारित विशिष्ट प्रतिमानों के अनुसार उंगली के द्वारा अनेक प्रकार के कार्य किये जाते हैं और उनका अध्ययन किया जाता है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात पेशी के सिकुड़ने की बारम्बारता है। इसलिये अर्गोग्राफीय अध्ययनों में इसी का नियन्त्रण किया जाता है। थकान का ग्राफ बनाने के लिये गतिशील डोरी के साथ ऐसा प्रबन्ध कर दिया जाता है कि प्रत्येक

सिकुडने के साथ-साथ एक सुई घूमते हुये ढोल पर चलती है जिससे सीधी रेखाओं मे सिकुडनों की बारम्बारता को चिन्हित किया जाता है।

अर्गोग्राफीय अध्ययनों द्वारा प्राप्त प्रमुख निष्कर्ष

अर्गोग्राफ की सहायता से अनेक ऐसे अध्ययन किये गये जिनसे उद्योगों के लिये विशेष रूप से लाभदायक अनेक निष्कर्ष प्राप्त हुए। मौसो ने थकान के बारे में निम्नलिखित नौ निष्कर्ष अर्गोग्राफीय अध्ययनों द्वारा प्राप्त किये।

(१) यदि किसी बोझ को खीचने मे पेशी की सिकुडन प्रत्येक दो सेकिण्ड में एक बार होती है तो सिकुडनो की गति क्रमश: घटती जाती है जब तक कि अन्त में और सिकुडन सम्भव नही होती। ६ किलोग्राम के बोझ के साथ यह स्थिति लगभग एक मिनट में आ जाती है। यदि बोझ को कम कर दिया जाये तो पेशी का सिकुडना फिर से चालू किया जा सकता है किन्तु इस बोझ के लिये भी थकान शीघ्र ही हो जायेगी।

(२) यदि एक ही वजन के लिये पेशी का सिकुडना लम्बे व्यवधान जैसे कि १० सैकिंड के बाद एक होता है तो थकान का कोई प्रमाण नही मिलता। इस प्रकार की परिस्थितियो मे ६ किलोग्राम के वजन को लगभग अनिश्चित बार उठाया जा सकता है।

(३) यदि कार्य का माप उठाये गये वजन की मात्रा से किया जाता हो तो अंगुली से उठाये गये कार्य की मात्रा भारी वजनो की तुलना में हल्के वजनो मे अधिक होती है। इस प्रकार ६ किलोग्राम के वजन की तुलना मे ३ किलोग्राम का वजन निश्चय ही दुगने से अधिक बार उठाया जा सकता है।

(४) दिये हुये बोझ को तीव्र गति बार-बार उठाने से एक बार उठाने से अधिक थकान उत्पन्न होती है। दूसरी ओर यदि उसी वजन को मन्द गति से उठाया जाए तो थकान कम होती है।

(५) कार्य का व्यवधान बढने के साथ-साथ खोई शक्ति को फिर से प्राप्त करने का समय भी बढता जाता है। उदाहरण के लिये यदि ६० सिकुडनो के लिये फिर से शक्ति प्राप्त करने का समय दो घण्टा है तो ३० सिकुडनो के लिए खोई हुयी शक्ति फिर से प्राप्त करने का समय ३० मिनट हो सकता है। जब ऐसी स्थिति आ जाए कि उगली बिल्कुल न हिलाई जा सकती हो तो वजन उठाने के प्रयासो से जो थकान उत्पन्न होती है उसे पहले के प्रयासो के समान व्यवधान मे दूर नही किया जा सकता अर्थात् इस थकान को दूर करने के लिये कही अधिक समय की आवश्यकता होती है अर्थात् जैसे-जैसे थकान एकत्रित होती जाती है वैसे-वैसे पेशी सिकोडने के प्रत्येक प्रयास मे थकान का प्रभाव भी बढता जाता है।

(६) यदि उगली के अतिरिक्त शरीर की अन्य पेशियां भी काम कर रही हैं तो उंगली के काम करने की योग्यता कम हो जाती है। अर्गोग्राफ के प्रयोगो के पहले कठोर व्यायाम करने के बाद बोझ उठाने में पूर्ण अशक्तता सामान्य से कही अधिक

जल्दी आ जाती है। इस प्रकार अर्गोग्राफीय अध्ययनो से यह स्पष्ट होता है कि रक्त के माध्यम से थकान शरीर के उन भागो मे भी पहुंच जाती है जिनसे काम नही लिया जा रहा है।

(७) निद्रा के अभाव, मानसिक कारक, भूख और पेशी मे रक्त की कमी से पेशी की कार्य करने की शक्ति कम हो जाती है। वास्तव मे कोई भी ऐसी दशा जोकि पोषण मे बाधक या उसे कम करने वाली होती है थकान की सम्भावना को बढाती है।

(८) पेशी की मालिश करने से, रक्त प्रवाह मे शर्करा की मात्रा बढाने से और भली प्रकार पोषित शरीर तथा अच्छे स्वास्थ्य से स्नायु की काम करने की शक्ति बढ जाती है।

(९) भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे थकान की गति भी भिन्न-भिन्न होती है किन्तु थकान के जो सिद्धान्त ऊपर बतलाये गये है वे वैयक्तिक भिन्नता के बावजूद भी सब कही लागू होते है।

अर्गोग्राफीय अध्ययनो के औद्योगिक उपयोग

मनोवैज्ञानिको ने उपरोक्त अग्रलेखीय निष्कर्षो को उद्योग की परिस्थितियो मे प्रयोग किया। इसमे कुछ लोगो को यह आपेक्ष था कि चूकि प्रयोगशाला का और कारखाने का परिवेश बहुत कुछ भिन्न होता है इसलिए प्रयोगशाला की परिस्थितियो में निकाले गये अग्रलेखीय निष्कर्ष ज्यों के त्यो कारखाने मे लागू नही किए जाने चाहियें। दूसरे, जब कि अर्गोग्राफीय प्रयोगो मे केवल उगली ही थकायी जाती है, कारखानो मे लगभग समस्त शरीर को काम करना पडता है। इसलिए इन दोनो के थकान के नियमो मे अन्तर होना चाहिए। किन्तु अर्गोग्राफीय निष्कर्षो पर यह आक्षेप उचित नहीं पाया गया क्योकि प्रयोगशाला और कारखाने की परिस्थितिया बहुत कुछ भिन्न होते हुए भी पूरी तरह से भिन्न नही होती, उनमे बहुत कुछ समानता भी होती है। अर्गोग्राफीय निष्कर्षो मे से अनेक को उद्योगो की परिस्थितियो मे लागू करने से बडे लाभदायक परिणाम आये है। यहां पर यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि यह ठीक है कि जो अर्गोग्राफीय निष्कर्ष केवल प्रयोगशाला की परिस्थितियो मे प्राप्त किए गये है उनको कारखाने की परिस्थितियो मे परीक्षा किये बगैर अन्तिम रूप से लागू नही किया जा सकता क्योकि कारखाने मे सम्पूर्ण शरीर को कार्य करना पडता है और कारखाने की परिस्थितियो मे काम के बोझ और काम के घण्टो के अतिरिक्त कर्मचारियों की अभिवृत्तियो और प्रेरणाओ का भी उत्पादन पर प्रभाव पडता है। यदि कारखाने मे कर्मचारी मध्यान्तर (Interval) चाहते हैं तो इसीलिए नही कि उन्हे आराम की जरूरत है बल्कि इसलिये भी कि वे कॉफी पीना चाहते है या मिल बैठकर बातचीत करना चाहते हैं। कभी-कभी तो वे काम के लिए आते ही या लन्च के मध्यान्तर के ही थोडी देर बाद कॉफी पीने के लिए छुट्टी मागने लगते हैं। कभी-कभी जब लच के मध्यान्तर में बाजार जाया जाता है या दूसरे काम निबटाये जाते हैं तो जो

समय आराम के लिये दिया जाता है उसमे लन्च किया जाता है जिससे आराम का प्रयोजन सिद्ध नही होता।

अर्गोग्राफीय निष्कर्षो पर कारखानो मे अमल करने मे एक अन्य कठिनाई औद्योगिक सघो की प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न होती है। यह देखा जाता है कि जब कभी एक बार कर्मचारियो का काम का समय कम कर दिया जाता है और आराम का समय बढा दिया जाता है तो फिर वे काम का समय बढाने और आराम का समय कम करने के लिये राजी नही होते। अनेक कम्पनियां इसीलिये आराम का समय नही बढाती क्योकि चाहे कितना भी समय बढा दिया जाये आराम का समय बढाने और काम के घण्टे कम करने की माग कभी भी समाप्त नही होती। यदि किसी कम्पनी मे काम के घण्टे नौ से घटाकर आठ कर दिये जाते है तो कर्मचारी सात घण्टे काम की माँग उपस्थित करते है और यदि उनकी यह माँग भी मान ली जाय तो वे काम के घण्टो की सीमा ६ तक कर देने की माग रखेंगे। इसीलिए कारखानेदार शुरू मे ही नियन्त्रण करना जरूरी समझते है। इसके अतिरिक्त यह एक सामान्य बात है कि कारखाने के भिन्न-भिन्न कर्मचारियो की वैयक्तिक भिन्नताओ के अनुसार उनको थक जाने मे अलग-अलग समय लगता है और खोयी हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करने मे भी अलग-अलग समय लगता है। ऐसी स्थिति मे कारखाने के सभी कर्मचारियो को निश्चित समय पर आराम के लिए समय देना वैज्ञानिक नही कहा जा सकता। दूसरी ओर यदि व्यक्तिगत भिन्नताओ के अनुसार कुछ लोगो को आराम का समय अधिक और कुछ को कम दिया जाय तो इस भेद-भाव के खिलाफ तुरन्त आवाज उठायी जाती है क्योकि व्यक्तिगत भिन्नताओ के होते हुए भी कोई भी श्रमिक सघ यह मानने को तैयार नही है कि एक ही कारखाने मे समान वेतन पाते हुए लोगो के काम और आराम के घण्टे अलग-अलग हों। इन सब कारणो से उद्योग के क्षेत्र मे अर्गोग्राफीय निष्कर्षों को लागू करने मे कठिनाइया उत्पन्न होती हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि अर्गोग्राफीय अध्ययनो के आधार पर उद्योगो के क्षेत्र मे सुधार नही किये जा सकते। अनेक स्थानो पर कर्मचारियो और मालिको के सहयोग से काम करने की और आराम की परिस्थितियों मे महत्वपूर्ण सुधार किये जा सके है।

अब हम क्रमश यह देखेंगे कि पीछे बताये गये अर्गोग्राफीय निष्कर्षों को उद्योग की परिस्थितियो मे कहाँ तक लागू किया जा सका है।

पहले पाँच अर्गोग्राफीय निष्कर्षो से यह सामान्य बात निकलती है कि यदि पेशी शक्ति की सीमित मात्रा को तेजी से खर्च न करके मन्द गति से प्रयोग किया जाए तो अधिक काम किया जा सकता है। वास्तव मे पेशी की शक्ति के खर्च होने का सिद्धान्त किसी भी अन्य प्रकार की शक्ति के खर्च होने के समान है। उदाहरण के लिये यदि किसी कार को तीव्र गति से चलाया जाए तो मन्दगति से चलाने की तुलना मे उससे अधिक ईंधन खर्च होता है। अस्तु, कम से कम व्यय से अधिक से अधिक दूर जाने के लिये ईन्धन को जलाने की गति मन्द और एक सी रखनी पडती है। इसका एक अन्य उदाहरण खिलाडियो मे देखा जा सकता है। लम्बी दौड लगाने

वाले खिलाडी को अपनी गति पर नियन्त्रण करना सीखना पडता है। यदि वे प्रारम्भ से ही तेजी से दौड़ते है तो वे अपनी शक्ति को शीघ्र खर्च कर डालते है और इसलिये दौड़ पूरी नही कर पाते। लम्बी दौड दौड़ने के लिये क्रमशः मन्द गति से चलना पडता है और यह गति धीरे-धीरे बढायी जाती है तथा दौड के अन्त मे गति सबसे अधिक होती है क्योंकि उसके बाद थक जाने से कोई हानि नही होती किन्तु यदि खिलाडी दौड के पूरा होने से पहले ही थक जाता है तो वह हार जाता है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सामान्य प्रवृत्ति इसके विरुद्ध होती है। अधिकतर जब मनुष्यो मे सामर्थ्य अधिक होती है तो वे तीव्रगति से काम करने का प्रयास करते है जिससे काम अधिक होने पर भी बहुत सी शक्ति व्यर्थ खर्च हो जाती है। यदि किसी को कोई बडा कार्य करना है तो उसे सबसे पहले यह सीखना पड़ेगा कि वह कैसे अपनी शक्ति पर नियन्त्रण करके शक्ति को मन्द गति से क्रमश खर्च करे ताकि कार्य के पूरा होने तक शक्ति बनी रहे क्योंकि यदि आध रास्ते मे ही शक्ति समाप्त हो गयी तो बाकी रास्ता कैसे पूरा किया जायेगा। कार्य की गति को मन्द रूप से चलाने में एक अन्य कठिनाई मानव स्वभाव की इस प्रवृत्ति के कारण होती है कि अधिकतर लोग तभी आराम करते है जबकि उन्हे थकान के कारण बैचेनी होने लगती है जबकि वास्तव मे आराम इस सीमा के आने से पहले किया जाना चाहिए। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, यदि कर्मचारी पूरी तरह थकने से पहले ही बीच-बीच मे आराम करता हुआ थकान को मिटाता चले तो वह अधिक कार्य कर सकता है क्योंकि थकान बढने के साथ-साथ उसे दूर करने का समय भी बढता जाता है। इसलिए यह जरूरी माना जाता है कि कर्मचारियो की शक्ति से पूरा लाभ उठाने के लिये थोडे-थोडे समय काम करने के बाद आराम के लिये मध्यान्तर दिया जाना चाहिये जिससे कि खोयी हुयी शक्ति फिर से प्राप्त की जा सके।

म्यूसिओ (Muscio) ने उपरोक्त अर्गोग्राफीय सिद्धान्त को उद्योग की परिस्थितियों मे एक अन्य उदाहरण से भी सिद्ध किया है। इस उदाहरण मे एक व्यक्ति को तीन भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे अर्गोग्राफ मे ६ किलोग्राम का वजन उठाने का काम करना पडा। पहली स्थिति मे उसने प्रत्येक दो सैकिण्ड में एक बार पेशी सिकोड़ने का काम किया और यह काम तब तक चलता रहा जब तक कि उसकी बोझ उठाने की शक्ति बिल्कुल समाप्त नही हो गयी। अब उसे तब तक आराम करने दिया गया जब तक कि उसने खोई हुई शक्ति पूरी तरह फिर से प्राप्त नही कर ली। इस विधि से काम करने पर वह व्यक्ति तीस बार पेशी सिकोड़ने का काम करने के बाद दो घण्टे के लिए आराम करता था। इस प्रकार दिन के आठ घण्टे मे वह चार बार पेशी सिकोडने की बैठकें कर सका जिनमे से प्रत्येक में तीस बार पेशी सिकोडी गई। इस प्रकार पेशी सिकोडने की कुल घटनाये १२० बार हुयी।

दूसरी परिस्थिति मे इस व्यक्ति को पन्द्रह बार पेशी सिकोडने के पश्चात् आराम दिया गया जिसमे उसने आधे घण्टे मे ही खोयी हुयी शक्ति फिर से प्राप्त कर ली। अब दिन के आठ घण्टे मे यह व्यक्ति १५ बार पेशी सिकोड़ने की १६ बैठकें कर

सका और इस प्रकार पेशी सिकोडने की घटनाए २४० बार हुयी। स्पष्ट है कि पहली परिस्थिति की तुलना मे दूसरी परिस्थिति में आराम के व्यवधान शीघ्र दिये जाने के कारण व्यक्ति को काम की मात्रा दुगनी हो गयी।

तीसरी परिस्थिति मे इस व्यक्ति को प्रत्येक बार स्नायु सिकुडने के पूर्व दस सैकिण्ड का आराम दिया गया। कार्य करने की यह गति इतनी मन्द थी कि इसमे थकान बिल्कुल मालूम नही पडी। अब पेशी सिकोडने के लिये दो सैकिण्ड और दस सैकिण्ड आराम के मिलाकर कुल बारह सैकिण्डो मे स्नायु सिकोड़ने की एक घटना हुयी। इस गति से वह व्यक्ति एक घन्टे मे तीन सौ और दिन के आठ घन्टो मे चौबीस सौ बार पेशी सिकोड सका। कार्य की यह मात्रा पहली प्रकार की परिस्थिति की तुलना मे बीस गुनी थी।

कार्य करने की पहली और दूसरी परिस्थितियो की तुलना करने पर हम यह देखते हैं कि पहली परिस्थिति मे पन्द्रह बार पेशी सिकोडने मे व्यय हुयी शक्ति को फिर से प्राप्त करने मे आधा घण्टा लगता है जो औसतन एक सिकुडन पर दो मिनट है जबकि बाकी की पन्द्रह सिकुडनो मे व्यय हुयी शक्ति को प्राप्त करने मे डेढ घन्टा लगता है जो औसतन एक सिकुडन पर ६ मिनट है। तीसरी परिस्थिति से स्पष्ट है कि पहली सिकुड़न मे व्यय हुयी शक्ति को प्राप्त करने मे केवल दस सैकिण्ड लगते थे। स्पष्ट है कि आराम का समय दूर हटते जाने के साथ-साथ खोयी हुयी शक्ति को फिर से प्राप्त करने का समय बढता जाता है और सबसे अधिक कीमती तो पेशी सिकोडने की वह क्रिया बैठती है जबकि बोझ उठाने मे नितान्त असक्त होते हुये भी कोई व्यक्ति बोझ उठाता है।

कार्य और आराम के लिये अवकाश के विषय मे उपरोक्त प्रयोग को उद्योग की वास्तविक परिस्थितियो मे ज्यो का त्यो लागू नही किया जा सकता क्योकि इस प्रयोग मे विशिष्ट स्नायु से ही काम लिया गया है और ऐसे स्नायु से काम लिया गया है जोकि पूरी तरह थक चुका है। उद्योग की परिस्थितियो मे इन दोनो बातो में से कोई भी बात नही होती क्योकि उसमे न तो कोई एक विशिष्ट स्नायु ही काम करता है और न उसमे इतना अधिक काम लिया जाता है कि वह पूरी तरह से थक जाए। फिर भी उपरोक्त प्रयोग से यह जरूर स्पष्ट होता है कि थकान को कम करने के लिये अवकाश के मध्यान्तर ऐसे व्यवधान से रखे जाने चाहिये कि खोई हुयी शक्ति को शीघ्र ही फिर से प्राप्त किया जा सके। अवकाश के व्यवधान बढाने से यदि किसी उद्योग मे पन्द्रह प्रतिशत उत्पादन भी बढ जाता है तो इसे महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिये। जैसा कि पीछे अर्गोग्राफीय सिद्धान्तो मे बतलाया जा चुका है, काम के छोटे-छोटे टुकडों के बीच मे अवकाश के मध्यान्तर रखने से अधिक लम्बे समय तक बिना थके हुये काम किया जा सकता है। इस तथ्य को गिलब्रेथ (Gilbreth) ने अपने अध्ययनो से भी स्पष्ट किया। उसने गति और काल के विषय मे अध्ययन किये और यह देखा कि बोझ को कम करने से, अवकाश के व्यवधान बढाने से और

काम की गति को सन्तुलित करने से थकान की मात्रा कम की जा सकी। अब कौन से काम में बोझ को कम करने से, किस में आराम के व्यवधान बढाने से और किस काम की गति नियन्त्रित रखने से लाभ हो सकता है यह कार्य की प्रगति पर निर्भर है। उदाहरण के लिये फावडे से काम करने के विषय में एफ० डब्लू० टेलर (**F. W. Taylor**) के अध्ययनों से यह प्रमाणित हुआ कि बडे फावडों से काम करने के स्थान पर छोटे फावडे प्रयोग करने से अधिक काम हुआ। वास्तव में किसी भी प्रकार की वस्तु के लिये कितने बडे आकार का फावडा उपयुक्त होगा यह विभिन्न व्यक्तियों और विभिन्न वस्तुओं के लिये अलग-अलग होगा। उदाहरण के लिए हल्की चीज उठाने के लिये बडा फावडा और भारी चीज उठाने के लिये छोटा फावडा होना चाहिये। फिर भी किसी भी विशिष्ट उद्योग में प्रयोगों से यह निश्चित किया जा सकता है कि औसत कर्मचारी के लिये किस आकार का फावडा सबसे अधिक उपयुक्त है। चूंकि बडे फावडों से थकान शीघ्र आती है इसलिये वे अनुपयुक्त है। छोटे फावडों से थकान तो देर में आ जाती है किन्तु उनसे कम सामग्री ढोयी जाती है और यदि यह सामग्री फावडे के वजन से भी कम हो तो काम की मात्रा बहुत कम होगी। और चूंकि काम की मात्रा को फावडे के वजन से नहीं बल्कि उसके द्वारा ढोयी गयी सामग्री के वजन से मापा जाता है इसलिये बहुत छोटा होने पर कोई फावडा ऐसा भी हो सकता है जिससे कि थकान तो बडे किन्तु काम कुछ भी न बने। इस प्रकार अत्यन्त छोटे और अत्यन्त बडे दो आकारों की चरम सीमा के मध्य में फावडे का ऐसा आकार निकाला जा सकता है जो विशिष्ट काम करने के लिये सबसे अधिक उपयुक्त हो। इस तरह के प्रयोगों से किसानों के औजारों, बढई के औजारों तथा अन्य कारीगरों के औजारों के वजन और आकार की सबसे अधिक उपयुक्त मात्रा निश्चित की जा सकती है।

कुछ ऐसे काम होते है जिनमें एक से अधिक व्यक्ति मिलकर काम कर सकते है। इस तरह के कामों में बराबर यह देखा जाता है कि अलग-अलग व्यक्ति के अलग अलग काम करने के परिणामों की तुलना में मिलकर काम करने के परिणाम सदैव अधिक अच्छे होते हैं। जहां कहीं वजन की मात्रा घटाना या कर्मचारियों का मिल-जुल कर काम करना सम्भव न हो वहां पर थकान घटाने के लिये समय-समय पर अवकाश के व्यवधान दिये जाने चाहिये। फिर कुछ उद्योग ऐसे होते है जिनमें बोझ तो भारी नहीं होते परन्तु तेजी से गति करनी पडती है। इस प्रकार के उद्योगों में गति की तीव्रता नियन्त्रित की जानी चाहिये अथवा आराम के व्यवधान इस प्रकार से बांटे जाने चाहिये कि काम थोडा-थोडा किया जाये। यद्यपि किसी भी विचित्र काम में कार्य की गति क्या होनी चाहिये इसे पूरी तरह से निश्चित नहीं किया जा सकता किन्तु सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि काम की गति काम शुरू करने के पहले आधे घण्टे में मन्द हो सकती है और इसके बाद सामान्य गति से चले तथा अन्त में तीव्र गति से काम किया जाये। प्रारम्भ में गति के मन्द होने का कारण

कार्य मे गर्मी आने का अवसर देना है। गर्मी आने के बाद काम की गति बढ जाती है और इस गति को बराबर एक सा रखा जाना चाहिये। काम के अन्त मे कार्य की गति बढाने से बचा हुआ कार्य शीघ्र समाप्त हो जाता है और थकान आने तक काम से छुट्टी हो जाती है जिसके कारण थकान से उत्पादन पर बुरा प्रभाव नही पडता। इस वैज्ञानिक सिद्धान्त को न मानते हुये कुछ लोग काम शुरू करने मे तेजी से काम करते है और काम की यह गति समय बढने के साथ कम होती जाती है। काम करने की इस प्रणाली के पक्ष मे यह तर्क दिया जाता है कि इससे शक्ति रहते व्यक्ति तेजी से कार्य करता है जबकि वास्तव मे होता यह है कि शुरू मे तेजी से काम करके कर्मचारी शीघ्र ही थक जाता है और बाकी दिन भर वह थकान की स्थिति मे काम करता है जिससे उसके काम करने की गति क्रमश मन्द होती जाती है और उत्पादन की मात्रा भी कम होती जाती है।

थकान सम्पूर्ण शरीर मे होती है

पीछे अर्गोग्राफीय अध्ययनो द्वारा मिले हुये प्रमुख निष्कर्षो मे छठा निष्कर्ष यह है कि थकान विशिष्ट अग के कार्य के द्वारा होते हुये भी सामान्य होती है क्योकि रक्त के दौरान के द्वारा वह उस विशिष्ट अग से समस्त शरीर मे फैल जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि थकान को दूर करने के लिये केवल विशिष्ट अग को आराम देने की नही बल्कि सम्पूर्ण व्यक्ति को आराम देने की आवश्यकता है। अस्तु, थकान दूर करने के लिये केवल काम बन्द कर देना मात्र ही पर्याप्त नही है बल्कि अवकाश के व्यवधान मे कर्मचारी को पूरा आराम मिलना चाहिये। इसके लिये लच के व्यवधान मे आरामदायक बिस्तरो की व्यवस्था की जा सकती है और बैठने के लिये आरामदायक सीटें होनी चाहियें। पीने के पानी की उत्तम व्यवस्था आवश्यक है। सक्षेप मे, थकान दूर करने के लिये केवल काम से छुट्टी ही पर्याप्त नही है बल्कि पूरी तरह विश्राम करने के साधनो की व्यवस्था अपेक्षित है।

थकान मे स्वास्थ्य और पोषण का महत्व

कार्य और थकावट के अर्गोग्राफीय अध्ययनो द्वारा प्राप्त प्रमुख निष्कर्षों में सातवें और आठवें निष्कर्ष से यह स्पष्ट होता है कि कम थकान और अधिक काम के लिये शारीरिक स्वास्थ्य और पोषण कितना अधिक महत्वपूर्ण है। अस्तु, कारखाने के बाहर भी कर्मचारियो की रहने की परिस्थितियां ऐसी होनी चाहियें जिनसे उनका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बना रहे। इस सम्बन्ध मे एच० गार्टनर नामक जर्मन वैज्ञानिक ने यह सुझाव दिया है कि कर्मचारी को अपने घर से कारखाने तक पहुँचने मे कितना समय लगता है इस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये क्योकि यदि कार्य करने का स्थान किसी व्यक्ति के घर से इतनी अधिक दूर है कि वह वहाँ जाते जाते भी थक जाता है तो दिन भर थकान की परिस्थिति मे काम करने मे उसकी थकान भी बढेगी और उसके द्वारा किया गया उत्पादन भी उचित मात्रा और किस्म का नही होगा। अस्तु, दफ्तरो और उद्योगो के निकट ही कर्मचारियो के आवास

बनाये जाने चाहिये। आजकल जब कि शहरों की हवा को दूषित होने से बचाने के लिये यह मांग की जाती है कि कारखाने और दफ्तर शहर से बाहर हो तो इस बात पर ध्यान रखना जरूरी है। ऐसी परिस्थिति में कर्मचारियों के आवास भी शहर से बाहर ही उनके काम करने के स्थानों के निकट होने चाहियें और वहीं उनके बच्चों की शिक्षा तथा दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की वस्तुयें खरीदने के लिये बाजार होने चाहियें। कहीं-कहीं पर कार्य के स्थान से आवास स्थान की दूरी के महत्व को समझने के कारण केवल उन्हीं लोगों को दफ्तर या कारखाने में जगह दी जाती है जिनके घर उनसे एक निश्चित दूरी से अधिक दूर न हों। गार्टनर के अनुसार किसी कर्मचारी को अपने आवास से कार्य करने के स्थान पर पहुंचने में अधिक से अधिक तीस मिनट लगने चाहिए।

कर्मचारी का स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये कारखाने में उसके आराम की व्यवस्था होना आवश्यक है। आराम के लिये कितना समय दिया जाय यह एक विवादास्पद प्रश्न है। इसमें दो बातें ध्यान रखनी जरूरी हैं, एक ओर तो आराम का समय इतना अधिक न हो कि कर्मचारी को सुस्ती आने लगे और दूसरी ओर वह इतना कम भी न हो कि उसकी थकान न मिट पाये। गार्टनर ने थकान मिटाने के लिये एक दिन में तीस मिनट नींद लेने की सलाह दी है। यदि कर्मचारियों को इससे अधिक सोने का अवसर मिलेगा तो रात में उनकी नींद में बाधा पड़ने की सम्भावना है।

थकान दूर करने में भोजन का विशेष महत्व है। अस्तु, आराम के साथ-साथ कार्य संस्थाओं में सस्ते, पौष्टिक और स्वादिष्ट भोजन की व्यवस्था की जानी चाहिये। जहां पर इस प्रकार का भोजन प्रदान करने वाला रैस्तरां हैं वहां पर भले ही इस प्रबन्ध में कम्पनी का कुछ खर्चा हो जाये किन्तु कर्मचारियों का स्वास्थ्य बनाये रखने के कारण इनका बड़ा लाभ है। जहां पर कर्मचारी स्वयं अपना लंच अपने घर से अपने अपने साथ लाते है वहाँ यह देखा जाता है कि बहुधा जो कुछ वे लाते हैं वह न तो पौष्टिक होता है और न पर्याप्त होता है। खाने पीने का स्थान कार्य करने के स्थान से बहुत दूर नहीं होना चाहिये। यदि किसी कारखाने के कर्मचारियों को नाश्ता करने के लिये कार्य करने के स्थान से इतनी दूर जाना पड़ता है कि वे थक जायें तो इससे कारखाने की हानि होगी। अस्तु, यदि कारखाने से लगे हुये ही कम्पनी के अच्छे रेस्तरां हो जिनमें कम कीमत पर अच्छी खाद्य वस्तुयें उपलब्ध हो तो कर्मचारियों को लंच के व्यवधान का मजा आता है और उनका स्वास्थ्य भी बना रहता है। इससे उनकी थकान दूर होती है जिससे अन्त में उत्पादन बढ़ने से कम्पनी को ही लाभ होता है। नाश्ते का प्रबन्ध प्रातःकाल और तीसरे पहर दोनों समय किया जा सकता है।

कर्मचारियों का स्वास्थ्य और पोषण केवल आराम और भोजन पर ही निर्भर नहीं होता बल्कि इसमें कुछ अन्य कारक भी काम करते हैं। उदाहरण के

लिये आर्थिक चिन्ताओं से स्वास्थ्य खराब होता है । अस्तु, औद्योगिक संस्थानो को कर्मचारियो की आर्थिक चिन्तायें दूर करने के लिये छोटे मोटे ऋण की व्यवस्था करने का प्रबन्ध करना चाहिये । उन्हे कम कीमत पर चिकित्सा की सुविधायें उपलब्ध होनी चाहियें ।

उपरोक्त कारको के अतिरिक्त स्वस्थ मनोरंजन का भी कर्मचारी के स्वास्थ्य से महत्वपूर्ण सम्बन्ध है । इसीलिये आधुनिक औद्योगिक संस्थानो मे कर्मचारियो के स्वस्थ मनोरंजन के लिये उनके आवास के निकट ही क्लबो, सिनेमाओ तथा नाना प्रकार के खेलों की व्यवस्था की जाती है ।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं का महत्व

पीछे जो अर्गोग्राफीय अध्ययनो के निष्कर्ष बतलाये गये है उनमे अन्तिम निष्कर्ष थकान के विषय मे व्यक्तिगत विभिन्नता के कारक पर जोर देता है। यह एक सामान्य बात है कि कुछ व्यक्ति शीघ्र थक जाते है और उन्हे खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करने मे अधिक समय लगता है । उनकी तुलना मे अन्य व्यक्ति देर मे थकते है और थोडे ही आराम से खोई हुई शक्ति फिर से प्राप्त कर लेते हैं। व्यक्तिगत विभिन्नताओ के इस तथ्य को खास तौर से उन कामो मे ध्यान रखना चाहिये जिनमे एक से अधिक लोग मिल जुलकर काम करते है । उदाहरण के लिये यदि किसी काम पर लगे हुए सभी लोग शीघ्र ही थकने वाले है तो काम मे बडी कठिनाई होगी । कारखाने मे भिन्न-भिन्न कामो के लिये व्यक्तियो का चुनाव करते समय थकान के विषय मे उनकी व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर ध्यान रक्खा जाना चाहिये । कठिन काम उन्ही लोगो को सौपे जा सकते हैं जो आसानी से नही थकते । आधुनिक कारखानो मे स्त्रियो को कठिन काम नही दिये जाते । स्त्रियो और बच्चों को वे ही काम दिये जाते है जिनमे उनके शरीर पर विशेष जोर न पडे । कुछ काम ऐसे होते हैं कि उन्हे शुरू करने मे अधिक शक्ति लगानी पडती है और बाद मे वे कम शक्ति से भी चलाये जा सकते है । इस तरह के कामो मे काम को ऐसे आदमियो से शुरू कराना चाहिये जो अधिक काम कर सकते है और बाद मे काम को अपेक्षाकृत कमजोर लोगो से चलाये रक्खा जा सकता है ।

विभिन्न अर्गोग्राफीय अध्ययनो के निष्कर्षों को उद्योग की परिस्थितियो मे प्रयोग किये जाने के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि इस प्रयोग से महत्व पूर्ण लाभ होते हैं । अधिकतर उद्योगों मे आराम के अवकाश अथवा लन्च के लिये मध्यान्तर की व्यवस्थाओ से उत्पादन मे लाभ ही हुआ है । जहां कही इससे कुछ परेशानी पैदा होती है वहां वह उन लोगो के कारण होती है जो अवकाश का काल बिताने के बाद भी देर से काम पर पहुंचते हैं अथवा कारखानो और दफ्तरो मे, काफी की दुकानो पर या एलीवेटरो में भीड लगा लेते हैं । इससे कुछ लोगो को ऐसा मालूम पडता है कि मध्यान्तर देने से काम मे बाधा पड़ती है किन्तु किसी का

भी कहना यह नही है कि मध्यान्तर से लाभ नही होता है। इस सम्बन्ध मे अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन किये गये हैं जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

(१) हैगार्ड के अध्ययन[2]—डब्लू० डब्लू० हैगार्ड के अनुसार एक कारखाने मे कर्मचारियों को दो अतिरिक्त भोजन प्रदान करने से उत्पादन मे दस प्रतिशत की वृद्धि देखी गई। कर्मचारियों ने यह भी बतलाया कि उन्हे इससे थकान दूर करने मे सहायता मिलती थी और अधिक उत्पादन करने के बावजूद भी अब वे कम थकते थे। कुछ अन्य औद्योगिक सस्थानों मे कर्मचारियो के आराम के लिये आरामदेह कुर्सियो और चारपाइयो की व्यवस्था करने से उत्पादन मे वृद्धि दिखलाई पडी। सच बात तो यह है ,कि जहाँ कही आराम के लिये मध्यान्तर नही दिया जाता वहा कर्मचारी अनुचित उपायो से आराम के लिये समय निकाल लेते हैं। कुछ दफ्तरो मे तो लोग अपनी कुर्सियो पर बैठे ही बैठे सोया करते हैं। कुछ कारखानो मे उल्टे सीधे बहाने करके लोग काम से उठ जाते है। अन्य स्थानो पर काम की गति मन्द कर दी जाती है। यदि कोई अन्य बहाना सम्भव नही हुआ तो कर्मचारी पेशाब करने के बहाने ही मूत्रालय के सामने लाईन मे खडा रहता है। इन सब उपायो से कर्मचारियो का समय बर्बाद होता है और उत्पादन मे भी कोई लाभ नही होता। अस्तु, इनको दूर करने के लिए अधिकारियो की ओर से आराम के लिये व्यवधान दिये जाने चाहियें क्योकि न तो बहानेबाजी सभी लोग कर सकते हैं और न बहानेबाजी से थोडा बहुत वक्त निकालने से थकान ही दूर होती है।

(२) मैजेरिक के अध्ययन[3]—ए० जी मैजेरिक ने अपने अध्ययनो के आधार पर लिखा है कि एक विशेष उदाहरण मे स्त्री कर्मचारियो के लिये बैठने को स्टूलो की व्यवस्था करने मात्र से उत्पादन मे ३२ प्रतिशत वृद्धि हुई। आधुनिक उद्योगो में हल्के काम करने के लिये स्त्रियो की नियुक्ति की जाती है। चू कि स्त्रियों का शरीर स्वभाव से ही कोमल होता है और प्रबन्धको को उनका अधिक ध्यान रहता है इस लिए अधिकतर औद्योगिक सस्थानो मे ऐसे सुधार किये गये हैं जिनसे थकान कम हो। जहाँ स्त्रियाँ काम करती है वहां पर विशेष रूप से अवकाश के व्यवधानो, आराम करने के आकर्षक और आरामदायक कमरो तथा बैठने के लिये आरामदेह स्टूलो का प्रबन्ध किया गया है। ऐसा न होने पर कर्मचारियो मे असन्तोष रहता है जिससे अन्त मे मालिको को ही हानि पहुँचती। है इन सुधारो पर जो खर्चा आता है वह बढ़े हुए उत्पादन के रूप मे मालिक को लाभ पहुँचाता है।

(३) बौनमेन के अध्ययन—ई० बौनमेन नामक जर्मन वैज्ञानिक के अनुसधान से इस अर्गोग्राफीय निष्कर्ष पर प्रकाश पडा है कि काम करते जाने मे थकान का

---

2. W. W. Haggard, work and Fatigue, *Mech. Engin*, (1936), 58, pp. 298-301,

3. A. G. Mezerik, The Factory Manager learns the facts of Life, *Harper's* (1943), 187, pp. 289-297.

प्रभाव क्रमशः बढता ही जाता है। अस्तु, इस वैज्ञानिक ने एक तिहाई काम के बाद ही लन्च का मध्यान्तर देने की सलाह दी है ताकि अधिक थकान एकत्रित न हो पाये।

उपरोक्त अध्ययनो से स्पष्ट है कि उद्योग के क्षेत्र मे अर्गोग्राफीय निष्कर्षो पर अमल करने से महत्वपूर्ण लाभ हुआ है। किन्तु आराम और अवकाश के अवसरो का कहा तक प्रबन्ध किया जाना चाहिये यह प्रयोगो से ही निश्चित् किया जा सकता है। किसी भी उद्योग मे आराम, पोषण और स्वास्थ्य आदि के लिये किस तरह की व्यवस्थायें होनी चाहिये यह उसमे होने वाले काम के प्रकार, कर्मचारियो के लिग और आयु तथा अन्य अनेक बातो पर निर्भर होता है। अस्तु, इस सम्बन्ध मे व्यापक रूप से विचार करने के बाद ही सुधारो की व्यवस्था की जानी चाहिये। तभी उनसे पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

थकान उत्पन्न करने वाली व्यावसायिक परिस्थितियां

विभिन्न व्यवसायो मे कुछ परिस्थितिया ऐसी होती है जिनमे थकान बढती है और इस प्रकार शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य गिरता है जिससे अन्त मे उत्पादन पर बुरा प्रभाव पडता है। सक्षेप मे, इस प्रकार की व्यावसायिक परिस्थितियां निम्न-लिखित हैं—

(१) **लम्बी कार्यावधि**—कुछ उद्योगो मे काम करने के घण्टे इतने अधिक होते है कि उनसे कर्मचारी थक जाता है जब कि लम्बे घण्टो से उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव पडता नही दिखलाई पडता। इस तथ्य पर अनेक अध्ययनो से प्रभाव पडा है। म्यूसिओ ने एक कारखाने मे एक ऐसी महिला कर्मचारी का उल्लेख किया है जिसने कारखाने के नियमो के अनुसार बारह घण्टे काम करने से इन्कार करके केवल छ घण्टे कार्य किया किन्तु फिर भी उसका उत्पादन कारखाने के कर्मचारियो मे सबसे अधिक था। इस कारखाने मे प्रात. काल ६ से ८, साढे आठ से साढे बारह तीसरे पहर डेढ से साढे पाच और सॉयकाल छ से आठ बजे तक काम करने के समय थे। इस महिला ने नाश्ते के समय के पहले और सॉयकाल को काम करने से इन्कार कर दिया। उससे पूछे जाने पर उसने बतलाया कि इतने अधिक घण्टे काम करके वह अपनी कुशलता नही बनाये रख सकती। एक महीने के कार्यकाल मे यह देखा गया कि जब कि उसने केवल १५० घण्टे काम किया था और अन्य कर्मचारियो ने २३७ घण्टे काम किया था, उसका उत्पादन सबसे अधिक था। विभिन्न देशो मे कार्यावधियों के विषय मे जो अध्ययन किये गये है उनसे यह स्पष्ट हुआ है कि छोटे कार्य सप्ताहो मे लम्बे कार्य सप्ताहों की तुलना मे अधिक उत्पादन होता है। द्वितीय विश्व युद्ध के काल मे इगलैण्ड मे कार्य सप्ताह की अवधि बढा दी गई। डनकर्क के युद्ध के पहले सप्ताह मे ५६ घण्टे काम किया जाता था, डनकर्क के युद्ध के बाद युद्ध से सम्बन्धित उद्योगो मे ६९·५ घण्टे काम किया जाने लगा। इससे पहले तो

उत्पादन १० प्रतिशत बढा किन्तु बाद मे उत्पादन गिरा और कारखानो मे अनुपस्थिति और दुर्घटनाओ की सख्या बढने लगी । कुछ महीनों के बाद साप्ताहिक कार्यावधि ६८·५ घण्टे थी जब कि वास्तव मे केवल ५१ घण्टे काम होता था जब कि पहले ५६ घण्टो के कार्य सप्ताह मे ५३ घण्टे काम होता था । अस्तु, काम के घण्टे बढने से उत्पादन बढने की जगह १२ प्रतिशत घट गया । जब ६ महीने के बाद काम के घण्टे फिर से कम किये गये तो उत्पादन फिर से बढ गया । काम के घण्टे बढने से उत्पादन के कम होने का कारण थकान का बढना है । स्पष्ट है कि लम्बी कार्यावधि थकान बढाती है । मायर्स ने लन्दन के एक कारखाने मे महिलाओ के कार्य का अध्ययन किया जो कि फ्यूज पलटने का काम करती थी । जब इनसे ६६ घण्टे कार्य न लेकर ४८·६ घण्टे काम लिया गया तो कार्यावधि घटाने से कुल उत्पादन मे १५ प्रति वृद्धि हुई ।

(२) **विश्रामकाल की अनुपस्थिति**—यदि कोई व्यक्ति लगातार बहुत देर तक काम करता है तो उससे थकान उत्पन्न होती है । अब यदि वह विश्राम न लेकर काम करता रहे तो थकान की दशा मे काम करने से उसकी थकान और भी तेजी से बढती है । यदि पहली बार थकान आने पर उसे तुरन्त विश्राम काल दिया गया होता तो वह फिर से ताजा होकर काम करता और उसकी थकान न बढती । इस तरह जहा कही कार्यावधि के मध्य मे समय-समय पर विश्राम काल दिये जाते है, जिनसे कर्मचारी खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करता रहे, वहा थकान नही आती । विश्राम काल की अनुपस्थिति थकान बढाने वाली व्यावसायिक परिस्थिति है । जहा कही कर्मचारी कुछ अनाधिकार विश्रामकाल ले भी लेते है वहाँ भी उनकी अभिवृत्ति अधिकारियो के अनुकूल न रहने के कारण विश्रामकाल की अनुपस्थिति से थकान बढती ही है । गिलब्रेथ के प्रयोगों से यह पता लगा कि लगातार काम करने की तुलना मे बीच बीच मे विश्राम लेते हुए काम करने से उत्पादन बढता है ।[4]

(३) **अनुपयुक्त तापमान**—अनुपयुक्त तापमान थकान बढाने की व्यावसायिक परिस्थिति है । अनुपयुक्त तापमान से तात्पर्य कारखाने या काम करने के स्थान का अत्यधिक गर्म या अत्यधिक ठण्डा होना है । दोनों ही हालतो मे कर्मचारियो की शारीरिक और मानसिक स्थिति पर बुरा प्रभाव पडता है और वे शीघ्र ही थक जाते हैं ।

(४) **स्वच्छ हवा का अभाव**—काम करते समय यदि व्यक्ति को स्वच्छ हवा न मिले तो वह शीघ्र थक जाता है । जिन व्यावसायिक परिस्थितियो मे स्वच्छ हवा का अभाव होता है अर्थात् दफ्तर या कारखाने मे वायु दूषित रहती है वहा पर थोडा ही काम करने से थकान बढ जाती है ।

(५) **प्रकाश की अपर्याप्त व्यवस्था**—यदि काम करने के स्थान पर प्रकाश समुचित और पर्याप्त नही होता तो थकान बढती है क्योकि अपर्याप्त और अनुपयुक्त

4. Gilbreth, L. M., *Fatigue Study*, New York. (1965), p. 240.

प्रकाश में काम करने से आँखों पर जोर पडता है। अस्तु, कारखानों और दफ्तरों में प्रकाश की समुचित और पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिये। समुचित प्रकाश से तात्पर्य यह है कि प्रकाश सही प्रकार का हो और सही दिशा से आ रहा हो। उदाहरण के लिये लिखने-पढ़ने का काम करते समय प्रकाश बाईं ओर से और पीछे की ओर से आना चाहिये। ऐसा न होने पर आँखों पर जोर पडता है। मशीनों पर काम करते समय प्रकाश मशीन के उन पुर्जों पर पड़ना चाहिये जिन्हे बार बार देखने की आवश्यकता पड़ती है। इसी तरह प्रकाश न आवश्यकता से अधिक हो और न कम, दोनों ही स्थितियों में आंखो पर जोर पड़ेगा और थकान बढेगी।

(६) **मशीन की बनावट**—कुछ मशीनें इस प्रकार की बनी हुई होती हैं कि उन पर काम करने से थकान शीघ्र उत्पन्न होती है। अस्तु, आजकल औद्योगिक मनोवैज्ञानिक थकान कम करने के लिए और उत्पादन बढाने के लिये मशीनों की बनावट के विषय में सुझाव देते है ताकि कम परिश्रम से अधिक काम हो सके। औद्योगिक मनोविज्ञान की यह शाखा इन्जीनियरिंग मनोविज्ञान कहलाती है। आजकल ऐसी मशीनें बनायी जाती हैं जिन पर काम करने से कम से कम गति से अधिक से अधिक उत्पादन किया जा सकता हो। जब कर्मचारी इन मशीनों पर काम करने के आदी हो जाते हैं उनकी थकान कम होती है और उत्पादन बढता है।

(७) **उचित आसन का अभाव**—व्यावसायिक परिस्थितियों में थकान बढाने वाली एक महत्वपूर्ण परिस्थिति उचित आसन का अभाव है। यह एक सामान्य बात है कि जिन मशीनों पर खडे होकर काम करना पडता है उन पर थकान अधिक होनी है। बैठने के आसन मे भी यह बात महत्वपूर्ण है कि आसन न तो इतना अधिक आरामदेह हो कि उस पर बैठे-बैठे व्यक्ति सोने लगे और न इतना कठोर हो कि उस पर बैठा व्यक्ति आराम अनुभव न करे। उचित आसन की व्यवस्था होने से थकान दूर रहती है।

(८) **अत्यधिक शोर**—थकान उत्पन्न करने वाली एक व्यवसायिक परिस्थिति काम करने के स्थान पर उचित से अधिक शोर होना है। शान्तिपूर्ण वातावरण मे व्यक्ति बिना थके हुए देर तक काम कर सकता है। थोडे बहुत शोर का भी थकान पर विशेष प्रभाव नही पडता किन्तु जब शोर की मात्रा एक निश्चित अनुपात से अधिक बढने लगती है तो वह थकान बढाता है। आजकल कारखानों मे मशीनो के चलने से होने वाले कोलाहल का अध्ययन करके यह देखने का प्रयास किया जाता है कि कहीं उनसे इतना अधिक शोर तो नही हो रहा है कि वह थकान बढाता हो। ऐसा होने पर कोलाहल कम करने का प्रयास किया जाता है। कार्नहाऊजर ने ४ टाइपिस्टों पर ४ दिन तक शोर के प्रभाव का निरीक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला कि शोर के कारण उत्पादन ३·२ प्रतिशत घटा और गल्तियाँ २३ प्रतिशत बढ गयी।[5]

5. Kornhauser, A. W., The Effect of Noise on office output, *Ind. Psych.* ■ (1927), pp. 62-72.

वेंस्टन के एक अध्ययन में कपड़ा सीने वाले कर्मचारियो ने कोलाहलपूर्ण वातावरण की तुलना मे शान्तिपूर्ण वातावरण में ७·५ प्रतिशत अधिक उत्पादन दिखलाया।

(९) **अस्वास्थ्यकर परिस्थितियां**—स्वास्थ्य का थकान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि व्यावसायिक परिस्थितियाँ ऐसी है जो अच्छे स्वास्थ्य के अनुकूल नही हैं तो उनमे काम करने से थकान उत्पन्न होती है। इस प्रकार की व्यावसायिक परिस्थितियो मे पीछे बतलाये गये कारक, जैसे—अनुचित तापमान, अपर्याप्त वातायन, अत्यधिक शोर, अशुद्ध वायु इत्यादि हैं। इनके अतिरिक्त नमी की मात्रा का आवश्यकता से अधिक होना, हानिकारक गंध तथा आराम की अपर्याप्त व्यवस्था और औषधियो तथा चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध न होना ऐसी व्यावसायिक परिस्थितियाँ हैं जिनमे कर्मचारियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है और वे थोड़े ही काम में शीघ्र थक जाते हैं।

(१०) **आवश्यक प्रशिक्षण का अभाव**—विभिन्न व्यवसायों मे कुछ काम ऐसे होते है जिन्हे करने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है और जब ये ही काम अप्रशिक्षित व्यक्तियो को दे दिये जाते हैं तो उनमें अत्यधिक थकान उत्पन्न करते हैं। अस्तु, विभिन्न प्रकार के यन्त्रो पर काम करने के लिये कर्मचारियो को सर्वोत्तम विधियो के विषय मे आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। उन्हे यह भी बतलाया जाना चाहिए कि वे अपने कार्य और व्यक्तिगत विभिन्नताओ के अनुसार कार्यकाल और विश्राम काल को किस प्रकार व्यवस्थित करे। इस तरह आवश्यक प्रशिक्षण का अभाव थकान उत्पन्न करने वाली व्यावसायिक परिस्थिति है।

(११) **नींद की कमी**—जिन कारखानो मे रात मे काम होता है और इस लिये कर्मचारियों को पूरी नींद नही मिल पाती वहाँ पर नींद की कमी थकान का एक महत्वपूर्ण कारण होती है। इसे दूर करने के लिए कर्मचारियो को विश्राम काल मे सोने के लिये आरामदेह चारपाइयो की व्यवस्था की जानी चाहिए। नींद की कमी, चाहे वह किसी भी कारण से क्यों न हो, सदैव थकान उत्पन्न करती है।

(१२) **निम्न नीतिमत्ता**—जिन व्यावसायिक परिस्थितियों मे नीतिमत्ता निम्न रहती है वहां थकान अधिक उत्पन्न होती है। निम्न नीतिमत्ता की परिस्थितियां अधिकारियो के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति, घृणा, द्वेष और सन्देह, काम मे निराशा और नीरसता, मानसिक अशान्ति और असन्तोष, पदोन्नति के ठीक नियम न होना, समुचित वेतन वृद्धि का अभाव, वेतन देने की अनुचित प्रणाली तथा अधिकारियो और कर्मचारियो के परस्पर अनुकूलन का अभाव इत्यादि हैं। इन परिस्थितियो मे मानसिक थकान शीघ्र उत्पन्न होती है जिससे शारीरिक थकान भी बढ़ती है। उच्च नीतिमत्ता की परिस्थितियो मे थकान कम होती है।

(१३) **सामाजिक वातावरण के दोष**—जिन व्यवसायो मे एक से अधिक लोग काम करते हैं वहां पर व्यावसायिक परिस्थितियो के सामाजिक वातावरण के

अनेक दोष भी थकान बढाते हैं। उदाहरण के लिए जहाँ पर अधिकारियों और कर्मचारियों के सम्बन्ध अच्छे नहीं होते अथवा जहाँ विभिन्न कर्मचारियों में परस्पर सहयोग नहीं होता और सामाजिक वातावरण शंकापूर्ण तथा द्वेषपूर्ण बना रहता है वहाँ पर कर्मचारी में उच्च नीतिमत्ता नहीं बनी रह सकती और इसलिए वह थोड़ा ही काम करके थका हुआ अनुभव करता है। आजकल सामाजिक परिवेश के इस महत्व को समझकर व्यावसायिक परिस्थितियों में सामाजिक परिवेश को स्फूर्तिदायक और सहयोगपूर्ण बनाने का प्रयास किया जाता है जिससे कर्मचारी कम थकते हुये लम्बे समय तक काम कर सकते हैं।

वास्तव में व्यावसायिक परिस्थितियों में वे सभी परिस्थितियाँ थकान उत्पन्न करती हैं जिनका कर्मचारियों की शारीरिक या मानसिक स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि इससे शारीरिक अथवा मानसिक थकान बढ़ती है। अस्तु, थकान कम करने के लिए इस तरह की सभी परिस्थितियों में सुधार किये जाने चाहियें। इसके लिए अधिकारियों और कर्मचारियों तथा सरकार को मिल जुलकर प्रयास करना पड़ेगा।

थकान कम करने के उपाय

स्थूल रूप से, थकान कम करने का उपाय उन सब व्यावसायिक परिस्थितियों को दूर करना है जिनसे थकान बढ़ती है। अस्तु, यहाँ पर उन उपायों की चर्चा की जाएगी जिनको अपनाने से थकान कम की जाती है। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि काम करने से कुछ न कुछ थकान तो आती ही है और कोई भी ऐसा उपाय नहीं निकाला जा सकता जिससे काम करते हुये भी बिल्कुल ही थकान न आए। हाँ, ऐसे उपाय अवश्य निकाले जा सकते हैं जिनसे थकान कम हो अथवा जिनके द्वारा काम से उत्पन्न होने वाली थकान को अत्यधिक बढ़ने से पहले ही दूर कर दिया जाये। संक्षेप में ये उपाय निम्नलिखित हैं—

(१) कार्यावधि को कम करना—थकान कम करने का एक उपाय काम के घण्टे घटाना है। अनेक प्रयोगों से यह देखा गया है कि काम के घण्टे घटाने से थकान घटती है जबकि उत्पादन नहीं घटता और कभी-कभी तो बढ़ जाता है। सन् १९२८ में शेपर्ड ने यह बतलाया कि तीस वर्ष पहले अमेरिका के उद्योगों में कर्मचारियों से प्रतिदिन दस घण्टे काम लिया जाता था और छः दिन काम करने के बाद एक दिन का विश्राम दिया जाता था। किन्तु अब प्रतिदिन आठ घण्टे काम लिया जाता है और शनिवार के दिन केवल चार घण्टे काम लेने के बाद छुट्टी हो जाती है तथा इसके अतिरिक्त इतवार की पूरी छुट्टी होती है। इस प्रकार काम के घण्टे घटाने से उत्पादन कम नहीं हुआ है बल्कि बढ़ा ही है। अनेक अन्य प्रयोगों में शेपर्ड के इस मत का समर्थन हुआ है। अस्तु, थकान कम करने का एक उपाय काम के घण्टे घटाना है। किन्तु स्मरण रहे कि ये घण्टे इतने कम भी नहीं होने चाहियें कि कर्मचारी की शक्ति का पूरा उपयोग न हो सके। वास्तव में काम के घण्टे इतने रहने

चाहिए जिनसे कर्मचारी अत्यधिक थकान अनुभव न करते हुए काम करता रहे। यह बात भिन्न-भिन्न उद्योगो में अलग-अलग तय की जाएगी।

(२) **विश्राम काल की व्यवस्था**—थकान कम करने का एक अन्य उपाय उद्योगो मे विश्राम काल की पर्याप्त और उचित व्यवस्था करना है। पर्याप्त विश्राम काल से तात्पर्य यह है कि काम के कुल घण्टो के अनुपात में कितना विश्राम काल दिया जाना चाहिए। उचित विश्राम काल से तात्पर्य यह है कि कितने घण्टे काम करने के बाद कितना विश्राम काल दिया जाए। इस सम्बन्ध मे अनेक अध्ययन किये गये हैं जिनसे महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आए हैं। वर्नन के अनुसार प्रत्येक घण्टे के बाद कर्मचारी को विश्राम काल दिया जाना चाहिये। शॅपर्ड के अनुसार आठ घण्टे प्रतिदिन काम करने वाले कर्मचारी को कार्य-काल का १६·६ प्रतिशत विश्राम काल दिया जाना चाहिये। स्पष्ट है कि विश्राम काल देने में पूर्ण कार्यकाल में उसका अनुपात और कितने घण्टे के बाद विश्राम काल देना है ये दोनों बातें ध्यान मे रखी जानी चाहियें।

एम० एस० वाइटल्स (M. S. Viteles)[6] ने अपने अध्ययनो से यह प्रमाण उपस्थित किया कि विश्राम काल की व्यवस्था से उत्पादन मे दस से बीस प्रतिशत तक वृद्धि देखी जाती है। उदाहरण के लिये एक कारखाने मे लड़कियों के लिए प्रात.काल की कार्यावधि में १० मिनट के विश्राम काल की व्यवस्था की जाने से उत्पादन बीस प्रतिशत बढ गया। ये लडकियाँ लेबिल लगाने का काम करती थी। इस उदाहरण को एच० एम० वर्नन (H M. Vernon) और टी० बेडफोर्ड (T. Bedford)[7] ने विश्राम काल पर अपने लेख मे उपस्थित किया है। विश्राम काल के विषय मे एक प्रयोग के निष्कर्ष बतलाते हुए इ० फार्मर (E. Farmer) और एस० एम० बेविंगटन (S. M Bevington)[8] ने अपने एक लेख में लिखा है कि प्रातःकाल और तीसरे पहर की कार्यावधियो मे सात मिनट का विश्राम काल देने से प्रत्येक घण्टे के उत्पादन वक्र मे आमूल परिवर्तन दिखलाई पडा। उपरोक्त अध्ययनों के अतिरिक्त अनेक अन्य अध्ययनो और प्रयोगो से भी उत्पादन पर विश्राम काल का लाभदायक प्रभाव दिखलाई पडा है। यह देखा गया है कि प्रत्येक घण्टे के काम के बाद पाँच मिनट का विश्राम काल देने से अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं।

किस उद्योग मे कितने समय काम करने के बाद कितना विश्राम काल दिया जाना चाहिये यह बात भिन्न-भिन्न उद्योगो मे प्रयोग करने से निर्धारित की जा सकती है क्योंकि इस पर कार्य के प्रकार, कार्यावधि की लम्बाई, काम के सप्ताह की लम्बाई,

6. Viteles, M. S., *Industrial Psychology*, pp. 470-482

7. H M. Vernon and T. Bedford, *The Influence of Rest Pause on light industrial work.* (1924)

8. E. Farmer and S M. Bevington, An Experiment in the Introduction of Rest Pauses, *Nat Instit Indus Psychol.* (1922), 1, pp 89-92.

कर्मचारी के लिंग और पोषण के स्तर तथा व्यक्तिगत विभिन्नताओ पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिये पुरुषो की तुलना मे स्त्रियो को अधिक शीघ्र विश्राम काल की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार जिन लोगो का स्वास्थ्य अच्छा नही है, उनके लिए भी शीघ्र विश्राम काल दिया जाना जरूरी होता है। प्रेरणा अधिक होने पर बिना थके लम्बे समय तक काम किया जा सकता है और तब कही विश्राम काल की आवश्यक्ता होती है। जहा कुछ लोगो को अनेक व्यक्तिगत कारणो से शीघ्र और लम्बे विश्राम काल की आवश्यकता होती है वहा अन्य लोग बिना थके हुए लम्बे समय तक काम कर सकते है और खोई हुई शक्ति को थोड़े ही समय के विश्राम से फिर से प्राप्त कर लेते हैं। इस सम्बन्ध मे प्रयोगशाला मे किये गये अध्ययनो से कुछ महत्वपूर्ण बातें मालूम हुई हैं। जी० सैफर्ड ने हल्के-भारी काम मे पेशी की क्रियाओ के थकान पर प्रभाव का परीक्षण करने के लिये छ अच्छे स्वास्थ्य वाले कालिज के विद्यार्थियो पर प्रयोग किये।[9] ये विद्यार्थी परड्यू विश्वविद्यालय मे पढ रहे थे और प्रयोग मे भाग लेने के लिये इन्हे पैसा मिलता था। इन्हे सप्ताह मे आठ घण्टे प्रयोग की परिस्थितियों में बिताने पडते थे और उन्हे बोनस भी मिलता था ताकि उनकी परिस्थितियाँ उद्योग की परिस्थितियों के समान बन जाए। काम इस प्रकार का था जिससे सारे शरीर पर जोर पडता। इसमे प्रत्येक व्यक्ति को मशीन की ओर जाकर और उससे दूर हटकर वजन उठाना और गिराना पडता था। थकान जमा न हो जाए इसके लिए काम के दिन के पहले १६ घण्टे विश्राम दिया जाता था और काम के दौरान मे विश्राम काल मे विश्राम करने के लिये चारपाइयो का प्रबन्ध था। कार्यावधियाँ २५ मिनट से ६० मिनट तक होती थी और विश्राम काल की अवधि ७ से १६ मिनट थी। कुछ परीक्षणो मे कार्य काल एक साथ अर्थात् ४८ मिनट रखा गया और विश्राम काल मे सात से सोलह मिनट तक परिवर्तन किया गया। अन्य प्रयोगो मे विश्राम काल को एक सा रखते हुये कार्यावधि मे परिवर्तन किया गया। प्रयोग के परिणामो से यह मालूम हुआ कि सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त करने के लिये कार्यावधि का १६·७ से २० प्रतिशत तक समय विश्राम काल मे दिया जाना चाहिए। यह देखा गया कि थोड़े कार्य काल के पश्चात् छोटे-छोटे विश्राम काल देना लम्बे कार्यकाल के पश्चात् विश्राम देने से कही अधिक अच्छा है। दो विद्यार्थियो पर विश्राम काल के अधिकतम वितरण का परीक्षण किया गया। १८·२ प्रतिशत विश्राम काल का प्रयोग करते हुए यह देखा गया कि विश्राम काल का सबसे अधिक लाभ तब प्राप्त हुआ जब कि सम्पूर्ण कार्यावधि मे एक मिनट अवकाश के विश्राम काल दिये गये। इस प्रकार की परिस्थितियो मे कार्य काल के अन्त की स्थिति में भी काम मे किसी प्रकार की कमी नही देखी गई जबकि यह एक सामान्य बात है कि अधिकतर कार्य काल के अन्त मे काम करने की गति कम हो जाती है और उत्पादन घट जाता है। यहा पर यह ध्यान देना आवश्यक है कि बार-बार विश्राम काल ऐसे ही काम मे दिये

9. G. Shepherd, Effects of Rest Pauses on Production, *Person. Jour.* (1923), 7, pp 186-202.

जा सकते हैं जिसमे कोई सगठन या आयोजन नही होता। इस प्रयोग में एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह देखी गई कि जब कभी स्वय विद्यार्थियों पर उनके विश्राम काल के वितरण को छोड दिया गया तो वे कभी भी उसे अच्छी तरह नही कर सके किन्तु जब उन्हे कार्य और विश्राम काल के वितरण की विधियो का अभ्यास कराया गया तो वे आसानी से वितरण करने लगे।

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, विश्राम काल का अस्तित्व मालिको की मर्जी पर निर्भर नही करता। कम्पनी की ओर से विश्राम काल की व्यवस्था न होने पर भी अधिकतर कर्मचारी किसी न किसी प्रकार से विश्राम का समय निकाल ही लेते हैं। अनेक कर्मचारी अपने काम को इतनी मन्द गति से करते हैं कि वे उसमे थोडे-थोडे समय के बाद बराबर विश्राम लेते रहते हैं। उदाहरण के लिये भारत में भवन निर्माण मे काम करने वाले मजदूर थोडा-थोडा काम करने के बाद बीड़ी पीने के लिये बैठ जाते हैं और इस तरह विश्राम काल निकाल लेते हैं जो कि मध्यान्तर के अतिरिक्त होता है। यही बात लगभग सभी प्रकार के श्रमिको के बारे मे देखी जाती है। कुछ श्रमिक और दफ्तर के कुछ बाबू कुछ देर काम करने के बाद अपनी जगह पर नही देखे जाते। इनमे से कुछ पानी पीने के बहाने, कुछ पेशाब करने के बहाने काम पर से उठ जाते हैं और कभी-कभी तो वे ऐसा करने मे मशीन बन्द करने की भी कोई परवाह नही करते। इस तरह के अनाधिकार विश्राम कालो को रोकने या कम करने का एकमात्र उपाय प्रबन्धकों की ओर से विश्राम काल दिया जाना है क्योकि कर्मचारियो के अनाधिकार विश्राम काल का अर्थ यह नही है कि वे काम करना नही चाहते बल्कि वे उसके द्वारा थकान से बचे रहते हैं और अपनी खोई शक्ति को फिर से प्राप्त करते रहते हैं। जिन लोगो को थोडे समय ही काम करना होता है उनकी तुलना मे वे लोग काम की गति अधिक मन्द रखते हैं जिन्हे लम्बे समय तक काम करना है। इस सम्बन्ध मे कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग किये गये हैं। एच० एम० वर्नन ने अपनी एक रिपोर्ट मे छ घण्टे और ८ घण्टे की कार्यावधि मे कर्मचारियो के विश्राम काल का अध्ययन किया।[10] उसने दिखलाया कि छः घण्टे कार्यावधि होने पर प्रत्येक घण्टे मे औसत विश्राम काल १०·२ मिनट था जबकि कार्यावधि आठ घण्टे होने पर प्रत्येक घण्टे मे औसत विश्राम काल १२.५० मिनट था। इस प्रकार जब कि छ घण्टे कार्यावधि मे विश्राम काल कार्य काल का १७ प्रतिशत था आठ घण्टे की कार्यावधि मे विश्राम काल कार्यकाल का २०·८ प्रतिशत था। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि यह औसत विश्राम काल वास्तव मे प्रत्येक घण्टे के बाद नही लिया जाता था। यह तो कुल कार्य काल को विश्राम काल से भाग देकर निकाला गया है। उद्योगो के प्रबन्धकों को अधिकतम उत्पादन के लिये यह पता लगाना चाहिए कि कितने कार्य काल के बाद कितना विश्राम काल दिया जाये जिससे अधिकतम उत्पादन हो और कर्मचारियों मे प्रेरणा बनी रहे। इस प्रकार

10. H M. Vernon, *Industrial Fatigue and Efficiency*, pp. 107–110.

विश्राम कालों की व्यवस्था करने से उद्योगों मे अनाधिकार विश्राम काल की घटनायें कम होंगी।

अस्तु, उद्योगों मे इस समस्या को सुलझाने के लिये अनेक अध्ययन किये गये हैं जिनसे महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश मे आए हैं। उदाहरण के लिये यह देखा गया है कि उत्पादन गिरने से पहले ही विश्राम काल दिया जाना चाहिये। यह बात अर्गोग्राफीय अध्ययनों से ही सिद्ध होती है। उत्पादन की गति मन्द होने से पहले ही विश्राम काल दिये जाने से कर्मचारी खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार उत्पादन की गति पहले जैसी बनी रहती है। कभी-कभी विश्राम-कालों से काम में बाधा भी पड़ सकती है। इसलिये विश्राम काल निश्चित् करते समय कर्मचारियों की राय ले लेना आवश्यक है और इसे कठोरता से लागू भी नही किया जाना चाहिये। उदाहरण के लिये जब कोई व्यक्ति तेजी से अपना काम पूरा करने में जुटा है तो उसे जबंदस्ती काम से अलग करके विश्राम काल देना नितान्त अनुचित है क्योंकि न तो इससे उसे विश्राम मिलेगा और न इससे उत्पादन पर अच्छा प्रभाव पडेगा। अस्तु, कर्मचारियों के कार्य प्रतिमानों का सावधानी से अध्ययन किया जाना चाहिये और विश्राम कालों को उसी के अनुसार बाँटा जाना चाहिये। सबसे अच्छा उपाय यह है कि स्वयं कर्मचारियों को अपने कार्य काल और विश्राम काल के सर्वोत्तम वितरण का प्रशिक्षण दिया जाय ताकि वे अपने-अपने काम और व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुरूप कार्यकाल और विश्राम काल का वितरण कर सकें।

कम्पनी की ओर से विश्राम काल की व्यवस्था होने का एक अन्य अनुकूल प्रभाव यह पडता है कि कर्मचारियों को कम्पनी के मालिकों मे विश्वास उत्पन्न होता है और वे समझते है कि कम्पनी के मालिकों को उनकी थकान दूर करने का ध्यान है। इससे उनकी अभिवृत्ति कार्य के अनुकूल बनती है जो उत्पादन बढाने मे महत्वपूर्ण कारक है। जहा कुछ लाभ विश्राम काल से होता है वहा अनुकूल अभि-वृत्ति से भी बहुत सा लाभ होता है। यह लाभ अनाधिकार विश्राम काल मे नही होता क्योंकि उसमे विश्राम लेते हुये भी कर्मचारी की अभिवृत्ति अनुकूल नही बनती क्योंकि वह जानता है कि यह विश्राम काल उसे अधिकारियों से नही मिला है बल्कि उसने जबंदस्ती या चोरी छिपे ले रक्खा है। फिर, सभी कर्मचारी इस प्रकार का अनाधिकार विश्राम काल नही ले पाते जिनसे उन पर सबसे अधिक जोर पड जाता है। हाथार्न प्रयोग के अध्ययनों से भी विश्राम काल के विषय मे महत्व-पूर्ण तथ्य मिले हैं। यह देखा गया है कि लन्च के लिये, १५ मिनट प्रातः काल और तीसरे पहर आराम के लिये दस मिनट के विश्राम काल से महत्वपूर्ण लाभ होता है।

एक दिन मे अधिकतम उत्पादन के लिये किसी कर्मचारी से कितना काम लिया जा सकता है, यह भी एक महत्वपूर्ण बात है और इस सम्बन्ध मे अनेक प्रयोग किये गये हैं। एक उद्योग मे कर्मचारी १० घण्टे सेब बांधने का काम करते थे जबकि

दूसरे स्थान पर कार्यावधि केवल ८ घण्टे थी। इन दो भिन्न कार्यावधियों में कार्य के परिणामों का अध्ययन करने से यह पता चला कि आठ घण्टे प्रतिदिन काम करने वाले कर्मचारी दस घण्टे काम करने वाले कर्मचारियों की तुलना में प्रतिदिन औसत रूप से पांच पेटियाँ अधिक बाघते थे। स्पष्ट है कि कार्यावधि बढ़ाने से उत्पादन का परिणाम कम हो गया था। अस्तु, आजकल उद्योगों में कार्यावधि निश्चित् करते समय यह देख लिया जाता है कि कहीं वह इतनी तो नहीं बढ़ रही है कि उसमें लाभ के स्थान पर हानि ही होने लगे।

(३) उपयुक्त तापमान की व्यवस्था—थकान कम करने का एक उपाय व्यवसाय के भौतिक परिवेश में उपयुक्त तापमान की व्यवस्था करना है। इसके लिए सर्दियों में तापमान बढ़ाने और गर्मियों में घटाने की व्यवस्था की जानी चाहिये। समुचित तापमान में कर्मचारी कम थकते हुये लम्बे काल तक काम कर सकते हैं। इसीलिये आधुनिक कारखानों और दफ्तरों में कहीं-कहीं पर वातानुकूलित कमरों की व्यवस्था है, कहीं खस की टट्टियाँ लगाई जाती हैं और कहीं पंखों के द्वारा परिवेश को शीतल किया जाता है। जाड़ों में अनेक स्थानों पर हीटरों से हवा को गर्म रक्खा जाता है।

(४) स्वच्छ वायु का प्रबन्ध—थकान कम करने के लिए एक उपयुक्त व्यावसायिक परिस्थिति वातायन का ऐसा प्रबन्ध करना है कि कर्मचारियों को स्वच्छ हवा मिलती रहे और दूषित वायु बाहर निकलती रहे। इसके लिए कारखानों में ऐसे पंखे लगाए जाते हैं जो दूषित वायु को कारखाने से बाहर फेंकते हैं और इस प्रकार वायु को स्वच्छ रखते हैं।

(५) समुचित और पर्याप्त प्रकाश की व्यवस्था—थकान को कम करने का एक उपाय कारखानों और दफ्तरों में प्रकाश की ऐसी व्यवस्था करना है कि सही दिशा से सही प्रकार का और पर्याप्त प्रकाश मिलता रहे। इससे आँखों पर जोर नहीं पड़ेगा और काम करने में कठिनाई कम होगी तथा थकान नहीं आएगी।

(६) मशीनों की बनावट में सुधार—थकान कम करने का एक उपाय मशीनों की बनावट में इस प्रकार सुधार करना है जिससे कम से कम गति करते हुए मशीनों को चलाया जा सके। इससे कम थकान में अधिक उत्पादन होगा।

उपकरण डिजाइन

उद्योगों में थकान, ऊबवाहट, दुर्घटना आदि का अध्ययन करके यह पता लगाया गया है कि जहां औद्योगिक निष्पत्ति अनेक परिवेशगत और व्यक्तिगत कारकों पर आधारित होती है वहां उस पर उपकरण डिजाइन का भी कम प्रभाव नहीं पड़ता। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि औद्योगिक निष्पत्ति के कारकों में परिवेशगत और व्यक्तिगत कारकों की तुलना में उपकरण डिजाइन अधिक महत्वपूर्ण कारक है। यदि किसी उद्योग में काम करने के उपकरणों का डिजाइन ऐसा है जिनमें व्यक्ति कम समय में अधिक थकान अनुभव करता है, वह बिना किसी बाधा के काम नहीं कर

सकता और बहुत कम उत्पादन कर सकता है तो ऐसी स्थिति मे औद्योगिक निष्पत्ति पर प्रभाव पडना स्वाभाविक है। जहाँ तक स्वतः चालित मशीनो का प्रश्न है उनमे अधिकतर दुर्घटना के दृष्टिकोण से डिजाइन करने की आवश्यकता होती है। यह देखना होता है कि इन यन्त्रो पर काम करते समय श्रमिक किस प्रकार बैठेगा, प्रकाश किधर रहेगा और उसे यन्त्र पर काम करने मे क्या-क्या गतिया करनी पडेगी। यह आवश्यक है कि यन्त्र की व्यवस्था इस प्रकार की जाए कि प्रकाश यन्त्र पर पडे, कर्मचारी की आँखो पर नही क्योंकि यदि यन्त्र पर प्रकाश नही पडता है तो कर्मचारी यन्त्र को भली प्रकार देख नही पाता जिससे दुर्घटना होने की सम्भावना बढ जाती है। दूसरे यदि प्रकाश यन्त्र पर न पडकर कर्मचारी की आँख पर पडता है तो उसकी चकाचौंध मे वह स्वत चालित यन्त्र मे दुर्घटना कर बैठेगा।

अनेक यन्त्रो मे कर्मचारी को काम करने के लिये विभिन्न प्रकार की गतियो की आवश्यकता होती है। यन्त्र में हाथ पैरो को किस प्रकार से गति करनी पडती है, इससे थकान का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि किसी यन्त्र पर काम करने मे विशिष्ट मांसपेशियों पर अत्यधिक जोर पड़ता है तो स्वाभाविक है कि उसमे थकान अधिक होगी। इसलिये आजकल औद्योगिक मनोवैज्ञानिको ने ऐसे यन्त्रो और उपकरणो के डिजाइन बनाने मे सहायता दी है जिनमे कम से कम गति करके अधिक से अधिक उत्पादन किया जा सकता हो। इस प्रकार के यन्त्रो के डिजाइन बनाने मे समय गति अध्ययन से विशेष सहायता मिलती है। आधुनिक काल मे मनोवैज्ञानिको के द्वारा उपकरण डिजाइन से इतना अधिक लाभ हुआ है कि औद्योगिक मनोविज्ञान की एक शाखा इन्जीनियरिंग मनोविज्ञान के नाम से विकसित हो गई है।

उपकरण डिजाइन मे केवल उपकरण के आकार प्रकार का ही महत्व नही है बल्कि उद्योग या कारखाने मे मशीनों या उपकरणो को रखने की सुव्यवस्था का भी महत्व है। यह एक सामान्य बात है कि जिस कर्मचारी को अपने काम मे जिन-जिन उपकरणों, मशीनो और औजारो की आवश्यकता होती है वे उसके इतने निकट उपस्थित होने चाहिए कि वह हाथ बढाकर तुरन्त उन्हे उठा सके। इतना ही नही बल्कि औजार उसी क्रम से रक्खे जाने चाहिये जिस क्रम से उनकी आवश्यकता पडती है। इस व्यवस्था का डिजाइन भी मनोवैज्ञानिक ही उपस्थित करता है।

जिन मशीनो पर कर्मचारी को खडे रहकर काम करना पडता है उनमे उसे थकान अधिक होगी और इसलिये औद्योगिक निष्पत्ति पर भी प्रभाव पडेगा। इसलिये आजकल मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे उपकरण डिजाइन सुझाए है जिनमे व्यक्ति आराम से बैठकर काम कर सकता हो। शारीरिक थकान के अध्ययन से यह पता लगाया गया है कि शरीर की किस स्थिति मे कर्मचारी को थकान अधिक होती है। इस अध्ययन के द्वारा मनोवैज्ञानिको ने औद्योगिक यन्त्रो और उपकरणो के ऐसे

डिजाइन सुझाए हैं जिन पर काम करने में कर्मचारी की शारीरिक स्थिति ऐसी रहे जिससे वह कम से कम थकान में अधिक उत्पादन कर सके।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि औद्योगिक निष्पत्ति मे उपकरण डिजाइन का कितना अधिक महत्व है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त डिजाइन होने पर दुर्घटनायें कम होती हैं, थकान कम आती है, उत्साह बना रहता है और औद्योगिक निष्पत्ति मे वृद्धि होती है।

(७) **उचित आसन की व्यवस्था**—थकान कम करने का एक अन्य उपाय उचित आसन की व्यवस्था करना है। दफ्तरों और कारखानों मे जहां तक हो सके बैठकर काम होना चाहिए और बैठने की सीट ऐसी होनी चाहिए कि उससे आराम मिले। एक ओर वे इतनी आरामदेह न हों कि नींद आ जाए और दूसरी ओर वे कठोर भी न हों।

(८) **शोर पर नियन्त्रण**—थकान कम करने का एक उपाय व्यावसायिक परिस्थितियो मे कोलाहल पर नियन्त्रण करना है। दफ्तरों और कारखानों मे बाहर से आने वाले शोर को रोकने के लिए अनेक उपाय किये जा सकते हैं। दूसरी ओर अन्दर मशीनों के कारण उत्पन्न होने वाले शोर को कम करने के लिये भी उपाय किये जाने चाहियें। इस प्रकार व्यावसायिक परिस्थितियों मे कोलाहल जितना भी कम होगा कर्मचारियों की थकान भी उतनी ही कम होगी।

(९) **काम करने की स्वास्थ्यदायक परिस्थितियों की व्यवस्था**—यदि व्यावसायिक परिस्थितियाँ स्वास्थ्यदायक हैं तो उनमे काम करने से थकान कम होती है क्योंकि थकान का कर्मचारी के स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वास्थ्यदायक परिस्थितियो में स्वच्छ वायु, आवश्यक प्रकाश, कोलाहल का अभाव, समुचित तापमान, नमी की मात्रा पर नियन्त्रण, चिकित्सा की सुविधायें और आराम तथा भोजन की समुचित व्यवस्था इत्यादि हैं। ये सब कर्मचारी की थकान को दूर रखती हैं।

(१०) **औद्योगिक प्रशिक्षण का प्रबन्ध**—थकान कम करने का एक उपाय मशीनो के प्रयोग मे औद्योगिक प्रशिक्षण प्रदान करना है ताकि कर्मचारी उनको चलाने में कम थकान अनुभव करें।

(११) **पर्याप्त नींद की सुविधा**—अनेक व्यवसायो मे कर्मचारियों के लिये सोने की व्यवस्था करना जरूरी होता है। यदि सम्पूर्ण कार्यकाल मे आधे घण्टे के लिये भी उन्हे आरामदेह चारपाई पर सोने का अवसर मिल जाता है तो इससे थकान दूर रहती है। यह प्रबन्ध विशेषतया रात्रि की पाली में काम करने वाले कर्मचारियो के लिये अवश्य होना चाहिये।

(१२) **उच्च नीतिमत्ता बनाये रखना**—थकान कम करने का एक उपाय कर्मचारियों में उच्च नीतिमत्ता बनाये रखना है। इसमें अधिकारियों के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति, आत्म प्रेरित आज्ञाकारिता, सामूहिक अनुशासन, उत्साह, मानसिक सन्तोष और शान्ति तथा अधिकारियो के प्रति सम्मान और विश्वास के भाव सम्मिलित हैं। इनके होने पर थकान कम होती है।

(१३) सामाजिक वातावरण का अच्छा होना—थकान कम करने में कर्मचारी के सामाजिक परिवेश का भी महत्व है। यदि अधिकारियो और कर्मचारियो के सम्बन्ध अच्छे हैं तथा सामाजिक परिस्थितियां सहयोगपूर्ण और विश्वास को बढाने वाली है तो कर्मचारियों का उत्साह बना रहता है और थकान कम होती है।

(१४) थकान कम करने के विशेष उपाय—उपरोक्त उपायो के अतिरिक्त आजकल थकान कम करने के लिये कुछ विशेष उपाय अपनाये जाते है। उदाहरण के लिये अनेक कारखानों मे सगीत की व्यवस्था के द्वारा थकान कम करने का आयोजन किया गया है। काम करते समय गाने से भी कर्मचारियो की थकान दूर रहती है। आजकल इस दिशा मे बराबर नये-नये प्रयोग किये जा रहे हैं। कार्य परिवर्तन से कार्य मे रुचि बनी रहती है। तरह-तरह से कार्य को रोचक बनाने का प्रयास किया जाना चाहिये। औद्योगिक मनोविज्ञान के विकास के साथ-साथ भविष्य में औद्योगिक थकान दूर करने की ओर भी अधिक महत्वपूर्ण विधियां प्रकाश मे आने की सम्भावना है।

उद्योग में संगीत का प्रभाव

आजकल उद्योग के क्षेत्र में ऊब और उकताहट दूर करने के लिये एक सामान्य उपाय कार्य करते समय किसी न किसी प्रकार के सगीत की व्यवस्था करना है।

संगीत का उत्पादन पर प्रभाव

बी० ई० बेन्सन (B. E. Benson) ने उद्योग मे सगीत को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है। इस विषय मे इगलैंड मे सबसे पहले अध्ययन किये गये। यहां पर उकताहट दूर करने के लिये सगीत का प्रयोग किया गया। सामान्य यान्त्रिक कार्यों को करते समय सगीत बजाने से छ प्रतिशत उत्पादन अधिक हुआ। इस प्रकार संगीत के प्रभाव के दिनो से सगीत दिये जाने वाले दिनो के उत्पादन करने की तुलना मे स्पष्ट अन्तर दिखलाई पड़ा। यह देखा गया कि सगीत की अवधि का अधिक महत्व नही है। तीसरे पहर की तुलना मे प्रातः काल सगीत की व्यवस्था से अधिक लाभ होता है। जे० एफ० ह्यूम्स (J F. Humes)[11] ने उद्योग मे सगीत के महत्व के एक अध्ययन का उल्लेख किया है। एक रेडियो ट्यूब जोड़ने के कारखाने में तीव्र, मन्द और मिले-जुले संगीत के प्रोग्रामो का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन मे यह देखा गया कि तीव्र अथवा मन्द संगीत दिये जाने पर समय की हानि कम दिखलाई पडी। इसकी तुलना में सगीत के नितान्त अभाव में अथवा कभी तीव्र और कभी मन्द सगीत देने पर उत्पादन कम दिखलाई पडा।

उत्पादन के अतिरिक्त सगीत के कार्यक्रमों का कर्मचारियो की मानसिक स्थिति पर भी प्रभाव पड़ता है। डब्लू० ए० कैर (W. A. Kerr) ने औद्योगिक उत्पादन मे सगीत के प्रभाव के अध्ययन मे यह बतलाया कि सगीत से कर्मचारियो

11 J. F Humes, The Effect of Occupational Music on Scrappage in the manufacturing of Radio Tubes, *Jour, Appl. Psychol* (1941), 25, pp. 573—587.

की मानसिक स्थिति पर अनुकूल प्रभाव पडता है। एच० सी० स्मिथ (H. C. Smith) ने अपने अध्ययन मे यह दिखलाया कि कर्मचारियों की अभिवृत्तियों पर और औद्योगिक उत्पादन तथा दुर्घटनाओ की रोकथाम पर संगीत का अच्छा प्रभाव पडता है। भिन्न-भिन्न कार्यों में और भिन्न-भिन्न पालियों मे यह प्रभाव अलग-अलग देखा जाता है। इस सम्बन्ध मे एच० सी० स्मिथ ने विस्तारपूर्वक अध्ययन किया। इस अध्ययन के अनुसार संगीत की व्यवस्था से दिन की पाली मे ७ प्रतिशत और रात की पाली मे १७ प्रतिशत उत्पादन वृद्धि दिखलाई पडी। यह देखा गया कि संगीत से सबसे अधिक लाभ उन कार्यों मे होता है जिनमे पुनरावृत्ति के काम करने पडते थे। ये ऐसे काम थे जिन्हे करते समय बात की जा सकती थी। मैकघी (W. Mcghee) और जे० ई० गार्डनर (J. E Gardner)[12] ने अपने अध्ययनो मे यह दिखलाया कि संगीत की व्यवस्था से उत्पादन में कोई वृद्धि नही हुई। इन अध्ययनो मे जटिल कार्य करते समय संगीत की व्यवस्था की गई थी। इस जटिल कार्य मे निर्णय, विचार और सकल्प आदि की आवश्यकता पडती थी किन्तु उत्पादन में वृद्धि न होते हुए भी यह देखा गया कि कर्मचारियो का यह अनुमान था कि संगीत की व्यवस्था होने से उनका उत्पादन बढा है।

मानसिक स्थिति पर प्रभाव

संगीत का उकताहट पर सबसे अनुकूल प्रभाव पड़ता है। जहा उससे कुछ देर के लिये काम पर से ध्यान हट जाता है वहाँ ऐसा करने मे मस्तिष्क नही प्रयोग करना पडता। संगीत की व्यवस्था होने पर पुनरावृत्ति वाले कार्यों में भी रुचि बनी रहती है।

उकताहट पर प्रभाव

दुर्घटनाओ पर संगीत का क्या प्रभाव पड़ता है, इस सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण अध्ययन किये गये। सामान्य रूप से यह समझा जाता था कि चूंकि संगीत से कर्मचारी का ध्यान बटता है इसलिए इससे दुर्घटनायें बढनी चाहिए। यह बात उन कार्यों के विषय में ठीक भी है जहाँ पर बराबर ध्यान रखना पडता है किन्तु फिर कुछ अन्य काम ऐसे हैं जिनमे लगातार ध्यान देने की इतनी आवश्यकता नही होती। इन कामो मे संगीत की व्यवस्था से अच्छा ही प्रभाव पड़ता है। संगीत से मन को इधर-उधर जाने का अवसर मिलता है जिससे उकताहट और थकान कम होती है। मन के इधर-उधर जाने से तात्पर्य ऊंघना नही है। थकान के द्वारा उत्पन्न हुआ अनवधान संगीत के कारण उत्पन्न हुए अनवधान से भिन्न है। पहले प्रकार के अनवधान से दुर्घटनाए होने का खतरा होता है किन्तु दूसरे प्रकार के अनवधान के विषय में ऐसा नही है। उदाहरण के लिए कार चलाते समय बहुधा चालक का ध्यान इधर-उधर जाता

दुर्घटनाओं पर प्रभाव

12. W. Mcghee and J. E. Gardner, Music in a Complex Industrial Job, *Person Psychol* (1949), 2, pp. 405—417.

रहता है किन्तु जैसे ही उसके सामने कोई बाधा आ जाती है या दूर से कोई वाहन आने लगता है, वैसे ही तुरन्त उसका ध्यान वापस कार चलाने पर लौट आता है और ध्यान बटने के बावजूद दुर्घटना नही होती। दूसरी ओर मन के इधर-उधर जाने से कार चलाने के काम मे उकताहट नही पैदा होती। अस्तु, उद्योग की ऐसी परिस्थितियों मे जिनमे आवश्यकता पडने पर ध्यान शीघ्र वापस आ सकता है और इतने से ही काम चल जाता है, सगीत की व्यवस्था करने से कर्मचारियो मे प्रफुल्लता वनी रहती है और काम अधिक अच्छा होता है।

सक्षेप मे, यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक परिस्थितियो मे सगीत से अनुकूल प्रभाव पडता है। कर्मचारियों से पूछे जाने पर भी यही मालूम पडता है कि वे सगीत पसन्द करते है। जो एक दो प्रतिशत कर्मचारी सगीत के विरुद्ध भी होते है वे भी कुछ व्यक्तिगत कठिनाइयो के कारण ही ऐसी अभिवृत्ति रखते है अन्यथा ७५ प्रतिशत कर्मचारी सगीत का भारी समर्थन करते है। किस प्रकार के कार्य करते समय किस प्रकार का सगीत दिया जा सकता है और उसका स्वर कितना ऊँचा होना चाहिए यह अनुसधान का विषय है। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित बाते विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

उद्योग में संगीत के अनुकूल प्रभाव

(१) तीव्र स्वर की अपेक्षा मन्द स्वर का सगीत अधिक लाभदायक सिद्ध होता है।

(२) सगीत मे समय-समय पर परिवर्तन भी किया जाना चाहिए।

(३) स्वर सगीत की तुलना मे वाद्य सगीत कम ध्यान बँटाता है और अधिक सन्तोषजनक होता है।

(४) सगीत की व्यवस्था लगातार न होकर विशेष-विशेष अवसरो पर की जानी चाहिए। ये अवसर वे हैं जबकि थकान अत्यधिक होती है।

(५) दिन की पाली की तुलना मे रात की पाली मे सगीत की व्यवस्था अधिक लाभदायक होती है।

सारांश

थकान हमारे जीव की ठीक तरह काम करने की घटी हुई सामर्थ्य के साथ में अनुभूति भी होती है जो कि थकान की अनुभूति कहलाती है।

थकान के प्रकार—(१) शारीरिक थकान, (२) मानसिक थकान, (३) स्नायु सम्बन्धी थकान, (४) ऊब या बोरियत। थकान के इन प्रकारों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

थकान की कसौटियां—(१) थकान की अनुभूति, (२) पेशीगत दशा, (३) रासायनिक परिवर्तन, (४) स्नायविक शिथिलता, (५) रक्त रसायन में परिवर्तन, (६) मस्तिष्क की दशा मे परिवर्तन, (७) दुर्घटनाओ की संख्या में वृद्धि, (८) उत्पादन में कमी।

थकान के विभिन्न पहलू—(१) वस्तुगत् पहलू, (२) दैहिक पहलू, (३) मानसिक पहलू।

थकान का मापन—(१) वस्तुगत् या कर्मशालाभिलेख विधि, (२) शारीरिक विधियां, (३) मानसिक विधियां।

थकान के अर्गोग्राफीय अध्ययन—थकान के अर्गोग्राफीय अध्ययनों से अनेक निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं जिनसे उसकी प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। इन निष्कर्षों को औद्योगिक परिस्थितियों में लागू किया गया है जिससे काम और थकान के सन्तुलन में सहायता मिलती है। थकान सम्पूर्ण शरीर में होती है। उसमें स्वास्थ्य और पोषण का बड़ा महत्व होता है। थकान व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर भी निर्भर है। डब्लू० डब्लू० हैगार्ड, ए० जी० मैक्सरिक और ह० वोनमैन के अध्ययनों से यह मालूम पड़ता है कि उद्योग के क्षेत्र में अर्गोग्राफीय निष्कर्षों पर अमल करने से महत्वपूर्ण लाभ हुआ है।

थकान उत्पन्न करने वाली व्यावसायिक परिस्थितियां—(१) लम्बी कार्यावधि, (२) विश्राम काल की अनुपस्थिति, (३) अनुपयुक्त तापमान, (४) स्वच्छ हवा का अभाव, (५) प्रकाश की अपर्याप्त व्यवस्था, (६) मशीन की बनावट, (७) उचित आसन का अभाव, (८) अत्यधिक शोर, (९) अस्वास्थ्यकर परिस्थितियां, (१०) आवश्यक प्रशिक्षण का अभाव (११) नींद की कमी, (१२) निम्न नीतिमत्ता, (१३) सामाजिक वातावरण के दोष।

थकान कम करने के उपाय—(१) कार्यावधि को कम करना, (२) विश्राम काल की व्यवस्था, (३) उपयुक्त तापमान की व्यवस्था, (४) स्वच्छ वायु का प्रबन्ध, (५) समुचित और पर्याप्त प्रकाश की व्यवस्था, (६) मशीनों की बनावट में सुधार, (७) उचित आसन की व्यवस्था, (८) शोर पर नियन्त्रण, (९) काम करने की स्वास्थ्यदायक परिस्थितियों की व्यवस्था, (१०) औद्योगिक प्रशिक्षण का प्रबन्ध, (११) पर्याप्त नींद की सुविधा, (१२) उच्च नीतिमत्ता बनाये रखना, (१३) सामाजिक वातावरण का अच्छा होना, (१४) थकान कम करने के विशेष उपाय। कारखानों में कार्य काल में संगीत की व्यवस्था करने से थकान कम होती है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. वे व्यावसायिक परिस्थितियां क्या हैं जिनमें थकान उत्पन्न होती है? थकान को कम करने के लिये क्या उपाय करने चाहियें?

What are the Industrial circumstances in which fatigue is produced? What measures should be adopted to minimize fatigue? (Agra 1968)

प्रश्न २. वे व्यावसायिक परिस्थितियां क्या हैं जिनमें थकान उत्पन्न होती है? शारीरिक तथा मानसिक थकान में भेद बतलाइये और उनका सम्बन्ध समझाइये।

What are the industrial circumstances in which fatigue is produced ? Distinguish between physical and mental fatigue and point out the relation between them. (Agra 1966)

प्रश्न ३. थकान की कसौटियां क्या हैं ? व्यावसायिक क्षेत्र मे थकान किस प्रकार घटाई जा सकती है ?

What are the criteria of fatigue ? How can we diminish fatigue in the industrial field ? (Agra 1968)

प्रश्न ४ संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—अर्गोग्राफ।

Write short note on—Ergograph. (Agra 1965)

प्रश्न ५ अर्गलेखीय अध्ययनों के औद्योगिक उपयोगों का वर्णन कीजिये।

Indicate the industrial application of ergographic studies of work and fatigue. (Vikram 1968)

प्रश्न ६ कार्य और थकावट के अर्गोग्राफीय अध्ययनों द्वारा प्राप्त प्रमुख निष्कर्ष क्या हैं ? उद्योग के लिये इनके महत्व पर विचार कीजिये।

What are the main findings of ergographic studies of work and fatigue? Consider their implication for industry. (Vikram 1967)

प्रश्न ७ व्यवसाय कार्य रेखा चित्र पर विश्राम काल का क्या प्रभाव पड़ता है ? इस प्रभाव को किस प्रकार मापा जा सकता है।

What is the effect of rest pause on the industrial work curve ? How can such an effect be measured ? (Agra 1967)

प्रश्न ८. मध्यावकाश किसे कहते हैं ? मध्यावकाश किस समय होने चाहियें ? औद्योगिक उत्पादन पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है ?

What are rest pauses ? When should rest pauses be introduced ? What is their effect on Industrial production ? (Agra 1962, 1966)

प्रश्न ९. औद्योगिक थकान को कम करने में विश्राम विराम का कार्य परीक्षण कीजिये। थकान को कम करने में क्या आप अन्य ढंग जानते हैं ? वर्णन कीजिये।

Examine the function of rest pauses in reducing industrial fatigue. Do you know some other ways of eliminating fatigue ? Describe them (Agra 1960)

प्रश्न १०. आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिये—कार्यकाल मे संगीत का महत्व।

Write critical note on—Importance of music during work. (Agra 1964)

प्रश्न ११. निम्नांकित पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिये—संगीत और कार्य निष्पादन।

Write critical note on—Music and job performance (Agra 1968)

१५

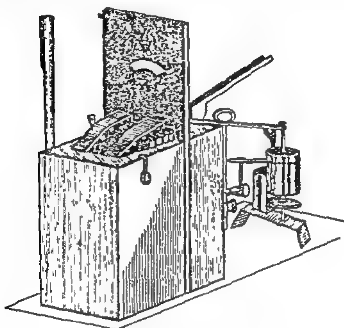
ऊब और उकताहट
(Boredom and Monotony)

ऊब और उकताहट की व्याख्या

उद्योग के क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक थकान के प्रसग में शारीरिक और मानसिक थकान के अतिरिक्त ऊब (Boredom) और उकताहट (Monotony) का प्रयोग किया जाता है। उकताहट वह मानसिक स्थिति है जो किसी कार्य को लम्बे समय तक बार-बार दोहराने से उत्पन्न होती है। दूसरी ओर ऊब वह मानसिक स्थिति है जिसमे विशेष कार्य के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति और अनुभूति प्रतिकूल दिखलाई पडती हैं और वह उस कार्य को नही करना चाहता। ऊब और उकताहट दोनो ही थकान बढाती है किन्तु इनमे से कोई भी शारीरिक थकान का परिणाम नही है। ये दोनो ही मानसिक अभिवृत्ति का परिणाम है। ऊब मे कर्मचारी के व्यक्तित्व, अभिवृत्ति, भावावस्था और दिये हुये काम के प्रत्यक्ष महत्वपूर्ण कारक है। इनके परिवर्तन से जो कार्य एक कर्मचारी को ऊबाने वाला लगता है उसमे दूसरे कर्मचारी को कोई ऊब नही होती। कुछ लोग दोहराये जाने वाले कार्यों मे जल्दी ऊब जाते है किन्तु अन्य लोग उकताहट के कार्यों मे शीघ्र अनुकूलन कर लेते हैं। अस्तु, औद्योगिक परिस्थितियो मे कौन सा काम ऊबाने वाला है और कौनसा नही इस विषय मे कर्मचारियो मे भिन्न-भिन्न मत दिखलाई पडते हैं। इस सम्बन्ध मे व्याट (S. Wyatt), लैंगडन (J. H Langdon) और स्टॉक (F. G. L. Stock) के एक अध्ययन से महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रकाश मे आये।[1] इस अध्ययन मे दस व्यक्ति और पाँच प्रकार के कार्य थे। इनमे से प्रत्येक ने एक कार्य पर एक महीने काम किया और फिर उनसे यह पूछा गया कि भिन्न-भिन्न कार्य मे ऊब की मात्रा कितनी है। जिस कार्य मे ऊब की मात्रा बिल्कुल नही थी उसे शून्य देना था और जिस कार्य मे ऊब बराबर बनी रहती उसे सबसे अधिक अर्थात् पाँच अंक देने थे। कर्मचारियो के द्वारा दिये गये मूल्यांकन मे यह देखा गया कि दो कार्यों के विषय मे वे सब एक मत से उन्हे

1. S. Wyatt, J. N. Langdon and F. C. L. Stock, *Fatigue and Boredom in Repetitive work*, Indust. Health Res. Bd, 1937. Rep No. 77.

ऊबाने वाला मानते थे केवल कुछ लोगों ने एक को और कुछ लोगों ने दूसरे को सबसे अधिक अंक दिये किन्तु इसके अतिरिक्त उनमें कोई सहमति दिखलाई नहीं पड़ी। पाँचों कार्यों में औसत मूल्याकन ४·२, २·४, २·३, १·७ और १·७ था। इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने ऊब का भिन्न-भिन्न मूल्याकन किया। अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों ने यह बतलाया कि अधिकतर ऊब उन कर्मचारियों में दिखलाई पड़ती है जो उच्च



चित्र १६—उकताहट की प्रवृत्ति मापने के लिये प्रयोग किया जाने वाला यन्त्र

बुद्धि वाले हैं और बहिर्मुखी प्रवृति रखते हैं किन्तु यह बात अन्य प्रयोगों से सिद्ध नहीं हुई है।

ऊब और उकताहट के कारण

ऊब और उकताहट किन कारणों से होती है, इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न अध्ययनों से भिन्न-भिन्न कारकों पर प्रकाश पड़ा है। संक्षेप में इस प्रकार के कारण निम्नलिखित हैं—

(१) **कर्मचारी की व्यक्तिगत भिन्नता**—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, ऊब और उकताहट का कर्मचारी की व्यक्तिगत विशेषताओं से महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। साधारणतया यह देखा जाता है कि जो काम कुछ लोगों को अरोचक लगते हैं उनमें दूसरों को कुछ भी अरोचकता नहीं मालूम पड़ती। मुंस्टरवर्ग ने कालिज के

४०० छात्रों पर प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला कि उकताहट की अनुभूति विशेष प्रकार के कार्य पर नहीं वल्कि व्यक्ति के विन्यास पर निर्भर होती है। भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों मे रुचि लेते हैं और इससे उनकी उकताहट मे अन्तर देखा जा सकता है।

(२) **कर्मचारी की बुद्धि**—व्यक्तिगत विभिन्नताओं मे बुद्धि का ऊब और उकताहट से महत्वपूर्ण सम्बन्ध देखा जाता है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, अधिक बुद्धिमान व्यक्ति एक से काम से शीघ्र ऊब जाते हैं। दूसरी ओर कम बुद्धिमान व्यक्ति अपने कार्य से अधिक अच्छा समायोजन करते दिखलाई पड़ते हैं।

इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित प्रयोग महत्वपूर्ण हैं—

१. **थामसन के अध्ययन**—थामसन (Thomson) ने ३२ व्यक्तियों पर प्रयोग करके यह बतलाया कि बुद्धि का उकताहट से कोई सम्बन्ध नहीं है।

२. **वाइटल्स के अध्ययन**—वाइटल्स (Viteles) ने वेतन कार्यालय में कार्य करने वाली लड़कियों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि उच्च बुद्धि वाली लड़कियाँ काम मे अधिक उकताहट अनुभव करती हैं और इसलिये उनमे काम छोड़कर भाग जाने वालो की संख्या अधिक पाई जाती है।

३. **कार्नहाउजर के प्रयोग**—कार्नहाउजर (A. W. Kornhauser) ने दफ्तर के कर्मचारियों पर अध्ययन करके वाइटल्स के मत का समर्थन किया। उसके अनुसार उच्च बुद्धि वाले कर्मचारी शीघ्र उकताहट अनुभव करते हैं और काम छोड़कर भाग जाते हैं। दूसरी ओर कम बुद्धि वाले कर्मचारी अपने कार्य मे रुचि लेते हैं और काम नहीं छोड़ते।

४. **बर्नेट के अध्ययन**—बर्नेट (J. Burnett) ने चार लड़कियों पर प्रयोग करके उपरोक्त मत का समर्थन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि अधिक बुद्धि वाली लड़कियों की तुलना में औसत बुद्धि वाली लड़कियाँ अधिक अच्छा उत्पादन कार्य करती हैं।

५. **व्याट, फ्रेजर, और स्टॉक के अध्ययन**—व्याट, फ्रेजर और स्टॉक (Wyatt, Fraser and Stock) ने भी उपरोक्त मत का समर्थन किया। उनके अध्ययन में यह देखा गया कि सामान्य बुद्धि और अधिक बुद्धि वाली लड़कियों की तुलना में कम बुद्धि वाली लड़कियाँ अपने कार्य मे अधिक रुचि लेती हैं। पाऊण्ड (A. Pound) ने अपनी पुस्तक The Iron Man in Industry मे लिखा है, "अनेक व्यावहारिक प्रयोजनो के लिए नियमितता और आज्ञाकारिता की आदतो मे प्रशिक्षित मन्द बुद्धि व्यक्ति उच्च मानसिक दशा वाले व्यक्ति की तुलना मे अच्छे उत्पादन के लिये अपने मालिक को अधिक मूल्यवान सिद्ध होता है।"[2]

2. "A morone trained in habits of doing regulary and obedience, is for many practical purposes, more valuable to his boss for good production than one in higher mental state." —A. Pound.

(३) कार्य के प्रति अभिवृत्ति—अनेक अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि कार्य के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति रखने वाले कर्मचारी शीघ्र उकताहट अनुभव करते हैं। इनकी तुलना मे जो लोग कार्य के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति रखते हैं वे लम्बे समय तक उसमे ध्यान लगा सकते हैं।

(४) मन भर जाना (Satiation)—कुछ लोगो का पुनरावृत्ति के काम से शीघ्र मन भर जाता है और वे उस काम को आगे नही करना चाहते। ज्यों ज्यों उनका मन भरता जाता है त्यो त्यो वे काम की ओर कम ध्यान देने लगते हैं और कार्य की मात्रा और गुण घटता जाता है। मन भर जाना एक मनोवैज्ञानिक दशा है, इसमे शारीरिक थकान बहुत कम होती है। इस सम्बन्ध में कालिज के विद्यार्थियो पर कार्स्टन (A. Karsten) द्वारा किये गये प्रयोगो में जब वे दिया हुआ कार्य अत्यधिक लिखने से अत्यधिक ऊब चुके थे तो एक पृष्ठ पर उन्हें उनके नाम लिखने के लिए दिये गये और देखा गया कि इसमें उन्हे कोई कठिनाई नही हुई। कवितायें याद करने के प्रयोगो मे जो व्यक्ति आगे कुछ भी बोलना नहीं चाहते थे उन्हे बात करने का अवसर मिलने पर वे लम्बे समय तक बातचीत में उलझे रहे और इसमे उन्हे कोई कष्ट अनुभव नही हुआ। इन दोनो ही उदाहरणों मे शरीर की उन्ही पेशियो पर जोर पड रहा था जो उकताहट के कारण थकी हुई मालूम पडती थी किन्तु जैसे ही काम को बदल दिया गया उकताहट दूर हो गयी तथा वे ही पेशियाँ फिर से काम करने लगी। स्पष्ट है कि कार्य अवरोध पेशियो में थकान के कारण नही बल्कि मन भर जाने की मनोवैज्ञानिक स्थिति के कारण था। एक से काम से मन भर जाने का अर्थ थकान नही है, इस बात का पता इससे भी चलता है कि परस्पर जगह बदल लेने से वे ही कर्मचारी और अधिक कार्य कर सके जो थकान अनुभव कर रहे थे।

(५) प्रगति का अनुभव न होना—अनेक प्रयोगो से यह मालूम हुआ है कि यदि कर्मचारियो को यह पता चलता रहे कि वे कितना काम कर चुके है तो उनमे उकताहट शीघ्र नही आती बल्कि जैसे-जैसे काम मे प्रगति पता चलती रहती है वैसे-वैसे लक्ष्य के निकट आने के कारण उनका काम करने का उत्साह बढ़ता जाता है और कार्य की गति तीव्र हो जाती है। जिन कामों से कोई लक्ष्य प्राप्त होना नही दिखलाई पडता अथवा जिनका कोई अन्त नजर नहीं आता उनमे व्यक्ति का शीघ्र ही मन भर जाता है। अस्तु, कार्य करने मे छोटे-छोटे तात्कालिक लक्ष्य बनाना उपयुक्त होता है। दिन का काम समाप्त करना भी लक्ष्य हो सकता है और उसको पूरा करने के लिए दिन के अन्त मे कार्य की गति तीव्र दिखलाई पडती है। लक्ष्य पर पहुंचने का अनुभव बहुत कुछ व्यक्ति की अभिवृत्ति पर भी निर्भर करता है। प्रतिकूल अभिवृत्ति होने पर लक्ष्य पर पहुंचने की अनुभूति कम होती है। यदि कर्मचारियों को काम के बारे मे समझाया जाय और यह अनुभव करा दिया जाए कि कार्यालय या

कारखाने मे वे कितना महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं तो इससे उन्हें काम में उकताहट कम होती है।

(६) **अन्य शीलगुणों का प्रभाव**—उपरोक्त व्यक्तिगत कारकों के अतिरिक्त कर्मचारियों के कुछ अन्य शीलगुण भी उकताहट पर प्रभाव डालते हैं। इनमे ध्यान का झुकाव, संवेगात्मक स्थिति, स्वभाव की विशेषतायें तथा भावात्मक स्थिति का विशेष महत्व है। इनके अनुकूल होने से विशेष काम मे उकताहट का अनुभव कम होता है। यदि कार्य की प्रगति इनके अनुकूल नही है तो व्यक्ति शीघ्र अपने काम से ऊब जाता है।

(७) **कार्य की अपूर्णता की अनुभूति**—एक कर्मचारी आखिरी साँसें गिन रहा था। उससे यह पूछा गया कि वह कौन सी आखिरी इच्छा पूरी करना चाहता है। उसने कहा कि मेरे पास एक बोर्ड लाओ जिसमे आधे पेच कसे हुये हों और मुझे पेचों को पूरा कस लेने दो। यह व्यक्ति जीवन भर कारखाने में पेचो को आधे ही कसने का काम करता और उसके मन मे सदैव यह इच्छा बनी रहती थी कि वह पेच कसने के काम को पूरा करे। अनेक अध्ययनों में यह देखा गया है कि यदि कर्मचारी को उसका काम पूरा नही करने दिया जाता तो वह अत्यन्त असन्तुष्ट हो जाता है। एक फोरमैन ने एक कर्मचारी से तुरन्त हाथ का काम छोड़ देने को कहा। कर्मचारी काम को पूरा किए बगैर नही छोड़ना चाहता था। उसने काम से हटने से इन्कार किया। फोरमैन ने अपनी सत्ता का प्रयोग करते हुए कर्मचारी को डाँटकर तुरन्त अपनी आज्ञा पालन करने का आदेश दिया। बात बढ़ गयी और कर्मचारी ने फोरमैन को धक्का दे दिया। फोरमैन एक मशीन से जा टकराया और मारा गया। इस घटना मे प्रारम्भ मे केवल यही एक बात थी कि फोरमैन कर्मचारी को काम को पूरा किए बगैर काम से हटाना चाहता था। इसी तरह बहुधा यह देखा जाता है कि काम का दिन खत्म होने से कुछ समय पहले कर्मचारी नया काम शुरू करने को तैयार नही होते क्योकि वे यह जानते हैं कि यह काम उन्हे अधूरा ही छोड़ना पड़ेगा और काम को अधूरा छोड़ना मानव मनोविज्ञान के विरुद्ध है। अस्तु, ऐसी परिस्थिति मे काम से इकार करने को बेईमानी, उद्दण्डता या स्वामी भक्ति का अभाव नही समझा जाना चाहिए। मनुष्य मे कार्य को पूरा करने की स्वाभाविक प्रेरणा है और उस प्रेरणा मे बाधा पड़ने से वह सन्तुलन खो बैठता है। इस तथ्य की पुष्टि अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगो से हो चुकी है। अनेक प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि व्यक्तियों में सबसे पहले अपूर्ण कार्य को पूरा करने की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। कारखाने मे आकर कर्मचारी सबसे पहले पिछले दिन के छूटे हुए काम को पूरा करता है और तब किसी दूसरे काम मे लगता है। कार्य करने मे ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति बन जाती है कि व्यक्ति उसे पूरा करके ही छोड़ना चाहता है। यह प्रेरणा भिन्न भिन्न कार्यों मे और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों मे भिन्न-भिन्न मात्रा मे हो सकती है। कार्य को पूर्ण किए जाने का अवसर देना कार्य सन्तोष (**Job satisfaction**) में

एक महत्वपूर्ण तत्व है। कार्य को पूरा करने की यह प्रवृत्ति उन कार्यों में विशेष रूप से देखी जाती है जो सवेगों को प्रभावित करते हैं भले ही वे रुचिकर हों या अरुचिकर हों। किन्तु यदि कर्मचारी कार्य की ओर से उदासीन है तो उसमें कार्य को पूरा करने की प्रेरणा नही दिखलाई देगी। कार्य को पूरा करने की प्रेरणा के कारण ही व्यक्ति कार्य के अन्त मे तेजी से काम करते दिखलाई पडते है। कार्य को पूरा करने की प्रवृत्ति का उकताहट पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। इस प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति काम से नहीं उकताता। इस प्रकार यह प्रवृत्ति प्रेरणा उत्पन्न करने के कारण ऊब और उकताहट के विरुद्ध है। उद्योग की परिस्थिति मे व्यक्तियो मे उनके कार्य भाग का बँटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि हर एक को अपना कार्य पूरा करने का पूरा-पूरा अवसर मिले। इससे कार्य मे प्रेरणा बढेगी और उकताहट कम होगी।

(८) **कार्य की दशायें**—ऊब और उकताहट उत्पन्न करने मे उपरोक्त व्यक्तिगत कारको के विवेचन से यह नही समझा जाना चाहिए कि कारखाने या कार्यालय की बाहरी परिस्थितियों का उकताहट पर कोई प्रभाव नही पडता। सच तो यह है कि कारखाने का मालिक उकताहट कम करने के लिए जितना अधिक कार्य की बाहरी दशाओ मे परिवर्तन कर सकता है उतना कर्मचारी की आन्तरिक दशा पर नियन्त्रण नही कर सकता। कार्य की दशाओं मे उपयुक्त परिवर्तन कर देने से उकताहट कम होती है और उत्पादन बढता है। इस प्रकार की दशाओ मे महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं—

(क) **विश्राम काल की व्यवस्था**—विश्राम काल के अभाव मे उकताहट बढती है। मेयो के अध्ययनो मे एक कपडा मिल के कर्मचारियो मे उकताहट देखी गई क्योकि उन्हे काम के घण्टो के बीच विश्राम काल नही मिलता था। अब इन कर्मचारियो के लिए विश्राम काल की व्यवस्था की गयी तो उनमे थकान और उकताहट बहुत कम देखी गयी। मेयो के इस प्रयोग के निष्कर्षों का अन्य मनोवैज्ञानिको के प्रयोगों से भी समर्थन हुआ है।

(ख) **वेतन व्यवस्था**—कार्यालय की वेतन व्यवस्था का कर्मचारियो की रुचि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। यदि वेतन ठीक दर से और सही समय पर नही मिलता तो कर्मचारी असन्तुष्ट रहते हैं और कार्य में उकताहट अनुभव करते हैं। शाज के अध्ययनो मे यह देखा गया कि कर्मचारी को पूरा वेतन मिलने पर उसमें उकताहट कम होती है और उत्पादन बढता है।

(ग) **कार्य विधि**—व्याट, फ्रेजर और स्टाक ने सिग्रेट बक्स बनाने वाली फैक्ट्री में तीन लड़कियों की कार्य विधि का अध्ययन किया। इनमे एक लडकी को तीसरी लडकी से तिगुना कार्य करना पड़ता था इसलिए वे अपनी स्थिति परस्पर बदल लिया करती थी। वैज्ञानिकों ने दिन भर एक लडकी से एक ही स्थिति मे कार्य कराने की अपेक्षा तीनो लड़कियो की स्थिति को दिनभर मे छः बार परिवर्तित किया।

इससे प्रत्येक लडकी को प्रत्येक दिन बराबर परिश्रम करना पडा। परिणाम यह हुआ कि उकताहट समाप्त हो गयी और उत्पादन में दस प्रतिशत वृद्धि दिखलायी पडी।

(९) **कार्य का स्वरूप**—उकताहट का कारण कार्य का स्वरूप भी है। जिन कामों में बराबर समरूपता दिखलायी पडती है उनमे कर्मचारी शीघ्र ही ऊब जाता है। दूसरी ओर यदि कार्य मे विविधता बनाए रखी जाती है तो कर्मचारियो की रुचि बनी रहती है। इस सम्बन्ध मे अनेक प्रयोगो से उपरोक्त मत की पुष्टि हुई है। व्याट और फ्रेंजर के प्रयोगो मे यह देखा गया कि छः लडकियो को साबुन बाँधने, रूमाल की तह लगाने और साईकिल की चैन को इकट्ठा करने इत्यादि अनेक कामो को करने का अवसर दिया जाने पर उकताहट कम हुयी और उत्पादन बढा।

(१०) **सामाजिक कारक**—चूँकि कर्मचारी सामाजिक परिस्थिति मे कार्य करता है और इस परिस्थिति का उसकी मानसिक स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है इसलिए उकताहट बहुत कुछ सामाजिक कारको पर निर्भर होती है। यदि कार्यालय मे अधिकारियो और कर्मचारियो का परस्पर व्यवहार सहयोगपूर्ण और प्रफुल्लता बनाये रहने वाला हो तो उकताहट दूर होती रहती है और काम मे मन लगा रहता है। जहाँ तक काम मे बाधा न पडे वहाँ तक कर्मचारियों को काम करते हुए आपस मे बात करने और हँसी मजाक करने का अवसर दिया जाना चाहिए। इससे उनकी काम मे रुचि बनी रहती है। स्त्रियों और पुरुष कर्मचारियो के साथ-साथ काम करने से भी उकताहट दूर होती है और काम मे रुचि बनी रहती है। इसके विरुद्ध यदि कार्यालय मे वातावरण इस प्रकार का है कि अधिकारी कर्मचारियों पर व्यर्थ का रोब जमाते हैं और उन्हे आपस मे बोलने का बिल्कुल अवसर नही मिलता तो वे काम से ऊब जाते है और उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

उकताहट दूर करने के उपाय

आजकल औद्योगिक मनोविज्ञान मे ऊब और उकताहट दूर करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिक उपाय खोजे गये है। चूँकि उकताहट कार्य की प्रवृत्ति और कर्मचारी की व्यक्तिगत विभिन्नताओ पर निर्भर होती है इसलिए भिन्न-भिन्न कार्यों मे उकताहट दूर करने के लिए अलग-अलग उपाय अपनाये जाते हैं। फिर भी सामान्य रूप से निम्नलिखित उपाय उकताहट दूर करने मे अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं—

(१) **कार्य विनिमय (Exchanging jobs)**—उकताहट दूर करने का सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपाय कर्मचारियो का परस्पर कार्य बदल लेना है। चूँकि भिन्न-भिन्न कार्यो मे भिन्न-भिन्न पेशियो पर जोर पडता है इसलिए स्थान बदल लेने से शरीर को भी आराम का अवसर मिल जाता है। इसी तरह कार्य बदल लेने से कार्य मे नवीनता बनी रहती है और उकताहट नही होती। कार्य बदलने का एक अन्य परिणाम यह है कि कार्य से मन नही भरता। फिर, भिन्न-भिन्न कार्यो से व्यक्ति

को भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभव करने का अवसर मिलता है जबकि एक ही प्रकार का कार्य रोज-रोज करने से एक ही प्रकार के अनुभव होते हैं। कार्य विनिमय के अतिरिक्त कर्मचारी को एक ही कार्य को अनेक प्रकार से करने की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। इससे शारीरिक और मानसिक थकान नहीं होती और कार्य में रुचि बनी रहती है। टेलीफोन के दफ्तर में काम करने वाली लड़कियों के विषय में यह देखा गया कि जब उन्हें परस्पर काम बदल लेने का अवसर दिया गया तो नीतिमत्ता बढ़ी, उत्पादन बढ़ा और उकताहट की शिकायत कम हुई। जे० आर० पी० फ्रेंच (J. R. P. French) ने अपने अध्ययनों में यह दिखलाया कि कार्य विनिमय से नीतिमत्ता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इस अध्ययन में कार्य करने वाली लड़कियों को कार्य की गति और विधि को बदलने का अवसर दिया गया था।

(२) **कार्य को व्यापक चित्र से सम्बन्धित करना** (Relating the Job to the Larger Picture)—कुछ लोग अपने काम में इसलिए भी ऊब जाते हैं क्योंकि उनके मन में उनका कार्य व्यापक चित्र से नहीं जुड़ा होता। यदि तश्तरियाँ साफ करने में कोई स्त्री प्रत्येक तश्तरी को केवल दूसरी तश्तरी मात्र समझती है तो वह अपने काम से शीघ्र ही उकता जाएगी। मायर (Norman R. F. Maier) ने एक ऐसे मन्द बुद्धि लड़के का वर्णन किया है जो कितने ही मेहमान आने पर भी घर की सारी तश्तरियों को स्वयं ही साफ करता था।[3] चूँकि परिवार में पहले ही पन्द्रह सदस्य थे इसलिए स्वभावतया उसे कार्य में ऊब जाना चाहिए था किन्तु इस लड़के ने इस कार्य में कभी किसी से सहायता नहीं चाही। वास्तव में उसके लिए प्रत्येक तश्तरी एक व्यक्ति थी और वह उसको उस पर बने हुए किसी न किसी चिन्ह से पहचानता था। वे सब उसकी दोस्त थीं और वह उनके गन्दे चेहरों को साफ करने में प्रसन्नता अनुभव करता था। वह उनमें से कुछ को दूसरों से अधिक पसन्द करता और उन्हें विशेष स्थान पर रखता। उसे कार्य करने में रुचि थी क्योंकि उसे लगता मानो वह तेजी से एक के बाद दूसरे मित्र से मिल रहा हो।

दफ्तरों में कार्य करने वाली लड़कियों के बारे में यह देखा जाता है कि यदि उन्हें कार्य में कोई रुचि नहीं होती तो वे शीघ्र उकता जाती हैं। दूसरी ओर यदि टाइप करने वाले कर्मचारी को पत्रों में लिखी बातों में भी रुचि हो या वह कम्पनी के पत्र व्यवहार में रुचि लेता हो तो इससे उसे कार्य में उकताहट नहीं होगी। अस्तु, कर्मचारियों में कार्य के विषय में व्यापक जानकारी फैलायी जानी चाहिए। जब तक यह बात नहीं होगी तब तक वे कार्य का महत्त्व नहीं समझते। कार्य का महत्त्व पता होने पर उनका कार्य व्यापक चित्र से जुड़ जाता है जिससे वे अपना महत्त्व समझने लगते हैं, उत्तरदायित्व की भावना बढ़ जाती है और काम भी अधिक अच्छा होता है। कभी-कभी कारखाने में कर्मचारी को काम समझाये जाने की अपेक्षा उसको काम करने का और केवल अपने काम से ही मतलब रखने का हुक्म दिया जाता है। इसका

3. Norman R. F. Maier, *Psychology in Industry*, Greorge G. Harrap P. Co, London (1955), p. 477

परिणाम यह होता है कि कर्मचारी इस बात पर कोई ध्यान नही देता है कि उसका काम अच्छा हो रहा है या बुरा और वह कार्य करने की प्रणाली मे उन्नति करने का कोई प्रयास नही करता।

(३) उपलक्ष्यों का प्रभाव (Use of sub-goals)—उकताहट दूर रखने के लिए कार्य मे ऐसे उपलक्ष्य बनाये जाने चाहिएँ जिनको थोड़े ही समय मे पूरा किया जा सकता हो। ऐसा एक लक्ष्य दिन भर का काम पूरा करना होता है और ज्यो-ज्यो दिन बीतता जाता है कर्मचारी को प्रगति का अनुभव होता जाता है। यदि लक्ष्य बहुत दूर या बहुत समय बाद प्राप्त होने वाले होते हैं तो उनसे यह काम नही होता। दिन भर का काम समाप्त करने के लक्ष्य के अतिरिक्त विश्राम काल भी उपलक्ष्य बन सकते हैं और कर्मचारी काम को इस उत्साह मे निवटाता रहता है कि शीघ्र ही उसे आराम करने का अवसर मिलेगा। बहुधा यह देखा जाता है कि विश्राम काल आने से पहले कार्य की गति तीव्र हो जाती है। इस प्रकार विश्राम काल से आराम भी मिलता है और उकताहट भी दूर होती है।

उपलक्ष्य उत्पन्न करने का एक अन्य उपाय काम को बडी-बडी इकाइयों मे बांटना है। उदाहरण के लिये कोई पुस्तक पढने मे यदि हम अपने सामने पूरी पुस्तक पढ जाने का लक्ष्य न रखकर केवल एक अध्याय पढ जाने का लक्ष्य रखते हैं तो एक-एक अध्याय करके पुस्तक तो समाप्त हो ही जाती है किन्तु इससे लम्बे समय तक कार्य मे रूचि बनी रहती है और उकताहट नही होती। इसके अतिरिक्त ज्यों-ज्यो पाठक एक अध्याय से दूसरे अध्याय पर जाते रहते है त्यो-त्यो उन्हे प्रगति का अनुभव होता है।

उद्योग मे लक्ष्य प्राप्ति का अनुभव बढाने का एक उपाय यह है कि भिन्न-भिन्न कर्मचारियो मे उत्पादन की इकाइयां बाट दी जायें और प्रत्येक अपनी इकाई को पूरा करने का प्रयास करे। इस प्रकार उत्पादन को लक्ष्य बना देने से उत्पादन बढता है। उत्पादन की इकाई दो विश्राम कालो के बीच मे होती है और इस इकाई को पूरा करने के उत्साह से उकताहट दूर रहती है।

(४) क्रमानुसार कार्य की विधियां और स्वचालित कार्य आदतें (Use of Pacing Method and Automatic work Habits)—मनोवैज्ञानिक विश्लेषणो से यह ज्ञात हुआ है कि दोहराए जाने वाले कार्य मे उकताहट पुनरावृत्ति से नहीं होती बल्कि एक सा काम करने के अनुभव से होती है। यदि उसी कार्य को करते समय यह अनुभूति न रहे तो उकताहट नही होती। आधुनिक काल मे पुनरावृत्ति वाले कार्य को यथासम्भव स्वचालित (Automatic) बनाने का प्रयास किया जाता है। इससे कार्य स्वाभाविक बन जाता है और अपने आप होता रहता है जब कि कर्मचारी मानसिक रूप से इधर उधर विचरण कर सकता है। ऐसे काम मे उकताहट नही होती। उदाहरण के लिये चलने मे बातें करते जाने से दूरी और समय पता

नही चलते और उकताहट नही होती, किन्तु यदि कोई व्यक्ति बराबर चलने की क्रियाओं पर ध्यान दे तो उसे यह कार्य अत्यधिक ऊबाने वाला प्रतीत होगा । अस्तु, जो कार्य चलने-फिरने जैसे स्वचालित कार्य हैं उनमें कर्मचारियो को वार्तालाप करने और दिवास्वप्न देखने की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए । अनेक अध्ययनो से यह मालूम हुआ है कि दिवास्वप्न देखने की स्वतन्त्रता होने पर उकताहट नही होती । किन्तु दिवास्वप्न देखने से तात्पर्य यह नही है कि कर्मचारी काम पर ऊघने लगे ।

पुनरावृत्ति वाले कार्य को तालमय (Rhythmic) बनाने से भी कार्य अधिक अच्छा देखा जाता है । बहुधा देखा जाता है कि एक साथ मिलकर एक सा काम करने वाले मजदूर ताल देकर काम करते हैं । सडक कूटने वाले और भारी बोझा ढोने वाले मजदूरों के बारे मे यह बात देखी जा सकती है । कदम मिलाकर चलने से अलग-अलग चलने की तुलना मे थकान और उकताहट कम होती है ।

(५) **औद्योगिक सगीत की व्यवस्था** (Provision of Industrial Music) उकताहट दूर करने का एक अन्य उपाय उद्योगों मे सगीत की व्यवस्था करना है । इससे विशेषतया उन कामो में अधिक लाभ देखा गया है जिनमें अधिक ध्यान लगाने की आवश्यकता नही होती । स्वर सगीत की तुलना मे वाद्य सगीत अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ है ।

(६) **कार्य पूर्ति के अनुभवो की वृद्धि** (Increase of Experiences of Completion)—कार्य पूर्ति का अनुभव कार्य मे स्वाभाविक प्रेरणा उत्पन्न करता है । इसलिये विभिन्न उपायो से कर्मचारियो मे कार्य पूर्ति का अनुभव बढाने से उकताहट दूर रहती है । प्रबन्धको को चाहिये कि वे कर्मचारियों के काम मे कम से कम रोक टोक करें और उन्हे अनावश्यक रूप से न रोके बल्कि कार्य स्वभावतया पूरा होने दें । कार्य पूर्ति का अनुभव कार्य मे प्रगति के पता चलने से भी होता है । आज्ञा मिलते ही हाथ के काम को तुरन्त छोड देना औद्योगिक अनुशासन की पहचान नही है । किसी भी समझदार अधिकारी को इस बात पर जोर नही देना चाहिए कि हुक्म मिलते ही कर्मचारी हाथ का काम छोडकर तुरन्त उठ जाए, उसे इतना समय दिया जाना चाहिये कि वह हाथ का काम निबटा ले और तब अधिकारी के सामने उपस्थित हो । इससे कार्य मे प्रेरणा बनी रहेगी और उकताहट नही होगी । कार्य को विभिन्न इकाइयो मे बाँट देने से भी कार्य पूर्ति के अनुभव मे सहायता मिलती है क्योंकि इकाइयाँ उपलक्ष्य बन जाती हैं और उन्हे पूरा करने से काम पूरा होने का अनुभव होता है । उत्पादन को और कार्य करने के समय को इस प्रकार इकाइयो मे बाँटा जाना चाहिए कि प्रत्येक इकाई को पूरा करने मे कार्य पूर्ति का अनुभव हो । आलेखन के कार्यों मे कार्य को अलग-अलग फाईलों मे बाट कर अलग-अलग इकाईयाँ बनाई जा सकती हैं जिससे एक फाईल का काम निबटाने से कर्मचारी को कार्य को पूरा करने का अनुभव हो । इस तरह ज्यों-ज्यों काम निबटता जाता है, कार्य सन्तोष बढता जाता है ।

(७) व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर ध्यान देना (Attending Individual Differences)—कर्मचारियों में कार्य का विभाजन करने में उनकी व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से अरुचि नहीं होती और उकताहट दूर रहती है। भिन्न-भिन्न कर्मचारियों को उनकी बुद्धि, अभिवृत्ति, ध्यान के झुकाव, स्वभाव और संवेगात्मक दशा के अनुरूप कार्य दिया जाना चाहिए।

(८) कार्य की दशाओं में सुधार (Improvement of Working Conditions)—पर्याप्त और उचित व्यवधान से विश्राम काल की व्यवस्था, पर्याप्त और ठीक समय पर वेतन देना, सही कार्य विधि, हँसी मजाक और गाने की स्वतन्त्रता आदि कार्य की दशाओं से ऊब और उकताहट दूर रखने में सहायता मिलती है।

(९) उपयुक्त सामाजिक वातावरण (Proper Social Environment)—अन्त में उकताहट दूर करने के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपाय कार्यालय या कारखाने में अधिकारियों और कर्मचारियों के तथा कर्मचारियों के आपस में ऐसे सम्बन्ध बनाये रखना है जिससे परस्पर प्रेम भाव और सद्व्यवहार बना रहे। सामाजिक वातावरण प्रफुल्लतामय और उत्साहवर्धक होने पर ऊब और उकताहट नहीं होती।

सारांश

उकताहट वह मानसिक स्थिति है जो किसी कार्य को लम्बे समय तक बार-बार दोहराने से उत्पन्न होती है। ऊब वह मानसिक स्थिति है जिसमें विशेष कार्य के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति और अनुभूति प्रतिकूल दिखाई पड़ती हैं और वह उस कार्य को करना नहीं चाहता।

ऊब और उकताहट के कारण—१. कर्मचारी की व्यक्तिगत भिन्नता, २. कर्मचारी की बुद्धि। इस सम्बन्ध में थामसन, वाइटल्स कोर्नहाऊजर और बर्नेट ने तथा व्याट, फ्रेजर और स्टाक ने महत्वपूर्ण अध्ययन किये हैं। ३. कार्य के प्रति अभिवृत्ति, ४. मन भर जाना, ५. प्रगति का अनुभव न होना, ६. अन्य शील गुणों का प्रभाव, ७. कार्य की अपूर्णता की अनुभूति, ८. कार्य की दशायें (क) विश्राम काल की व्यवस्था, (ख) वेतन व्यवस्था, (ग) कार्य विधि, ९. कार्य का स्वरूप, १०. सामाजिक कारक।

उकताहट दूर करने के उपाय—१. कार्य विनिमय, २. कार्य को व्यापक चित्र से सम्बन्धित करना, ३. उपलक्ष्यों का प्रयोग, ४. क्रमानुसार कार्य की विधियां और स्वचालित कार्य आदतें, ५. औद्योगिक संगीत की व्यवस्था, ६. कार्य पूर्ति के अनुभवों की वृद्धि, ७. व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर ध्यान देना, ८. कार्य की दशाओं में सुधार, ९. उपयुक्त सामाजिक वातावरण।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—ऊब एवं उकताहट।

Write short note on—Bredom and Monotony. (Vikram 1967)

२. थकान एवं उकताहट में अन्तर कीजिए। थकान रोकने के लिए आप क्या उपाय सुझायेंगे ?

Distinguish between fatigue and monotony. What measures would you suggest for preventing fatigue ? (Karnatak 1968)

१६

दुर्घटनायें : कारण और उपचार

(Accidents : Causes and Remedies)

जब उद्योग के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण नही अपनाया गया था तो दुर्घटनाओं को आकस्मिक माना जाता था। उद्योग के क्षेत्र में वैज्ञानिक अध्ययन किये जाने के साथ-साथ यह पता चला कि सुरक्षा की व्यवस्था करने से दुर्घटनायें कम होती हैं। जिन कारखानों में सुरक्षा की व्यवस्थायें की गयी उनमें अन्य कारखानो की तुलना में दुर्घटनाओं की सख्या निश्चित रूप से कम दिखलाई पडी। दुर्घटना बचाने का प्रशिक्षण देने से भी यह स्पष्ट हुआ कि दुर्घटनायें रोकी जा सकती हैं। अस्तु, आजकल दुर्घटनायें आकस्मिक नही मानी जाती। इस परिवर्तन में उद्योग के क्षेत्र मे कर्मचारी क्षतिपूर्ति कानूनो (Workmen's Compensation laws) का अत्यधिक महत्व है। इगलैंड और अमरीका मे इस तरह के कानून बनाये जाने के बाद कर्मचारी के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने पर मालिको को हर्जाना देना पडता था। इसका परिणाम यह हुआ कि दुर्घटनायें मालिको के लिये अवांछनीय हो गयी और वे उनको यथासम्भव रोकने का प्रयास करने लगे। कालान्तर मे यह देखा गया कि सुरक्षा की व्यवस्थाओ पर जो खर्चा आता था वह दुर्घटनायें होने पर क्षतिपूर्ति के रूप मे होने वाले खर्चे की तुलना मे बहुत कम था। इस प्रकार सुरक्षा की व्यवस्थायें बढाने से मालिकों को सीधा लाभ था। अस्तु, सब कही उद्योगों ने सुरक्षा की व्यवस्थायें बढायी जाने लगी और कर्मचारियो को सुरक्षा रखने के विषय मे प्रशिक्षण दिया जाने लगा। दुर्घटनाये कम होने के साथ-साथ कार्य के घण्टो की हानि कम हुई और उत्पादन बढा इससे भी मालिको को सीधा लाभ हुआ। दुर्घटनाये रोकने की व्यवस्था करने से कर्मचारियों की अभिवृत्तिया मालिकों के अनुकूल हुई जिससे उत्पादन मे प्रेरणा वढी और मालिको को लाभ हुआ। इगलैंड और अमरीका मे अनेक अध्ययनों से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि दुर्घटनाओ की रोकथाम की व्यवस्थाओ से अरबो डालरो की बचत हुई है। ज्यो-ज्यो सुरक्षा व्यवस्थाये बढती गयी हैं त्यो-त्यों उत्पादन वढा है और मालिक मजदूर के सम्बन्ध अच्छे हुये हैं। अस्तु, आजकल सभी उद्योगो मे सुरक्षा व्यवस्थाओ की ओर ध्यान दिया जाता है। स्पष्ट है कि "दुर्घटनायें आकस्मिक नही होती।"

दुर्घटनाओं के कारण

यदि दुर्घटनायें आकस्मिक नहीं होतीं तो उनके कारण क्या है ? इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों ने कार्य की परिस्थितियों, कार्य की विधियों और कर्मचारियों की मानसिक स्थिति के विषय मे महत्वपूर्ण अनुसंधान करके दुर्घटनाओं के कारणों का पता लगाया है। संक्षेप में दुर्घटना के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

(अ) कार्य की अनुपयुक्त परिस्थितियां (Improper Working Conditions)—कारखानों मे तापमान की मात्रा, प्रकाश की मात्रा और किस्म, कार्य का समय, कारखाने मे नमी की मात्रा, मशीनों की व्यवस्था, कार्य की पाली इत्यादि अनेक ऐसे कारक हैं जो दुर्घटनाओं के लिये उत्तरदायी होते हैं। दुर्घटनायें बढ़ाने वाले कार्य की परिस्थितियों से सम्बन्धित कारक निम्नलिखित हैं—

(१) उपयुक्त तापमान का अभाव (Absence of proper Temperature)—अनेक अध्ययनों से यह मालूम हुआ है कि तापमान के आवश्यकता से अधिक या आवश्यकता से कम होने पर दुर्घटनायें बढ़ जाती है। यह तथ्य विशेष रूप से खानों में काम करने वाले कर्मचारियों में दुर्घटनाओं के विषय में देखा जाता है। यह देखा गया है कि न्यूनतम तापमान वाले गढ़ों की तुलना मे उच्चतम तापमान वाले गढ़ों में दुर्घटना की बारम्बारता लगभग तीन गुनी थी। तापमान औसत से गिरने पर दुर्घटना की दर बढ़ती जाती है। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों पर ऊँचे तापमान का कम प्रभाव पड़ता है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि अलग-अलग प्रकार के वस्त्र पहनने के कारण स्त्री और पुरुष कर्मचारी तापमान की मात्रा को अलग-अलग तरह से अनुभव करते हैं। भिन्न-भिन्न देशों में न्यूनतम और उच्चतम तापमान भी अलग-अलग निश्चित किया जा सकता है। ठण्डे देशों मे जो तापमान औसत होगा उसी तापमान मे गर्म देशों मे अधिक दुर्घटनायें हो सकती हैं क्योंकि गर्म देशों के कर्मचारी के लिये वह तापमान अत्यधिक है और वह उसका आदी नहीं है। अस्तु, किस स्थान पर कौन से कारखाने में कितना तापमान सामान्य है और कितना तापमान अत्यधिक या न्यूनतम है, यह बात प्रयोगों से निश्चित की जा सकती है और ऐसा तापमान बनाये रखने की कोशिश की जा सकती है जिससे अधिकतम उत्पादन हो और न्यूनतम दुर्घटनायें हों। ओसबोर्न और वर्नन (Osborne and Vernon) ने जूता बनाने वाले कारखाने में अध्ययन करके देखा कि ६५ डिगरी से ६९ डिगरी फारेनहाइट के तापमान में दुर्घटनाओं की संख्या न्यूनतम थी।[1] बेडफोर्ड और वर्नन (Bedford and Vernon) के अध्ययनों से भी इस निष्कर्ष का समर्थन हुआ।

(२) नमी की अधिक मात्रा (Amount of humidity)—औद्योगिक परिस्थितियों मे आवश्यकता से अधिक नमी होने पर कर्मचारी की शारीरिक स्थिति

1. E. E. Osborne and H. M. Vernon, The Influence of Temperature and other conditions on the frequency of Industrial Accidents, Ind. Fat. Res. Brd Rep. No. 19 (1922), p. 17.

पर प्रभाव पड़ता है और इसलिये दुर्घटना की सम्भावना बढ़ जाती है। यह तथ्य खानो में होने वाली दुर्घटनाओ से पुष्ट हुआ है। अस्तु, आजकल कार्य करने के वातावरण मे नमी की मात्रा का नियन्त्रण किया जाता है।

(३) समुचित प्रकाश का अभाव (*Absence of Proper light*)—चूकि प्रकाश की मात्रा आवश्यकता से बहुत कम या अधिक होने पर थकान बढती है और आँखों पर जोर पड़ता है इसलिये समुचित प्रकाश के अभाव को दुर्घटना का कारण माना जा सकता है। कृत्रिम प्रकाश की तुलना मे प्राकृतिक प्रकाश अधिक अच्छा है। यह देखा गया है कि प्राकृतिक प्रकाश की तुलना में कृत्रिम प्रकाश मे दुर्घटनाओं की संख्या लगभग २५ प्रतिशत बढ जाती है। प्रकाश से दुर्घटनाओं का सम्बन्ध रात और दिन की पालियो की दुर्घटनाओ की तुलना करने से भी सिद्ध होता है। वर्नन ने रात और दिन की पाली मे होने वाली दुर्घटनाओ की तुलना करके यह सिद्ध किया कि दिन की पाली की तुलना मे रात की पाली मे दुर्घटनायें कम होती हैं।[2] रेल दुर्घटनायें जितनी अधिक रात मे होती हैं उतनी दिन मे नही होती हैं क्योकि रात मे प्रकाश की कमी रहती है। यहा यह याद रखना आवश्यक है कि प्रकाश की कमी दुर्घटना का एकमात्र कारण नही है। चूकि रात मे सडके दिन की तुलना मे अधिक खाली रहती हैं इसलिये मोटर दुर्घटनायें दिन की तुलना मे रात मे कम होती हैं भले ही उस समय प्रकाश कम होता हो।

(४) काम की पाली (Work Shift)—वर्नन ने अपने अध्ययनो के आधार पर यह दिखलाया कि दिन की पाली की अपेक्षा रात की पाली मे दुर्घटनायें कम होती हैं। इसका कारण यह है कि दिन की पाली मे कर्मचारी प्रातःकाल कुछ खा पीकर और रात मे अच्छी तरह आराम करने के बाद काम पर पहुंचते हैं परन्तु काम शुरू करने के बाद थोडी ही देर मे वे असावधान हो जाते हैं जिससे दुर्घटनायें होती है। दूसरी ओर रात की पाली मे काम करने वाले कर्मचारी कई घण्टे पहले से जगे रहते हैं और अधिक सावधान रहते है, इससे दुर्घटनाओ की सम्भावना कम हो जाती है। वर्नन के इस मत के विरुद्ध भी कुछ अनुसन्धान हुये हैं जिनमें दिन की पाली की तुलना मे रात की पाली मे अधिक दुर्घटनायें दिखलाई पडी हैं। कभी-कभी कुछ कर्मचारी दिन मे पर्याप्त रूप से सोने का अवसर न पाने के कारण और रात मे कारखाने मे नशा करके आने के कारण या नीद से ऊँघने के कारण दुर्घटना का शिकार हो जाते है। रेलों में काम करने वाले कर्मचारी रात के समय नीद के कारण असावधान हो जाते हैं जिससे दुर्घटनायें होती हैं। अस्तु, दिन या रात की पाली में से किसमें अधिक दुर्घटनायें होती हैं इस विषय मे सभी वैज्ञानिक सहमत नहीं हैं। जहां दिन मे प्रकाश अधिक होता है और लोग कम थके हुये होते हैं, वहां इसी कारण वे असावधान हो जाते है जब कि रात की पाली मे कर्मचारियो मे सावधानी बढ जाती है।

2 H. M Vernon, Industrial Fatigue and Efficiency, London, (1921), p. 264

(ब) कार्य विधियां (Work Methods)—कार्य करने की परिस्थितियो के अतिरिक्त कार्य की विधियाँ भी दुर्घटनाओ का कारण होती हैं। यह देखा गया है कि कार्य काल की लम्बाई, कार्य की कठोरता, उत्पादन की गति तथा थकान बढाने वाली विधियो का दुर्घटनायें बढ़ाने मे महत्वपूर्ण हाथ होता है। संक्षेप में, कार्य की विधियों मे दुर्घटनाओं के लिये महत्वपूर्ण कारक निम्नलिखित हैं—

(१) कार्य काल की लम्बाई (Length of Work Period)—कर्मचारियों का कार्य काल बढने के साथ-साथ थकान बढती जाती है जिससे लम्बे कार्य काल मे दुर्घटनायें अधिक होती हैं। ओसबोर्न और वर्नन के अध्ययनों मे[3] जब दिन की पाली मे काम करने वाले कर्मचारियो का कार्य काल ५६ घण्टे से घटाकर ५३ घन्टे प्रति सप्ताह कर दिया गया तो दुर्घटनाओ की सख्या १० प्रतिशत कम हो गयी। रात की पाली मे काम करने वाले कर्मचारियो का कार्यकाल ६३ घन्टे से घटाकर ४८ घन्टे प्रति सप्ताह कर दिये जाने से दुर्घटनाओ मे २५ प्रतिशत की कमी दिखलाई पडी। बहुधा देखा जाता है कि जब कर्मचारी काम के घण्टों के अतिरिक्त ओवर टाइम मे काम करते हैं तो दुर्घटनायें अधिक होती है। अस्तु, यह कहा जा सकता है कि कार्य-काल की लम्बाई एक निश्चित् सीमा से अधिक बढने पर दुर्घटनायें भी बढती हैं।

(२) कार्य की कठोरता (Severity of Work)—जिन कार्यो को करने मे अधिक शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है वे कठोर कार्य कहे जाते हैं। इस तरह के कठोर कार्यों मे अन्य कार्यों की तुलना मे दुर्घटनायें अधिक होती हैं। सन् १९१२ मे अमरीका मे गोल्डमार्क (Goldmark) ने प्रात काल और सायकाल की दुर्घटनाओं का तथा कठोर और कम परिश्रम वाली दुर्घटनाओ का तुलनात्मक अध्ययन करके यह दिखलाया कि कार्य की कठोरता दुर्घटना का कारण है और थकान बढने के साथ-साथ दुर्घटनाओ की सम्भावना भी बढती है।[4]

(३) कार्य की गति (Speed of Work)—वर्नन के अध्ययनो से यह ज्ञात हुआ कि कार्य की गति तीव्र होने के साथ-साथ दुर्घटनाओ की सम्भावना भी बढ़ती जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि कार्य की गति बढने से थकान बढती है। माइल्स (Miles)[5] ने पेण्डुलम परीक्षण के प्रयोग द्वारा उपरोक्त मत का समर्थन किया और यह दिखलाया कि गति की तीव्रता से दुर्घटनाओ की बारम्बारता बढती है किन्तु दूसरी ओर सभी प्रकार के अध्ययनो से ऐसे ही परिणाम प्राप्त हुये है। उदाहरण के लिये अमेरिकन इन्जीनियरिंग कौंसिल की ओर से न्यूयार्क मे लगभग दस लाख कर्मचारियो पर सुरक्षा तथा उत्पादन के अध्ययन मे यह पता चला कि उत्पादन की गति बढने के साथ-साथ दुर्घटनाओ की सख्या कम हुई है। वास्तव मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि विशेष उद्योग मे आप किसे कार्य की उपयुक्त गति कहते हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के लिये उपयुक्त गति की मात्रा भी अलग-अलग हो सकती

3. E. E. Osborne and H. M. Vernon, *Op. Cit.*, p 12.
4. J Goldmark, *Fatigue and Efficiency*, New York, 1912, p 72.
5. W. R. Miles, Psychological Review, 27 (1920), pp. 361—367.

है। कुछ लोग अन्य लोगो की तुलना में सदैव अधिक तीव्र गति से काम कर सकते हैं और उनकी गति को इससे कम करने पर दुर्घटना की सम्भावना बढ सकती है। इसी तरह कार्य की गति भिन्न-भिन्न यन्त्रों पर भिन्न-भिन्न होगी। फिर, थका हुआ व्यक्ति तीव्र गति से काम नही कर सकता जबकि अपेक्षाकृत ताजा और स्वस्थ कर्मचारी अधिक तीव्र गति से काम करते हुए भी दुर्घटना मे नही फसता। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपयुक्त गति से अधिक कार्य गति होने पर दुर्घटनायें अवश्य बढती हैं किन्तु उपयुक्त गति क्या है यह कार्य के प्रकार, यन्त्रों की रचना, कर्मचारी के स्वास्थ्य तथा प्रेरणा इत्यादि अनेक कारकों पर निर्भर होता है।

(४) थकान बढ़ाने वाली विधियां (Methods Increasing fatigue)—चूकि थकान बढने से दुर्घटनाओं की सम्भावना बढ़ती है इसलिये जो कार्य विधियाँ थकान बढाती हैं वे भी दुर्घटनाओ की सम्भावनायें बढाती हैं। मोटर दुर्घटनाओं के विषय में यह देखा गया है कि चालको के अत्यधिक थके होने पर दुर्घटनायें अधिक होती हैं। यही बात रेल दुर्घटनाओं के विषय मे भी देखी गयी है।

(५) सुरक्षा व्यवस्थाओं का अभाव (Absence of Safety Devices)—दुर्घटनायें बढाने वाली कार्य विधियो मे सुरक्षा व्यवस्थाओ के अभाव मे कार्य करने की विधि भी सम्मिलित है। कही कही तो कारखानो मे मशीनो पर सुरक्षा व्यवस्थाओं का कोई प्रबन्ध नही होता और इससे दुर्घटनायें अधिक होती हैं किन्तु कही कही पर यह प्रबन्ध होने के बावजूद भी कुछ कर्मचारी इन साधनों का प्रयोग करना नही चाहते और यह दिखाना चाहते हैं कि वे उनके बिना ही काम चला सकते हैं। ऐसी परिस्थिति मे इस प्रकार की सुरक्षा व्यवस्थाओं का होना जरूरी है जिन्हें प्रयोग किये बिना कर्मचारी काम ही न कर सकें। सुरक्षा व्यवस्थायें बढने के साथ-साथ दुर्घटनाओ की सख्या कम होती गई है। दूसरी ओर सुरक्षा व्यवस्थायें कम होने के साथ-साथ दुर्घटनायें बढती गयी हैं।

(स) कर्मचारी से सम्बन्धित कारक (Factors Concerning the Worker)—कार्य की परिस्थितियो और कार्य की विधियो के अतिरिक्त कर्मचारी से सम्बन्धित अनेक कारक भी दुर्घटनाओ के लिए उत्तरदायी सिद्ध होते हैं। इस प्रकार के कारकों मे मुख्य निम्नलिखित हैं —

(१) अपरिपक्व आयु (Immature Age)—अनेक अध्ययनो से यह पता चला है कि परिपक्व आयु के कर्मचारियों की तुलना मे अपरिपक्व आयु के कर्मचारी शीघ्र और अधिक दुर्घटना के शिकार होते हैं। इस सम्बन्ध मे लिपमैन, गेट्स और श्मिट (Lippman, Gates and Schmitt) के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। अस्तु, आधुनिक उद्योगों मे अपरिपक्व आयु के व्यक्तियों को नौकरी नही दी जाती।

(२) अनुभवहीनता (Inexperience)—मशीनों पर काम करने में अनुभवी कर्मचारियों की तुलना मे अनुभवहीन कर्मचारी दुर्घटना के शिकार अधिक होते हैं। इस प्रकार अनुभवहीनता दुर्घटना का महत्वपूर्ण कारण है। अमरीका की कार्नेगी स्टील

कम्पनी और यंगस्टाउन स्टील कम्पनी तथा अन्य कम्पनियो के कर्मचारियों के अध्ययनो से फिशर (B. Fisher)[6] ने यह निष्कर्ष निकाला कि एक महीने का अनुभव रखने वाले कर्मचारियो में अधिक अनुभवी कर्मचारियो की तुलना में दुर्घटनाओ की संख्या ६ गुना अधिक होती है। इससे स्पष्ट होता है कि कर्मचारियो की अनुभवहीनता दुर्घटना का महत्वपूर्ण कारण है।

(३) **बुरी स्वास्थ्य दशा** (Bad State of Health)—यदि कर्मचारी का स्वास्थ्य दोषपूर्ण है, उसे तरह-तरह की बीमारियां हैं, वह बराबर सिर दर्द, पेट में दर्द, कमर में दर्द इत्यादि का शिकार बना रहता है तो उसके दुर्घटनाग्रस्त होने की सम्भावना बढ जाती है। फारमर और चैम्बर्स (Farmer and Chambers) ने अपने अध्ययनो में देखा कि अस्पताल मे कर्मचारियो की उपस्थिति और दुर्घटनाओ की संख्या मे प्रत्यक्ष सह-सम्बन्ध था।[7] न्यूबोल्ड (E. M Newbold) ने अपने अध्ययनों से छोटी छोटी बीमारियो का दुर्घटनाओ से सम्बन्ध स्थापित किया। अमरीका मे फिलाडेलफिया इलैक्ट्रिक कम्पनी के १३१ कर्मचारियों पर अध्ययन करके वाइटल्स (Viteles)[8] ने यह निष्कर्ष निकाला कि स्वस्थ कर्मचारियो की तुलना मे रोगी कर्मचारियो का दुर्घटना रिकार्ड लगभग ३ गुना अधिक था। बिंघम (Bingham)[9] ने रक्त चाप के शिकार कर्मचारियो का अध्ययन करके यह पता लगाया कि यह बीमारी दुर्घटना का एक कारण थी। इस प्रकार स्वास्थ्य सम्बन्धी दोष दुर्घटनाओ के कारण सिद्ध होते हैं।

(४) **शारीरिक दोष** (Physical Defects)—भिन्न-भिन्न प्रकार के काम करने के लिए शरीर के अगो मे समुचित योग्यता की आवश्यकता पडती है। उदाहरण के लिये अनेक मशीनो पर काम करने मे कर्मचारी की नेत्र शक्ति सामान्य होनी चाहिये। ऐसा न होने पर वह दुर्घटना का शिकार हो जाता है। इसलिये रेलो मे कर्मचारियों की नियुक्ति करते समय उनकी क्षेत्र शक्ति का विशेष रूप से परीक्षण किया जाता है। किसी कारखाने मे कोई कर्मचारी कौन सा काम करता है इससे यह निर्धारित हो सकता है कि उसके कौन-कौन से शारीरिक अग विशेष रूप मे पुष्ट होने चाहिये। उदाहरण के लिये हाथ के हथौड़े से काम करने वाले कर्मचारी की भुजायें पुष्ट न होने पर दुर्घटनायें बढ सकती हैं। किन्तु यदि विशिष्ट कार्य मे कर्मचारी को किसी विशेष अग की लगभग बिल्कुल आवश्यकता नही पड़ती तो उसके दोषपूर्ण होने से दुर्घटनाओ का कोई सम्बन्ध नही है। उदाहरण के लिये लिपिक का कार्य करने वाला कर्मचारी पैर से दोषपूर्ण होने पर भी अपनी नोकरी पर ठीक काम सकता है।

6 B. Fisher, *Mental Causes of Accidents*. New York (1922), p. 34.

7. E. Farmer and E. G. Chambers, A study of Personal qualities in Accident proneness and Proficiency, Ind Fat. Res. Bd Rep., No. 55 (1929), p 84.

8. M. S. Viteles, *Industrial Psychology*, p 352.

9. W. V. Bingham, Prone to Accident Driver, Proceedings 17th Annual Conference on Highway Engineering Ann Arbor, Mich (1931), p 4

(५) लिंग भेद का प्रभाव (Influence of Sex Differences)—यह देखा जाता है कि लिंग भेद के कारण स्त्री और पुरुष कुछ विशेष प्रकार के काम करने के लिये अधिक उपयुक्त सिद्ध होते हैं। साधारणतया स्त्रियां कठोर परिश्रम के और खतरनाक परिस्थिति के कामों को उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकती जितनी अच्छी तरह पुरुष कर सकते हैं और इसलिये इस तरह के कामों में उनके दुर्घटनाग्रस्त होने की सम्भावना बढ़ जाती है। कार दुर्घटनाओं में पुरुष चालकों की अपेक्षा स्त्री चालक ही अधिक फसती हैं। कठोर कार्यों में पुरुष कर्मचारियों की तुलना में स्त्री कर्मचारियों में लगभग तिगुनी दुर्घटनायें अधिक होती हैं।

(६) प्रतिकूल मानसिक और संवेगात्मक दशा (Unfavourable mental and emotional condition)—यदि कार्य करते समय कर्मचारी की मानसिक दशा और संवेगावस्था कार्य के अनुकूल नहीं है तो दुर्घटना की सम्भावना बढ़ जाती है। इसीलिये मानसिक रूप से अस्वस्थ और संवेगात्मक रूप से असंतुलित कर्मचारी दुर्घटनाओं के शिकार अधिक होते हैं। इसीलिये अधिकतर कारखानों में कर्मचारियों को शराब पीकर आने की अनुमति नहीं है क्योंकि शराब पीने से उनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है और वे काम नहीं कर सकते। हेरसी (Hersey) के अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ कि लगभग पचास प्रतिशत दुर्घटनायें कर्मचारी के संवेगात्मक असन्तुलन के कारण होती हैं।

(७) तात्कालिक कारक—दुर्घटनाओं के उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त कुछ तात्कालिक कारक भी दुर्घटनाओं के लिये उत्तरदायी होते हैं। उदाहरण के लिये सुरक्षा व्यवस्थाओं का फेल हो जाना, मशीन में किसी प्रकार का दोष आ जाना, कर्मचारी की असावधानी, अज्ञान, नशे में होना या काम पर ऊंघना, मालिक और कर्मचारी की झड़प इत्यादि अनेक दुर्घटना का कारण हो सकती हैं। इसीलिए कोई भी दुर्घटना होने पर बाकायदा उसके कारणों की जांच आवश्यक मानी जाती है जिससे दुर्घटना का उत्तरदायित्व निश्चित् किया जा सके। इस सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले कार्य की परिस्थितियों, कार्य की विधियों, दुर्घटनाग्रस्त कर्मचारियों की व्यक्तिगत विशेषताओं के अतिरिक्त कारखाने की सामाजिक परिस्थितियों, मालिक मजदूर के सम्बन्ध और दुर्घटना के समय की परिस्थितियों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये।

दुर्घटनायें रोकने के उपाय

पीछे दुर्घटनाओं के जो कारण बतलाये गये हैं उन कारणों को दूर करना ही दुर्घटनाओं को रोकने का उपाय है। सक्षेप में, दुर्घटना रोकने के मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं—

(१) कार्य की परिस्थितियों में सुधार (Reform of working conditions)—दुर्घटनायें रोकने के लिए कार्य की परिस्थितियों में सुधार किया जाना चाहिये। कारखाने में तापमान की मात्रा ऐसी हो जो न आवश्यकता से अधिक हो और न कम

हो। इससे कर्मचारियों के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और दुर्घटनायें कम होती हैं। काम करने के स्थान पर प्रकाश पर्याप्त, उचित प्रकार का और ठीक दिशा से आने वाला होना चाहिये। मशीनों के जिन भागों पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक होता है उन्हीं पर अधिक रोशनी पड़नी चाहिये। कर्मचारियों की आँखों पर सीधी तेज रोशनी पड़ना उचित नहीं है। प्रकाश की दिशा ठीक न होने से अनेक दुर्घटनायें होती हैं। कारखाने में मशीनों की व्यवस्था इस प्रकार से की जानी चाहिये कि कम से कम गति करते हुए अधिक उत्पादन किया जा सकता हो। जिन मशीनों से दुर्घटना होने की आशंका है उनसे कर्मचारी को दूर रखने के लिए सुरक्षा विधियों की व्यवस्था की जानी चाहिये।

(२) सुरक्षा विधियों की व्यवस्था (Provision of safety methods)—आजकल इन्जीनियरों और मनोवैज्ञानिकों दोनों ने मिलकर कारखानों में ऐसी व्यवस्था की है जिससे खतरनाक मशीनों से कम से कम दुर्घटनायें हों। इसके लिए इन्जीनियरों ने सुरक्षात्मक यन्त्रों, विशेष प्रकार के दस्तानों, आँखों की रक्षा करने के लिये विशेष प्रकार के चश्मों और मशीनों को हाथ न लगाते हुए काम लेने वाले विशेष प्रकार के यन्त्रों का आयोजन किया है। काम करते समय कर्मचारी को खतरनाक मशीन से दूर रखने के लिये भी कुछ विधियाँ अपनायी गयी हैं किन्तु कभी-कभी कुछ कर्मचारी यह दिखलाना चाहते हैं कि वे खतरे से नहीं डरते और इसलिये वे सुरक्षा की इन विधियों को काम में नहीं लाते। ऐसे कर्मचारियों के लिये इस प्रकार के सुरक्षा यन्त्रों का आयोजन किया जाता है जिनको अलग करने से उत्पादन में बाधा पड़ती है और जिनको इस्तेमाल करना उत्पादन के लिये आवश्यक होता है। जिन मशीनों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं किया जा सकता उनमें सुरक्षा साधनों को अपनाने के लिये कर्मचारियों को प्रेरित किया जाना चाहिये। इसके लिए कर्मचारी को सुरक्षा यन्त्रों के साथ काम करने का प्रशिक्षण दिया जा सकता है।



चित्र सं० २०—दुर्घटना बचाने के दो उपाय।
दूसरे चित्र में नालीदार पटरा पड़ा होने से कोई नाली में नहीं गिरता। यह सुरक्षा विधि की व्यवस्था है।

यदि इस प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था नही हो सकती तो इन व्यवस्थाओं को अपनाने के हेतु अतिरिक्त वेतन दिया जा सकता है। संक्षेप में कर्मचारियों को सुरक्षा के यन्त्रों का प्रयोग करने लिये हर तरह से प्रेरित किया जाना चाहिये।

सुरक्षा विधियो मे एक अन्य गुण यह होना चाहिये कि वे शत प्रतिशत सुरक्षित हों। ऐसा न होने पर उनसे दुर्घटनाये कम होने के स्थान पर और भी बढ जायेंगी क्योकि सुरक्षा यन्त्रो की व्यवस्था हो जाने से कर्मचारी दुर्घटना की ओर से असावधान हो जाता है और यदि सुरक्षा यन्त्र केवल ५० प्रतिशत स्थितियो मे ही सुरक्षा प्रदान करता है तो उससे दुर्घटनाओं की सख्या बढ जाती है। दूसरी ओर सुरक्षा यन्त्रो के अभाव मे कर्मचारी स्वय अधिक सावधान रहता है जिससे दुर्घटनायें कम होती हैं। वास्तव मे कर्मचारी प्रत्येक प्रकार की स्थिति से समायोजन कर लेता है। यदि वह खतरनाक मशीन पर काम कर रहा है और सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नही है तो वह अत्यधिक सावधान रहता है। रात की पाली मे काम करने वाले कर्मचारी दिन की पाली मे काम करने वाले कर्मचारियो की तुलना में अधिक सावधान रहते है क्योकि वे जानते हैं कि सावधान न रहने पर दुर्घटना हो जाएगी। दूसरी ओर दिन की पाली मे काम करने वाले कर्मचारी इतने सावधान नही रहते। इसका परिणाम यह होता है कि दिन की अपेक्षा रात मे कृत्रिम प्रकाश मे दुर्घटना की सम्भावनायें अधिक होने के बावजूद दुर्घटनायें दिन मे ही अधिक होती है। यदि मशीनो पर सुरक्षा यन्त्रो का प्रबन्ध होता है तो कर्मचारी असावधान हो जाता है और सुरक्षा यन्त्र के फेल होते ही दुर्घटना हो जाती है। यह तथ्य कारो की गति द्वारा दुर्घटना के विषय मे भी देखा जाता है। गति मन्द हो जाने पर दुर्घटनाएँ कम हो जाती है क्योकि इतना स्थान नही होता कि कोई भी अपनी कार को तेज करे और एक दूसरे से लड जाने का खतरा उपस्थित होने के कारण प्रत्येक सम्भल कर चलाता है। दूसरी ओर सडक को खाली देखकर और सीधा रास्ता पाकर चालक गाडी को तेजी से छोड देते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि दुर्घटनाओ की सख्या बढ जाती है। इसीलिये अमेरिका मे ग्रामीण रास्तों पर दस प्रतिशत और नगरीय रास्तो पर केवल ५ प्रतिशत ही दुर्घटनायें होती है जबकि गाँव की सडके खाली पडी रहती है और शहर की सडको पर आवागमन अधिक होता है। इसी प्रकार के उदाहरण कारखानो की अन्य परिस्थितियो मे भी पाये जाते हैं।

उपरोक्त उपायो के अतिरिक्त कारखाने मे आने वाले हर एक नये श्रमिक को खतरनाक मशीनों से सावधान कर दिया जाना चाहिये। आधुनिक कारखाने मे ऐसी मशीनों पर खतरे के चिन्ह बने रहते हैं तथा खतरा लिखा रहता है जिससे मजदूर सावधान रहते हैं। कभी-कभी जो यन्त्र किसी एक ओर सुरक्षा का प्रबन्ध करता है वही दूसरी ओर दुर्घटना का कारण बन जाता है क्योकि श्रमिक उस ओर से असावधान हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिको और इन्जीनियरो को सुरक्षा यन्त्रो की रचना इस प्रकार करनी चाहिये कि उनसे काम के प्रतिमान मे बाधा न पड़े बल्कि

सहायता ही मिले। इस प्रकार के यंत्रों की व्यवस्था होने से उत्पादन बढता है, थकान कम होती है और सुरक्षा भी बढती है। वास्तव में खतरे के आभास से श्रमिक तनाव की स्थिति मे रहता है और इसीलिए शीघ्र ही थक जाता है। दूसरी ओर सुरक्षा विधियों की व्यवस्था होने से यह स्नायविक तनाव नही रहता और इसलिये थकान होती है।

(३) कर्मचारी की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ध्यान रखना (Attending Individual differences)—अनेक दुर्घटनायें इसलिए होती है कि कर्मचारी को उसकी शक्ति से अधिक भारी और जटिल काम दे दिया जाता है। उदाहरण के लिए स्त्रियाँ अधिक भारी काम नही कर सकती और यदि उन्हे इस तरह के काम पर लगाया जाएगा तो निश्चय ही दुर्घटनाओं की सम्भावना बढ जायेगी। अस्तु, किसी कारखाने मे भिन्न-भिन्न कामो पर कर्मचारियों की नियुक्ति करते समय उनकी आयु, लिंग, अनुभव, मानसिक स्वास्थ्य, संवेगात्मक दशा, स्वभाव, बुद्धि, शारीरिक दोष और गुण आदि की भली भांति छानबीन की जानी चाहिये। यदि इस सब छानबीन मे वह कार्य के उपयुक्त पाया जाता है तो ही उसको वह कार्य दिया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त यदि कोई कर्मचारी किसी मशीन पर काम करने मे बार-बार दुर्घटना मे फस जाता है तो उसे वहाँ से हटाकर दूसरा काम दिया जाना चाहिये। भिन्न-भिन्न कर्मचारियो की दुर्घटना प्रवणता की परीक्षा करके तब उन्हे खतरनाक मशीनो पर नियुक्त किया जाना चाहिये।

(४) सही कार्य विधियो में प्रशिक्षण (Training in right work methods)—अनेक दुर्घटनायें इसीलिये होती हैं कि कर्मचारी जिन यन्त्रो से काम ले रहे होते हैं उन्हे ठीक से चलाने का प्रशिक्षण नही दिया जाता। अस्तु, किसी भी मशीन पर कर्मचारी की नियुक्ति करने से पहले उस मशीन को ठीक से चलाने तथा मशीन की सरचना, खतरनाक पुर्जे इत्यादि का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। कार्य विधि गलत होने से दुर्घटनायें इसलिये भी अधिक होती हैं क्योंकि गलत कार्य विधि से काम करने वाला कर्मचारी शीघ्र थक जाता है और थकान की स्थिति में काम करने से उसकी दुर्घटना प्रवणता बढ जाती है।

(५) थकान दूर करने वाले उपाय—पीछे बतलाया गया है कि दुर्घटना का एक बडा कारण थकान है। अस्तु, अपरोक्ष रूप मे थकान दूर करने के उपाय दुर्घटना रोकने के उपाय हैं। थकान दूर करने के उपायों मे सबसे अधिक मुख्य सही मध्यान्तर से विश्राम काल की व्यवस्था करना है जिससे श्रमिक खोयी हुयी शक्ति फिर से प्राप्त करता रहे और कभी भी उसे अत्यधिक थकान का अवसर न आए। इसके अतिरिक्त काम के घण्टे केवल इतने ही होने चाहियें जिनमे अत्यधिक थकान का अवसर न हो। कर्मचारियों को उनकी शारीरिक और मानसिक शक्ति के अनुसार काम देने से ही थकान कम होती है। कार्य के परिणामो को जानते रहने से, कार्यालय का वातावरण प्रफुल्लतामय होने से, मालिक-मजदूर के सम्बन्ध अच्छे होने से और वेतन

आदि की सही व्यवस्था इत्यादि से थकान कम होती है। इसके अतिरिक्त कर्मचारियो के लिए मध्यान्तर मे पीने के पानी और खाने के लिए पौष्टिक तथा सस्ते भोजन तथा आराम करने के लिए आरामदेह कुर्सियो और चारपाइयों की व्यवस्था की जानी चाहिये।

(६) **कार्य की सही गति** (Proper speed of work)—अनेक दुर्घटनाएं आवश्यकता से अधिक तीव्र गति से काम करने के कारण होती हैं। तेज गति से कार चलाने वाले चालक अक्सर दुर्घटना कर बैठते हैं। अस्तु, कार्यालयो में तथा कारखानों मे कर्मचारियो की कार्य की गति पर नियन्त्रण किया जाना चाहिए। कार्य काल के अतिरिक्त काम करने से भी दुर्घटनाए अधिक होती है। यदि कर्मचारी कार्य पर आने के तुरन्त बाद अत्यधिक तीव्रगति से काम करता है तो वह शीघ्र थक जाता और फिर शाम तक थकान की दशा मे काम करते रहने से दुर्घटना की सम्भावनाए बढ जाती हैं। इसलिए कर्मचारी को ऐसी गति से काम करना चाहिए जिससे वह अत्यधिक थकान आए बिना दिन भर काम कर सकता हो।

(७) **सुरक्षा समितियों का सगठन** (Organisation of Safety Committees)—आजकल दुर्घटनाओ की रोकथाम करने का एक मनोवैज्ञानिक उपाय सुरक्षा समितियों का आयोजन है। प्रत्येक कारखाने मे, और यदि कारखाना बहुत बडा है तो कारखाने के प्रत्येक विभाग मे, एक सुरक्षा समिति होनी चाहिए। इसमे कर्मचारियो के अतिरिक्त सुरक्षा अधिकारी और मनोवैज्ञानिक भी शामिल भी हो सकते हैं। इस समिति की बैठको मे कर्मचारियो की शिकायतो और सुझावों पर गौर किया जा सकता है जिससे जहां एक ओर दुर्घटना की सम्भावनाओ का पता चलता है वहां दूसरी ओर दुर्घटनाए रोकने मे सबकी रुचि बनी रहती है। इस प्रकार की सुरक्षा समितियाँ राष्ट्रीय पैमाने पर भी बनाई जा सकती हैं और इन समितियो मे विभिन्न उद्योगो के प्रतिनिधि भाग ले सकते है। इस प्रकार की समितियो से श्रमिकों की शिक्षा होती है, उनकी सुरक्षा चेतना बढती है और नयी सुरक्षा विधियो का आविष्कार होता है। इससे एक अन्य महत्वपूर्ण लाभ यह होता है कि जो कर्मचारी सुरक्षा व्यवस्था को अपनाना नही चाहता या दुर्घटना की ओर से असावधान रहता है उसकी आलोचना की जाती है और उसका सामाजिक बहिष्कार किया जा सकता है।

(८) **सुरक्षा आन्दोलन और पोस्टर** (Safety Campaigns and Posters)—सुरक्षा बनाए रखने का अन्य महत्वपूर्ण उपाय कारखानो मे तथा कार्यालयो मे सुरक्षा आन्दोलन करना है। इसके लिए पोस्टरो और नारो का प्रयोग किया जा सकता है। साधारणतया ये नारे निषेधात्मक नही होने चाहिए। उदाहरण के लिए "असावधान कर्मचारी मूर्ख हैं" यह नारा उचित नही है, इसके स्थान पर यदि यह कहा जाए कि "खतरो से सावधान रहिए, "सिर पर टोप पहने रहिए" "इस क्षेत्र मे विषैली गैसो से खतरा है" "यहां से सडक पार करें" "यदि धूम्रपान करना है तो पास के कक्ष मे जाइए" तो इस प्रकार के आदेश वाले पोस्टरो से कर्मचारियो

को अपनी गतिविधि नियन्त्रित करने का निर्देशन मिलेगा। कारखानों में स्थान-स्थान पर इस प्रकार के नारे लिखकर टाँगे जा सकते है जिनसे कर्मचारियो का भय दूर हो, सुरक्षा की प्रवृत्ति जागृत हो और सही काम करने का निर्देश मिले। दुर्घटना से सम्बन्धित पोस्टर मे केवल दुर्घटना दिखाना मात्र पर्याप्त नही है क्योंकि उससे कर्मचारी केवल भयभीत हो जाएगा। पोस्टर से जहा उसे यह पता लगना चाहिए कि दुर्घटना के क्या दुष्परिणाम होते हैं वहाँ यह भी पता लगना चाहिये कि दुर्घटनाएं कैसे रोकी जायें।

(९) सुरक्षा की आदतें (Habits of Safety)—किन्तु दुर्घटना रोकने के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपाय कर्मचारियो मे काम के विषय मे ऐसी आदतें निर्माण करना है जिनसे वे अधिक से अधिक सुरक्षित रहें। यदि कर्मचारी को गलत तरीके से काम करने की और सुरक्षा यन्त्रो का प्रयोग न करने की आदत पड चुकी है तो कभी-कभी कोशिश करने पर भी वह दुर्घटना से नही बच पाता। भिन्न-भिन्न मशीनो पर काम करने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के सुरक्षा यन्त्रो का प्रयोग करना होता है। कर्मचारी को इनका प्रयोग करने की आदत होनी चाहिए। कभी-कभी जब किसी नये सुरक्षा यंत्र की व्यवस्था की जाती है तो कर्मचारी उसे अपनाना नही चाहते। ऐसी परिस्थिति मे उनपर जोर न डालकर उन्हे मनोवैज्ञानिक विधियो से यह आभास कराया जाना चाहिए कि इन यन्त्रो को प्रयोग करना उनके अपने ही लाभ की बात है। एक बार यह पता लग जाने पर फिर वे स्वय उनका प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार की आदतें पड जाने पर खतरो से सावधान रहने के लिये कहना नही पडता क्योकि वह कर्मचारी की आदत बन चुका होता है। इसी कारण उद्योगो मे प्रशिक्षण को इतना अधिक महत्व दिया जाता है। अनुभव का भी यही महत्व है।

(१०) सुरक्षा की प्रेरणा (Motivating Safety)—सुरक्षा विधियों को अपनाने और खतरो मे सावधान रहने के लिए कर्मचारी मे प्रेरणा न होने पर दुर्घटनाए नही रोकी जा सकती। अस्तु, आजकल कर्मचारियो को सुरक्षा से रहने के हेतु प्रेरित किया जाता है। इसका एक उपाय सुरक्षा विधियो को प्रयोग करने वाले कर्मचारियों की वेतन वृद्धि या भत्ते मे वृद्धि करना है। सुरक्षा की प्रेरणा बढाने का एक अन्य उपाय विरोधी प्रेरणाओ को दूर करना है। उदाहरण के लिये यदि एक ओर कर्मचारी को सुरक्षा के लिए प्रेरित किया जाए और दूसरी ओर उस पर उत्पादन की गति बढ़ाने के लिये जोर दिया जाए तो सुरक्षा विधियाँ अपनाने मे कठिनाई होगी। कभी-कभी सुरक्षा विधियो को इसलिए नही अपनाया जाता क्योकि वे आरामदेह नही होती। अस्तु, उन्हे यथासम्भव आरामदेह और सुखदायक बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। सुरक्षा विधियो को अपनाने के लिए कहीं-कहीं पर उनका प्रयोग न करने पर कर्मचारी पर जुर्माना किया जाता है। इससे सुरक्षा की प्रेरणा नहीं बढती बल्कि गलती को छिपाने की प्रेरणा बढती है। सक्षेप मे, सुरक्षा के लिए प्रेरित करने को प्रेरणा के मनोविज्ञान का पूरी तरह उपयोग किया

जाना चाहिए। सबसे पहले विरोधी प्रेरणाओं को दूर किया जाना चाहिए। इसके बाद सुरक्षा विधियों की खोज की जानी चाहिए। कर्मचारियों को सुरक्षित व्यवहार दिखाने के लिए पुरस्कार दिया जाना चाहिए। सुरक्षा समितियों से भी सुरक्षा की प्रेरणा मिलती है।

दुर्घटनाएं रोकने के विभिन्न उपायों के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मालिकों, मनोवैज्ञानिकों और कर्मचारियों सभी को मिल-जुल कर प्रयास करना पड़ेगा। सरकार की ओर से भी इस दिशा में महत्वपूर्ण काम किये जा सकते हैं। आजकल सभी प्रगतिशील देशों में सुरक्षा के अधिक से अधिक उपाय किये जा रहे हैं।

दुर्घटना उन्मुखता

दुर्घटना उन्मुखता क्या है ?

साधारणतया कुछ औद्योगिक परिस्थितियों में अन्य परिस्थितियों की तुलना में दुर्घटनायें अधिक होती हैं। अधिकतर मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि दुर्घटनाओं में प्रतिमान देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए एक बार दुर्घटना का शिकार व्यक्ति आसानी से दोबारा भी दुर्घटना का शिकार हो जाता है क्योंकि पिछले अनुभव के कारण वह आत्मविश्वास खो बैठता है। दूसरे शब्दों में, उसमें उपपात प्रवणता अथवा दुर्घटना उन्मुखता खो बैठता है। जिसके कारण कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की तुलना में दुर्घटना के शिकार अधिक होते हैं। दुर्घटना उन्मुखता केवल व्यक्तियों में ही नहीं होती बल्कि परिस्थितियों में भी होतीहै। कुछ औद्योगिक परिस्थितियों में दुर्घटनायें अधिक होती है। कुछ व्यक्ति जैवकीय और मनोवैज्ञानिक रूप से इस प्रकार के बने होते हैं कि उनके साथ दुर्घटनायें अधिक होती हैं।

दुर्घटना उन्मुखता के नियम

दुर्घटनाओं का अध्ययन करके मनोवैज्ञानिकों ने दुर्घटना उन्मुखता के विषय में नियम निकालने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें कही जा सकती है—

(१) यदि दुर्घटनायें अकस्मात होती हैं तो कुछ लोग उसके बहुत कम शिकार होते हैं, कुछ बहुत अधिक और अधिकांश इन दोनों स्थितियों के मध्य की स्थिति में रहते हैं।

(२) यदि दुर्घटनायें परिस्थितियों के कारण होती हैं अथवा वे न्यायोचित हैं तो यह देखा जायेगा कि जिन लोगों में किसी विशेष काल में दुर्घटनायें अधिक होती हैं उन्हें अगले काल में दुर्घटनायें कम होती हैं।

(३) यदि दुर्घटनाओं का शिकार होने से दुर्घटना उन्मुखता बढ़ जाती है तो

जो लोग किसी विशेष निरीक्षण में दुर्घटना के शिकार पाये गये हैं बाद के निरीक्षण में भी वे ही दुर्घटना के शिकार पाये जायेंगे।

(४) यदि दुर्घटनायें व्यक्तियों की कुछ विशेषताओं के कारण होती हैं तो कुछ विशेष दुर्घटना प्राप्तांक प्राप्त करने वाले लोग अगले अवसर पर वही प्राप्तांक प्राप्त करेंगे।

मनोवैज्ञानिकों ने औद्योगिक क्षेत्रों में दुर्घटनाओं के बहुत से अध्ययन करके उनके कारणों के विषय में कुछ परिणाम निकाले हैं। अधिकतर अध्ययनों से यह निश्चित रूप से पता चला है कि कुछ व्यक्ति इस प्रकार के बने होते हैं कि अन्य लोगों की तुलना में वे अपने को और दूसरों को दुर्घटनाग्रस्त करने के अधिक कारण होते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति दुर्घटना उन्मुख व्यक्ति कहे जाते हैं। साधारणतया लगभग सभी प्रकार के काम में, जहाँ कि मनुष्य काम करते हैं न्यूनाधिक रूप से दुर्घटना उन्मुखता की गुंजायश होती है। संक्षेप में, आजकल यह माना जाता है कि दुर्घटना में फसने वाले कर्मचारियों को नौकरी से निकालने की अपेक्षा उनकी दुर्घटना उन्मुखता का अध्ययन करना अधिक जरूरी है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं जिनमें से कुछ कारण दूर किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए विशिष्ट काम में प्रशिक्षण देने से दुर्घटना उन्मुखता निश्चय ही कम हो जाती है। फिर, कुछ काम ही ऐसे होते हैं जिनमें अन्य कामों की तुलना में दुर्घटनायें अधिक होती हैं। तीसरे, अनुभव बढ़ने के साथ-साथ दुर्घटना उन्मुखता कम होती जाती है। चौथे, दुर्घटना उन्मुखता के मूल में काम करने की परिस्थितियों का अनुपयुक्त होना है जैसे प्रकाश की कमी या आवश्यकता से अधिक प्रकाश या अनुचित प्रकार का प्रकाश या मशीनों का ठीक प्रकार से व्यवस्थित न होना इत्यादि।

दुर्घटना उन्मुखता के परीक्षण

दुर्घटना उन्मुखता की समस्या का अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे परीक्षण निकाले हैं जिनसे दुर्घटना उन्मुखता का पता लगाया जा सकता है। कभी-कभी यह देखा जाता है कि कम कुशल व्यक्तियों की तुलना में कुछ अधिक कुशल व्यक्ति दुर्घटना के शिकार अधिक होते हैं। इसका कारण यह है कि वे इतनी तेजी से काम करते हैं कि उससे दुर्घटना की सम्भावना बढ़ जाती है। अस्तु, दुर्घटना उन्मुखता को अकुशलता का प्रमाण नहीं माना जा सकता। दूसरे, सभी दुर्घटना उन्मुख व्यक्तियों में समान विशेषतायें नहीं पायी जाती। फिर भी कुछ ऐसी विशेषताओं का पता लगाया गया है जिनसे दुर्घटना उन्मुखता बढ जाती है। इन विशेषताओं का पता लगाने वाले परीक्षण निम्नलिखित हैं :—

(१) सांवेदनिक गामक परीक्षण (Sensory Motor Tests)—स्नायविक समायोजन का दुर्घटना उन्मुखता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिन लोगों का स्नायविक समायोजन अच्छा नहीं होता वे दुर्घटना के अधिक शिकार होते हैं। यह देखा गया है कि सांवेदनिक गामक परीक्षणों में प्राप्त अंकों और दुर्घटनाओं में सम्बन्ध अनुभव

के साथ-साथ बढता जाता है। दूसरे, कार्य कुशलता और दुर्घटना उन्मुखता मे निश्चित सम्बन्ध पाया गया है। दुर्घटना उन्मुखता के परीक्षणो मे निम्न प्राप्तांक प्राप्त करने वाले कर्मचारियों को छाँटने से दुर्घटनाये कम होती हैं और कर्मचारियों का स्तर बढता है। यह एक सामान्य बात है कि कुशलता की कमी, अनुक्रिया की मन्दता और आँख, नाक, कान, आदि इन्द्रियो के दोष दुर्घटनायें बढाते हैं। मंद गामक योग्यता वाले व्यक्ति बिना चोट खाये दुर्घटना की परिस्थिति से नही निकल सकते और कुछ परिस्थितियो मे दुर्घटना से नही बच सकते। हो सकता है कि ये लोग लापरवाह और अनुत्तरदायी न हो किन्तु तो भी वे दुर्घटना उन्मुख होते हैं, अस्तु, स्पष्ट है कि स्नायविक समायोजन समुचित न होने पर दुर्घटनायें अधिक होती हैं।

(२) भावात्मक स्थायित्व परीक्षण (Emotional Stability Tests)—भावात्मकता का दुर्घटना उन्मुखता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिन टैक्सी चालको मे भावात्मकता अधिक स्थायी होती है उनमे दुर्घटना उन्मुखता कम होती है। ऐसा विशेषतया उन व्यक्तियो के बारे मे होता है जो विक्षुब्ध करने वाली अथवा ध्यान बटाने वाली दशाओ मे भी अपनी अनुक्रियाओ को साधे रह सकते है। संक्षेप मे, संवेगात्मक स्थायित्व परीक्षणो मे ऊँचे प्राप्तांक प्राप्त करने वाले व्यक्तियो मे निम्न प्राप्तांक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की तुलना मे दुर्घटना से बचने की सम्भावना लगभग चार गुणा अधिक होती है। दुर्घटना उन्मुखता मे भावावस्था (Mood) का भी महत्व है। यह देखा गया कि उदास भावावस्था चार सौ छोटी दुर्घटनाओं मे से लगभग आधी का कारण थी।[10] दूसरी ओर आनन्द की भावावस्था के समय मे उत्पादन ८ प्रतिशत बढ गया जिससे यह स्पष्ट हुआ कि इस प्रकार की भावावस्था दुर्घटना रोकने के साथ-साथ उत्पादन भी बढाती है। हिमलर ने २८ व्यक्तित्व लक्षणों की एक सूची बनाई जो कि दुर्घटनाओ का कारण थे और इनमे से आधे से अधिक संवेगात्मक विषमायोजन से सम्बन्धित थे।[11]

(३) बुद्धि परीक्षण (Intelligence Tests)—जिन परीक्षणो मे दुर्घटनाओ का सावेदनिक गामक समायोजन और भावात्मकता से सम्बन्ध पता चला उनसे बुद्धि और दुर्घटनाओ मे कोई सम्बन्ध नही ज्ञात हुआ। अन्य अनुसन्धानो से कुछ मानसिक लक्षणो का दुर्घटना उन्मुखता से सम्बन्ध पता चला। इस अध्ययन मे केवल भावात्मक स्थायित्व की तुलना मे बुद्धि और भावात्मक स्थायित्व दोनो के प्राप्तांक दुर्घटना के विषय में कुछ कहने के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत हुये। एक अन्य अध्ययन मे एक व्यावसायिक विद्यालय मे बुद्धि और दुर्घटनाओ मे सम्बन्ध ज्ञात हुआ। किन्तु इसमे यह स्पष्ट नही था कि बुद्धिमान व्यक्ति कहा तक अधिक कुशलता के कारण दुर्घटनायें बचा लेते थे और कहां तक वे बुद्धि के कारण ही ऐसा करते थे। मोटर कारो की दुर्घटनाओ के विषय मे अनुसन्धान करने से यह ज्ञात हुआ है कि इनमे

10. R. B. Hersey, Emotional Factors in Accidents, Person. Jour. (1936), No 15, pp 59–65

11. L. E. Himler, Psychological Factors in Industrial Accidents.

साधारणतया निम्न मानसिक योग्यता वाले चालक अधिक दुर्घटनाओं के शिकार होते हैं। सामान्यतया जनसाधारण में भी दुर्घटनाओं को बचाने में बुद्धि को महत्व-पूर्ण कारक माना जाता है।

(४) स्नायविक और प्रत्यक्षात्मक गति के परीक्षण (Sensory and Perceptual Speed Tests)—कुछ परीक्षणों में यह देखा गया है कि व्यक्तियों में प्रत्यक्षात्मक गति अधिक थी अर्थात् जो दृष्टिजन्य प्रतिमानों में सूक्ष्म अन्तर को भी शीघ्र देख लेते थे उनमें दुर्घटनायें कम होती थीं। दूसरी ओर जिन व्यक्तियों में स्नायविक प्रतिक्रिया की तुलना में प्रत्यक्षात्मक गति मन्द थी, उनमें दुर्घटना उन्मुखता अधिक दिखाई पड़ी। इस प्रकार प्रत्यक्षात्मक गति का स्नायविक प्रतिक्रिया से कम होना दुर्घटना उन्मुखता बढ़ाता है क्योंकि ये लोग देखने से अधिक शीघ्र क्रिया करते हैं।

(५) दृष्टिजन्य कुशलता के परीक्षण—चूंकि अधिकतर उद्योगों में आंखों के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है इसलिए यह स्वाभाविक है कि उनके दोषपूर्ण होने से दुर्घटनायें बढ़ती हैं। इस प्रकार के एक अध्ययन में यह देखा गया कि दुर्घटना न करने वाले ६३ प्रतिशत व्यक्तियों ने दृष्टि परीक्षाओं को पास किया जब कि दुर्घटना करने वाले व्यक्तियों में केवल ३३ प्रतिशत ही उसे पास कर सके।[12] आजकल अनेक उद्योगों में यह निश्चित करने का प्रयास किया गया है कि सफल कर्मचारी में विशिष्ट कार्य को करने के लिये कितनी दृष्टिजन्य कुशलता की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए भारतीय रेलवे में सिगनल देने वाले कर्मचारियों का चुनाव करने में उनकी दृष्टिजन्य कुशलता की विशेष रूप से परीक्षा की जाती है क्योंकि उनके नेत्रों के दोषपूर्ण होने से हजारों आदमियों की जानें जाने की सम्भावना है। सच तो यह है कि केवल आँख ही नहीं बल्कि नाक, कान, त्वचा इत्यादि अन्य इन्द्रियों की कुशलता बढ़ने के साथ साथ दुर्घटना उन्मुखता कम होती है और कम होने के साथ-साथ बढ़ती है।

आधुनिक काल में मनोवैज्ञानिकों ने इस बात पर जोर दिया है कि दुर्घटना उन्मुख व्यक्ति की कठिनाइयों का सावधानी से अध्ययन किया जाए और उनको दूर करने के उपाय बतलाये जाएँ। इस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाने से ४४ दुर्घटना उन्मुख मोटर चालकों की दुर्घटना की गति एक हजार मील में १·३ दुर्घटना से एक वर्ष के अन्दर ही .७५ दुर्घटना तक गिर गयी।[13] इस प्रकार के अध्ययन करने के लिये यह जरूरी है कि यह पता लगाया जाये कि कौन-कौन से व्यक्तिगत कारक दुर्घटनाओं के लिये उत्तरदायी होते हैं। उदाहरण के लिए मोटर चालकों के विषय में यह देखा गया है कि लगभग ६४ प्रतिशत दुर्घटनायें दोषपूर्ण अभिवृत्ति, दुर्घटनाओं का अनुमान लगाने में असफलता, गति अथवा दूरी के विषय में दोषपूर्ण निर्णय, अत्यधिक प्रवृत्ति शीलता, उत्तरदायित्वहीनता और लगातार ध्यान लगाये रहने में असफलता में से

12. N. C. Kephart and J. Tiffin, Vision and Accident Experience, *Nat Safety News* (1950), 62. pp. 90-91.

13. Viteles, M. S., *Industrial Psychology*, pp. 376-389.

किसी न किसी कारण से हुयी थी। इस प्रकार के अध्ययनों से अनेक कार्यों में दुर्घटनाओं को बहुत कम किया जा सका है। किन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अनेक बार दुर्घटनाओं का विश्लेषण आत्मगत हो जाता है। फिर, मानव निर्णय गलत हो जाने से भी इसमें गल्तियाँ होने की सम्भावना है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के विश्लेषण व्यक्तिगत विशेषताओं और दुर्घटना उन्मुखता का सम्बन्ध निश्चित् करने वाली पीछे बतलायी गयी विधियों का स्थान नहीं ले सकते। जहाँ तक दुर्घटनाओं से संवेगात्मक विषमायोजन से प्रभावित होने की बात है उपरोक्त दृष्टिकोण अधिक मूल्यवान हो सकता है।

दुर्घटना उन्मुखता के कारण

दुर्घटना उन्मुखता के उपरोक्त विभिन्न परीक्षणों के विवेचन से दुर्घटना उन्मुखता के कारण स्पष्ट होते हैं। संक्षेप में, इसमें मुख्य कारण निम्नलिखित हैं.—

(१) **सांवेदनिक गामक गति की कमी**—जैसा कि दुर्घटना उन्मुखता के पहले परीक्षण में बतलाया जा चुका है, जिन लोगों में सांवेदनिक गामक गति मन्द होती है उनमें साधारणतया दुर्घटनाएं अधिक होती हैं।

(२) **संवेगात्मक स्थायित्व का अभाव**—दुर्घटना उन्मुखता का एक मुख्य कारण संवेगात्मक स्थायित्व की कमी है जैसा कि पीछे बतलाये गये दूसरे परीक्षण से स्पष्ट होता है।

(३) **अनुकूल भावावस्था का अभाव**—साधारणतया अप्रसन्न और उदास भावावस्था में अनुकूल और प्रसन्न भावावस्था की तुलना में अधिक दुर्घटनाएं होती हैं और उत्पादन भी कम होता है।

(४) **बौद्धिक दुर्बलता**—अमरीका में डैट्राय के ट्रैफिक कोर्ट द्वारा मानसिक आरोग्य सम्बन्धी अध्ययनों के लिए निर्धारित मामलों में लगभग एक तिहाई बौद्धिक दुर्बलता के शिकार थे। इस प्रकार बौद्धिक दुर्बलता दुर्घटना उन्मुखता बढ़ाती है।

(५) **स्नायविक और प्रत्यक्षात्मक गति में समायोजन का अभाव**—अंग्रेजी में कहावत है कि कूदने से पहले देखो। स्पष्ट है कि जिनकी कूदने की गति देखने की गति से तीव्र होगी वे अधिक दुर्घटना के शिकार होंगे। दूसरे शब्दों में, देखने की गति स्नायविक गति से कम होने पर दुर्घटना उन्मुखता बढ़ जाती है।

(६) **दृष्टि सम्बन्धी दोष**—जिन कामों में दृष्टि से काम लेने की आवश्यकता पड़ती है उनमें दृष्टि सम्बन्धी दोष भी दुर्घटना उन्मुखता का एक बड़ा कारण होते हैं।

(७) **हताशा**—भग्नाशा अथवा हताशा (Frustration) बढ़ने के साथ-साथ स्थायी रूप से दुर्घटना की उन्मुखता बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए भग्नाशा बढ़ने के साथ-साथ आक्रामकता बढ़ती है जो कि दुर्घटनाओं में बहुत बड़ी संख्या का कारण है।

(८) **अनुभव का अभाव**—आधुनिक काल में अधिकतर जटिल कार्यों में

प्रशिक्षित कर्मचारी ही रखे जाते हैं क्योंकि अनुभव की कमी अनेक दुर्घटनाओं का कारण होती है। अनुभव बढ़ने के साथ-साथ व्यक्ति की कुशलता भी बढ़ती है जिससे दुर्घटनाएँ कम होती हैं।

(९) **अल्पायु**—साधारणतया आयु बढ़ने के साथ-साथ दुर्घटना उन्मुखता कम हो जाती है क्योंकि आयु बढ़ने के साथ अनुभव, कुशलता, स्नायविक समायोजन, प्रत्यक्षात्मक गति, भावात्मक स्थायित्व, वृद्धि, सावेदनिक-गामक समायोजन आदि में भी प्रगति होती है। इसीलिए कुछ उद्योगों में तो एक निश्चित् आयु से कम के व्यक्तियों को काम दिये जाने का सर्वथा निषेध है। कोयले की खानों में काम करने वाले कर्मचारियों की आयु ३० और ३६ वर्ष के मध्य होनी चाहिए और जमीन के नीचे अन्य प्रकार के काम करने वालों की आयु २० और २६ के मध्य होनी चाहिए। स्मरण रहे कि निश्चित आयु से कम होने के साथ-साथ अधिकतम आयु से अधिक होने पर भी दुर्घटना उन्मुखता बढ़ती है क्योंकि वृद्ध व्यक्ति शीघ्र थक जाते हैं और उनकी शक्तियां कम हो जाती हैं किन्तु बहुत से नौजवान वृद्धों की तुलना में अधिक दुर्घटना का शिकार होते हैं जिनका कारण केवल अनुभव की कमी मात्र न होकर तेजी से काम करने की प्रवृत्ति और खतरों से खेलने की इच्छा भी है।

(१०) **लिंग भेद**—साधारणतया अधिकतर कामों में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों में दुर्घटना उन्मुखता अधिक होती है। मोटर कार चलाने जैसे कामों में भी, जिनमें कि शारीरिक शक्ति का कोई महत्व नहीं है, यह देखा गया है कि प्रत्येक मील में स्त्रियों ने पुरुषों से तीन गुनी अधिक दुर्घटनायें कीं। फिर भी वर्तमान स्थिति में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि स्त्री पुरुष में यह अन्तर स्त्रियों के थक जाने के कारण है या इसे लिंग भेद पर आधारित माना जा सकता है।

(११) **स्वास्थ्य सम्बन्धी दोष**—साधारणतया यह माना जाता है कि शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न होने पर दुर्घटना उन्मुखता बढ़ जाती है। ऊँचा रक्तपात, कार दुर्घटनाओं में चालक द्वारा दुर्घटना ग्रस्त होने का एक विशेष कारण पाया गया है। शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य कम होने पर भी दुर्घटना उन्मुखता बढ़ती है। मनो-स्नायविक रोग के शिकार, स्थिर मति अथवा तीव्र भावावेश ग्रस्त व्यक्ति की दुर्घटना उन्मुखता बढ़ जाती है। मानसिक स्वास्थ्य ठीक न होने पर असामाजिक प्रवृत्ति बढ़ जाने से भी दुर्घटना उन्मुखता बढ़ जाती है।

दुर्घटना उन्मुखता के उपरोक्त कारणों के विवेचन से स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक उपायों की सहायता से दुर्घटनाओं को बड़ी सीमा तक दूर रखा जा सकता है। उपरोक्त कारणों को दूर करने से दुर्घटनायें निश्चय ही कम होंगी। कुछ कारण तो ऐसे हैं जो सभी व्यक्तियों के विषय में दूर किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिये अनुभव और प्रशिक्षण की कमी प्रशिक्षण देकर दूर की जा सकती है। दुर्घटना उन्मुखता के उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त उद्योगों में मानव सम्बन्ध भी दुर्घटना का

बहुत बड़ा कारण होते हैं। कुछ लोग अत्यन्त अनुत्तरदायी होने के कारण और कुछ जान बूझकर कारखाने को हानि पहुंचाने के लिए दुर्घटनाएं करते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों पर नजर रखने की आवश्यकता है ताकि उन्हें कार्य से हटाया जा सके। इस सम्बन्ध मे फोरमैन का बडा उत्तरदायित्व है। जहाँ वह असामाजिक तत्वों पर नजर रखकर खतरों को दूर रख सकता है वहाँ दूसरी ओर प्रत्येक श्रमिक के कार्य पर नजर रखकर उसे दुर्घटना से बचा सकता है। फोरमैन का दुर्व्यवहार कर्मचारियों में भग्नाशा और आक्रामकता उत्पन्न करता है जिससे दुर्घटनायें बढती हैं। दूसरी ओर अधिकारियो के अच्छे व्यवहार से कारखाने मे ऐसा वातावरण निर्माण होता है जिस मे दुर्घटनाएं बहुत कम होती हैं। अस्तु, साधारणतया उद्योगो में अधिकारियो को नेता अथवा न्यायाधीश न होकर मित्र, सहायक और सलाहकार के रूप मे काम करना चाहिए। इससे कारखाने मे एक ऐसा सामुदायिक वातावरण निर्माण होगा जिसमें असामाजिक तत्व दुर्घटना करने से बाज आयेंगे और अन्य लोग परस्पर सहयोग से और मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखते हुए अधिक कुशलता से कार्य करेंगे जिससे दुर्घटनायें कम होगी।

सारांश

दुर्घटनायें आकस्मिक नहीं होतीं, उनके कारण होते हैं।

दुर्घटनाओं के कारण—(अ) कार्य की अनुपयुक्त परिस्थितियां—(१) उपयुक्त तापमान का अभाव, (२) नमी की अधिक मात्रा, (३) समुचित प्रकाश का अभाव, (४) काम की पाली। (ब) कार्य विधियां—(१) कार्यकाल की लम्बाई, (२) कार्य की कठोरता, (३) कार्य की गति, (४) थकान बढ़ाने वाली विधियां, (५) सुरक्षा व्यवस्थाओं का अभाव। (स) कर्मचारी से सम्बन्धित कारक—(१) अपरिपक्व आयु, (२) अनुभवहीनता, (३) बुरी स्वास्थ्य दशा, (४) शारीरिक दोष, (५) लिंग भेद का प्रभाव, (६) प्रतिकूल मानसिक और संवेगात्मक दशा। (द) तात्कालिक कारक।

दुर्घटना रोकने के उपाय—(१) कार्य की परिस्थितियों में सुधार, (२) सुरक्षा विधियों की व्यवस्था, (३) कर्मचारी की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ध्यान रखना, (४) सही कार्य विधियों में प्रशिक्षण, (५) थकान दूर करने वाले उपाय, (६) कार्य की सही गति, (७) सुरक्षा समितियो का सगठन, (८) सुरक्षा आन्दोलन और पोस्टर, (९) सुरक्षा की आदतें, (१०) सुरक्षा की प्रेरणा।

दुर्घटना उन्मुखता—दुर्घटना उन्मुखता वह लक्षण है जिससे व्यक्ति को दुर्घटना में फसने की सम्भावना बढ़ जाती है। मनोवैज्ञानिकों ने दुर्घटना उन्मुखता के विषय में नियमों का पता लगाया है।

दुर्घटना उन्मुखता के परीक्षण—(१) संवेदनिक गामक परीक्षण, (२)

भावात्मक स्थायित्व परीक्षण, (३) बुद्धि परीक्षण, (४) स्नायविक और प्रत्यक्षात्मक गति के परीक्षण, (५) दृष्टिजन्य कुशलता के परीक्षण।

दुर्घटना उन्मुखता के कारण—(१) संवेदनिक गामक गति की कमी, (२) संवेगात्मक स्थायित्व का अभाव, (३) अनुकूल भावावस्था का अभाव, (४) बौद्धिक दुर्बलता, (५) स्नायविक और प्रत्यक्षात्मक गति में समायोजन का अभाव, (६) दृष्टि सम्बन्धी दोष, (७) हताशा, (८) अनुभव का अभाव, (९) अल्पायु, (१०) लिंग भेद, (११) स्वास्थ्य सम्बन्धी दोष।

अभ्यास के लिए प्रश्न

प्रश्न १ "दुर्घटनायें आकस्मिक नहीं होती।" विवेचना कीजिये और बतलाइये कि उद्योग में दुर्घटनाओं को कैसे रोका जा सकता है ?

"Accidents do not happen accidentally." Discuss this remark and say how accident in industry can be prevented.

(Karnatak 1968)

प्रश्न २. उन मानसिक दशाओं की विवेचना कीजिए जो दुर्घटनाओं के लिये उत्तरदायी हो सकती हैं। दुर्घटनायें किस प्रकार से कम की जा सकती हैं ?

Discuss the psychological factors that may be responsible for accidents. How can accidents be reduced to a minimum ?

(Agra 1965)

प्रश्न ३. क्या दुर्घटनायें आकस्मिक होती हैं ? विवेचना कीजिये तथा दुर्घटनाओं के लिये उत्तरदायी स्थितियों का वर्णन कीजिये तथा उनको कम करने के उपायों का निर्देशन कीजिये।

Are accidents accidental ? Discuss and point out the conditions *responsible for accidents and suggest some measures to reduce* them (Agra 1964)

प्रश्न ४. उद्योग में दुर्घटना के क्या कारण हैं, उन्हें कम करने के लिये व्यावसायिक मनोविज्ञान द्वारा कौन-कौन से उपाय निर्दिष्ट किये गये हैं ?

What are the causes of accidents in industry ? What methods are devised by Industrial psychology to reduce them ? (Agra 1965)

प्रश्न ५. विवेचना कीजिये कि दुर्घटनायें आकस्मिक होती हैं। दुर्घटनाओं के लिये उत्तरदायी स्थितियों का निर्देशन कीजिये तथा उनको कम करने के मापनों का निर्देशन कीजिये।

Discuss whether accidents are accidental. Point out the conditions responsible for accidents and suggest some measures to reduce them. (Agra 1961)

प्रश्न ६. दुर्घटना प्रवणता क्या है ? क्या दुर्घटना प्रवण व्यक्तियों को पहिचानने में मनोवैज्ञानिक परीक्षण उपयोगी हो सकते हैं ?

What is accident proneness ? Are psychological tests useful in identifying accident prone individuals ? (Vikram 1968)

प्रश्न ७. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—दुर्घटना उन्मुखता।

Write short note—Accident Proneness. (Agra 1968)

प्रश्न ८. दुर्घटना प्रवणता के मनोवैज्ञानिक घटकों का वर्णन कीजिए। दुर्घटना प्रवणता को घटाने की दृष्टि से कौन से उपाय किये जाने चाहिए ?

Describe the psychological factors in accident proneness. What measures should be taken to reduce accident proneness ?

(Vikram 1967)

१७

औद्योगिक प्रशिक्षण

(Industrial Training)

यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि अप्रशिक्षित श्रमिक की तुलना में प्रशिक्षित कर्मचारी कम समय में अधिक मात्रा में और अधिक अच्छा काम करता है। जिन मशीनों को चलाने के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है उनमें तो प्रशिक्षण के अभाव में काम ही नहीं हो सकता दूसरी ओर जो मशीनें इतनी जटिल नहीं भी होती उनमें भी प्रशिक्षण के द्वारा काम करने की कुशलता को बढ़ाया जा सकता है।

औद्योगिक प्रशिक्षण के लाभ

संक्षेप में, उद्योग में प्रशिक्षण से मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं—

(१) **उत्पादन में वृद्धि**—आर० जे० ग्रिनले (R J Greenly)[1] के अध्ययनों के अनुसार एक मशीन पर चाकू बदलने के काम में ६ साल काम करने के बाद भी कोई प्रगति नहीं दिखलाई पड़ी जब कि प्रशिक्षण देने के बाद कार्यकाल में एक तिहाई से अधिक कमी हो गई। इससे प्रति वर्ष बीस हजार आठ सौ अस्सी डॉलर की बचत हुई। इसी के अध्ययन अन्य उद्योगों में किये गये। सी० एच० लाशी (C. H. Lawshe)[2] के अध्ययन में एक प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन किया गया। इसमें प्रशिक्षित व्यक्तियों की अप्रशिक्षित व्यक्तियों से तुलना करने पर यह देखा गया कि आठ सप्ताह के पश्चात् प्रशिक्षण से निश्चित् लाभ दिखलाई पड़ा।

(२) **टूट फूट की रोकथाम**—औद्योगिक प्रशिक्षण से केवल उत्पादन में ही वृद्धि नहीं होती बल्कि टूट फूट की रोकथाम से भी वृद्धि होती है। एल० जी० लिण्डहल (L. G. Lindahl)[3] के अध्ययनों में यह मालूम हुआ कि १२ सप्ताह के प्रशिक्षण से बाद टूट-फूट में निश्चित् रूप से कमी दिखलाई पड़ी। टूट-फूट में कमी

---

1. R. J Greenly job Training, *Nat Assn. Manuf Later Relation Bill*, 1941, No. 35, pp 5–8.

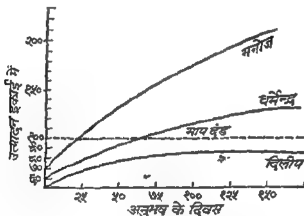
2. "C. H Lowshe, Jr Eight ways to check of value of a Training program, *Factory Manuf, and Maint*, (194).

3. "L. G. Lindahl, Movement Analysis as a Industrial Training method *Jour. Appl. Psychol*, (1945), No. 29 pp. 420—436.

होने से मशीनें अधिक समय तक चलती हैं और कच्ची सामग्री की बचत होती है। इस प्रकार से प्रशिक्षण से कम्पनी को व्यापक लाभ पहुँचता है।

(३) दुर्घटनाओं की रोकथाम—औद्योगिक प्रशिक्षण से एक अन्य लाभ दुर्घटनाओं की रोकथाम है यद्यपि इस सम्बन्ध में अनुसन्धानों से ठीक-ठीक तथ्य एकत्रित नहीं किए जा सकेंगे किन्तु यह कहा जा सकता है कि प्रशिक्षणहीन कर्मचारियों की तुलना में प्रशिक्षित कर्मचारी दुर्घटनाओं के शिकार कम होते हैं।

(४) अनुपस्थिति में कमी—प्रशिक्षण के उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त प्रशिक्षण से अनुपस्थिति की संख्या भी कम होती है। प्रशिक्षण से कर्मचारी के लिए कठिन काम भी आसान हो जाता है। उसके उत्पादन की मात्रा और किस्म बढ़ने से कार्यालय अथवा कारखाने में उसका सम्मान बढ़ जाता है और कभी-कभी तो उसको पुरुस्कार मिलते हैं। इससे उसकी प्रेरणा बढ़ती है और वह यथासम्भव काम पर उपस्थित भी रहता है। इस प्रकार प्रशिक्षण से उद्योग में नीतिमत्ता और कार्य सन्तोष बढ़ते हैं।



चित्र सं० २१ —अनुभव से उन्नति की दर

यूँ तो सभी व्यक्ति अनुभव से सीखते हैं परन्तु कुछ लोग अनुभव से दूसरों की अपेक्षा अधिक लाभ उठाते हैं। जैसा कि उपरोक्त वक्रों से ज्ञात होता है कि मनोज का कार्य सबसे अधिक सन्तोषजनक है और दिलीप का सबसे कम सन्तोषजनक है। धर्मेन्द्र औसत से ऊपर है।

औद्योगिक प्रशिक्षण के विभिन्न लाभों के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उद्योगों में प्रशिक्षण देने से मालिकों को लाभ होता है। यद्यपि इस क्षेत्र में अनेक बातों के विषय में अनुसन्धानों के आधार पर निश्चित् निष्कर्ष नहीं निकाले जा सके हैं परन्तु इससे कोई यह शंका नहीं करता कि औद्योगिक प्रशिक्षण से वास्तव में लाभ होता है या नहीं। कुछ लोगों का तो यह विचार है कि प्रशिक्षण से लाभ होना इतनी सामान्य बात है कि उसकी जांच करने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए

विद्यालयों में शिक्षक अध्यापन का कार्य करते हैं, इसमे आज तक किसी ने यह सन्देह नही किया कि क्या वास्तव मे शिक्षकों के पढाने से कोई लाभ होता है और न यह तथ्य अनुसन्धान के द्वारा प्रदर्शित ही किया गया। अस्तु, प्रशिक्षण का महत्व स्वय सिद्ध है।

सही प्रशिक्षण विधि की कसौटी

उद्योग के क्षेत्र में प्रशिक्षण का महत्व सिद्ध हो जाने के पश्चात् अब यह समस्या उत्पन्न होती है कि किस उद्योग में किस कर्मचारी को कितने समय तक और किस विधि से प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है। प्रशिक्षण की मात्रा और विधि कर्मचारी की वैयक्तिक भिन्नताओं और विशेष उद्योग में उसके कार्य के अनुसार बदलती रहती हैं। प्रशिक्षण की भिन्न-भिन्न विधियो जैसे भाषण, विषय का विवेचन, चार्टो, चित्रो और रेखा-चित्रो तथा चल-चित्रो के द्वारा प्रशिक्षण, कक्षाओं के द्वारा प्रशिक्षण इत्यादि की अलग-अलग लाभ-हानियाँ बतलाई गई हैं। किसी प्रशिक्षण में सही विधि निश्चित् करने से पहले प्रशिक्षण के लक्ष्यो को निश्चित् किया जाना चाहिए क्योकि एक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए जो विधि सर्वोत्तम है वही विधि दूसरा लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम नही होगी। जहाँ किसी क्षेत्र मे सिनेमा स्लाइड, चित्र, चार्ट और रेखा चित्र इत्यादि सहायक हो सकते हैं वहाँ दूसरे प्रकार के प्रशिक्षण में वाद-विवाद और भाषण अथवा कक्षा के रूप में अध्यापन अधिक लाभदायक सिद्ध होते हैं। किसी भी विधि को प्रत्येक प्रकार के प्रशिक्षण में सर्वोत्तम नहीं कहा जा सकता। प्रशिक्षण के लक्ष्य के अतिरिक्त प्रशिक्षिण विधि के गुणो की एक कसौटी यह है कि प्रशिक्षार्थी उससे कहाँ तक सीखा है। कुछ लोगो का यह विचार है कि प्रशिक्षण का महत्व इस बात से जाचा जाना चाहिए कि क्या सिखाया गया है, इस बात से नही कि क्या सीखा गया। यह दृष्टिकोण उचित नही है क्योकि प्रशिक्षण कार्यक्रम मे असली बात यह है कि प्रशिक्षार्थी ने क्या और कहाँ तक सीखा है। यदि प्रशिक्षार्थी ने बहुत कम सीखा है तो प्रशिक्षण सामग्री कितनी भी अधिक होने पर भी कार्यक्रम सफल नही कहा जा सकता। प्रशिक्षण विधि में एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह होनी चाहिए कि जो कुछ कर्मचारी सीखे उसे आसानी से उद्योग की वास्तविक परिस्थितियो में लागू कर सके। ऐसा न होने पर उसका प्रशिक्षण विशेष लाभदायक सिद्ध नही होगा।

प्रशिक्षण विधि के उपरोक्त गुणों के अभाव में प्रशिक्षण कार्यक्रम असफल सिद्ध होता है। कार्यक्रम की असफलता के अनेक अर्थ हो सकते हैं जैसे प्रशिक्षण के समय का व्यर्थ जाना, प्रशिक्षण विधि का प्रभावहीन सिद्ध होना, प्रबन्धकों और प्रशिक्षकों की कार्य प्रणाली के बारे में मतभेद, प्रशिक्षण मूल्यांकन की अनुपयुक्त विधि इत्यादि। कभी-कभी पर्याप्त समय होने के पहले ही प्रशिक्षण बन्द किए जाने से भी वह असफल हो जाता है।

औद्योगिक प्रशिक्षण के अंग

औद्योगिक कार्यों को साधारणतया कुशल और अकुशल वर्गों में विभाजित किया जाता है। कुशल कार्य वे होते हैं जिनमें किसी न किसी प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है और यह ज्ञान प्रशिक्षण से मिलता है। अकुशल कार्यों में किसी विशेष ज्ञान अथवा प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार कुशल कार्यों में जानकारी और हस्तकौशल दोनों ही आवश्यक माने जाते हैं। उदाहरण के लिये कुशल बढ़ई, राज या बिजली मिस्त्री होने के लिए केवल इनसे सम्बन्धित जानकारी मात्र ही काफी नहीं है बल्कि इनके विशिष्ट कार्यों को करने का कौशल भी होना चाहिए। इस कौशल के बिना किसी भी कारीगर को कुशल कारीगर नहीं कहा जा सकता। किसी कारीगरी की जानकारी एक बात है और उसमें कुशलता दूसरी बात है। इसीलिए कभी-कभी कुछ अभ्यस्त कारीगर इतना अच्छा काम दिखाते हैं कि वह पढ़े लिखे लोग किसी भी तरह नहीं कर सकते। यह कुशलता क्या है? यह विशेष कार्य को करने में होने वाली गतियों का प्रशिक्षण है। भिन्न-भिन्न कार्यों में शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों को भिन्न-भिन्न गतियां करनी पड़ती हैं। किसी विशिष्ट कार्य में जिन गतियों और गति समायोजनों की आवश्यकता पड़ती है उन्हें सही प्रकार से करना उनमें कुशलता दिखलाता है। अस्तु, औद्योगिक प्रशिक्षण का लक्ष्य एक ओर विशिष्ट कार्य के विषय में जानकारी देना है और दूसरी ओर उन गतियों में कुशलता प्रदान करना है जिनकी उसमें आवश्यकता पड़ती है। इस औद्योगिक प्रशिक्षण में निम्नलिखित प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है—

(१) **साहचर्य** (Association)—भिन्न-भिन्न उद्योगों में एक के बाद एक होने वाली क्रियाओं में साहचर्य की आवश्यकता पड़ती है जिससे वे स्वाभाविक रूप से क्रमानुसार होती चली जाती हैं। यह साहचर्य स्मृति में कार्य करता है और सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के रूप में भी कार्य करता है।

(२) **सीखने में चुनाव** (Selection in Learning)—कार्य करने की वास्तविक परिस्थितियों में अन्य बातों की तुलना में कुछ बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना पड़ता है। अस्तु, इसमें दो प्रकार के चुनाव होते हैं—सावेदनिक (Sensory) और गामक (Motor)। सावेदनिक चुनाव में व्यक्ति को भिन्न-भिन्न संवेदनाओं में अन्तर करना और सही संवेदनाओं को पहचानना सीखना पड़ता है। उदाहरण के लिये मोटर कार चलाने के काम में चालक को विभिन्न प्रकार की रोशनियों में से लाल और हरी रोशनी का चुनाव करना और उनके संकेत पहचानना सीखना पड़ता है। विभिन्न औद्योगिक परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न गामक गतियों की आवश्यकता पड़ती है। ये गतियाँ इस प्रकार से की जानी चाहियें कि कम से कम गति करते हुये अधिक से अधिक काम हो सके। इससे जहां एक ओर थकान कम आयेगी वहाँ दूसरी ओर समय की भी बचत होगी। भिन्न-भिन्न उद्योगों में समय गति अध्ययनों के द्वारा गतियों के विषय में पता लगाया जा सकता है।

(३) संवेदनाओं में अन्तर करना (Sensory Discrimination)—औद्योगिक प्रशिक्षण में कर्मचारी को उपस्थित संवेदनाओं में भेद करना सीखना होता है। कभी-कभी इस प्रकार का भेद न कर सकने के कारण ही कर्मचारी इस दुर्घटना का शिकार हो जाता है। कुशल व्यक्ति एक ही प्रकार की भिन्न-भिन्न वस्तुओं में सूक्ष्म अन्तरों को पहचान सकते हैं। कुछ लोग मोटर कार को देखते ही यह बतला सकते हैं कि वह किस वर्ष का मोडल है। ऐसे लोगों को पुरानी कार दिखाकर नयी कार का धोखा नहीं दिया जा सकता।

(४) हस्तकौशल प्राप्त करना (Acquisition of Skill)—जिन कारखानों में कर्मचारियों को हाथ से भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य करने की आवश्यकता पड़ती है उनमें हस्तकौशल प्राप्त करना होता है। यह हस्तकौशल क्या है? यह हाथ की पेशियों के प्रशिक्षण का परिणाम है। इससे कर्मचारी को हाथ की अनुभूति मात्र से अन्दाज हो जाता है कि काम किस तरह का हो रहा है। कुशल कारीगर हाथ लगाते ही समझ लेता है कि काम कहाँ तक ठीक हो रहा है। वह एक नजर में सही और गलत काम की पहचान कर सकता है। वह हाथ के अन्दाज से ही हर काम को ठीक-ठीक करता चलता है क्योंकि पेशियों की गतियों में नाप तौल नहीं हो सकती। यह कुशलता और अभ्यास का विषय है। जैसे टेनिस के खिलाड़ियों में कुशल व्यक्तियों को यह अन्दाज होता है कि गेन्द को कहाँ फेंकने के लिये कितने जोर से मारने की आवश्यकता है, इसी तरह कहाँ पर शरीर को कितना झुकाया जाना चाहिये इत्यादि बातें खिलाड़ी की कुशलता से सम्बन्ध रखती हैं।

(५) कार्य में सूझ-बूझ और अन्तर्दृष्टि (Understanding and Insight in Work)—औद्योगिक प्रशिक्षण में एक अन्य बात कार्य में सूझ-बूझ और अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करना है। इसके बगैर साधारण काम तो हो सकते हैं किन्तु जटिल समस्याओं को सुलझाया नहीं जा सकता। उदाहरण के लिये कुशल इन्जीनियर वही है जो मशीन को देखते ही यह बता दे कि उसमें क्या दोष है और दोष को देखते ही यह पता लगाले कि यह दोष किस कारण है। इन्जीनियर की कुशलता का आधार मशीन की संरचना के विषय में और इन्जीनियरिंग विज्ञान में उसकी सूझ-बूझ और अन्तर्दृष्टि है। अस्तु, प्रशिक्षण देने में केवल तोते की तरह रटने को और यन्त्रवत दोहराने को प्रोत्साहन न देकर विशेष कार्य में अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। ऐसा करने से कर्मचारी स्वयं कार्य करने की अधिक उपयुक्त विधियाँ निकाल सकता है। यह ठीक है कि सूझ-बूझ और अन्तर्दृष्टि बहुत कुछ कर्मचारी की अपनी बुद्धि पर निर्भर होती है किन्तु प्रशिक्षण से भी किसी सीमा तक इसे अवश्य बढ़ाया जा सकता है।

(६) अभिवृत्ति का परिवर्तन (Change of Attitude)—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, औद्योगिक परीक्षण से कर्मचारी की नैतिमत्ता में भी सुधार होता है। प्रशिक्षित कर्मचारी उसी काम को सरलता से कर लेता है जो अप्रशिक्षित

कर्मचारी को बोझ मालूम पड़ता है। इससे कार्य के प्रति उसकी अभिवृत्ति बदल जाती है। प्रशिक्षण के बाद उसकी अभिवृत्ति कार्य के अधिक अनुकूल हो जाती है।

उद्योग में प्रशिक्षण विधियां

(Training Method in Industry)

आजकल उद्योग के क्षेत्र में प्रशिक्षण देने के लिये अनेक प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है जैसे—भाषण विधि, पुस्तकों और पैम्फलेट के द्वारा प्रचार, दृश्य श्रव्य शिक्षा प्रदर्शन और फिल्म दिखलाना, कार्य करते हुये प्रशिक्षण, वाद-विवाद प्रणाली, कार्य भाग अदा करने की प्रणाली इत्यादि। यहाँ पर उद्योग में प्रशिक्षण की इन विभिन्न प्रणालियों की व्याख्या और मूल्यांकन दिया जायेगा।

(१) भाषण प्रणाली (The Lecture Method)—भाषण प्रणाली में, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, जानकार व्यक्ति प्रशिक्षार्थियों को विशेष काम के विषय में भाषण द्वारा जानकारी प्रदान करते हैं। इसमें थोड़े से समय में काम के भिन्न-भिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी दी जा सकती है। चार्टों और तालिकाओं की सहायता से भाषण को अधिक बोधगम्य बनाया जा सकता है। अनेक उद्योगों में समय-समय पर विशेषज्ञों को बुलाकर भाषण कराये जाते हैं। औद्योगिक प्रबन्ध जैसे विषयों में प्रशिक्षण देने के लिये भाषण विधि अत्यन्त उत्तम है किन्तु इस विधि में निम्नलिखित कमियां पायी जाती हैं—

(अ) अपर्याप्त विधि—भाषण विधि कर्मचारियों की अभिवृत्तियों को बदलने सरल साहचर्य बनाने, कुशलता प्राप्त करने इत्यादि के लिये अपर्याप्त है।

(ब) ऊबाने वाली विधि—साधारणतया औद्योगिक और तकनीकी विषयों पर भाषण मनोरंजक नहीं होते और इसलिये सुनने वाले ४५ मिनट लगातार भाषण से अधिक होने पर ध्यान नहीं जमा सकते। ऊबाने वाला होने के कारण भाषण से केवल बुद्धिमान श्रोता ही कुछ लाभ उठा पाते हैं।

उपरोक्त कमियों के बावजूद अनेक कम्पनियां कुछ विशेष कार्यों के लिये भाषण विधि का प्रयोग करती हैं। विशेष अवसरों पर भाषणों के द्वारा नये कर्मचारियों को कम्पनी का इतिहास और नीतियाँ बतलाई जाती हैं जिससे उन्हें यह पता चलता है कि उन्हें कैसे व्यवहार करना चाहिये और वे किस तरह की कम्पनी में काम कर रहे हैं। भाषण को जोरदार बनाने से उसकी प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है। तरह-तरह के जोरदार शब्दों विशेष स्वर तथा हाथ के संकेत आदि की सहायता से भाषण को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। यह एक सामान्य मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि पढ़ी हुई बात से सुनी हुई बात अधिक याद रहती है। अस्तु, भाषण का महत्व स्पष्ट है।

(२) पुस्तकें और पैम्फलेट (Booklets and Pamphlets)—अनेक प्रदर्शनियों में विशेष उद्योग के विषय में जानकारी का प्रचार करने के लिये छोटी-छोटी पुस्तकें और पैम्फलेट बाँटे जाते हैं। इनको पढ़कर लोगों को यह पता चलता

है कि विशेष उद्योग कहाँ और किस प्रकार चल रहा है। कर्मचारियों में इस प्रकार की सामग्री बाँटने से बहुत सी जानकारी फैलायी जा सकती है।

किन्तु पैम्फलेट और पुस्तके प्राप्त करने वाले व्यक्तियो की संख्या से यह अनुमान नही लगाया जा सकता कि उनमे दी गई जानकारी कहाँ तक फैली है। बहुत से लोग तो इन्हे इसीलिये ले लेते हैं क्योकि ये मुफ्त मिलती हैं और आकर्षक बनाई जाती हैं अनेक अन्य जो उन्हे खोलकर देखते भी है वे भी कभी-कभी चित्र और कभी कुछ आकर्षक शीर्षक मात्र पढकर छोड देते हैं। बहुत कम लोगो मे पढने की आदत होती है। देखा गया है कि अनेक कर्मचारी प्राप्त हुये पैम्फलेटों पर कोई ध्यान नही देते।

फिर भी उपरोक्त विधि की कुछ अपनी विशेषताये हैं जो अन्य विधियों मे नही होती। भाषण एक बार सुनने के बाद फिर से दोहराया नही जा सकता और यदि श्रोता कुछ बात भूल गया है तो वह उसका फिर पता नही लगा सकता। यह कमी पैम्फलेट मे नही होती। उन्हे चाहे जब और चाहे जितनी बार पढा जा सकता है। चित्रो और आकर्षक रगो के द्वारा पैम्फलेट को पढने की प्रेरणा बढायी जा सकती है। अन्त मे इस तरह की सामग्री को छपवाकर बटवाना स्वय इस बात का प्रमाण है कि कम्पनी अपने कर्मचारियो को प्रशिक्षित करना चाहती है। इस तथ्य का भी अपना महत्व है।

(३) चलचित्र (Motion Pictures)—यद्यपि भाषणो और पैम्फलेटो की तुलना मे चलचित्र द्वारा प्रशिक्षण अधिक महगा पड़ता है परन्तु उसके अपने लाभ होने के कारण उसका व्यापक प्रचार है। अनेक कम्पनियाँ अपने विशिष्ट फिल्म बनाती हैं अन्य अनेक कम्पनियाँ दूसरी कम्पनियो से फिल्म खरीद लेती हैं। चलचित्र की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसे अनेक बार बडी सख्या मे दर्शकों को दिखलाया जा सकता है और दर्शक उसपर स्वभावतया ध्यान देते हैं। चलचित्र दृश्य शिक्षण का सबसे अच्छा माध्यम है। उसमे किसी विशिष्ट उद्योग के विभिन्न यन्त्रो और मशीनो, उनकी कार्य विधियो तथा उद्योग से सम्बन्धित सभी बातो को यथार्थ के रूप मे दिखलाया जा सकता है। इस प्रकार के चल चित्र उतने ही प्रभावशाली होते हैं जितना कि किसी कारखाने या कार्यालय को वास्तव मे घूम फिर कर देखना प्रभावशाली होता है। कहना न होगा कि प्रशिक्षण की चल चित्र प्रणाली भाषण और प्रदर्शन दोनो का सुन्दर मेल है।

फिर भी चल चित्र के मूल्य के विषय मे अतिश्योक्ति नही होनी चाहिये। यह प्रशिक्षण के अनेक पहलुओं को अछूता ही छोड देता है। जहाँ उसमे मानव सम्बन्धो को दिखाया जा सकता है और सवेगो की अपील की जा सकती है वहाँ उससे कुशलता नही बढायी जा सकती। केवल चलचित्र देखने मात्र से कोई कर्मचारी कुशल कर्मचारी नही बन सकता। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि चलचित्र प्रणाली किसी भी अच्छी औद्योगिक प्रणाली का अनिवार्य अग है।

(४) प्रदर्शन और दृश्य द्रव्य सामग्री (Demonstration and Audio-visual Aids)—चल चित्र की तुलना में दृश्य द्रव्य सामग्री कम खर्चे से जुटायी जा सकती है। इसके लाभ भी वे ही है जो कि चलचित्र के लाभ है। इससे दृश्य शिक्षण में विशेष सहायता मिलती है। श्रोताओ की रुचि के स्तर के अनुकूल दृश्य द्रव्य सामग्री का प्रयोग करने से काफी लाभ हो सकता है। अस्तु, आधुनिक औद्योगिक प्रशिक्षण मे इन्हे भी कार्यक्रम का अग माना जाता है।

(५) कार्य करते समय प्रशिक्षण (On the Job Training)—प्रशिक्षण विधियो के विषय मे सबसे बडी समस्या यह है कि कृत्रिम परिस्थितियों मे सीखी हुई बातें और क्रियायें वास्तविक परिस्थितियो में पूरी तरह लागू नही होती। यह कमी काम करने मे प्रशिक्षण मे नही होती। जिन कार्यों मे अधिक तीव्र गति मे काम नही किया जाता उनमे काम करते समय ही प्रशिक्षण दिया जा सकता है। कही-कही पर कारखाना चलने के बाद के समय मे उन्ही मशीनो पर नये कर्मचारियो को प्रशिक्षण दिया जाता है। अन्य स्थानो पर सरल प्रकार की मशीनों पर, जिनमे अभ्यास होता रहे और खतरे न हो, कर्मचारियो को प्रशिक्षण दिया जाता है। उदाहरण के लिए टेलीफोन आपरेटर के काम को इस प्रकार से सिखाया जा सकता है। कारखानो मे सुपरवाईजर के काम को कुछ विशेष परिस्थितियो मे कार्य भाग अदा करके सिखाया जा सकता है। इस प्रशिक्षण प्रणाली की सबसे बडी विशेषता क्रिया के द्वारा प्रशिक्षण है। दूसरे, इसमे प्रत्येक कर्मचारी को व्यक्तिगत रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रत्येक को अभ्यास करने का अवसर मिलता है और प्रत्येक की कमजोरियो तथा कठिनाइयो पर अलग से ध्यान दिया जाता है। यह स्वाभाविक है कि इसमें खर्चा अधिक आ जाता है और इसे केवल ऐसे ही कार्यो मे प्रयोग किया जाता है जिसमे प्रत्येक कर्मचारी की ओर अलग से ध्यान देने की आवश्यकता है।

(६) केस प्रणाली (The Case Method)—औद्योगिक प्रशिक्षण की इस प्रणाली को प्रशासको को प्रशिक्षण देने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसमे प्रशिक्षार्थियो के सामने कोई वास्तविक समस्या उपस्थित की जाती है और वे यह चर्चा करते है कि समस्या को सुलझाने के लिये क्या किया जाना चाहिए और उसमे कौन-कौन सी बातें निहित है। इसमे जहाँ सामूहिक वाद विवाद का लाभ होता है वहाँ प्रशिक्षार्थी को समस्या सुलझाने का प्रशिक्षण मिलता है। किन्तु इससे कुशलता विशेष नही बढती। इससे केवल मानव सम्बन्धो मे जानकारी बढाने को प्रेरणा मिलती है।

(७) वाद-विवाद प्रणाली (Discussion Method)—औद्योगिक प्रशिक्षण की एक अन्य विधि वाद-विवाद प्रणाली है। इसमे अनेक कर्मचारी मिलकर किसी समस्या पर वाद-विवाद करते हैं। इस वाद-विवाद के अवसर पर विशेषज्ञ भी उपस्थित रहते है। इस वाद-विवाद से सूझ-बूझ बढती है और समस्या सुलझाने का

अभ्यास होता है। यह विधि विशेष रूप से उन विषयो मे उपयोगी सिद्ध होती है जिनमे सवेगो और प्रतिकूल अभिवृत्तियो के प्रभाव से समस्या उलझी हुयी होती है।

(८) कार्य भाग अदा करना (Role Playing)—औद्योगिक परिस्थितियों मे भिन्न-भिन्न कर्मचारियो को भिन्न-भिन्न कार्य भाग अदा करने पडते हैं। इस प्रणाली मे उन्हे इस प्रकार के कार्य भाग अदा करने का अवसर दिया जाता है जिससे उनमें विशिष्ट प्रकार के कार्य भाग अदा करने की योग्यता बढती है।

औद्योगिक प्रशिक्षण में साहचर्य में सहायक कारक

औद्योगिक प्रशिक्षण मे सीखने के उन सब सिद्धान्तो का प्रयोग किया जाता है जो अन्य प्रकार के प्रशिक्षण मे काम मे आते हैं। आधुनिक काल में मनोवैज्ञानिको ने प्रयोगो के आधार पर सीखने मे मितव्ययिता की अनेक विधियों का पता लगाया है। इन विधियो का औद्योगिक प्रशिक्षण मे भी व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है।

औद्योगिक प्रशिक्षण मे अनेक प्रकार के साहचर्य बनाने पडते हैं। इनमें निम्नलिखित कारको से विशेष रूप मे सहायता मिलती है —

(१) बारम्बार दोहराना (Frequent Repetition)—साहचर्यो को पक्का करने के लिए एक सामान्य विधि सीखे हुए विषय को बारबार दोहराना है। यह विधि विशेषतया स्मृति द्वारा सीखने में सहायता देती है। जिस विषय को जितनी ही अधिक बार दोहराया जाएगा उसमे विभिन्न अगों में साहचर्य सम्बन्ध उतना ही दृढ हो जाएगा। जिन कामो मे प्रयत्न और भूल के द्वारा सीखा जाता है उनमे भी दोहराने से सहायता मिलती है। यह सहायता दो प्रकार से मिलती है—एक तो, दोहराने मे चुनाव के अवसर बढते हैं और दूसरे दोहराने से आवश्यक साहचर्य स्थायी हो जाते हैं। कौशल के कामों मे भी दोहराने मे सहायता मिलती है क्योंकि उससे विभिन्न प्रकार की गतियो मे साहचर्य सम्बन्ध बन जाता है। दोहराने मे सीखने में समय की भी बचत होती है। आजकल दोहराने की विधि को विज्ञापन, प्रचार इत्यादि में विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। विज्ञापन को इतनी बार दोहराया जाता है कि देखने वालो को उसका विषय याद हो जाता है और आवश्यकता पडते ही वस्तु का नाम तुरन्त उनके मस्तिष्क मे आता है। उदाहरण के लिए सिर का दर्द दूर करने के लिए एस्प्रो का नाम इतनी बार दोहराया जाता है कि सिर दर्द होते ही व्यक्ति को उसका नाम याद आ जाए। इस प्रकार औद्योगिक प्रचार में दोहराना एक महत्वपूर्ण साधन है। दोहराने के द्वारा कभी-कभी ऐसी वस्तुओ का भी सफल प्रचार किया जाता है जो विशेष उपयोगी नही होती।

(२) ध्यान और अभिप्राय की उपस्थिति (Presence of Attention and Intention)—सीखने मे ध्यान और अभिप्राय का अत्यधिक महत्त्व है। यदि सीखने वाला सीखने के अभिप्राय से कोई काम कर रहा है तो वह अवश्य उसकी ओर ध्यान देगा। अस्तु, औद्योगिक प्रशिक्षण मे सबसे पहले प्रशिक्षार्थी मे सीखने का अभिप्राय

उत्पन्न किया जाना चाहिये। इससे वह स्वभावतया सीखने के विषय में ध्यान देने लगता है। ध्यान देने से विषय आसानी से सीखा जाता है। इस प्रकार अभिप्राय और ध्यान एक दूसरे को आगे बढाते हैं। उद्योग के क्षेत्र मे विज्ञापन और प्रचार मे ध्यान आर्कषित करने के मनोविज्ञान को व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। यदि प्रशिक्षण के विषय की ओर प्रशिक्षार्थी का ध्यान आकर्षित करना है तो यह आवश्यक है कि सीखने मे उत्तेजना का आकार, तीव्रता, कार्य काल इत्यादि ऐसा हो कि प्रशिक्षार्थी को बाध्य होकर उसकी ओर ध्यान देना पड़े।

(३) व्यवधान सहित पुनरावृत्ति (Spaced Repetition)—किसी विषय को लगातार एक ही साथ बहुत समय तक दोहराने की अपेक्षा व्यवधान देकर दोहराना अधिक अच्छा होता है क्योकि एक ही साथ बहुत लम्बे काल तक दोहराने से थकान होने का भय है। इस सम्बन्ध मे वुडवर्थ ने यह पता लगाया है कि पुनरावृत्ति मे व्यवधान अधिक से अधिक एक या दो दिन का हो सकता है। इस प्रकार सीखने के विषय को मध्यान्तर दे देकर दोहराने का अवसर दिया जाना चाहिए। व्यवधान सहित विधि कठिन विषयों को सीखने मे अधिक लाभदायक सिद्ध होती है क्योकि उसमे कुछ समय के बाद अनवधान और उकताहट होने लगती है। इसका अभिप्राय यह नही है कि व्यवधान रहित विधि किसी दशा मे उपयुक्त नहीं है। कुछ दशाओ मे व्यवधान सहित विधि की तुलना मे व्यवधान रहित विधि ही अधिक उपयुक्त होती है। उदाहरण के लिए व्यवधान इतना शीघ्र नही दिया जाना चाहिए कि कार्य मे गर्मी आने का मौका ही न मिले। यदि गर्मी आने से पहले ही काम को बन्द करने की आज्ञा दी जाएगी तो इससे सीखने मे बाधा ही पड़ेगी। दूसरी ओर सीखने में व्यवधान इतना अधिक भी नही होना चाहिए कि व्यवधान काल मे सीखा हुआ विषय ही भुला दिया जाए।

उपरोक्त लाभो के बावजूद वास्तविक औद्योगिक परिस्थितियो में इन सिद्धांतो को पालन नही किया जाता। उदाहरण के लिए नौकरी करने वाला व्यक्ति यह नही चाहेगा कि उसे पूरे दिन काम न दिया जाकर प्रतिदिन केवल एक या दो घण्टे ही काम दिया जाए। अस्तु, इस सम्बन्ध मे कई विधियो अपनायी जाती हैं। उदाहरण के लिए पढने वाले विद्यार्थियो को पढाई के दौरान मे ही प्रतिदिन कुछ समय के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे पढाई समाप्त करके वे विशेष काम में कुशल हो जाते हैं। यह विधि बैंको मे कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने के लिए विशेष रूप से प्रयोग की जाती है। एक अन्य विधि यह है कि कर्मचारी को किसी कार्य के विभिन्न पहलुओ मे एक के बाद एक प्रशिक्षण दिया जाता है। एक अन्य विधि किसी सरल काम के साथ-साथ जटिल काम का प्रशिक्षण देते जाना है।

(४) पूर्ण विधि के लाभ (Benefits of whole mehod)—साधारणतया सीखने मे अंश विधि की तुलना मे पूर्ण विधि अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है। सीखने की अंशविधि मे सीखने के विषय को टुकड़ों मे बाँटकर एक बैठक मे एक टुकड़े को सीखा

जाता है। सीखने की पूर्ण विधि मे सीखने के सम्पूर्ण विषय को एक साथ सीखा जाता है। इससे लाभ यह होता है कि सीखने के विभिन्न अगो मे परस्पर सम्बन्ध जुड जाता है जिससे याद करने मे आसानी होती है। किसी मशीन पर काम सीखने के लिए दोनो ही प्रकार की विधियाँ अपनायी जानी चाहिये। पहले तो प्रशिक्षार्थी को पूरी मशीन के बारे मे बतला दिया जाए ताकि वह मशीन मे प्रत्येक पुर्जे की की स्थिति को जान जाए। इसके बाद उसे मशीन के एक-एक पुर्जे के बारे मे अलग से विस्तारपूर्वक बतलाया जाना चाहिए ताकि वह उसके काम को सही प्रकार से समझ ले। इस प्रकार औद्योगिक प्रशिक्षण मे पूर्ण और अश विधि दोनों का ही प्रयोग किया जाता है। पहले पूर्ण विधि के द्वारा सम्पूर्ण विषय समझा दिया जाता है। उसके बाद एक-एक कार्य मे कुशलता उत्पन्न कराई जाती है।

(५) सक्रिय पुनरावृत्ति (Active Repetition)—अनेक प्रयोगो से यह सिद्ध हो चुका है कि निष्क्रिय विधि की तुलना मे सक्रिय विधि अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। निष्क्रिय विधि से तात्पर्य इस प्रकार से सीखने से है कि व्यक्ति सीखने के विषय की ओर पूरी तरह ध्यान नही देता। सीखने की सक्रिय विधि में सीखने वाला पूर्ण मनोयोग से सीखता है। इससे ध्यान लगाने के और सीखने के अभिप्राय के पूरे फायदे होते हैं। अस्तु, औद्योगिक प्रशिक्षण मे ऐसी विधि अपनायी जानी चाहिये कि प्रशिक्षार्थी सीखने मे सक्रिय रूप से भाग ले अन्यथा प्रशिक्षण का विशेष लाभ नही होगा।

सीखने में चुनाव की मितव्ययी विधियाँ

कुछ औद्योगिक प्रशिक्षण ऐसे होते हैं जिनमे सीखने के कुछ पहलुओ मे विशेष रूप से ध्यान जमाना पडता है और यदि यह चुनाव नही किया गया तो सीखने मे बडी कठिनाई होती है। इसके लिए आजकल अनेक विधियाँ अपनायी जाती हैं जैसे सही अनुक्रिया के लिए पुरस्कार और गलत अनुक्रिया के लिए दण्ड की व्यवस्था, निषेधात्मक चुनाव तथा विधायक चुनाव इत्यादि। इस प्रकार के सीखने में नौर्मन मायर ने निम्नलिखित बातो को ध्यान मे रखने की सिफारिश की है—

(१) चुनाव की विधायक विधि का प्रयोग (Use of Positive Selection)—साधारणतया चुनाव मे निषेधात्मक विधि की तुलना मे विधायक विधि (Positive method) का ही प्रयोग किया जाना चाहिये। प्रशिक्षार्थी को प्रशिक्षण और अनुशासन दोनों का ही प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। पुरस्कार और दण्ड की व्यवस्था से प्रशिक्षार्थी एक कार्य का निषेध और दूसरे कार्य का चुनाव सीखता है। अधिकतर कार्यो मे कर्मचारी को क्या नही करना है यह सीखने की तुलना मे यह सीखना अधिक जरूरी है कि क्या करना है। इसलिए भी विधायक चुनाव निषेधात्मक चुनाव की तुलना में अधिक बचत करता है। कभी-कभी कुछ गलत आदतो को दूर करने का तरीका उनको चेतन रूप से दोहराना है। इस प्रकार की गल्तियाँ दूर करने मे विधायक चुनाव अधिक अच्छा रहता है।

(२) परिणामों का ज्ञान (Knowledge of Results)—अनेक प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि यदि प्रशिक्षार्थी को काम करने के परिणाम पता चलते रहे तो सीखने में सहायता मिलती है। ऐसा न होने पर सीखने में कोई प्रगति नहीं दिखलाई पड़ती है क्योंकि प्रशिक्षार्थियों को यह मालूम नहीं पड़ता कि उन्होंने कौन सा काम सही और कौन सा काम गलत है। अस्तु, उन्हें बराबर उनके कार्यों के परिणाम का पता चलते रहना चाहिए।

(३) कार्य कारण सम्बन्ध का स्पष्टीकरण (Clarification of Cause-effect relationship)—प्रशिक्षण के दौरान में प्रशिक्षार्थियो को यह भली प्रकार स्पष्ट कर दिया जाना चाहिये कि क्या करने का क्या परिणाम होता है। उदाहरण के लिए किसी मशीन को चलाने का प्रशिक्षण देने में यह भली प्रकार समझा दिया जाना चाहिये कि किस पुर्जे पर क्या अनुक्रिया करने से क्या परिणाम होता है। इससे प्रशिक्षार्थियों को यह स्पष्ट हो जायगा कि वह किसी यन्त्र से किस तरह मन चाहा काम ले सकता है।

(४) व्यक्तिगत प्रशिक्षण (Personal Training)—व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण भिन्न-भिन्न प्रशिक्षार्थियो को एक ही प्रकार के काम में भिन्न-भिन्न कठिनाइयाँ होती हैं और वे भिन्न-भिन्न गलतियाँ करते हैं। अस्तु, व्यक्तिगत प्रशिक्षण की व्यवस्था से उनकी कठिनाइयों को अलग-अलग दूर किया जाना चाहिये।

संवेदनाओं में विभेदीकरण

औद्योगिक प्रशिक्षण में कुछ काम ऐसे होते हैं जिनमें कुछ संवेदनाओं में अन्तर करने की आवश्यकता पड़ती है जिसमें यह ध्यान रखना चाहिये कि अलग-अलग व्यक्तियो में विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं में अन्तर करने की सामर्थ्य अलग-अलग होती है। अस्तु, विशेष प्रकार के कार्य का प्रशिक्षण देने से पहले यह निश्चित किया जाना चाहिये कि कर्मचारी में उसके लिए आवश्यक सावेदनिक विभेदीकरण की सामर्थ्य है या नहीं। ऐसा न होने पर प्रशिक्षण के व्यर्थ जाने की सम्भावना है। विभिन्न कार्यों के निरीक्षकों के चुनाव में यह तथ्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

दूसरे, संवेदनाओं में अन्तर करना सिखाने के लिए ऐसी विधियाँ प्रयोग की जानी चाहिएं जो विशिष्ट सावेदनिक सामर्थ्य के अनुकूल हों। प्रत्येक प्रकार के प्रशिक्षण में किसी न किसी प्रकार की सावेदनिक उत्तेजना की आवश्यकता पड़ती है। यदि प्रशिक्षण में दृष्टि की आवश्यकता है तो दृष्टि में सहायक यन्त्र जुटाये जाने चाहिए। इसी प्रकार यदि सुनने की विशेष रूप से आवश्यकता पड़ती है तो सुनने में सहायक यन्त्र जुटाये जाने चाहिएं।

कौशल प्राप्त करने में सहायक तत्व

बहुधा औद्योगिक प्रशिक्षण में किसी न किसी कार्य में कुशलता प्राप्त करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने ऐसी अनेक विधियो का पता लगाया है जिनसे कौशल प्राप्त करने में सहायता मिलती है। इन विधियो का प्रयोग करके

औद्योगिक प्रशिक्षण मे कुशलता प्राप्त करना आसान बनाया जा सकता है। कुशलता प्राप्त करने मे विशेष बात पेशियो का प्रशिक्षण है क्योकि कुशल कारीगरी के काम मे संवेदनाओ और कार्य करने की गति मे समायोजन की आवश्यकता पडती है। यह अभ्यास का विषय है। किस यन्त्र को कितने जोर से दबाया जाना चाहिये, यह सीखने के लिये पेशियो का प्रशिक्षण आवश्यक है। यह केवल अनुकरण मात्र से नही सीखा जा सकता। जहाँ प्रशिक्षार्थी को यह पता होना चाहिए कि कोई काम कैसा दिखलाई पडता है वहाँ उसे यह भी पता चलना चाहिये कि वह कैसा अनुभव होता है। इसके लिए उसे स्वयं काम करने का अवसर दिया जाना चाहिए। संक्षेप मे, कौशल प्राप्त करने मे निम्नलिखित बातो से सहायता मिलती है—

(१) क्रिया द्वारा सीखना (Acting through doing)—कौशल के कामो मे करके सीखने की विधि सबसे अधिक उपयुक्त है। अस्तु, प्रशिक्षार्थी को स्वयं करने का अवसर दिया जाना चाहिये। प्रदर्शन का समय कम से कम हो। जिस यन्त्र से काम लेना है उसके खतरो से आगाह कर दिया जाय।

(२) गतियों का चुनाव (Selection of movements)—कुशलता का अर्थ विशिष्ट उत्तेजना के प्रति सही अनुक्रिया करना है। इसलिए शिक्षक को शिक्षार्थी को यह बतलाना चाहिये कि विभिन्न गतियो मे सही गति कौन सी है। उसे यह भी देखना चाहिए कि प्रशिक्षार्थी सही गति कर रहा है या नही।

(३) निर्देशन पर नियन्त्रण (Control on Guidance)—कुछ लोग औद्योगिक परीक्षण मे निर्देशन के महत्व को आवश्यकता से अधिक मान बैठते है जबकि वास्तव मे एक सीमा से अधिक निर्देशन प्रशिक्षण मे सहायक न होकर बाधक ही सिद्ध होता है। यह ठीक है कि शुरू मे बहुत से काम हाथ पकड कर भी बतलाये जा सकते है किन्तु इस तरह दूसरे के सहारे काम करने की संवेदनाये वास्तविक कार्य की संवेदनाओ से भिन्न होती हैं। अस्तु, यदि प्रशिक्षार्थी को बराबर निर्देशन मे ही काम करने की आदत पड जाती है तो वह काम मे कुशलता प्राप्त नही कर सकता। स्वाभाविक है कि उसको निर्देशन के भी काम करने का अवसर दिया जाना चाहिये।

(४) सही गति की अनुभूति पर जोर (Emphasis on feeling of correct movement)—कुशल कारीगर की एक विशेष पहचान यह है कि वह हाथ लगाते ही बता देता है कि काम ठीक हो रहा है कि गलत। इसका कारण यह है कि वह सही गति की अनुभूति रखता है। एक बार यह अनुभूति विकसित हो जाने पर फिर काम आसान हो जाता है।

(५) प्रत्यक्षीकरण का नियन्त्रण (Control of Perception)—कुशलता प्राप्त करने मे प्रत्यक्षीकरण के नियन्त्रण का भी विशेष महत्व है। टेलीफोन डायरेक्टरी का प्रयोग करने मे सबसे पहली बात यह समझना है कि किसी नाम को पहचानने के लिये उसे कैसे देखा जाना चाहिये। चित्र बनाने का ब्रुश हाथ का एक

अग है या हाथ में अलग से औजार है, इस प्रत्यक्षीकरण से चित्र बनाने में कुशलता का सम्बन्ध है। यही बात अन्य प्रकार के कौशल के कार्यों के विषय मे भी सही है। विभिन्न प्रकार की कलाओ को सीखने मे सही प्रत्यक्षीकरण आवश्यक होता है। यह सिद्धान्त विशेष तौर से सगीत के प्रशिक्षण मे लागू होता है। ए० आर० सोलम (A. R. Solem) ने एक प्रयोग मे यह दिखलाया है कि वाद विवाद में भाग लेते समय जब फोरमैन ने अन्य कर्मचारियों को अपने आधीन न मान कर अपने साथियों के रूप मे देखा तो उसका सचालन का कार्य अधिक अच्छी तरह सम्पन्न हुआ। उद्योग के क्षेत्र में जो नेता अन्य व्यक्तियो को अपने बराबर देखते हैं वे अधिक सहिष्णु और सहयोगपूर्ण दिखलाई पडते हैं। पढने की गति बढाने के लिए आवश्यक है कि पढने वाला अनेक शब्दो के समूह को इकाई के रूप मे देखे। इसीलिए यह कहा जाता है कि कुछ लोग अक्षर पढते है, कुछ शब्द पढते हैं, कुछ पक्तियां पढते हैं और कुछ पृष्ठ पढते है।

(६) कार्य में सही गति (Proper movement in work)—कुशलता के कार्यों को सीखने मे कार्य की सही गति का भी विशेष महत्व है। इसमें व्यक्तिगत विभिन्नताओ पर ध्यान दिया जाना चाहिए। भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक ही कार्य को भिन्न-भिन्न गति से करेंगे। अस्तु, व्यक्तिगत विभिन्नताओ के अनुरूप कार्य की गति बढाई जानी चाहिए।

(७) तनाव पर नियन्त्रण (Control on tension)—कुशल कारीगर की विशेषता यह है कि वह अपने काम मे केवल उन्ही पेशियो की गति करता है जिनकी काम मे आवश्यकता होती है, उसकी अन्य पेशियो मे कोई तनाव नही होता। दूसरी ओर अकुशल व्यक्ति काम मे परेशान हो जाता है और अनावश्यक गतियाँ करने लगता है। इससे वह शीघ्र ही थक जाता है। प्रशिक्षण देने मे प्रशिक्षार्थी को बराबर यह सिखाया जाना चाहिए कि वह अनावश्यक रूप से उत्तेजित न हो और केवल उन्ही पेशियो पर तनाव दे जिनकी काम मे आवश्यकता है तथा अन्य पेशियो को शिथिल छोड दे।

(८) प्रगति के लिए उत्प्रेरकों की व्यवस्था (Provision of incentives for progress)—कुशलता के कार्यों मे प्रगति के लिए प्रशिक्षार्थियो को बराबर उत्प्रेरक दिये जाने चाहियें ताकि उन्हे आगे बढने की प्रेरणा मिले। वित्तीय (Financial) प्रेरणा अनेक प्रकार से दी जा सकती है। स्थूल रूप से वित्तीय और अवित्तीय (Non Financial) दो प्रकार की प्रेरणाओ का प्रयोग किया जाता है। वित्तीय प्रेरणाओ मे अतिरिक्त वेतन या बोनस की व्यवस्था सम्मिलित है। अवित्तीय प्रेरणाओ मे कार्य की परिस्थितियो मे सुधार, प्रशसा, सामाजिक सम्मान इत्यादि अनेक विधियो का प्रयोग किया जाता है। किसी भी प्रकार के कार्य वक्र का अध्ययन करने से यह मालूम पडता है कि प्रेरणा के अभाव के कारण कार्य की गति मे किसी न किसी स्थिति पर पठार आ जाता है। उत्प्रेरकों की व्यवस्था से प्रेरणा प्रदान करके इस पठार को दूर किया जा किया है और कार्य मे प्रगति की जा सकती है।

(६) गतियों पर ध्यान (Attention on movements)—कौशल प्राप्त करने मे प्रशिक्षार्थी को अपनी गतियो पर बराबर ध्यान देना चाहिये और गलत गतियो को छोडना तथा सही गतियो को स्थापित करना चाहिये। गलत गतियो की ओर ध्यान दिलाने की तुलना मे सही गतियो की ओर ध्यान दिलाना अधिक आवश्यक है क्योकि ध्यान देने से गति और भी अधिक पक्की हो जाती है। तीव्र गति से किये जाने वाले काम मे लय (Rhythm) पर ध्यान दिया जाना चाहिये। एक बार लय बध जाने पर काम सही होता चलता है। तीव्र गति से किये जाने वाले कामो मे काम के विभिन्न अगों को पूर्ण मे बाध लेना पडता है क्योकि ध्यान को अत्यधिक तेजी से नही दौडाया जा सकता। इसी प्रकार पेशियो की विभिन्न गतियो को अलग-अलग न देखकर पूर्ण के अगो के रूप मे देखना होता है। प्रशिक्षार्थी को कार्य के परिणाम पर भी ध्यान देना चाहिये क्योकि अनेक काम ऐसे होते है जिनमे विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने की दृष्टि से ही गतियां की जाती हैं। इस प्रकार के कामो मे सही परिणाम ही सही काम की कसौटी है। सक्षेप मे, कौशल के काम को अलग-अलग सीखने की अपेक्षा पूर्ण रूप मे सीखा जाना चाहिये जिसमें अलग-अलग टुकडो को पूर्ण के अगो के रूप मे देखा जाये। यहाँ पर यह ध्यान देना आवश्यक है कि सम्पूर्ण कार्य को ऐसी इकाइयो मे बाटा जाये कि अधिक से अधिक उत्पादन सम्भव हो और प्रत्येक इकाई अपने मे पूर्ण हो।

सूझ के द्वारा सीखने मे मितव्ययी कारक

औद्योगिक प्रशिक्षण मे कुछ काम ऐसे होते है जिनमे हस्तकौशल की तुलना मे सूझ-बूझ (Understanding) और अन्तर्दृष्टि (Insight) का अधिक महत्व होता है। इस प्रकार के कामो मे सीखने मे मितव्ययिता के निम्नलिखित सिद्धान्तो का प्रयोग किया जा सकता है—

(१) सिद्धान्तो के चारों ओर सामग्री का सगठन (Organisation of material around principles)—उद्योगो मे विभिन्न प्रकार के कामो मे कर्मचारी के सामने रोज नये-नये काम करने के लिये आते हैं। इनमे से किसी भी काम को सही रूप मे करने के लिये यह आवश्यक है कि वह सामग्री की विविधता मे न खोकर उन सिद्धान्तो को समझ ले जिनसे काम की सामग्री सगठित होती है। उदाहरण के लिये लेखा जोखा रखने के कामो मे गणित के सिद्धान्त लाभदायक सिद्ध होते है। इसी तरह विक्रय के कामो मे विक्रय के सिद्धान्तों की आवश्यकता पडती है। अस्तु, किसी भी नये ग्राहक से बातें करते समय विक्रेता को विक्रय के सिद्धान्तो पर नजर रखनी चाहिये।

(२) वाद-विवाद को प्रोत्साहन (Encouragement to discussion)—सही प्रशिक्षण मे यह आवश्यक है कि प्रशिक्षार्थियों को अपनी राय अभिव्यक्त करने और परस्पर वाद-विवाद करने की स्वतन्त्रता दी जाये। प्रशिक्षक से और आपस मे वाद-विवाद करने से उनकी विषय मे अन्तर्दृष्टि बढती है और समस्यायें सुलझती हैं। यह ठीक है कि इसमे कुछ अधिक समय लगता है किन्तु सीखने की

सक्रिय विधि होने के कारण इसमें ध्यान जमाने में सहायता मिलती है। कुशल प्रशिक्षक को वाद-विवाद की सही विधियों का प्रयोग करना चाहिए ताकि प्रशिक्षार्थियों के विषय में अन्तर्दृष्टि उत्पन्न हो।

(३) प्रगति का परीक्षण (Test of Progress)—प्रशिक्षण में प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि समय-समय पर उपयुक्त विधियों के द्वारा प्रशिक्षार्थियों की प्रगति का परीक्षण किया जाए। इससे यह मालूम होता है कि विशेष प्रशिक्षार्थी कहाँ तक प्रगति कर रहा है। यदि वह दूसरों से पीछे दिखलाई पड़ता है तो उसके पिछड़ेपन के कारणों की खोज की जा सकती है और उन्हें दूर करने का प्रयास किया जा सकता है।

(४) अपने शब्दों का प्रयोग करने को प्रोत्साहित करना (Encouragement to use own words)—प्रशिक्षार्थियों को विषय में अन्तर्दृष्टि बढ़ाने का अवसर देने के लिये यह आवश्यक है कि उन्हें किसी समस्या या विषय को अपने शब्दों में उपस्थित करने का अवसर दिया जाए। ऐसा करने से वे उसे समझेंगे और समझने से उनकी अन्तर्दृष्टि बढ़ेगी।

अभिवृत्तियों के प्रशिक्षण में सहायक विधियां

कभी-कभी औद्योगिक प्रशिक्षण में प्रशिक्षार्थियों की अभिवृत्तियों की ओर विशेष रूप से ध्यान देना पड़ता है क्योंकि कार्य को सही रूप से करने के लिए सही अभिवृत्ति आवश्यक होती है। इसके लिये निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं :—

(१) वाद-विवाद का अवसर (Opportunity for discussion)—प्रशिक्षार्थियों को वाद-विवाद का अवसर मिलने से जहां वे अपनी अनुभूतियों और दृष्टिकोणों को अभिव्यक्त करने का अवसर पाते हैं वहां उन्हें अन्य लोगों की अभिवृत्तियों और दृष्टिकोणों का भी परिचय मिलता है। सामूहिक वाद-विवाद से सामाजिक दबाव के कारण व्यक्ति समूह की अभिवृत्तियों को ग्रहण करता है। इस प्रकार यदि प्रशिक्षक भी वाद-विवाद में भाग ले और उसे सही निर्देशन देता रहे तो प्रशिक्षार्थियों में विशेष कार्य के प्रति सही अभिवृत्ति उत्पन्न की जा सकती है।

(२) हताशाओं की अभिव्यक्ति का अवसर (Opportunity for expression of frustration)—कभी-कभी प्रशिक्षार्थियों में कुछ हताशाओं के उपस्थित होने के कारण सही अभिवृत्ति नहीं बन पाती। ऐसी स्थिति में ऐसी विधियाँ प्रयोग की जानी चाहियें कि इन हताशाओं को अहानिकारक विधियों से अभिव्यक्त होने का अवसर मिले। हताशा की दशा को दूर किये बिना विरोधी अभिवृत्ति को दूर नहीं किया जा सकता।

(३) कार्य भाग अदा करने की विधि (Method of Role Playing)—अभिवृत्तियों को परिवर्तित करने की एक महत्वपूर्ण विधि प्रशिक्षार्थी को विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के कार्य भाग अदा करने का अवसर देना

है। इन भिन्न-भिन्न कार्य भागो को अदा करने मे प्रशिक्षार्थी को भिन्न-भिन्न कार्य भागो की समस्याओ, अभिवृत्तियो और अनुभूतियो का अनुभव होता है जिससे उसे इन कार्यो को करने वाले व्यक्तियो को समझने मे सहायता मिलती है। उदाहरण के लिये यदि किसी कम्पनी के मैनेजर को फोरमैन, टाइपिस्ट तथा अन्य पदो पर कुछ समय कार्य करने का अवसर दिया जाये तो वह उनकी समस्याओ और अभिवृत्तियो तथा दृष्टिकोणो को अधिक आसानी से समझ सकेगा और इस तरह कम्पनी के प्रबन्ध का काम अधिक अच्छी तरह कर सकेगा।

(४) **सुखद अनुभव से साहचर्य** (Association with pleasant experience)— यह एक सामान्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि सुखद अनुभवो के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति और दुखद अनुभवो के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति बन जाती है। अस्तु, जिस कार्य के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति उत्पन्न करनी है उसमे कर्मचारी को सुखद अनुभव होने चाहिये। यदि कार्य की परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि उसे काम करने मे दुखद अनुभव होता है तो उसमे कार्य के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति ही बनेगी। यह बात सुपरवाइजरो को विशेष रूप से समझनी चाहिये। यदि कर्मचारियो से उनका व्यवहार अच्छा है और कारखाने का सामाजिक वातावरण सुखद है तो कर्मचारियो की अभिवृत्ति काम के अनुकूल बन जाती है।

सारांश

औद्योगिक प्रशिक्षण से उत्पादन अधिक और अच्छा होता है तथा कुशलता बढ़ती है।

औद्योगिक प्रशिक्षण से लाभ—१ उत्पादन में वृद्धि, २ टूट-फूट की रोकथाम, ३. दुर्घटनाओं की रोकथाम, ४. अनुपस्थिति में कमी।

सही प्रशिक्षण विधि की कसौटी—यह व्यक्तिगत विभिन्नताओं के साथ-साथ बदलती रहती है।

औद्योगिक प्रशिक्षण के अंग—१ साहचर्य, २ सीखने में चुनाव, ३. संवेदनाओं में अन्तर करना, ४ हस्त कौशल प्राप्त करना, ५ कार्य में सूझ बूझ और अन्तर्दृष्टि, ६. अभिवृत्ति का परिवर्तन।

औद्योगिक प्रशिक्षण की विधियाँ—१. भाषण विधि-यह अपर्याप्त और ऊबाने वाली है, २ पुस्तकें और पैम्फलेट, ३ चल-चित्र, ४ प्रदर्शन और दृश्य श्रव्य सामग्री, ५. कार्य करते समय प्रशिक्षण, ६. केस प्रणाली, ७ वाद-विवाद प्रणाली, ८. कार्य भाग अदा करना।

औद्योगिक प्रशिक्षण में साहचर्य में सहायक कारक—१. बारम्बार दोहराना, २. ध्यान और अभिप्राय की उपस्थिति, ३ व्यवधान सहित पुनरावृत्ति, ४. पूर्ण विधि के लाभ, ५. सक्रिय पुनरावृत्ति।

सीखने में चुनाव की मितव्ययी विधियाँ—१. चुनाव की विधायक विधि का प्रयोग, २. परिणामो का ज्ञान, ३ कार्य कारण सम्बन्ध का स्पष्टीकरण,

अनेक वैज्ञानिक विधियां प्रयोग की जाती हैं जिनमे मुख्य है अर्गोग्राफ परीक्षण (Ergograph Test), मैक्डुगल शस्तरडोटिंग परीक्षण (McDougall-Schuster Dotting Test), ग्राफिक परस्यूट मीटर (Graphic Persuit meter), दबाव परीक्षण (Pressure Test), स्वास्थ्य परीक्षा (Medical Examination), बाहरी व्यवहार के निरीक्षण के द्वारा कर्मचारी का सवेगात्मक स्वभाव और विकास का पता लगाना इत्यादि। इन सब वैज्ञानिक उपायो से उद्योगों में कुसमायोजित कर्मचारियो का पता लगाया जाना चाहिए।

व्यावसायिक कुसमायोजन के कारण

कुसमायोजन दूर करने के उपायों का अध्ययन करने से पहले यह पता लगाया जाना चाहिए कि उसमे कौन से कारण काम करते हे। सक्षेप में मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

(१) **बुरा स्वास्थ्य**—शारीरिक स्वास्थ्य का मानसिक स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इसलिए शारीरिक स्वास्थ्य बिगडने से कर्मचारी का समायोजन बिगडने लगता है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है अधिकतर, कुसमायोजित कर्मचारी लगातार प्रपच के शिकार रहते हैं। स्वास्थ्य बिगडने से व्यक्ति चिडचिडा रहता है और दूसरो की छोटी-छोटी बात का बुरा मानता है। शारीरिक शक्ति घटने से उसकी कुशलता घटती है जिससे आत्म विश्वास कम हो जाता है और सवेगात्मक सन्तुलन बिगड जाता है।

(२) **वैवाहिक विघटन**—कर्मचारी की वैवाहिक स्थिति का उसके कुसमायोजन से महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। यदि उसका वैवाहिक समायोजन बिगडा हुआ है तो वह कारखाने मे सतुलित व्यवहार नही कर पाता। इसीलिये आजकल यह जरूरी माना जाता है कि कर्मचारी के परिवार मे भी खुशहाली होनी चाहिए।

(३) **घर की बुरी स्थिति**—यदि आर्थिक कारणो से या कुछ अन्य कारणों से कर्मचारी की घर की स्थिति अच्छी नही है तो वह चिन्तित रहता है और उसका सवेगात्मक सतुलन बिगड जाता है।

(४) **कार्य की बुरी परिस्थितियाँ**—यूँ तो कार्य की सभी प्रकार की परिस्थितियों का मानसिक स्वास्थ्य पर कुछ न कुछ प्रभाव पडता ही है किन्तु सबसे अधिक सामाजिक परिवेश का प्रभाव पडता है जिसमे फोरमैन या मैनेजर इत्यादि अधिकारियो का व्यवहार सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यदि कारखाने का सामाजिक परिवेश सहानुभूति और मैत्रीपूर्ण है तो कर्मचारी का मानसिक सतुलन अच्छा रहता है। ऐसा न होने पर वह कुसमायोजन का शिकार हो जाता है।

(५) **कार्य की गलत विधियाँ**—कुछ कार्य की विधियाँ ऐसी होती है जिनसे थकान, ऊब और उकताहट बढती है, उनमे व्यक्ति की पूरा काम करने की इच्छा और काम के परिणाम जानने की उत्सुकता सतुष्ट नही होती। उनमे उसे अपना

कुछ भी महत्व नही लगता और वह मशीन का पुर्जा बनकर रह जाता है। इस तरह की कार्य की परिस्थितियां कर्मचारियों मे कुसमायोजन बढाती हैं।

(६) अन्य नौकरियां छोड़ने का कटु अनुभव—यदि किसी कर्मचारी को कई जगह से विभिन्न कारणो से नौकरियाँ छोडने का अनुभव है तो इस कटु अनुभव से उसका मानसिक सतुलन बिगड जाता है और वह समायोजन नही कर पाता।

(७) कम आमदनी—गरीबी सभी प्रकार के मानसिक असतुलनो की जड है। गरीबी मे मानसिक सन्तुलन रखना अत्यधिक कठिन है। इससे सदैव चिन्ता बनी रहती है और आवश्यकतायें पूरी नही होती जिससे सवेगात्मक सतुलन बिगड जाता है।

(८) वृद्धावस्था—वाइटल्स ने कुसमायोजन के उपरोक्त सात कारको के अतिरिक्त वृद्धावस्था को एक मुख्य कारक माना है। ई० डी० स्मिथ (E. D. Smith) के अनुसार वृद्धावस्था में व्यक्ति अपने को कार्य की दशाओ के अनुसार परिवर्तित नही कर पाता और इसलिए उसकी समायोजन शक्ति कम हो जाती है। थार्नडाइक (E. L. Thorndike)[7] का विचार है कि वृद्धावस्था मे कर्मचारी की सीखने की शक्ति कम हो जाती है और वह काम की सही विधियो को नही अपना पाता। हालिंगवर्थ (H L. Hollingworth)[8] के अनुसार वृद्ध कर्मचारी का कुसमायोजन सीखने की शक्ति की कमी से नही बल्कि सीखी हुई शक्ति के अनुपयोग से होता है। अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनो से यह पता चला है कि वृद्ध कर्मचारी काम करने की नवीन और आधुनिक विधियो को नही अपना पाते और इसलिए दु खी रहते हैं। उनकी शारीरिक शक्ति कम हो जाती है और सीखने की इच्छा लगभग नही रहती। वाइटल्स (Viteles)[9] के अनुसार वृद्धावस्था में पुरानी बनी हुई आदतो, विचारों और मनोवृत्तियो से कर्मचारी समायोजन नही कर पाता। शारीरिक और मानसिक शक्ति घट जाने से उसका सतुलन बढ जाता है। यह व्यर्थ बातें करता है और सबकी आलोचना करता है। कार्य क्षमता घटने के कारण उसका आत्म-विश्वास घट जाता है। स्मिथ के अनुसार वृद्धावस्था मे कर्मचारी की पुरानी सीखी हुई विधियो और कुशलताओ का उपयोग नही हो पाता क्योंकि नयी नयी विधियाँ प्रचलित हो जाती हैं जिनको वह सीख नही पाता। इससे उसका समायोजन बिगड जाता है।

कुसमायोजित कर्मचारी का पुनः समायोजन

कुसमायोजन के उपरोक्त कारणों से यह नही समझना चाहिये कि उसे दूर नही किया जा सकता। अन्य कारणो की तो बात ही क्या यदि वृद्धावस्था के कारण ही

7. E. L Thorndike, *Adult learning*, New York (1928), p 335.
8 H. L. Hollingworth, *Mental Growth and Decline*, New York (1927), p. 396
9. M. S. Viteles, *Industrial Psychology*, London (1962), p. 602.

(२) अत्यधिक मौन और विमुखता (Extreme Reticence and withdrawal),

(३) थकान की अनुभूतिया (Tired Feelings)

(४) आक्षेप की प्रवृत्ति और अनियमितता (Spasmodic and Irregular Application),

(५) दिवा स्वप्न की प्रवृत्ति (Day dreaming),

(६) ध्यानाकर्षण शक्ति मे कमी (Deficiency in power of attending),

(७) अत्यधिक चिड़चिड़ापन (Extreme Irritability),

(८) अपच का शिकार होना (Indigestion),

(९) अनावश्यक भय (Fear),

(१०) जासूमी किए जाने की भावनायें (Feeling of being spied upon),

(११) आवाजे सुनना (Hearing Voices),

(१२) अन्य विविध लक्षण (Miscellaneous Symptoms) ।

इस प्रकार नेता स्वभाव के कर्मचारी बार-बार नौकरियाँ छोडते रहते हैं वे अधिक सामाजिक नही होते किन्तु बहुत भी बातें अपने मन के अन्दर भरे रहते हैं उन्हे छोटे-छोटे कामो से थकान अनुभव होती है। उनका व्यवहार एक सा नही रहता। वे व्यावहारिक नही होते और कल्पना की दुनिया मे खोए रहते हैं। वे किसी भी काम पर ध्यान नही लगा सकते। छोटी-छोटी बातों से वे चिडचिडा व्यवहार करने लगते हैं। उन्हे बहुधा अपच की शिकायत रहती है। वे व्यर्थ की बातों से डरे रहते है और यह समझते हैं कि उनके साथी उनकी झूँठी शिकायतें करते है। उन्हे लगता है कि उनका पीछा किया जा रहा है। कभी-कभी वे व्यर्थ की आवाजे सुनते रहते हैं। उनकी भावनाओं और सवेगों मे सामजस्य नही होता। एक ओर वे आत्मदया और दूसरी ओर ईर्ष्या के शिकार होते हैं। वे अपने अवगुणो पर ध्यान नही देते और दूसरो को अपनी असफलताओ के लिये दोषी ठहराते हैं। वे वास्तविकता को छिपा जाते हैं किन्तु अन्दर से अपने को दूसरो से हीन समझते हैं।

कुसमायोजन के कारणों की व्याख्या

फिशर और हन्ना ने सामान्य और विकट सवेगात्मक कुसमायोजन के निम्नलिखित तीन मुख्य कारण माने हैं :—

(१) सवेगात्मक अपरिक्वता (Emotional Immaturity),

(२) सवेगो की अधिकता या एक या अधिक सवेगो की अत्यधिक अभिव्यक्ति (Exaggeration or over expression of one or more drive emotion)

(३) चालक सवेगों की असामान्य अभिव्यक्ति (Abnormal Expression of drive emotions) ।

कुसमायोजन के इन कारणो के अतिरिक्त अन्य कारण भी हो सकते हैं।

इस सम्बन्ध मे अनेक मनोवैज्ञानिको ने महत्वपूर्ण अध्ययन किए हैं। एडलर (H. M. Adler)[2] ने १९१७ मे सौ रोगियो पर परीक्षण करके व्यावसायिक कुसमायोजन के निम्नलिखित तीन कारण बतलाए :—

(१) व्यामोहात्मक व्यक्तित्व (Paranoid Personalities)

(२) अपर्याप्त व्यक्तित्व (Inadequate Personalities)

(३) संवेगात्मक अस्थिरता (*Emotional Instability*)

उद्योग के क्षेत्र मे कुसमायोजन व्यापक रूप से प्रचलित है। इससे उत्पादन और वस्तु के गुण के अतिरिक्त सामाजिक परिवेश भी बिगडता है। टाउलस (E Toulouse) के अनुसार संवेगात्मक कुसमायोजन से उद्योगो को बडी हानि उठानी पडती है। फिशर और हन्ना (V E Fisher and J. V Hanna)[3] ने पाच सौ कर्मचारियो के एक उद्योग मे यह बतलाया कि उद्योग का आधा खर्च नये कर्मचारियो की नियुक्ति और प्रशिक्षण मे होता था। कुसमायोजन व्यापक रूप से फैला हुआ पाया जाता है। जैरेट (M. C Jarrett)[4] के एक अध्ययन मे कर्मचारियो की आधी संख्या संवेगात्मक कुसमायोजन से पीडित थी किन्तु यह बात अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम पडती है। इस सम्बन्ध मे स्टीवेन्स (H W Stevens)[5] के अध्ययन अधिक सही मालूम पडते हैं। स्टीवेन्स ने स्टोर मे काम करने वाले चार हजार कर्मचारियो का छ महीने तक अध्ययन करके उनमे दस प्रतिशत कर्मचारी संवेगात्मक कुसमायोजन के शिकार पाए। एण्डरसन (V V Anderson)[6] ने आर० एच० मैसी कम्पनी के बारह सौ कर्मचारियो का अध्ययन करके उनमे १९ प्रतिशत क्रय कर्मचारी और २३ प्रतिशत अक्रय कर्मचारी संवेगात्मक कुसमायोजन के शिकार पाए। उसने अच्छे और सबसे खराब क्रय कर्मचारियो की सूची बनाई और उनका परीक्षण करके यह दिखलाया कि सबसे अच्छे कर्मचारियो मे २२ प्रतिशत मे व्यक्तित्व के दोष थे जब कि दूसरी ओर सबसे खराब कर्मचारियो मे ५४ प्रतिशत प्रारम्भिक व्यक्तित्व दोषो से पीडित थे और २४ प्रतिशत व्यक्तित्व के विकट दोषो से पीडित थे। स्मिथ, कल्पिन और फार्मर (M Smith, M Culpin and E. Farmer) के अध्ययनो मे ४१ कुसमायोजित तार कर्मचारियो मे ३१ कर्मचारियो मे चिन्ता, उन्माद जैसे मानसिक रोगो के लक्षण पाये गये। २६ कर्मचारी मनोस्नायुविकृतियो के शिकार थे।

कुसमायोजन का परीक्षण

कुसमायोजन की परीक्षा करने के लिए अधिकारियो की रिपोर्ट के अलावा

2. H. M Adler, Unemployment and Personality : a Study of Psychopathic causes, Mental Hygiene, 1 (1917), pp. 16-24.

3. V. F. Fisher and J V Hanna, Op Cit. pp 233-24

4. M C Jarrett, The Mental Hygiene of Industry, Mental Hygiene, 4 (1922), pp. 867-84.

5. H. W. Stevens, The psychic Aspect of Industrial Disability, *Bulletin · Massachusetts Department of Mental Diseases*, Jan. 1923, pp 6-7

6. V. V. Anderson, the Problem Employee, Pers, J., 7 (1923), pp 203-25.

४. व्यक्तिगत प्रशिक्षण। सीखने में चुनाव के अतिरिक्त संवेदनाओं में विभेदीकरण भी करना होता है।

कौशल प्राप्त करने में सहायक तत्व—१. क्रिया द्वारा सीखना, २. गतियों का चुनाव, ३. निर्देशन पर नियंत्रण, ४. सही गति की अनुभूति पर जोर, ५. प्रत्यक्षीकरण का नियन्त्रण, ६. कार्य में सही गति, ७. तनाव पर नियंत्रण, ८. प्रगति के लिये उत्प्रेरकों की व्यवस्था, ९. गतियों पर ध्यान।

सूझ द्वारा सीखने में मितव्ययी कारक—१. सिद्धान्तों के चारों ओर सामग्री का संगठन, २. वाद विवाद को प्रोत्साहन, ३. प्रगति का परीक्षण, ४. अपने शब्दों का प्रयोग करने को प्रोत्साहित करना।

अभिवृत्तियों के प्रशिक्षण में सहायक विधियाँ—१. वाद-विवाद का अवसर, २. हताशाओं की अभिव्यक्ति का अवसर, ३. कार्य भाग अदा करने की विधि, ४. सुखद अनुभव से साहचर्य।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. विभिन्न प्रकार के औद्योगिक प्रशिक्षणों की प्रकृति और मूल्य का विवेचन कीजिये।

Discuss the nature and value of different types of industrial training. (Karnatk 1968)

प्रश्न २ उद्योग के प्रशिक्षण के आन्दोलन को विनियमित करने वाले मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का विवेचन कीजिये।

Discuss the psychological principles governing the movement of training within industry. (Agra 1960)

प्रश्न ३. उद्योग के क्षेत्र में विभिन्न प्रशिक्षण विधियों का मूल्यांकन कीजिये?

Evaluate various training methods in the field of industry.

प्रश्न ४ सीखने में मितव्ययिता के उन सिद्धान्तों का निरूपण कीजिये। जिनके द्वारा औद्योगिक प्रशिक्षण में दक्षता आ सकती है।

Enunciate those principles of economy in learning that have a bearing on efficiency in industral training. (Agra 1968)

Why training programme is necessary in industry? State the methods for the purpose. (Karnatak 1966)

१८
कुसमायोजित कर्मचारी
(Maladjusted Worker)

कुसमायोजन के प्रकार

चेता स्वभाव वाले कर्मचारी कुसमायोजित कर्मचारी होते हैं क्योंकि समायो-के लिये व्यक्तित्व का सामान्य होना अत्यन्त आवश्यक है। कुसमायोजित कर्मचारी का समायोजन किस प्रकार किया जा सकता है, यह समझने से पहले यह जानना जरूरी है कि उसकी मुख्य समस्यायें कौन-कौन सी होती हैं। चेता स्वभाव वाले कर्मचारी का कुसमायोजन विशेष रूप से सवेगात्मक होता है। यह कुसमायोजन साधारण (Mild) भी हो सकता है और विकट अथवा तीव्र (Serious) भी हो सकता है। फिशर और हन्ना (Fisher and Hanna)[1] ने साधारण कुसमायोजन में छ और विकट कुसमायोजन मे १२ समस्यायें मानी हैं जो निम्नलिखित हैं :—

(१) मंद संवेगात्मक कुसमायोजन (Mild Emotional Maladjustment)—इसमे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, सवेगात्मक कुसमायोजन मन्द रूप मे होता है। इसके लक्षण क्षुद्र ईर्षा, आत्मदया, प्रसन्नतापूर्वक सहयोग का अभाव, दोष ढूंढना, कठोर प्रवृत्तियां तथा श्रम सघर्ष अनावश्यक रूप से ध्यान प्राप्त करने की इच्छायें हैं। इस प्रकार का कर्मचारी दूसरे लोगो मे छोटी-छोटी बात पर ईर्ष्या द्वेष रखता है। कभी-कभी वह अपने को व्यर्थ ही दूसरो की शत्रुता का शिकार मान बैठता है। वह प्रसन्नतापूर्वक सहयोग नही देता और अधिकारियों तथा सहकर्मियो के काम मे दोष निकालता है। स्वार्थ सिद्धि के लिए वह उचित और अनुचित का ध्यान नही रखता और तरह-तरह से स्वार्थ सिद्धि के लिए सघर्ष करता है। वह व्यर्थ ही दूसरो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है और इसके लिए उचित अनुचित उपायो का कोई विचार नही करता।

(२) विकट सवेगात्मक कुसमायोजन (Serious Emotional Maladjustment)—इसके मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं :—

(१) नौकरी को बार-बार बदलना (Frequent change of jobs)

1. V. E. Fisher and J. V. Hanna, *The Dissatisfied Worker*, New York (1931), p 280

कुसमायोजन है तो उसे भी बहुत सीमा तक दूर किया जा सकता है। मार्टिन (L. J. Martin)[10] ने ६१ वर्ष की आयु के एक कर्मचारी का समायोजन स्थापित करने के विषय में प्रयोग किया। यह कर्मचारी कम्पनी का सबसे पुराना नौकर था और सबसे अधिक वेतन पाता था। पिछले पाँच वर्षों में उसका उत्पादन ३६ प्रतिशत घट गया था। जाँच करने से पता लगा कि वह घर पर अकेला था और उसे स्वयं अपना भोजन बनाना पड़ता था। जब इसकी घर की दशा को बदल दिया गया तो उसका उत्पादन एक माह में दस, दूसरे में बारह, तीसरे में चौदह, चौथे में उन्नीस और पाँचवें में इक्कीस प्रतिशत बढ़ा हुआ दिखलाई पड़ा। स्पष्ट है कि यदि कुसमायोजन के कारणों को किसी सीमा तक दूर कर दिया जाय तो कर्मचारी को फिर से समायोजित बनाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में अग्रलिखित उपाय अपनाये जा सकते हैं—

(१) **स्वास्थ्य में सुधार**—कुसमायोजन दूर करने के लिये कर्मचारी के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार किया जाना चाहिये। यदि आवश्यकता हो तो उसके लिए चिकित्सा की व्यवस्था की जाय। आर्थिक दशा खराब होने पर उसमें सुधार किया जाना चाहिये। उसे समय पर, पर्याप्त और पोषक भोजन और आराम मिलना चाहिये।

(२) **वैवाहिक समायोजन**—आधुनिक देशों में कर्मचारियों का वैवाहिक समायोजन सुधारने के लिए व्यक्तिगत निर्देशन की व्यवस्था की जाती है क्योंकि इससे उनका समायोजन सुधरता है।

(३) **पारिवारिक समायोजन**—आजकल यह आवश्यक माना जाता है कि कर्मचारियों की पारिवारिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिया जाय। अधिक सन्तान होने पर राज्य की ओर से उनकी मुफ्त चिकित्सा और शिक्षा दीक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिये। जब तक कर्मचारी की घरेलू परिस्थितियों में सुधार नहीं होता तब तक उसके समायोजन की आशा नहीं की जा सकती।

(४) **काम करने की परिस्थितियों में सुधार**—प्रत्येक उद्योग में काम करने की परिस्थितियों का निरीक्षण करके उनमें सुधार किया जाना चाहिये। काम के घण्टों, प्रकाश, शुद्ध वायु, पानी और सही तापक्रम आदि की व्यवस्था के अतिरिक्त नौकरी की सुरक्षा, पर्याप्त वेतन, भविष्य की सुरक्षा आदि के अतिरिक्त उद्योग का सामाजिक परिवेश, सहानुभूति और मैत्रीपूर्ण होना चाहिये। उद्योग में नैतिमत्ता का स्तर ऊंचा रहने पर कर्मचारियों में समायोजन बढ़ता है।

(५) **कार्य प्रणाली में सुधार**—कभी-कभी गलत कार्य प्रणालियां कुसमायोजन का कारण होती हैं। ऐसी स्थिति में कार्य प्रणालियों का अध्ययन करके उनमें आवश्यक सुधार किया जाना चाहिये।

10 L. J. Martin and C. de Grochy, *Salvaging Old Age*, New York, (1930), p. 173.

(६) **व्यक्तिगत अध्ययन और उपचार**—अनेक कर्मचारी कुछ व्यक्तिगत कारणों से कुसमायोजन के शिकार होते हैं। ऐसे कर्मचारियो का विशेष व्यक्तिगत अध्ययन करके उनकी व्यक्तिगत समस्याओ को सुलझाने का प्रयास किया जाना चाहिये। कर्मचारी को व्यक्तिगत निर्देशन से विशेष लाभ हो सकता है। कुछ लोग पिछली नौकरियां छोडने का कटु अनुभव लिये रहते हैं। वृद्धावस्था भी एक व्यक्तिगत परिस्थिति है। कुछ लोग किसी शारीरिक या मानसिक रोग के शिकार होते है। कुछ अन्य कर्मचारियों की समस्याये ऐसी हो सकती है जो वैवाहिक या घरेलू घटनाओं से सम्बन्धित हो। इन सब व्यक्तिगत कारणो का उपचार करने के लिये कर्मचारी को परामर्श दिया जाना चाहिये और उसकी सहायता की जानी चाहिये। स्मिथ (E. D. Smith)[11] के अनुसार कर्मचारी के कुसमायोजन का एक कारण यह है कि उसे वह काम करना पडता है जिसे वह करना नही चाहता। इसलिए निरीक्षको और प्रबन्धको को बराबर कर्मचारियो का अध्ययन करना चाहिये।

(७) **मानसिक आरोग्य समिति**—सदर्ड (E. E Southard)[12] नामक विद्वान ने कर्मचारियो मे कुसमायोजन दूर करने के लिए मानसिक स्वास्थ्य समिति की स्थापना का सुझाव दिया है। इसमें कम्पनी के प्रबन्धको के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक, मानसिक रोग चिकित्सक और समाज सुधारक होने चाहियें। स्टीवेंस (H L Stevens)[13] के अनुसार मानसिक चिकित्सक को प्रत्येक कर्मचारी का अध्ययन करना चाहिये और उसमे मानसिक रोग के लक्षण पाने पर उन्हे दूर करना चाहिये।

कुसमायोजन के उपचार के विभिन्न उपायो के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि उसके लिए सबसे पहले कुसमायोजित कर्मचारी का विशेष अध्ययन करके कुसमायोजन के कारणो का पता लगाना आवश्यक है। इसके लिए कर्मचारी का विश्वास प्राप्त करना जरूरी है। कारण पता चलने के बाद प्रबन्धकों, मनोवैज्ञानिक, मानसिक चिकित्सक तथा सबसे अधिक स्वयं कर्मचारी से सहयोग से उन्हे दूर किया जा सकता है। कुसमायोजन की समस्या की अवहेलना करना अनुचित है क्योंकि इससे अन्य लोगो का समायोजन भी बिगडता है तथा ऐसा सामाजिक परिवेश उत्पन्न होता है जिससे उत्पादन को भारी हानि पहुचती है। आजकल अनेक औद्योगिक सकट कुसमायोजन का परिणाम होते है। अस्तु, इसकी समस्या की ओर ध्यान देने और उपयुक्त उपचार की व्यवस्था करने से कर्मचारी के साथ-साथ मालिको को भी लाभ होता है।

---

11. E D. Smith, What are the Psychological Factors of obsolescence of Worker in Middle Age ? Ame Man Assoc., Personnel Series, No. 9, 19 0, p. 3

12. E. E. Southard, The Modern Specialist in Unrest. J. of Ind Hyg., 2 (1920) pp. 11—19.

13 H. L. Stevens, *Psychiatry in Industry*, Monthly Bulletin of the Massachusetts society for Mental Hygiene, (1926), Vol 6

नही माने जाते। सच्चे औद्योगिक नेता निरीक्षक ही है। अस्तु, नेतृत्व अथवा निरीक्षण के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं :—

(१) अधिकारात्मक निरीक्षण (Authoritative Supervision)—उद्योग के क्षेत्र मे मनोविज्ञान के प्रवेश से पूर्व और आज भी निरीक्षण का एक मुख्य रूप अधिकारात्मक निरीक्षण है। इसमे नेता सत्ताधिकारी होता है और अपनी सत्ता के अधिकार से कर्मचारियो को निर्देशन देता है। सत्ताधिकारी नेता भी दो प्रकार का हो सकता है—निरंकुश सत्ताधिकारी और उदार सत्ताधिकारी।

(अ) निरंकुश सत्ताधिकारी नेता (The Hard Boiled Autocrat)—निरकुश सत्ताधिकारी नेता, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, कठोर अनुशासन मे विश्वास रखता है और कभी भी कर्मचारियो की प्रशंसा नही करता। वह कर्मचारियों से अलग रहता है और उन्हे अपने निकट आने का अवसर नही देता। वह चाहता है कि उसके आदेशो पर तुरन्त अमल किया जाए और उसमें किसी प्रकार का तर्क-वितर्क सुनने के लिए तैयार नही होता। इस प्रकार के नेता की बात कर्मचारी मान तो लेते है किन्तु वे अन्दर से उसके विरुद्ध होते है। जहां कही भी मौका लगता है वहां वे काम बिगाड देते हैं और उसका उत्तरदायित्व दूसरे के सर डालते है। इस तरह के नेता दूसरो की शिकायतें सुनने के आदी होते हैं जिससे कर्मचारियो मे तनाव बढते है और उन्हे असुरक्षा अनुभव होती है। चूंकि निरकुश नेता कर्मचारियो की भावना की कोई परवाह नही करता इसलिए उन लोगो मे उसके विरुद्ध प्रतिहिंसा की भावना भरी रहती है जो कि कभी-कभी भडक कर भयकर रूप ग्रहण कर लेती है। सच तो यह है कि निरकुश सत्ताधिकारी को नेता नही कहा जाना चाहिए क्योकि उसमे नेतृत्व का कोई गुण नही होता, वह तो अपनी सत्ता के बल पर शासन करता है, सत्ता छीन लिये जाने के बाद उसका कोई आधार नही बचता।

(ब) उदार सत्ताधिकारी नेता (The Benevolent Autocrat)—यह नेता या निरीक्षक सब प्रकार के मामलो मे निर्देश और आदेश देता है। वह अनुशासन बनाए रखना चाहता है और आज्ञा का उल्लघन होने पर क्रुद्ध होता है किन्तु वह जिन लोगो से खुश होता है उनके साथ बडी उदारता दिखलाता है। वह उतनी मनचाही नही करता जितना निरकुश निरीक्षक करता है। इस प्रकार के नेता के आदेशो को कर्मचारी मान तो लेते हैं किन्तु उनमे अपनी ओर से कोई उत्प्रेरणा नही रहती। वे अपना उत्तरदायित्व नही समझते और प्रत्येक बात मे निरीक्षक का मुह देखते हैं।

आजकल सत्ताधिकारी नेतृत्व के गुण-दोषो के विषय मे व्यापक अनुसधान किया गया है जिससे अनेक महत्वपूर्ण बातें ज्ञात हुयी हैं। यह ठीक है कि जो नेता स्पष्ट निर्देश दे सकता है उस पर कर्मचारियो को अमल करने मे आसानी होती है। इस प्रकार के सत्ताधिकारी नेता अनेक बार कर्मचारियो के लिए पिता स्वरूप हो जाते हैं जिससे काम और भी अधिक अच्छा होता है। सत्ताधिकारी नेता निर्णय के

गुण पर जोर देता है किन्तु समूह द्वारा उस निर्णय पर अमल करना भी उतना ही जरूरी है और वह निर्णय तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि वह समूह का निर्णय न हो जाय। समूह का निर्णय बन जाने पर फिर कर्मचारियों को उसे ग्रहण करने में देर नहीं लगती।

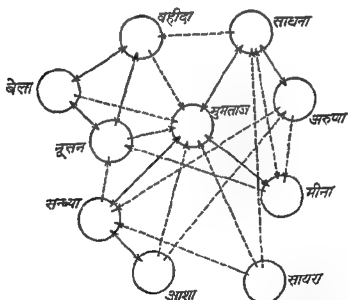
(२) **यदभाव्यम् नेतृत्व** (Laissez Faire Leadership)—यदभाव्यम् नेतृत्व में कर्मचारियों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर जोर दिया जाता है। यह निरंकुश नेतृत्व का बिल्कुल उल्टा है क्योंकि उसमें कर्मचारियों की स्वतन्त्रता को कोई महत्व नहीं दिया जाता। जब कि निरंकुश नेतृत्व में उत्तरदायित्व नेता का होता है यदभाव्यम् नेतृत्व में उत्तरदायित्व परिस्थितियों का होता है और अलग-अलग व्यक्तियों का अलग-अलग उत्तरदायित्व माना जाता है। यदभाव्यम नेतृत्व एक ओर सत्ताधिकारी नेतृत्व और दूसरी ओर प्रजातन्त्रीय नेतृत्व दोनों का परिणाम हो सकता है। यह अत्यधिक छूट का परिणाम है। इसमें सामाजिक दबाव से काम होते हैं और व्यक्तियों को बहुत स्वतन्त्रता मिली हुई होती है। इस प्रकार के नेता कोई लक्ष्य उपस्थित नहीं करते, कोई निर्णय नहीं देते और अन्य लोगों से भाई-चारा बनाये रखते हैं। स्पष्ट है कि इसके अनेक दुष्परिणाम हो सकते हैं, इससे उत्पादन घटता है, अनुशासनहीनता बढ़ती है और अन्त में असंतोष, असुरक्षा और असफलता ही हाथ लगती है। अस्तु, बहुत ही कम औद्योगिक संस्थानों में इस प्रकार का नेतृत्व दिखलाई पड़ेगा। जहा तक निरीक्षण के वर्गों का प्रश्न है यदभाव्यम नेतृत्व स्वतन्त्र निरीक्षण है। इसमें व्यक्तिगत वाद-विवाद के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। निरीक्षक इस वाद-विवाद को सुनता है और उसके अनुसार कार्य के सिद्धान्त निकालता है।

(३) **जनतन्त्रीय निरीक्षण** (Democratic Supervision)—आधुनिक काल में नेतृत्व और निरीक्षण का सबसे अधिक प्रचलित रूप जनतन्त्रीय निरीक्षण है। ब्रैडफोर्ड और लिपिट के अनुसार जनतन्त्रीय नेता निम्नलिखित बातों को मान्यता देते हैं:—

(१) समस्यायें होने की छूट होनी चाहिए।
(२) सामूहिक चिन्तन और कार्य के लिए सभायें आवश्यक हैं।
(३) सामूहिक लक्ष्य निश्चित होने चाहिएँ।
(४) कार्य करने के मानदण्ड माने हुये और निश्चित होने चाहिएँ।
(५) निर्णयों के कारण पता होने चाहिए।
(६) प्रगति के साथ-साथ स्वतन्त्रता और उत्तरदायित्व बढ़ता है।

जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, नेतृत्व के उपरोक्त लक्षण आधुनिक जनतन्त्रीय आदर्शों के अनुरूप हैं और जनतन्त्रीय राज्यों में ये ही निरीक्षण के सबसे अधिक उपयुक्त प्रतिमान उपस्थित करते हैं किन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सभी लोग जनतन्त्रीय नेतृत्व से परिचालित नहीं हो सकते। कुछ लोग नेता

सामाजिक व्यवहार मे नेतृत्व से व्यवहार के प्रतिमान निश्चित होते हैं। अस्तु, आधुनिक उद्योगो मे नेतृत्व का महत्व बढता जा रहा है। कहीं-कहीं पर कम्पनियों की ओर से ही ऐसी व्यवस्था की जाती है जिसमे कुछ लोग दूसरो का नेतृत्व करते हैं। जहां पर ऐसी व्यवस्था नहीं भी होती वहाँ भी क्रमश: कुछ लोग दूसरो का नेतृत्व करने लगते है। इस प्रकार दफ्तरो मे और कारखानो में, उद्योग के प्रत्येक क्षेत्र में नेता देखे जा सकते है। यदि ये नेता मालिक द्वारा नियुक्त किए गए है तो इनका प्रभाव उतना अधिक नही होता जितना कि समूह द्वारा चुने गए नेता का होता है। इसका कारण यह है कि समूह नेतृत्व के गुणो के आधार पर ही नेता को चुनता है जबकि कम्पनी या दफ्तर के मालिक अन्य कारणों से भी नेता का चुनाव कर सकते हैं। दूसरे, कोई भी व्यक्ति उसी का नेतृत्व मान सकता है जिसको उसने स्वय नेता चुना हो। जो व्यक्ति सत्ताधिकारी के रूप मे उसके सिर पर जबर्दस्ती रख दिया गया है उसकी आधीनता उसे भले ही करनी पड़े, वह उसे नेता मानने को तैयार नही होता। इसीलिए आजकल मालिको द्वारा बनाए गए नेताओ की तुलना मे श्रमिकों द्वारा चुने गए नेता अधिक शक्तिशाली होते हैं और बहुधा मालिको को मजबूर होकर उनकी बात सुननी पडती है। किसी भी कर्मचारी की जनप्रियता उसके समूह के सोशियोग्राम से मालूम हो सकती है।



चित्र सं० २२—दस कर्मचारियो के समूह का सोशियोग्राम

उद्योग की सामाजिक परिस्थितियो मे भिन्न-भिन्न कर्मचारियो की भिन्न-भिन्न स्थिति होती है। उपरोक्त सोशियोग्राम से स्पष्ट है कि मुमताज सबसे अधिक पसन्द

की जाती है, सायरा को कोई नही चाहता। वहीदा, वेला और नूतन परस्पर मित्र है इत्यादि। इस प्रकार के सोशियोग्राम से किसी भी कर्मचारी की सामाजिक जनप्रियता की जाच की जा सकती है।

नेतृत्व के स्तर

नेतृत्व के प्रयोजनो के अनुसार उसके विभिन्न स्तर दिखलाई पडते है जिसमे निम्नलिखित तीन स्तर विशेष रूप से देखे जा सकते हैं —

(१) **सर्वोच्च प्रबन्धक**—*ये वे मैनेजर या सर्वोच्च अधिकारी है जिनके आदेशो* से उद्योग मे सारा काम चलता है। यदि ये कर्मचारियो से सम्पर्क बनाए रखते है तो वे इनका नेतृत्व मानते है और यदि ये ऐसा नही करते तो कभी-कभी श्रमिको द्वारा चुने हुए नेता इनसे अधिक बलशाली सिद्ध होते हैं।

(२) **माध्यमिक प्रबन्धक**—इनमे फोरमैन और सुपरवाइजर जैसे माध्यमिक स्तर के निरीक्षक सम्मिलित हैं। इनका कर्मचारियो से निकट सम्बन्ध रहता है और इसलिए ये अधिक अच्छा नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं।

(३) **श्रमिक नेता**—ये नेता, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, श्रमिकों के समूहो द्वारा चुने जाते है। कभी-कभी श्रमिको के अलग-अलग समूह अलग-अलग नेता चुन लेते है और उनमे सघर्ष भी हो सकता है किन्तु यदि किसी कारखाने या दफ्तर मे सभी कर्मचारियो ने मिलकर कोई एक यूनियन बनाई हुई है तो उसके नेता सभी के नेता होते है। ये श्रमिक नेताओ की श्रेणियो में सबसे अधिक बलवान नेता है क्योंकि ये श्रमिको द्वारा चुने हुए है। जब कभी इनकी मालिको से खटक जाती है तो हडताल होते देर नही लगती। ये श्रमिको की शिकायतो को मालिको तक पहुँचाते है और उनके हितो की देखभाल करते है। कभी-कभी इनमें से कुछ नेता श्रमिको के हितो की अपेक्षा अपने राजनैतिक दल के हितो की अधिक परवाह करते है। इसका परिणाम ऐसी हडतालो के रूप मे होता है जिनसे श्रमिको को कोई विशेष लाभ नही होता, मालिकों को बडी हानि होती है और विशेष राजनैतिक दल को लाभ होता है। इस प्रकार के नेताओ से बहुत सावधान रहने की आवश्यकता होती है क्योंकि उनकी माँगों को आसानी से पूरा नही किया जा सकता।

नेतृत्व के प्रकार

मनोवैज्ञानिको ने नेतृत्व और निरीक्षण के प्रकारो का एक ही प्रकार से वर्गीकरण किया है। दूसरे शब्दो मे, नेतृत्व के प्रकार निरीक्षण के प्रकार है अर्थात् उद्योगो मे निरीक्षक लोग जिस प्रकार से नेतृत्व प्रदान करते हैं वह नेतृत्व का प्रकार कहलाता है। स्पष्ट है कि यह राजनैतिक औद्योगिक नेतृत्व का विवेचन नही है। प्रस्तुत अध्याय मे जहाँ कहीं भी नेतृत्व का विवेचन किया जायेगा वह नेताओ के पीछे बतलाये गये वर्गों मे से केवल पहले दो वर्गो के विषय मे ही है क्योंकि ये निरीक्षक भी हैं। राजनैतिक औद्योगिक सघो के नेता औद्योगिक मनोविज्ञान की दृष्टि से औद्योगिक नेता

सारांश

कुसमायोजन के प्रकार—(१) मंद संवेगात्मक कुसमायोजन (२) विकट संवेगात्मक कुसमायोजन।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने कुसमायोजन की अलग-अलग प्रकार से व्याख्या की है और उसके परीक्षण के उपाय बतलाये हैं।

व्यावसायिक कुसमायोजन के कारण—(१) बुरा स्वास्थ्य, (२) वैवाहिक विघटन, (३) घर की बुरी स्थिति, (४) कार्य की बुरी परिस्थितियाँ, (५) कार्य की गलत विधियां, (६) अन्य नौकरियां छोड़ने का कटु अनुभव, (७) कम आमदनी, (८) वृद्धावस्था।

कुसमायोजन दूर करने के उपाय—(१) स्वास्थ्य में सुधार, (२) वैवाहिक समायोजन, (३) पारिवारिक समायोजन, (४) काम करने की परिस्थितियों में सुधार, (५) कार्य प्रणाली में सुधार, (६) व्यक्तिगत अध्ययन और उपचार (७) मानसिक आरोग्य समिति।

अभ्यास के लिए प्रश्न

प्रश्न १—घेता स्वभाव वाले कार्यकर्त्ता द्वारा कौन सी सम्भाव्य समस्यायें उत्पन्न की जा सकती है ? एक मनोवैज्ञानिक महत्व की व्याख्या कीजिये।

What can be the possible problems created by the worker with a nervous temperament ? How far is it possible for a psychologist to solve these problems ? (Agra 1964, 1966)



१६

निरीक्षण और नेतृत्व

(Supervision and Leadership)

उद्योग के क्षेत्र में भिन्न-भिन्न स्तरों पर वरिष्ट अधिकारी अपने अधीन काम करने वाले लोगों के कार्य का निरीक्षण करते हैं। अंग्रेजी के Suporvision शब्द का हिन्दी अर्थ देख-रेख भी लिया जा सकता है किन्तु इससे भी सही मन्तव्य पूरा नहीं होता क्योंकि अनेक विद्वानों ने निरीक्षण और नेतृत्व को पर्यायवाची माना है। दूसरे शब्दों में, निरीक्षण का कार्य केवल निषेधात्मक रूप में अपने अधीन काम करने वालों की आलोचना करना मात्र नहीं है बल्कि उन्हें नेतृत्व प्रदान करके सही तरह से कार्य करने का रास्ता भी दिखलाना है। स्पष्ट है कि निरीक्षण एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें नियन्त्रण के साथ-साथ निर्देशन भी सम्मिलित है। वाइटल्स के शब्दों में, "निरीक्षण कार्यों को करने में अधीन लोगों का प्रत्यक्ष और तात्कालिक निर्देशन और नियन्त्रण है।"[1] जहाँ निर्देशन निरीक्षण का विधायक पहलू है, नियन्त्रण उसका निषेधात्मक पहलू है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, आधुनिक निरीक्षण में ये दोनों ही पहलू महत्वपूर्ण माने जाते हैं। उद्योग के क्षेत्र में निरीक्षण के महत्व के विषय में कुछ कहना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह सभी जगह माना जा चुका है, सभी जगह अधिकतर कर्मचारियों पर निरीक्षक होते हैं। ये निरीक्षक अनेक प्रकार से उनके काम की देखभाल करते हैं, उनमें संघर्ष दूर करते हैं, उनके कार्य के दोषों को बतलाते हैं और उसके सुधार के उपाय भी सुझाते हैं। इसके अतिरिक्त कार्य को अच्छी तरह कैसे किया जाना चाहिए इस विषय में निर्देशन भी देते हैं। अन्त में निरीक्षक नेता होता है और उसको देखकर कर्मचारी स्वयं ही सही कार्य और सही व्यवहार की विधियाँ सीख जाते हैं।

उद्योग में नेतृत्व

नेतृत्व समाज मनोविज्ञान का विषय है। समाज में सब कहीं नेता होते हैं और अन्य लोग उनके व्यवहार का अनुगमन करते हैं। औद्योगिक मनोविज्ञान उद्योग में मनोवैज्ञानिक क्षेत्र से सम्बन्धित है। यह मनोवैज्ञानिक क्षेत्र व्यवहार का क्षेत्र है। इस व्यवहार में सामाजिक व्यवहार और व्यक्तिगत व्यवहार दोनों ही सम्मिलित हैं।

1. "Supervision refers to the direct, immediate guidance and control of subordinates in the performance of their tasks."

—M S Viteles, *Industrial Psychology*, London (1952), p 613.

मे या निरीक्षक मे जनतन्त्रीय गुणो को उसकी कमजोरी मान बैठते हैं और आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्रता लेने का प्रयास करते है। वे वे ही काम करते है जिनका आदेश मिलता है और इसलिए उत्प्रेरणा कम हो जाती है तथा उत्पादन पर बुरा प्रभाव पडता है।

नेतृत्व अथवा निरीक्षण के उपरोक्त प्रकारों मे सम्बन्ध



चित्र संख्या २३—निरकुश, जनतन्त्रीय और यदभाव्यम नेतृत्व में सम्बन्ध

उपरोक्त चित्र से नेतृत्व के उपरोक्त तीन प्रकारों निरकुश नेतृत्व, जनतन्त्रीय नेतृत्व और यदभाव्यम नेतृत्व मे सम्बन्ध समझा जा सकता है। चित्र से स्पष्ट है कि जनतन्त्र निरकुशता का विरोधी नही है बल्कि दोनों ही यदभाव्यम नेतृत्व से विचलित स्थितियाँ है।

किसी भी समूह मे व्यक्तियो को पूरी तरह छूट दे देने से भारी अव्यवस्था फैलने का भय रहता है। यह छूट केवल यद्भाव्यम निरीक्षण मे ही होती है। निरकुशता और जनतन्त्र दोनों मे ही इस स्वतन्त्रता को सीमित करने का प्रयास किया जाता है। निरकुशता मे यह प्रक्रिया नेता द्वारा समूह पर लादी जाती है जबकि जनतन्त्र मे सामूहिक निर्णय से व्यक्तियो की स्वतन्त्रता को सीमित किया जाता है। अब नेतृत्व के इन तीनों प्रकारो के अन्तरों की विवेचना की जा सकती है। साधारणतया जनतन्त्रीय नेतृत्व निरकुशता और यद्भाव्यम के मध्य की स्थिति मानी जाती है न तो इसमे एक और कर्मचारियो को कठोर अनुशासन से बाधा जाता है और न दूसरी ओर उन्हे खुली छूट ही दी जाती है क्योंकि ये दोनो ही स्थितिया अवांछनीय है। जहा निरकुशता मे उत्तरदायित्व नेता का होता है और यद्भाव्यम निरीक्षण मे व्यक्तियों का होता है वहा जनतन्त्रीय निरीक्षण मे उत्तरदायित्व समूह का होता है। इस प्रकार जनतन्त्र मे नेतृत्व व्यक्तिगत उत्तरदायित्व और सामूहिक उत्तरदायित्व के मध्य की स्थिति है।

उपरोक्त तीनों प्रकार के निरीक्षणों मे कौन सा औद्योगिक नेतृत्व के लिए अधिक उपयुक्त है, इस सम्बन्ध मे निश्चय करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग किए। लेवीन, लिपिट और व्हाइट ने बालको पर जो प्रयोग किये उनसे यह मालूम हुआ कि इन तीनो प्रकार के नेतृत्व मे अलग-अलग गुण पाये जाते हैं। यदभाव्यम नेतृत्व का परिणाम सबसे अधिक असतोषजनक होता है और अनुगामी

भी उसको पसन्द नहीं करते। जनतन्त्रीय नेता अधिक जनप्रिय होता है उसके अनुगामियों में सहयोग अधिक और संघर्ष कम होता है। उसकी अनुपस्थिति में भी काम होता रहता है। दूसरी ओर निरंकुश नेता की अनुपस्थिति में काम नहीं होता। उसके हटते ही लोग अनुत्तरदायी हो जाते हैं। जनतन्त्रीय नेतृत्व में कर्मचारियों में सामूहिक भावना बनी रहती है जब कि निरंकुश नेतृत्व में तोड़-फोड़ और साठ-गाठ की प्रवृत्ति बढ़ती है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के नेतृत्व भिन्न-भिन्न प्रकार का सामाजिक परिवेश उपस्थित करते हैं।

बालकों पर किए गये इन प्रयोगों के परिणामों को वयस्कों पर ज्यों-का त्यों लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि वयस्क बच्चे नहीं हैं। फिर भी, इन प्रयोगों से यह अवश्य मालूम पड़ता है कि सामूहिक उत्तरदायित्व, नीतिमत्ता और कार्य के लिये जनतन्त्रीय नेतृत्व सबसे अच्छी स्थिति है। वयस्कों में नेतृत्व के विभिन्न प्रकारों के महत्व के विषय में भी अनेक प्रयोग किए गए हैं जिनसे यह पता चला है कि जनतन्त्रीय नेतृत्व और निरीक्षण की स्थिति में सबसे अधिक उत्पादन सम्भव होता है और नीतिमत्ता सबसे अधिक होती है। इस परिस्थिति में अनुगामी सामूहिक रूप से उत्पादन के लक्ष्य निश्चित् करते हैं और समूह के सभी सदस्य इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। यदि इसमें कार्य करने की विधियों को बदलने की आवश्यकता होती हैं तो यह भी आसानी से सम्भव हो जाता है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को निरीक्षण और नेतृत्व में भाग लेने का अनुभव होता है। इससे परस्पर और अधिकारियों में विश्वास बढ़ता है, कर्मचारियों को अधिक स्वतन्त्रता का अनुभव होता है। निरीक्षक केवल विशेषज्ञ के रूप में निर्देशन देना है अनुगामी उसे अपने में से ही एक मानते हैं और सामूहिक निर्णय का प्रतिनिधि होने के कारण उसके आदेशों का पालन किया जाता है। संक्षेप में, जनतन्त्रात्मक निरीक्षण और नेतृत्व सामूहिक निरीक्षण और नेतृत्व है। इसीलिए वह नेतृत्व के अन्य प्रकारों से अधिक सफल सिद्ध होता है।

प्रभावशाली नेतृत्व के लिये आवश्यक दशायें—

नेतृत्व वरिष्ट अधिकारी और उसके आधीन कर्मचारी का सम्बन्ध निश्चित करता है। इस दृष्टि से प्रभावशाली नेतृत्व से तात्पर्य ऐसे नेतृत्व से है जो अनुगामी के कार्यों को प्रभावित कर सकता हो। डगलस मैकग्रेकर ने इस दृष्टि से प्रभावशाली नेतृत्व की दशाओं का अध्ययन किया गया है। मुख्य दशायें निम्नलिखित हैं[2] :—

(१) **अनुकूल सामाजिक परिवेश**—नेतृत्व की एक आवश्यक शर्त औद्योगिक परिस्थितियों में विश्वास, सहयोग और उत्तरदायित्व का परिवेश उत्पन्न करना है। इस प्रकार के परिवेश में निरीक्षक के आदेशों का स्वभावतया पालन किया जाता है।

(२) **कम्पनी की नीति और दर्शन का ज्ञान**—प्रभावशाली नेतृत्व की एक

---

2. Mcgregor, D., Conditions of effective leadership in the industrial organisation. J. Consult. Psayc. (1944), 8, pp. 175-181.

दशा कर्मचारियों को कम्पनी की नीति और दर्शन का ज्ञान है। नेता को चाहिये कि वह कर्मचारियों को कम्पनी के कानूनों और नियमों से परिचित कराए। उसके कर्तव्य और उत्तरदायित्व तथा संगठन में उसका स्थान उसे स्पष्ट रूप से बतला दिया जाना चाहिये। इससे उसे अपनी स्थिति का पता रहता है और वह सुरक्षा अनुभव करता है। वह जानता है कि उसे क्या करना है और क्या नहीं करना है।

(३) अनुगामियों का विश्वास प्राप्त करना—प्रभावशाली नेता को अनुगामियों का विश्वास प्राप्त करना चाहिये। उद्योग में कोई भी परिवर्तन करने के पहले उसे कर्मचारियों को सूचित करना चाहिये और उनकी राय मालूम करनी चाहिये भले ही उसने वह परिवर्तन करने का निश्चय कर रक्खा हो। इससे कर्मचारियों में सुरक्षा की भावना बनी रहेगी और वे समझेंगे कि अधिकारी उनका विश्वास करते हैं।

(४) समीचीन अनुशासन—औद्योगिक संस्थानों में जो नियम बना दिये जायें उन पर बिना किसी भेदभाव और पक्षपात के अमल किया जाना चाहिये। जिन कामों से कर्मचारी को दण्ड मिलने का विधान है वे काम करने पर प्रत्येक कर्मचारी को पूर्व निश्चित् दण्ड अवश्य दिया जाना चाहिये। इसी तरह जिन कामों से पुरुष्कार मिलना है उनके बदले पुरुष्कार अवश्य मिलना चाहिये। कारखाने के कर्मचारियों को यह पता रहना चाहिये कि कारखाने के नियमों का पालन बिना किसी भेदभाव के किया जाता है और किसी को भी उनका उल्लंघन करने की छूट नहीं है। किसी एक मामले में कठोरता और उसी तरह के दूसरे मामले में उदारता दिखलाना नितान्त अनुचित और असमीचीन है। अस्तु, अनुशासन बनाये रखने के लिये समीचीनता अनिवार्य है।

(५) योगदान का अवसर प्रदान करना—नेतृत्व को प्रभावशाली बनाये रखने के लिये कर्मचारियों को कम्पनी के निर्णयों और कामों में योगदान देने का अवसर दिया जाना चाहिये। इससे वे कम्पनी के निर्णयों को अपने निर्णय समझेंगे और सामूहिक रूप से निश्चित किये गये लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

अच्छे निरीक्षण के नियम

मनोवैज्ञानिक ब्लम ने अच्छे निरीक्षक के लिये निरीक्षण के निम्नलिखित नियमों का पालन करने का सुझाव दिया है[3] :—

(१) निरंकुश मत बनो—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, निरंकुश नेतृत्व उपयुक्त नहीं है। अस्तु, निरीक्षण में निरंकुशता से काम नहीं लेना चाहिये।

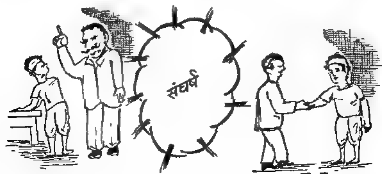
(२) धैर्यपूर्वक सुनो—निरीक्षक को निरीक्षित की प्रत्येक बात को सावधानी से और धैर्यपूर्वक सुनना चाहिये। उसे बातचीत और वक्ता दोनों में रुचि दिखलानी चाहिये और कर्मचारी को अपनी बात कह लेने का पूरा अवसर देना चाहिये। इसके बाद यदि वह कर्मचारी से भिन्न मत भी रखता हो तो भी कर्मचारी को कम से कम इतना सतोष अवश्य होगा कि उसकी बात सुनी जाती है।

3. Blum, M. L., Op. Cit. pp 206-207

(३) जल्दबाजी में निर्णय मत लो—किसी भी आदमी के बारे में कुछ भी सुनकर जल्दबाजी में कोई राय कायम कर लेना नितान्त अनुचित है। कुछ लोग अपने आधीन कर्मचारी को बोलने का अवसर ही नहीं देते और न कभी उसकी कोई शिकायत सुनते है। कुछ शिकायतों का केवल भावात्मक आधार होता है जब कि कुछ शिकायतें तथ्यात्मक होती हैं। निरीक्षक को दोनो ही तरह की शिकायतों को सुनना चाहिये और सूक्ष्म जाच पडताल करके तब कोई निर्णय कायम करना चाहिये। इससे उसको पछताने का अवसर कम आएगा।

(४) कर्मचारियों से तर्क मत करो—कुछ लोग कर्मचारियो से वाद-विवाद मे उलझ जाते है और फिर अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिये कोई आदेश जारी कर देते हैं। इसका कर्मचारियो पर बुरा प्रभाव पडता है, उनमे असुरक्षा और असतोष की भावनाये बढती है, अस्तु, जहा तक हो सके निरीक्षक को अपने आधीन कर्मचारियो से व्यर्थ वाद-विवाद नही करना चाहिये। उसे उनकी बात धैर्यपूर्वक सुनकर फिर स्वय विचार करना चाहिये और अन्तिम निर्णय देना चाहिये।

(५) सार्वजनिक रूप से आलोचना मत करो—कोई भी व्यक्ति सार्वजनिक रूप से आलोचना या डाट फटकार सुनना पसन्द नही करता। इससे कर्मचारी को अपमान अनुभव होता है और कभी-कभी वह अधिकारी से बदला लेने पर उतर आता जिसके भयकर परिणाम होते है। अस्तु, यदि किसी कर्मचारी को कोई बात समझानी है, डॉटना फटकारना है या भय दिखलाना है तो ऐसा दूसरे लोगो की उपस्थिति मे नही किया जाना चाहिये। उसे एकान्त मे ले जाकर चाहे जो कुछ कहा जा सकता है। दूसरी ओर प्रशसा का प्रभाव एकात की तुलना मे सार्वजनिक परिस्थिति मे अधिक अच्छा होता है। इससे जहाँ प्रशसित कर्मचारी को गर्व अनुभव होता है वहा दूसरे कर्मचारी भी उसके अच्छे उदाहरण से सीखते है और उसका अनुकरण करने का प्रयास करते है।



चित्र सं० २४—निरीक्षक को डाट फटकार से सघर्ष बढता और मैत्रीपूर्ण व्यवहार से कम होता है।

सफल निरीक्षण के विषय मे उपरोक्त सिद्धान्तो के अतिरिक्त और भी बहुत सी बाते कही जा सकती हैं। वास्तव में सफल निरीक्षण के नियमो को पूरी तरह उपस्थित नही किया जा सकता क्योकि यह केवल विज्ञान नही है बल्कि कला भी है। यह सफल निर्देशन और सफल व्यवहार की कला है। कुछ लोग बड़ी आसानी से अपनी बात दूसरो से मनवा लेते हैं, उनको सभी अपना नेता मान लेते है और इसके लिए उन्हे किसी तरह के दबाव के प्रयोग की आवश्यकता नही होती। वास्तव मे कुछ लोगों मे स्वभाव से ही नेतृत्व के गुण अन्य लोगो से अधिक होते है। इसीलिए ये जहाँ कही भी हो ये नेता बन जाते हैं। अस्तु, सफल निरीक्षण को और भी अधिक अच्छी तरह समझने के लिये निरीक्षक अथवा नेता के गुणों की चर्चा उपयुक्त होगी।

निरीक्षक अथवा नेता के गुण—

आधुनिक मनोवैज्ञानिक नेतृत्व को व्यवहारात्मक, परिस्थितिजन्य और व्यक्ति तथा समूह की अन्तर्क्रिया से सम्बन्धित मानते हैं। नेता किसी श्रेष्ठता जैसे औसत से अधिक बुद्धि, उत्प्रेरणा, कुशलता या आक्रमकता के कारण ही नही बनते क्योकि यदि भिन्न-भिन्न व्यक्तियो से नेताओ के गुणो के बारे मे पूछा जाये तो परस्पर विरोधी मत उपस्थित करेंगे। अस्तु, स्टॉकडिल और शार्टल ने नेतृत्व को व्यक्ति, समूह और अन्तर्क्रिया मे सगठनात्मक कारको का परिणाम माना है। वह व्यक्तियो के परस्पर सम्बन्धो मे एक कारक है। भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिको मे नेतृत्व के अध्ययन मे भिन्न-भिन्न गुणों को महत्वपूर्ण पाया है। फिलिशमेन के अध्ययनो के अनुसार नेतृत्व का एक लक्षण अनुगामियो की भावनाओ पर ध्यान देना और लक्ष्य प्राप्त करने के लिए समूह की अन्तर्क्रियाओ को प्रेरित करना है। मिशीगन विश्वविद्यालय मे हुये एक अध्ययन के अनुसार प्रभावाली निरीक्षण मे चार कारको से विशेष सहायता मिलती है—आयोजन के लिये समय देना, सत्ता का विकेन्द्रीकरण, कर्मचारियो की ओर विशेष ध्यान देना और सामूहिक गर्व की अभिवृत्ति। मिशिगन विश्वविद्यालय मे सर्वे रिसर्च सेण्टर ने एक अध्ययन मे यह देखा कि निम्न उत्पादक समूहो की तुलना मे उच्च उत्पादक समूहो मे निम्नलिखित लक्षण दिखलाई पड़ते हैं :—

(१) वे वरिष्ठ अधिकारियो के कम निकट निरीक्षण मे होते है।
(२) वे उत्पादन के लक्ष्य पर कम जोर देते हैं।
(३) वे निर्णय लेने में कर्मचारियो के योगदान को प्रोत्साहित करते हैं।
(४) वे कर्मचारी केन्द्रित हैं।
(५) वे निरीक्षण मे अधिक और उत्पादन कार्य में कम समय देते हैं।
(६) वे अपने निरीक्षण के कार्य मे अधिक विश्वास रखते हैं।
(७) वे यह अनुभव करते है कि उन्हे कम्पनी मे अपनी स्थिति पता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि औद्योगिक परिस्थितियो मे नेतृत्व के लक्षण इतने अधिक व्यक्तिगत गुणो पर नही जितने कि उनके व्यवहार, परिस्थितियों और समूह के अन्य व्यक्तियो से अन्तर्क्रिया पर निर्भर होते हैं। इस अन्तर्क्रिया मे सन्देशवहन

एक महत्वपूर्ण साधन है। सन्देशवहन की प्रक्रिया से नेता अपने अनुयायियों से सम्पर्क बनाए रखता है। भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिको ने निरीक्षक के लिए भिन्न-भिन्न गुणो की आवश्यकता पर जोर दिया है। उदाहरण के लिए टनेनबाम निरीक्षक मे दो गुण आवश्यक मानता है—सामाजिक-सवेदनशीलता और व्यावहारिक नमनीयता।[4] हाऊजर ने अमरीका मे स्थित अनेक निरीक्षको के सन्मुख ११ प्रश्नो की एक सूची उपस्थित करके उनके उत्तरों के आधार पर निरीक्षण के निम्नलिखित निर्धारक तत्व बतलाये :—

(१) अधिकतर निरीक्षक कर्मचारियो के प्रति सदेह और भय रखते हैं।

(२) अधिकतर निरीक्षको को कर्मचारियो के सन्तोष की अपेक्षा आत्म सतोष का अधिक चिन्ता रहती है।

(३) अधिकतर निरीक्षक दूसरो की अभिव्यक्ति की तुलना मे आत्माभिव्यक्ति का विशेष ध्यान रखते है।

(४) अधिकतर निरीक्षक नीतियो की घोषणा और कार्य प्रणालियो का चुनाव तथा नियमो की स्थापना करते हैं। इनके प्रति कर्मचारियो की अभिवृत्ति और दृष्टिकोण अनुकूल नही होता।

(५) अधिकतर निरीक्षक सामाजिक उत्तरदायित्व की अवहेलना करते देखे जाते है।

(६) अधिकतर निरीक्षक कर्तव्यो और अधिकारो के विषय मे सकुचित दृष्टिकोण रखते हैं।

बार्टलेट ने गुणो की चर्चा करते हुए निरीक्षको को तीन श्रेणियो मे बाटा है। कुछ लोग प्रदत्त अधिकारो के द्वारा, अन्य आत्मशक्ति के द्वारा अपना नेतृत्व बनाए रखते है। क्रेग और चार्टर्स[5] ने अच्छे निरीक्षक मे शक्ति सम्पन्नता, सम्मान प्राप्त करने की योग्यता, निष्पक्षता, क्रोध पर नियन्त्रण, कर्मचारियो मे व्यक्तिगत रूचि लेना, उन्हे प्रशिक्षित करने की योग्यता, उन्हे स्पष्ट और विस्तृत आदेश देने की योग्यता, इन आदेशों के पालन की जाँच करने की योग्यता, आधीनस्थ कर्मचारियो के सुझावो को प्राप्त करने और व्यवहार मे लाने की योग्यता, सामूहिक कार्य करने की योग्यता, बुद्धिमत्ता से प्रशसा करने तथा प्रभावशाली रूप से डाँटने की योग्यता, प्राप्ति की भावना उत्पन्न करने की योग्यता, उत्साह बढाने की योग्यता, आत्मविश्वास तथा नये कर्मचारियों मे आत्मविश्वास की भावना जागृत करने की योग्यता आदि गुण माने है।

नेतृत्व के व्यवहार के सिद्धान्त

मनोवैज्ञानिक ब्लम ने उद्योग के क्षेत्र मे नेता के लिये क्या करने और क्या न करने के विषय मे निर्देशक सिद्धान्त उपस्थित किए हैं। सफल नेता को निम्नलिखित सिद्धान्तो पर अमल करना चाहिये :—

4 Robert Tannenbaums, Helping Managers become more affective leaders, J. D. Houser, *What the Employer Thinks*, Cambridge, (1972), p. 226

5. O Craig and R Charters, *Personal leadership in Industry*, New York (1925), pp 235-36.

6 Blum, M L, Op. Cit. pp. 210-211.

(१) कार्य का सही मूल्यांकन (Fair Evaluation of work)—नेता को अपने आधीन कर्मचारी के कार्य का समय-समय पर सही मूल्यांकन करना चाहिये। उसे समयानुसार उसकी प्रशंसा अथवा आलोचना करने मे कोई संकोच नही करना चाहिये। उसे सार्वजनिक रूप से आलोचना नही करनी चाहिये किन्तु सार्वजनिक रूप से प्रशंसा करनी चाहिये।

(२) सत्ता का विकेन्द्रीकरण (Sufficient delegation of Authority)—नेता को यथासम्भव कार्य को अपने आधीन कर्मचारियो मे बाट देना चाहिये और अपने लिये केवल निरीक्षण का कार्य रखना चाहिये। सत्ता के इस विकेन्द्रीकरण से कर्मचारियो मे उत्तरदायित्व की भावना बढती है किन्तु यदि कोई प्राप्त सत्ता का अनुचित उपयोग करता है तो उससे सत्ता वापिस ले लेना भी उतना ही जरूरी है। इस प्रकार के परिवर्तनों की कर्मचारियो को पहले से सूचना दी जानी चाहिये।

(३) न्यायोचित व्यवहार (Fair treatment for All)—नेता को सब कर्मचारियो से समानता के आधार पर न्यायोचित व्यवहार करना चाहिये। कम्पनी मे प्रत्येक कर्मचारी का महत्व है भले ही उसका ओहदा कुछ भी क्यो न हो। सब कर्मचारियो को इस तरह महत्व देने से वे प्रसन्न रहते है।

(४) कर्मचारियों से सम्पर्क बनाए रखना (Availability to All Employees) नेता को सदैव कर्मचारियो से सम्बन्ध बनाए रखना चाहिये जिससे वे जब चाहे उससे आसानी से सम्पर्क स्थापित करके अपनी बात उसे बता सकें। कही-कही पर प्रत्येक कर्मचारी को सीधे सर्वोच्च अधिकारी से टेलीफोन द्वारा सम्पर्क स्थापित करने की सुविधा दी जाती है। इससे कर्मचारियो को सुरक्षा का अनुभव होता है और वे नेता के सामने अपने विचार उपस्थित कर सकते हैं।

(५) कर्मचारियों की समस्याओं पर विचार विमर्श (Discussion of Employee Problems with Employees)—नेता को समय-समय पर कर्मचारियो के साथ मिल बैठकर उनकी समस्याओ पर विचार विमर्श करना चाहिये। इससे वह उनका विश्वास प्राप्त करेगा और उनकी समस्याओ को भी आसानी से सुलझा सकेगा।

नेतृत्व के व्यवहार सम्बन्धी निषेध

उपरोक्त सिद्धान्तो का पालन करने के साथ-साथ नेता को यथा सम्भव अपने व्यवहार मे निम्नलिखित बातो से बचना चाहिये :—[7]

(१) सत्ता पर आधारित होना (Dependence upon Superiority)—नेता को किसी भी व्यवहार मे अपने ऊंचे पद या सत्ता पर आधारित होना चाहिये। उसके नेतृत्व का आधार ये नही है बल्कि सामूहिक स्वीकृति है।

(२) ज्ञान का झूठा ढोंग (Simulation of knowledge)—नेता को ज्ञान का झूठा ढोंग नही करना चाहिये क्योंकि वह सब कर्मचारियो को सदैव मूर्ख नही बना सकता। जल्दी या देर से उसका ज्ञान और योग्यता सभी को पता चल जाते हैं।

7. Ibid, pp 211-212

यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रत्येक कार्य को विस्तारपूर्वक जानता हो, कभी-कभी कर्मचारी अधिकारी से अधिक जानते हैं किन्तु यदि वह झूठे ज्ञान का ढोंग करता है तो उसका सम्मान उठ जाता है। दूसरी ओर काम का विशेषज्ञ होने पर नेतृत्व में सहायता मिलती है।

(३) काम में बाधा (Interference with work)—नेता को काम में बाधा देने से बचना चाहिये क्योंकि कर्मचारियों को यह बहुत बुरा लगता है। कर्मचारियों को यथासम्भव बिना रोक टोक के अपना काम करने दिया जाने चाहिये।

(४) पक्षपात और भेदभाव (Favoritism and Discrimination)—नेता को अपने आधीन कर्मचारियों से व्यवहार करने में पक्षपात और भेदभाव से यथा सम्भव दूर रहना चाहिये। इससे अनुशासन में बाधा पड़ती है और कर्मचारियों के परस्पर सम्बन्ध खराब होते हैं।

(५) सार्वजनिक आलोचना (Public Reprimands)—नेता को कर्मचारियों की सार्वजनिक आलोचना से बचना चाहिये क्योंकि इससे अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता।

(६) क्षुद्रता (Pettiness)—नेता उदार होना चाहिये। छोटी-छोटी बातों को लेकर कर्मचारियों को कहना सुनना अच्छी बात नहीं है। क्षुद्रता से उसका सम्मान उठ जाता है।

(७) परस्पर विरोधी आदेश (Conflicting Orders)—नेता को परस्पर विरोधी आदेशों से बचना चाहिये क्योंकि इससे कर्मचारी असमंजस में पड़ जाते हैं अथवा उनका नेता पर से विश्वास उठ जाता है। दोनों स्थितियों में काम की हानि होती है।

(८) अनावश्यक आदेश (Superfluous Orders)—नेता को यथा सम्भव कम से कम आदेश देने चाहिएँ और अनावश्यक आदेशों से बचना चाहिये। जो आदेश उसके क्षेत्र में नहीं आते वे नहीं दिये जाने चाहिये। अत्यधिक आदेशों से असुरक्षा की भावना बढ़ती है। बहुत सी बातें कर्मचारियों के विवेक पर छोड़ी जा सकती हैं।

निरीक्षक के उत्तरदायित्व

किसी भी उद्योग में निरीक्षक पर महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व होते हैं। इन उत्तरदायित्वों के पालन में ही कर्मचारियों और मालिकों दोनों का कल्याण होता है। संक्षेप में ये उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैं—

(१) अनुशासन और नीतिमत्ता बनाये रखना—अनुशासन उद्योग के नियमों का पालन करना है। नीतिमत्ता से उद्योग में प्रेरणा बनी रहती है। अनुशासन दण्ड और पुरुस्कार की व्यवस्था से लागू किया जाता है। पुरुस्कार, वेतन वृद्धि, प्रशंसा, अतिरिक्त अवकाश आदि के रूप में दिया जा सकता है। दण्ड यथासम्भव कम कठोर होने चाहिए किन्तु जिनका विधान किया जाए, वे दण्ड अवश्य दिये जाने चाहिए। निरीक्षक उद्योग में नीतिमत्ता का उच्च स्तर बनाए रखता है जिससे

उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और कर्मचारियों और अधिकारियों के सम्बन्ध अच्छे बने रहते हैं।

(२) समूह की समस्याओं को सुलझाना—निरीक्षक को समूह की समस्याओं का पता रहना चाहिए और उसे कर्मचारियों से विचार-विमर्श करके इन समस्याओं को सुलझाना चाहिए। निरीक्षकों के माध्यम से ही कर्मचारियों की समस्यायें अधिकारियों तक पहुंच सकती हैं, अस्तु, उसे कर्मचारियों से निकट सम्पर्क स्थापित करके उनकी समस्यायें पता लगाते रहना चाहिए।

(३) समायोजन बढ़ाना—उद्योग में प्रगति कर्मचारियों के अच्छे समायोजन पर निर्भर है। नये भर्ती होने वाले कर्मचारियों का पुराने कर्मचारियों से समायोजन अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य निरीक्षक की देख रेख में होता है। जहाँ कहीं भी समायोजन में कोई कठिनाई हो वहाँ उसे दूर करना निरीक्षक का उत्तरदायित्व है।

(४) उत्पादन की मात्रा और गुण बनाये रखना—निरीक्षक कर्मचारियों से काम लेकर उत्पादन की मात्रा और गुण के विषय में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करता है। उसकी देख-रेख में उत्पादन कार्य सम्पन्न होता है। यह कार्य इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि कहीं-कहीं तो फोरमैन अथवा सुपरवाइजर का यही एकमात्र कार्य माना जाता है।

(५) शांति और सामंजस्य बनाये रखना—उद्योगों में शांति और सामंजस्य बनाए रखना निरीक्षक का उत्तरदायित्व है। यह बहुत कुछ कर्मचारियों से उसके व्यवहार पर निर्भर है क्योंकि उसका व्यवहार का भी निर्देशन करता है। उसके कर्मचारियों से व्यवहार पर उद्योग में सामाजिक परिवेश की शांति और सामंजस्य निर्भर होता है। अस्तु, जहां कहीं शांति भंग होने की सम्भावना दिखलाई पड़े वहां उसे हस्तक्षेप करना चाहिए और उन कारकों को दूर करना चाहिए जिनसे शांति भंग होती है।

निरीक्षकों का चुनाव और प्रशिक्षण

औद्योगिक मनोविज्ञान केवल निरीक्षकों के गुण दोषों की विवेचना और निरीक्षण कार्य के विभिन्न पहलुओं के मनोवैज्ञानिक तत्वों का स्पष्टीकरण ही नहीं करता बल्कि उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व करने वाले निरीक्षकों के चुनाव और प्रशिक्षण में भी सहायता देता है। यह चुनाव विभिन्न उद्योगों की नीतियां और दर्शनों पर आधारित होता है। अस्तु, अलग-अलग उद्योगों में अलग-अलग कसौटियों के आधार पर नेताओं का चुनाव किया जाएगा क्योंकि निरीक्षकों का उद्योग में विशिष्ट योगदान भिन्न-भिन्न उद्योगों में अलग-अलग होता है। किस उद्योग में निरीक्षक में नेतृत्व के किन गुणों की अधिक आवश्यकता है, यह मनोवैज्ञानिक विषय है। अस्तु, उद्योगों में फोरमैनों और सुपरवाइजरों के चुनावों में प्रश्नावलियों और साक्षात्कार के द्वारा प्रार्थियों में नेतृत्व के गुणों का पता लगाने का प्रयास

किया जाता है। कभी-कभी इसके लिए विभिन्न प्रकार के परीक्षण भी प्रयोग किए जाते हैं।

नेतृत्व के सभी गुण जन्मजात नहीं होते। जहा बुद्धि, व्यक्तित्व, अभिरुचि आदि के कुछ गुण पहले से ही होते हैं, वहाँ उद्योग की वास्तविक परिस्थिति में कार्य भाग अदा करने के लिए निरीक्षक को प्रशिक्षण भी दिया जाता है क्योंकि अलग-अलग उद्योगों में निरीक्षकों को अलग-अलग कार्य भाग अदा करना होता है। आजकल वास्तविक परिस्थितियों में प्रशिक्षण को अधिक महत्व दिया जाता है क्योंकि वास्तविक परिस्थितियों से अलग प्रशिक्षण देने से फिर उनको वास्तविक परिस्थितियों में लागू करने की समस्या उपस्थित होती है। निरीक्षकों के प्रशिक्षण के लिए आजकल अनेक विधियां इस्तेमाल की जाती हैं जिनमें से कोई भी सभी परिस्थितियों में अन्य विधियों से बेहतर नहीं कही जा सकती। सामान्य रूप से वास्तविक परिस्थितियों में कार्य भाग अदा करने की विधि सर्वश्रेष्ठ प्रशिक्षण विधि है।

सारांश

निरीक्षण, कार्यों को करने में अधीन लोगों का प्रत्यक्ष और तात्कालिक निर्देशन और नियन्त्रण है। उद्योग में तीन प्रकार के नेता देखे जाते हैं—सर्वोच्च प्रबन्धक, माध्यमिक प्रबन्धक और श्रमिक नेता। कार्य प्रणाली के अनुसार नेतृत्व के तीन प्रकार हैं—अधिकारात्मक निरीक्षण (अ) निरंकुश सत्ताधिकारी नेता, (ब) उदार सत्ताधिकारी नेता, २. यदभाव्यम नेतृत्व, ३. जनतन्त्रीय निरीक्षण। इनमें अन्तिम प्रकार सबसे अधिक प्रभावशाली है।

प्रभावशाली नेतृत्व के लिए आवश्यक दशायें—१. अनुकूल सामाजिक परिवेश, (२) कम्पनी की नीति और दर्शन का ज्ञान, ३. अनुगामियों का विश्वास प्राप्त करना, ४. समीचीन अनुशासन, ५. योगदान का अवसर प्रदान करना।

अच्छे निरीक्षण के नियम—१. निरंकुश मत बनो, २. धैर्यपूर्वक सुनो, ३. जल्दबाजी में निर्णय मत लो, ४. कर्मचारियों से तर्क मत करो, ५. सार्वजनिक रूप से आलोचना मत करो।

निरीक्षक अथवा नेता के गुण—भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने उद्योग में निरीक्षक अथवा नेता में अलग-अलग गुणों की चर्चा की है। ये गुण भिन्न-भिन्न उद्योगों में न्यूनाधिक भिन्न हो जाते हैं।

नेतृत्व के व्यवहार के सिद्धान्त—१. कार्य का सही मूल्यांकन. २. सत्ता का विकेन्द्रीकरण, ३. न्यायोचित व्यवहार, ४. कर्मचारियों से सम्पर्क बनाए रखना, ५. कर्मचारियों की समस्याओं पर विचार-विमर्श।

नेतृत्व के व्यवहार सम्बन्धी निषेध—१. सत्ता पर आधारित होना, २. ज्ञान का झूठा ढोंग, ३. काम में बाधा, ४. पक्षपात और भेदभाव, ५. सार्वजनिक आलोचना, ६. क्षुद्रता, ७. परस्पर विरोधी आदेश, ८. अनावश्यक आदेश।

निरीक्षक के उत्तरदायित्व—१. अनुशासन और नीतिमत्ता बनाये रखना, २. समूह की समस्याओं को सुलझाना, ३. समायोजन बढ़ाना, ४. उत्पादन की मात्रा और गुण बनाये रखना, ५. शांति और सामंजस्य बनाये रखना।

निरीक्षकों का चुनाव और प्रशिक्षण—आजकल निरीक्षकों के चुनाव और प्रशिक्षण में अनेक मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रशिक्षण में कार्य भाग अदा करने की विधि सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१. उद्योग में निरीक्षक का क्या महत्व है ? सफल निरीक्षण ■ सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये

What is the importance of .supervision in industry ? Describe the principles of successful supervision.

२ उद्योग मे नेतृत्व के विभिन्न प्रकारो के गुण-दोषो की चर्चा करते हुये जातन्त्रीय नेतृत्व का महत्व बतलाइये।

Point out the importance of democratic leadership pointing out the advantages and disadvantages of different kinds of leadership.



२०

प्रेरणा, उत्प्रेरक तथा पारिश्रमिक विधियां
(Motivation, Incentives and Methods of Payment)

प्रेरणा क्या है ?

मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ के अनुसार, "एक प्रेरणा व्यक्ति की एक दशा अथवा विन्यास है जो कि उसे कुछ लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिये कुछ व्यवहार करने के हेतु प्रेरित करती है।"[1] इस प्रकार प्रेरणा मे लक्ष्योन्मुख व्यवहार पाया जाता है। उसमें विशेष लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयास किया जाता है। प्रेरणा के विश्लेषण से यह पता चलता है कि कोई मनुष्य क्यो श्रम करता है। कोई भी व्यक्ति प्रेरणा के कारण वह कार्य नही कर सकता जिसको करने की उसमें सामर्थ्य नही है। इस प्रकार प्रेरणा द्वारा कार्य करने की शक्ति क्षमता मे सीमित होती है। प्रेरणा व्यक्ति की योग्यताओ को अभिव्यक्त कराने का तरीका है। प्रेरणा की परिस्थिति आत्मगत (Subective) और वस्तुगत (Objective) दो पहलू रखती है। आत्मगत पहलू मे उसमें व्यक्ति की दशा सम्मिलित है जिसको आवश्यकता (Need), इच्छा (Desire) अथवा ईहा (Drive) कहा जा सकता है। वस्तुगत पहलू मे उसमे व्यक्ति के बाहर वह लक्ष्य (Goal) अथवा उत्प्रेरक (Incentive) है जिसके कारण वह कोई कार्य करता है। जिस परिस्थिति मे उत्प्रेरक इस प्रकार का है कि उसे प्राप्त करने की आवश्यकता अनुभव होती है वह प्रेरणा देने वाली परिस्थिति है। उदाहरण के लिये किसी उद्योग मे काम करने से वेतन मिलता है। अब यदि किसी व्यक्ति के लिये वेतन से मिला हुआ धन उसकी आवश्यकताओ की पूर्ति का साधन है तो वह वेतन प्राप्त करने के लिये कार्य करेगा। स्पष्ट है कि प्रेरणा आवश्यकता और उत्प्रेरक दोनों के अनुसार बदलती रहती है। किसी भी कार्य मे प्रेरणा उत्पन्न करने के लिए उत्प्रेरक ऐसा होना चाहिये कि वह कर्मचारी की आवश्यकता से सम्बन्धित हो। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति को धन की आवश्यकता नही है तो केवल धन ऐसा उत्प्रेरक नही हो सकता जिसकी प्रेरणा से वह कार्य करने लगे। दूसरी ओर सामाजिक सम्मान, समय का अच्छी तरह प्रयोग इत्यादि कुछ अन्य ऐसे अवित्तीय (Non-financial) उत्प्रेरक हो सकते हैं जिनके कारण वह व्यक्ति काम कर सकता है।

1. "A motive is a state or set of individual which disposes him for certain behaviour and for seeking certain goal" —R. S. Woodworth.

उद्योग में प्रेरणा

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि उद्योग में प्रेरणा के महत्व को समझने के लिए एक ओर मानव आवश्यकताओं और दूसरी ओर औद्योगिक उत्प्रेरकों का ज्ञान आवश्यक है। मानव आवश्यकतायें स्थूल रूप से दो प्रकार की होती हैं—प्राकृतिक अथवा आन्तरिक और अर्जित। आन्तरिक आवश्यकताओं में भूख, प्यास, मातृत्व ईहा, यौन आवश्यकतायें, निद्रा इत्यादि सम्मिलित हैं। अर्जित आवश्यकताओं में प्रेम, सहानुभूति, सामाजिक सम्मान के अतिरिक्त वे कितनी ही आवश्यकतायें सम्मिलित हैं जो आधुनिक संस्कृति में उत्पन्न होती हैं। अर्जित आवश्यकतायें पिछले अनुभव और व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार बदलती रहती हैं। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकतायें सामाजिक आवश्यकतायें हैं। सामाजिक आवश्यकताओं में एक विशेष आवश्यकता आत्म-सम्मान बनाये रखने और दूसरों में मुखिया बने रहने की आवश्यकता है। इनके अतिरिक्त मनुष्यों में कुछ प्राप्त करने की आवश्यकता भी होती है जिससे तादात्म्य करके वे संतोष प्राप्त कर सकते हैं।

प्रेरणा और आकांक्षा स्तर

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में आकांक्षाओं के विभिन्न स्तर होते हैं जिनके सन्तुष्ट न होने से हताशायें बढ़ती हैं। जिनका आकांक्षा स्तर जितना अधिक ऊँचा होता है वे सफलता प्राप्त करने के लिए उतना ही अधिक प्रयास करते हैं। कोच और फ्रेंच (Coch and French) के अध्ययन में एक कार्य में उत्पादन के लिए ६० यूनिट को औसत स्तर माना गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जो व्यक्ति उससे कम अर्थात् ५५ से ५६ यूनिट उत्पादन कर रहे थे वे ६० यूनिट उत्पादन करने लगे किन्तु जो कर्मचारी इस औसत को प्राप्त करने में असफल रहे वे काम छोड़कर भाग गये। आकांक्षा स्तर नीचा होने पर व्यक्ति अपनी योग्यताओं को पूरी तरह से प्रयोग करने का प्रयास नहीं करता। दूसरी ओर आकांक्षा स्तर ऊँचा होने पर व्यक्ति अपनी योग्यताओं से अधिक काम लेने का प्रयास करता है।

प्रेरणा और बाहरी परिस्थितियाँ

बाहरी परिस्थितियों का किसी व्यक्ति की प्रेरणाओं पर तभी प्रभाव हो सकता है जबकि वे उसकी आन्तरिक प्रेरणा पर प्रभाव डालें। यह आन्तरिक प्रेरणा व्यक्ति की अपनी अहं की आवश्यकताओं से प्रारम्भ होती है। यदि कोई कर्मचारी अपनी नौकरी में सम्मान समझता है तो वह उस पर भली प्रकार काम करेगा और यदि ऐसा नहीं है तो उसमें काम करने की प्रेरणा नहीं होगी। इसी कारण सामूहिक प्रेरणा का बहुत महत्व होता है।

उद्योग में आन्तरिक प्रेरणायें

उद्योग में विभिन्न प्रेरणाओं के महत्व पर विचार करते हुए टी० डब्लू० हैरेल (T. W. Harrell)[2] ने तीन प्रमुख प्रेरक माने हैं—काम भावना (Sex)

2. T. W. Harrell, *Industrial Psychology*, Cal. (1964), p 235

आत्म सम्मान (Self respect) तथा सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Prestige)। इनके अतिरिक्त क्रियाशीलता (Activtiy) अथवा कार्य की प्रेरणा और भूख (Hunger) भी महत्वपूर्ण प्रेरणायें हैं। यह एक सामान्य बात है कि अधिकतर लोग रोजी कमाने के लिए काम करते हैं। काम से उन्हे जो वेतन मिलता है उससे उनकी और उनके परिवार की भौतिक आवश्यकतायें पूरी होती है तथा वे विवाहित जीवन व्यतीत कर सकते है किन्तु कुछ लोग इन आवश्यकताओ के सन्तुष्ट हो जाने के बाद भी काम करते रहते है क्योकि काम से उन्हे सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती है और उनकी आत्म सम्मान की प्रेरणा सतुष्ट होती है किन्तु फिर कुछ लोग पर्याप्त सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्म-सम्मान प्राप्त करने के बाद भी काम करते रहते है क्योकि सक्रियता जीवन का स्वभाव है। जीवन निष्क्रिय व्यतीत नही किया जा सकता। अस्तु, अनेक काम वित्तीय अथवा अवित्तीय उत्प्रेरको के कारण नही बल्कि स्वयं काम के लिए किए जाते हैं।

आन्तरिक ईहा

आन्तरिक प्रेरको मे आवश्यकता और ईहा अथवा चालक दोनो का उल्लेख किया जाता है। ईहा आवश्यकता से अधिक तीव्र प्रेरणा है। आवश्यकताओ मे दैहिक आवश्यकतायें जैसे भूख, प्यास, काम वासना, मल-मूल त्याग, श्वास प्रश्वास और होमियोस्टेटिस इत्यादि सम्मिलित है। इनके सतुष्ट न होने से शारीरिक संतुलन बिगड जाता है और परिणामस्वरूप मानसिक समायोजन बिगड जाता है। चालक अधिक तीव्र आवश्यकतायें हैं। इनमे बैचेनी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार की स्थिति विशेष रूप से यौन प्रवृत्ति के असन्तोष मे दिखलाई पडती है। भूख, प्यास की तृप्ति न होने पर भी इसी प्रकार की ईहा देखी जाती है। इन ईहाओ के सतुष्ट न होने से व्यक्ति का सन्तुलन बिगड जाता है।

प्रेरणाओं मे संघर्ष

कभी-कभी व्यक्ति मे अनेक प्रेरणाये परस्पर सघर्ष करने लगती है। ऐसी स्थिति मे काम को हानि पहुँचती है और उत्पादन कम होता है। उद्योग के क्षेत्र मे प्रेरणायें उत्पन्न करने मे सदैव यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रेरणाओ मे सघर्ष न हो क्योकि सघर्ष होने से अन्तर्द्वन्द उत्पन्न होता है और कर्मचारी की समझ मे यह नही आता कि वह क्या करे। अस्तु, ऐसे प्रेरक उत्पन्न किये जाने चाहियें जिनमे कर्मचारी को स्पष्ट मार्ग निर्देशन मिल सकता हो। इससे उसे अधिक सोच विचार नही करना पडता और वह अपना काम भली प्रकार कर सकता है। आधुनिक काल मे उद्योगो मे कर्मचारियो मे प्रेरणायें उत्पन्न करने की नयी-नयी विधियो का प्रयोग किया जा रहा है। जहाँ तक आन्तरिक प्रेरणा का प्रश्न है वह तो कर्मचारी की अपनी मानसिक स्थिति की बात है। उद्योग मे तो वाह्य प्रेरणायें ही दी जा सकती है जिन्हे उत्प्रेरक कहते है।

उत्प्रेरक (Incentives)

उत्प्रेरक क्या है ?

उत्प्रेरक वे लक्ष्य हैं जो कि किसी न किसी आवश्यकता को सन्तुष्ट करते है। उदाहरण के लिए भोजन भूख का उत्प्रेरक है। पानी प्यास बुझाता है। इसी प्रकार यौन व्यवहार आन्तरिक ग्रन्थियो की क्रिया मे परिवर्तन करता है। घूमने फिरने से जिज्ञासा सतुष्ट होती है। इस प्रकार उत्प्रेरक जन्मजात अथवा अर्जित आवश्यकताओं को सतुष्ट करने के साधन हैं।

उत्प्रेरकों के प्रकार

साधारणतया उत्प्रेरको को निम्नलिखित दो वर्गों मे बाँटा जाता है—

(१) विधायक उत्प्रेरक (Positive Incentives)—ये व्यक्तियो को आकर्षित करते है और इन्हें प्राप्त करके सुख होता है। उदाहरण के लिए वेतन वृद्धि या बोनस मे वृद्धि अथवा पदोन्नति इत्यादि विधायक उत्प्रेरक हैं। इनसे विशेष काम को करने की प्रेरणा मिलती है जैसे यह कहा जाये कि जो कर्मचारी एक घण्टा अतिरिक्त कार्य करेगा उसको पचास रुपये मासिक अधिक मिलेंगे तो यह कार्य करने का उत्प्रेरक है।

(२) निषेधात्मक उत्प्रेरक (Negative Incentives)—निषेधात्मक उत्प्रेरक वह है जिससे किसी कार्य को न करने की प्रेरणा मिलती है। उदाहरण के लिए यदि टूट-फूट होने पर आर्थिक दण्ड का विधान हो तो टूट-फूट न करने की प्रेरणा मिलेगी। कभी-कभी किसी उद्योग मे कुछ ऐसे सुधार उपस्थित किये जाते है जो निषेधात्मक उत्प्रेरक होते हैं और परिणाम यह होता है कि उनके लाभदायक होने के बावजूद भी कर्मचारी उनका विरोध करते है।

(३) स्थानापन्न उत्प्रेरक (Substitute Incentives)—कभी-कभी उत्प्रेरक का एक अन्य प्रकार स्थानापन्न उत्प्रेरक को माना जाता है। इसमे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, स्वाभाविक उत्प्रेरक के स्थान पर किसी अन्य कृत्रिम उत्प्रेरक को रख दिया जाता है। उदाहरण के लिए किसी कर्मचारी को पदोन्नति न देकर वेतन वृद्धि दी जा सकती है जिससे वह पदोन्नति की हताशा से बच जाता है। स्पष्ट है कि स्थानापन्न उत्प्रेरक ऐसा होना चाहिए जिससे वही आवश्यकता सतुष्ट हो जो वास्तविक उत्प्रेरक से सतुष्ट होती है। उपरोक्त उदाहरण मे कर्मचारी यह सोच कर सतुष्ट हो जाता है कि पदोन्नति होने पर भी उसको केवल कुछ आर्थिक लाभ ही होता और यह आर्थिक लाभ वेतन वृद्धि से भी हो ही रहा है। यहा यह ध्यान रखना आवश्यक है कि स्थानापन्न उत्प्रेरक कितना भी अच्छा होने पर भी पूरी तरह वास्तविक उत्प्रेरक का स्थान नही ले सकता। उपरोक्त उदाहरण मे पदोन्नति से अर्थ लाभ के अतिरिक्त ऊँचा दर्जा भी प्राप्त होता और कुछ अधिकार भी मिलते। अस्तु, जो कर्मचारी पदोन्नति न मिलने पर वेतन वृद्धि से ही सतुष्ट हो जाता है वह केवल

अपने को समझ लेता है अन्यथा पूर्ण संतोष तो उसे पदोन्नति से ही होता । जो कर्मचारी अर्थ लाभ के लिए नही बल्कि अधिकार और ऊँचा पद प्राप्त करने के लिये पदोन्नति चाहता है उसे वेतन वृद्धि से कोई सन्तोष नही होगा । स्पष्ट है कि कोई स्थानापन्न उत्प्रेरक सभी कर्मचारियो को एक ही तरह से संतुष्ट नही कर सकता । कौनसा कर्मचारी किस उत्प्रेरक से संतुष्ट हो जायेगा यह उसकी व्यक्तिगत विशेषताओ और स्थितियों पर निर्भर होता है । उदाहरण के लिए जिसके पास अच्छा मकान नही है वह अच्छा मकान मिलने से संतुष्ट हो सकता है और उसके बदले में ऊँचे पद को भी छोड सकता है किन्तु जिसके पास पहले ही अच्छा मकान है वह उसके लिए पद को नही छोड सकता । अस्तु, भिन्न-भिन्न कर्मचारियों को स्थानापन्न उत्प्रेरक देते समय उनकी व्यक्तिगत विशेषताओ और आवश्यकताओं को ध्यान रखना चाहिए ।

उत्प्रेरकों मे संघर्ष

कभी-कभी विभिन्न उत्प्रेरको मे संघर्ष भी हो जाता है । उदाहरण के लिए यदि किसी कारखाने के कर्मचारियो से यह कहा जाए कि जो कर्मचारी कारखाने के क्वार्टरो मे रहेगा उसके वेतन मे से दस रुपये कम कर दिये जायेंगे और जो नही रहेगा उसके वेतन मे दस रुपये बढा दिये जायेंगे तो एक ओर क्वार्टर और दूसरी ओर दस रुपये वृद्धि के उत्प्रेरको मे संघर्ष उपस्थित होगा और कर्मचारी को इनमे चुनाव करने मे कुछ समय लगेगा । कभी-कभी विधायक और निषेधात्मक उत्प्रेरको मे भी संघर्ष होता है । उदाहरण के लिए कुछ काम ऐसे होते है जहाँ वेतन तो अधिक मिलता है किन्तु सामाजिक सम्मान उतना अधिक नही मिलता । ऐसी स्थिति मे कर्मचारी को यह चुनना कठिन हो जाता है कि वह अधिक वेतन वाला कार्य चुने या अधिक सामाजिक सम्मान वाला कार्य ले । जिन उद्योगो मे काम करने मे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है उनमे वेतन अधिक दिया जाता है । स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव निषेधात्मक उत्प्रेरक है अर्थात् उसके होने से उस काम को न करने की प्रेरणा उत्पन्न होती है । दूसरी ओर अधिक वेतन विधायक उत्प्रेरक है क्योंकि उसके होने से उस काम को करने को प्रेरणा होती है । इन दोनो मे कर्मचारी किसे चुनता है यह उसकी आर्थिक स्थिति तथा व्यक्तिगत आवश्यकताओ पर निर्भर है । कुछ लोग स्वास्थ्य खराब करके पैसा नही कमाना चाहेंगे जब कि दूसरे लोगो को भौतिक या सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन की इतनी अधिक आवश्यकता होती है कि वे अस्वास्थ्यकार परिस्थितियो मे भी काम करना स्वीकार कर लेते है ।

निषेधात्मक उत्प्रेरकों से हानियां

बहुधा उद्योगो मे कर्मचारियो को वांछित कामो की ओर प्रेरित करने के लिये विधायक उत्प्रेरक और अवांछित कार्यों से रोकने के लिए निषेधात्मक उत्प्रेरको

की व्यवस्था की जाती है। उदाहरण के लिये अच्छा काम करने लिए पुरस्कार और औसत से कम उत्पादन करने पर दण्ड की व्यवस्था होती है। कहीं-कहीं दुर्घटना करने, टूट-फूट करने या कच्ची सामग्री खराब करने से रोकने के लिये दण्ड की व्यवस्था की जाती है। यह ठीक है कि दण्ड की व्यवस्था से बहुत से लोग इन कार्यों मे बाज आते हैं किन्तु फिर इस निषेधात्मक उत्प्रेरक से कुछ हानियाँ भी होती हैं जिनमे मुख्य निम्नलिखित हैं—

(१) **हताशा और विरोधी प्रवृत्ति(Frustration and Hostile Tendency)**—यदि कर्मचारी किसी दण्ड को अनुचित मानता है तो उससे उसमें हताशा और विरोधी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। यह बात इसलिये और भी महत्वपूर्ण है कि दण्ड अक्सर उन्ही कर्मचारियों को मिलता है जो पहले से ही असहयोगी और उद्दण्ड प्रकृति के होते हैं। दण्ड से यह बात और भी बढ जाती है।

(२) **धोखाधड़ी बढना (Increase of Deceit)**—किसी काम के लिये दण्ड की व्यवस्था होने पर कुछ लोग उससे बचने के स्थान पर उसे इस तरह करना चाहते हैं कि वे पकड़े न जायें। इस तरह दण्ड की व्यवस्था मे धोखाधडी बढती है।

(३) **निषेधात्मक सुझाव (Negative Suggestion)**—मनोविज्ञान मे यह माना जाता है कि जहा विधायक सुझाव दिये जा सकते हैं वहा निषेधात्मक सुझाव नही दिये जाने चाहिये। उदाहरण के लिये यदि कही यह लिखा हो "यहाँ से सडक मत पार कीजिए" तो इससे अधिक अच्छा सुझाव यह है कि जहा से सडक पार करनी हो वहा लिखा जाये "यहाँ से सडक पार कीजिए।" पहले उदाहरण मे चलने वाले को निषेधात्मक सुझाव मिलता है जिससे उसे यह पता नही चलता कि उसे क्या करना है जबकि दूसरे उदाहरण मे उसे विधायक सुझाव मिलता है।

(४) **विध्वसंक प्रशिक्षण (Destructive Training)**—सुझाव के साथ-साथ प्रशिक्षण भी विध्वसक न होकर रचनात्मक (Constructive) होना चाहिये। दण्ड कर्मचारी को किसी काम से रोकना चाहता है, यह विध्वसक प्रशिक्षण है क्योंकि इससे उसकी किसी प्रवृत्ति मे गतिरोध उत्पन्न होता है। दूसरी ओर रचनात्मक प्रशिक्षण में यह प्रयास किया जायेगा कि जिस अवाञ्छनीय प्रवृत्ति के कारण वह कार्य होता है उस प्रवृति को किसी अन्य वाछनीय कार्य मे अभिव्यक्त होने दिया जाये।

(५) **प्रतिकूल अभिवृत्ति (Negative Attitude)**—दण्ड से कार्य और दण्ड देने वाले के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति उत्पन्न होती है। जो लोग किसी कारखाने मे किसी अनुचित कार्य के लिये दण्ड प्राप्त करते हैं वे न केवल उस कार्य के वल्कि उस कारखाने के मालिको के और वहा की प्रत्येक बात के विरुद्ध हो जाते हैं।

(६) **भय की उत्पत्ति (Creation of Fear)**—दण्ड की व्यवस्था भय

उत्पन्न करती है और भय की परिस्थिति कार्य की अच्छी परिस्थिति नही है। अस्तु, कर्मचारियो मे भय उत्पन्न करने के स्थान पर विधायक प्रवृत्ति उत्पन्न की जानी चाहिये। आजकल उद्योगों मे विधायक उत्प्रेरको के द्वारा परिवर्तन करने की दिशा में अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं।

दण्ड की उपरोक्त हानियो के बावजूद सदियो से उद्योग में दण्ड दिया जाता रहा है क्योकि दण्ड के परिणामो की ओर कभी ध्यान नही दिया गया। वास्तव में दण्ड क्रोध की दशा मे दिया जाता है भले ही उससे कुछ हानि क्यो न हो। दूसरे, साधारणतया अधिकारियों में इतना धैर्य नही होता कि वे दण्ड की विधि न अपनाकर कोई रचनात्मक विधि अपनायें। तीसरे, निषेधात्मक विधि विधायक विधि मे अधिक सरल होती है और इसलिए भी वह आसानी से अपना ली जाती है। दूसरी ओर विधायक उत्प्रेरक अपनाने में न केवल उत्प्रेरको बल्कि उनकी विधियो के विषय मे भी सोच विचार करना पड़ता है।

आजकल उद्योगो मे दो प्रकार के विधायक उत्प्रेरक अपनाए जाते है—वित्तीय उत्प्रेरक और अवित्तीय उत्प्रेरक। पहले प्रकार के उत्प्रेरको मे वे कार्य शामिल है जिनमे आर्थिक लाभ होता है। दूसरे प्रकार के उत्प्रेरको में ऐसे सुधार और लाभ सम्मिलित है जिनमे अर्थ लाभ तो नही होता किन्तु प्रेरणा मिलती है। उदाहरण के लिये कार्य के लिये प्रशंसा, कार्य के परिणामो का ज्ञान, स्वस्थ प्रतियोगिता द्वारा प्रोत्साहन, प्रगति का अनुभव, सामूहिक प्रेरणा से अधिक और अच्छा काम करना, विशेष कार्य में रुचि बढाना, उकताहट कम करना, कार्य को महत्वपूर्ण बनाना इत्यादि।

वित्तीय उत्प्रेरक (Financial Incentives)

यूँ तो पैसे की आदमी के लिये कोई कीमत नही है किन्तु हमारे वर्तमान आर्थिक संगठन मे पैसे के बदले मे न केवल जीवन की आवश्यकताओ की वस्तुयें, स्वास्थ्य तथा शिक्षा और आराम के साधन ही नही बल्कि सामाजिक पद और शक्ति भी प्राप्त की जा सकती है। इसलिए वित्तीय उत्प्रेरको का अत्यधिक महत्व हो गया है। पैसा मिलने पर सबसे पहले आदमी अपनी जरूरत की चीजो जैसे—भोजन, वस्त्र, आवास आदि की व्यवस्था करता है। उसके बाद स्वास्थ्य और शिक्षा की आवश्यकताओ की पूर्ति की जाती है। इसके बाद धन बढने पर तरह-तरह के आराम के साधन जुटाए जाते हैं। किन्तु फिर कुछ लोग इसके बाद भी काम करते रहते हैं क्योकि उनके बैंक बैलैन्स से उनकी सामाजिक स्थिति और शक्ति बढती है। ऐसे लोग जीवन भर पैसे की खोज में लगे रहते हैं और यह खोज कभी नही रुकती। जिन लोगो को शक्ति की विशेष आवश्यकता महसूस नही होती वे आवश्यकताओ और आरामो के साधन जुटाने के बाद पैसे की कोई परवाह नहीं करते। इसी तरह आर्थिक हानि का भी

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पडता है। पैसा न होने पर गरीब की रोटी जाती है तो अमीर का सम्मान नही रहता यद्यपि उसे रोटी की कमी नही होती। फिर भी गरीब पर इस हानि का मनोवैज्ञानिक प्रभाव अमीर की तुलना मे कम पडता है क्योकि उसे केवल शारीरिक हानि होती है जबकि अमीर के आत्म सम्मान को चोट लगती है, उसकी मानसिक हानि होती है। विनिमय का साधन होने के कारण धन अनेक प्रकार की आवश्यकताओ की सन्तुष्टि का साधन बन गया है। यदि किसी समाज मे सामाजिक पद और शक्ति धन पर आधारित हो तो वहाँ धन की उत्प्रेरक शक्ति कम हो जाएगी। उदाहरण के लिए साम्यवादी देशो मे निजी सम्पत्ति के उन्मूलन के बाद सामाजिक सम्मान को परिश्रम, समाज सेवा या ऐसे ही किसी अन्य लक्ष्य से जोड दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप निजी सम्पत्ति की सम्भावना न होने पर भी बहुत से लोग अथक परिश्रम करते हैं। जहां किसी व्यक्ति की सफलता धनोपार्जन से आकी जाती है वहा धन ही सबसे बडा उत्प्रेरक होता है किन्तु जहाँ ऐसा नही है वहा धन की उत्प्रेरक शक्ति कम हो जाती है। इस विश्लेषण से वित्तीय उत्प्रेरकों का महत्व पता चलता है। उद्योगो मे वित्तीय उत्प्रेरक दो प्रकार से दिये जाते है—एक तो बढे हुये वेतन के रूप मे और दूसरे समय-समय पर मिलने वाले बोनस के रूप मे, इन दोनो ही प्रकार के वित्तीय उत्प्रेरको से उद्योगो मे उत्पादन बढता है तथा कर्मचारी अधिक परिश्रम करके अधिक अच्छा काम करते हैं।

भृत्ति भुगतान की विधियाँ (Methods of wage payment)

सबसे अधिक व्यापक वित्तीय उत्प्रेरक वेतन वृद्धि है। यहाँ पर हम भृत्ति भुगतान की विभिन्न विधियों के लाभ हानि का विश्लेषण करके यह पता लगायेंगे कि पारिश्रमिक देने की सबसे अच्छी विधि कौन सी है जिससे कर्मचारी को अधिक और अच्छा काम करने की अधिक से अधिक प्रेरणा मिलती हो। सक्षेप मे, भृत्ति भुगतान की विभिन्न विधियाँ और उनके गुण दोषो का विवेचन निम्नलिखित है :—

(१) उत्पादन के अनुसार वेतन

(Pay according to production)

उद्योग के क्षेत्र मे भृत्ति भुगतान की एक प्रचलित विधि कर्मचारी द्वारा किये गये उत्पादन की मात्रा के अनुसार वेतन देना है। साधारणतया अनेक कारखानो मे काम के ठेके दे दिये जाते हैं और उसकी दर निश्चित कर दी जाती है जिसमे काम की विशिष्ट मात्रा के लिये वेतन की मात्रा निश्चित होती है। भृत्ति भुगतान की इस विधि से निम्नलिखित लाभ हैं :—

(अ) **व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर जोर**—पारिश्रमिक देने की इस विधि मे कर्मचारी की व्यक्तिगत विभिन्नताओ को महत्व दिया जाता है। यदि कोई कर्मचारी दूसरो से अधिक तेजी से और अच्छा काम कर सकता है तो उसे अधिक अर्थ लाभ होता है जबकि सुस्त और कम योग्य कर्मचारी कम वेतन प्राप्त करते है।

(ब) **कुशलता और उत्पादन को महत्व**—इससे व्यक्ति की कुशलता और उत्पादन क्षमता को अधिक महत्व दिया जाता है। इसीलिये कर्मचारी इनको बढाने का प्रयास करते है। चूंकि अयोग्यता और सुस्ती से कम वेतन मिलता है इसलिये यथासम्भव उन्हे दूर करने का प्रयास किया जाता है।

(स) **अरोचक कामो में महत्व**—इस विधि से कर्मचारी अरोचक कामो को भी पूरी शक्ति से करते हैं क्योकि वे जानते है कि काम मे रूचि लेने से और अधिक काम करने से उन्हे अर्थ लाभ होगा।

उपरोक्त लाभो के वावजूद उत्पादन के अनुसार वेतन देने की विधि मे निम्न-लिखित दोष दिखलाई पडते हैं :—

(अ) **जीवन के स्तरों में अन्तर**—उत्पादन के अनुसार वेतन मिलने से एक ही कारखाने मे एक तरह का काम करने वाले कर्मचारियों की आय मे अन्तर हो जाता है जिसमे उनके रहन-सहन के स्तर में अन्तर देखा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कम आय वालो का स्तर गिर जाता है और वे अधिक कुशल कर्मचारियो से घृणा करने लगते है। यही कारण है कि अनेक स्थानो पर सामाजिक कारणो से कुछ कुशल कर्मचारी दूसरो से अधिक अच्छा काम नही दिखलाना चाहते। औद्योगिक सघ भी पारिश्रमिक की इस विधि का विरोध करते हैं क्योकि इससे कर्मचारियो मे फूट पडती है और उनका सगठन बिगडता है।

(ब) **आयु के सम्मान का अभाव**—यह एक सामान्य बात है कि आयु बढने के साथ-साथ उत्पादक शक्ति घटती है। यह बात विशेषतया औद्योगिक उत्पादन के विषय मे लागू होती है। यदि उत्पादन के आधार पर वेतन दिया जाएगा तो बूढे लोगों का सम्मान घट जाएगा क्योकि उन्हे वेतन कम मिलेगा। इससे उनके अनुभव का भी पूरा लाभ नही मिल पाता।

(स) **व्यावहारिक कठिनाई**—वेतन की इस वृद्धि मे सबसे बडी व्यावहारिक कठिनाई यह है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्पादन का मूल्य किस तरह निश्चित किया जाएगा। उदाहरण के लिये इन्जीनियर के उत्पादन को श्रमिक के उत्पादन की तुलना में कैसे जांचा जाएगा। यह समस्या अधिक से अधिक प्रयत्न और भूल की विधि से ही सुलझाई जा सकती है।

(द) **कर्मचारियों की गतिशीलता पर प्रतिकूल प्रभाव**—वेतन की उपरोक्त विधि से कर्मचारियो की गतिशीलता पर अच्छा प्रभाव नही पडता। अधिक कुशल और योग्य व्यक्ति ऐसे कारखानो मे चले जाते है जहाँ उत्पादन के अनुसार वेतन मिलता है। दूसरी ओर कम कुशल और अयोग्य व्यक्ति ऐसे कारखानो मे रह जाते है जहां समय के अनुसार वेतन दिया जाता है।

(इ) **कर्मचारियों में झगडे**—वेतन की इस विधि से अधिक कुशल और कम कुशल कर्मचारियो मे वैमनस्य बढता है और झगडे बढते हैं इससे प्रेरणा देने का प्रयोजन ही समाप्त हो जाता है बल्कि चूंकि किसी उद्योग मे औसत और औसत

से कम योग्यता के व्यक्तियो की संख्या योग्य व्यक्तियों से बहुत अधिक होती है इसलिए उनके भय से योग्य व्यक्ति अधिक अच्छा काम नहीं दिखलाना चाहते । यह बात अनेक अध्ययनो से सिद्ध हुई है।

उत्पादन के अनुसार वेतन देने की विधि के उपरोक्त दोषो के बावजूद कुछ कामो मे यह विधि अन्य विधियो से अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है किन्तु अधिकतर अधिक उत्पादन के लिए वेतन न बढाकर बोनस बढ़ाया जाता है जिससे अधिक लाभ होता है । अस्तु, इस वेतन विधि के गुण दोषो का विवेचन करते समय कर्मचारी की आर्थिक स्थिति और आवश्यकतायें, कार्य का प्रकार और कर्मचारियों के सामाजिक वातावरण आदि पर ध्यान दिया जाना चाहिए । यह ध्यान रखना जरूरी है कि कारखाने का सामाजिक वातावरण न बिगडने पाये और फिर भी अधिक कुशल कर्मचारियो को और भी कुशलता बढाने की प्रेरणा मिले ।

(२) समय व्यय के अनुसार वेतन

(Pay in terms of time spent)

भृति भुगतान की एक अन्य विधि उद्योग मे दिये गये समय के अनुसार वेतन देना है । इसमे जो कर्मचारी जितने घण्टे काम करता है उसे उसके अनुसार वेतन दिया जाता है । कही पर वेतन काम के घण्टो, कही पर दिनो और कही सप्ताहो से निश्चित् किया जाता है । प्रत्येक स्थिति मे वेतन की मात्रा उत्पादन की मात्रा से नही किन्तु कर्मचारी द्वारा व्यय किये गये समय की मात्रा से निश्चित की जाती है ।

भृत्ति भुगतान की इस विधि मे निम्नलिखित दोष है—

(अ) उत्पादन की प्रेरणा का अभाव—चूंकि इसमे वेतन की मात्रा पर उत्पादन की मात्रा का कोई असर नही होता इसलिए कर्मचारी केवल उतना ही उत्पादन करना चाहते है जो नौकरी पर बने रहने के लिये जरूरी हो। इतना उत्पादन होने के बाद कुशल कर्मचारी इधर-उधर वक्त गवाते फिरते है । अस्तु, इससे कुशल कर्मचारियो को अधिक उत्पादन करने की कोई प्रेरणा नही मिलती । जहा कही अलग-अलग कर्मचारी के न्यूनतम उत्पादन को मापने की कोई विधि नही है अथवा काम की विशेष देखभाल नही होती वहाँ कुछ लोग तो बिल्कुल ही काम नही करते, केवल काम पर हाजिरी लगवाते हैं। अनेक दफ्तरो मे इस तरह के कामचोर कर्मचारियो के काम का बोझ अधिक कुशल कर्मचारियो को वहन करना पडता है ।

(ब) व्यक्तिगत विभिन्नताओं के महत्व का अभाव—भृति भुगतान की इस विधि मे कर्मचारियो की व्यक्तिगत विभिन्नताओं, कुशलता और योग्यता को कोई विशेष महत्व नही दिया जाता । बूढे और युवा व्यक्ति एक सा वेतन पाते हैं, इसी लिये अधिक कुशल कर्मचारी इस तरह के उद्योगो मे काम नही करना चाहते ।

उपरोक्त दोषों के बावजूद भृति भुगतान की यह विधि सबसे अधिक प्रचलित विधि है क्योंकि इससे अनेक लाभ हैं जिनमें मुख्य अग्रलिखित हैं—

(घ) वृद्धावस्था का सम्मान—इससे आयु बढने के साथ-साथ उत्पादन क्षमता कम होने पर भी वेतन कम नही होता बल्कि कही-कही तो आयु के साथ-साथ पदोन्नति से वेतन बढता ही जाता है। इससे वृद्ध व्यक्तियो का सम्मान बढता है और चू कि सभी लोग कभी न कभी वृद्ध होते ही है इसलिए वेतन की यह प्रणाली पसन्द की जाती है।

(ब) पक्षपात का अभाव—इससे मालिक लोग कर्मचारियो के प्रति व्यवहार मे पक्षपात नही दिखला सकते। वे किसी कर्मचारी का वेतन काट सकते हैं और किसी का बढा सकते हैं। इससे कर्मचारियों में आपस के सम्बन्ध भी अच्छे रहते हैं और अधिकारी उनमे फूट नही डलवा सकते। इसी कारण पारिश्रमिक की यह विधि औद्योगिक सघों द्वारा सबसे अधिक पसन्द की जाती है।

समय व्यय के अनुसार वेतन देने की प्रणाली के उपरोक्त गुण दोषो के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि इसे उत्पादन के अनुसार अर्थ लाभ की विधि के साथ चलाया जाना चाहिये। वेतन समय व्यय के अनुसार दिया जाये किन्तु अधिक और अच्छे काम के लिए बोनस दिया जाना चाहिये। अच्छा काम दिखाने पर पदोन्नति होने पर भी काम मे प्रेरणा बनी रहेगी। इस विधि से सबसे बडा लाभ यह होता है कि कर्मचारी का वेतन निश्चित् करने मे कठिनाई नही होती क्योकि समय को घडी से नापा जा सकता है। इससे कर्मचारियो को सुरक्षा अनुभव होती है क्योंकि वे जानते हैं कि वृद्धावस्था अथवा कमजोरी की दशा मे उनके वेतन पर असर नही आयेगा। इससे उन्हे आय की मात्रा का भी पता रहता है वे उसी के अनुसार अपना बजट बनाते है। इससे भविष्य स्पष्ट रहता है और प्रगति के मार्ग भी खुले रहते हैं।

(३) वरिष्टता वेतन विधि
(The Seniority Method of Pay)

अनेक उद्योगों मे, जिनमे अनुभव का विशेष महत्व होता है, कर्मचारी की वरिष्टता के साथ-साथ उसका वेतन बढता जाता है। भृत्ति भुगतान की इस विधि के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं—

(१) अनुभव को महत्व—इसमे कर्मचारियो मे अनुभव को विशेष महत्व दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि अनुभवी व्यक्ति अपने काम पर जमे रहते है और अनुभव बढ जाने पर नौकरी नही छोडते।

(२) सुरक्षा—इससे कर्मचारियो को नौकरी मे सुरक्षा का अनुभव होता है क्योंकि आयु बढने के साथ-साथ शक्ति घटने और जिम्मेदारिया बढने पर भी उन्हे परेशानी नही होती क्योकि वरिष्टता से वेतन भी बढता जाता है।

उपरोक्त लाभों के कारण पारिश्रमिक देने की यह विधि अधिकतर उद्योगो मे प्रचलित है। फिर भी इसमे कुछ दोष भी है जिनमे मुख्य अग्रलिखित हैं—

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के महत्व का अभाव—इसमे वेतन वृद्धि करने मे व्यक्तिगत विभिन्नताओ, योग्यताओं और कुशलताओ को कोई महत्व नही दिया जाता और केवल वरिष्टता को ही वेतन वृद्धि का एक मात्र आधार माना जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि एक ओर तो अधिक कुशल नौजवान अयोग्य वृद्धो के आधीन रहने से असन्तुष्ट रहते है और दूसरी ओर वे पूरी मेहनत नही करते क्योंकि वे जानते हैं कि वेतन तो आयु बढने से ही बढेगा। दूसरे, वैज्ञानिक दृष्टि से यह सही नही है कि आयु बढने के साथ-साथ अनुभव और कुशलता बढती हो, एक विशेष आयु के पश्चात् आयु बढने से अनुभव नही बढता और कुशलता कम होती है। अस्तु, वेतन निर्धारित करने की यह विधि एकांगी है। इसमे कर्मचारियो की कुशलता और योग्यता के अनुसार पदोन्नति या प्रोत्साहन देने की किसी अन्य विधि से भी सहायता ली जानी चाहिये।

(४) आवश्यकताओं के अनुसार वेतन

(Pay according to needs)

कुछ उद्योगो मे कर्मचारियों की आवश्यकताओ के अनुसार वेतन देने की विधि अपनायी गयी है। यह विधि न्यूनतम वेतन निर्धारित करने मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। कर्मचारी को इतना वेतन अवश्य दिया जाना चाहिए जिससे उसके और उसके परिवार की आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके। अब चूकि कुछ कर्मचारियों का परिवार अन्य से बडा होता है इसलिये उन्हे न्यूनतम जीवन माँगें रखने के लिये भी अधिक धन की आवश्यकता होती है। यदि कर्मचारी की मागें पूरी नही होती तो वह असतुष्ट रहेगा और चिन्तित रहेगा। दूसरी ओर यदि उसके परिवार की आवश्यकतायें पूरी नही होती तो उस हद तक समाज मे ऐसे लोग बढते हैं जिनका समुचित विकास नही हो रहा है। यही कारण है कि अनेक आधुनिक राज्यो मे कर्मचारियो की वृद्धावस्था की सुरक्षा का उत्तरदायित्व राज्य पर माना जाता है और राज्य उनके बच्चो के लिये मुफ्त अनिवार्य शिक्षा तथा मुफ्त चिकित्सा की व्यवस्था करता है। अनेक स्थानो पर परिवार बडा होने पर अतिरिक्त वेतन दिया जाता है।

किन्तु यदि उद्योग मे वेतन परिवार के आकार, बच्चो की सख्या, विवाहित स्थिति आदि से निश्चित किया जायेगा तो इससे अन्याय होने की सम्भावना है क्योकि अविवाहित किन्तु अधिक कुशल कर्मचारियो को कम वेतन मिलेगा। अस्तु, आवश्यकताओ के अनुसार वेतन घटाया-बढाया नही जाना चाहिए बल्कि जिन कर्मचारियो की आवश्यकतायें वेतन से पूरी नही होती उनकी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए कोई अन्य प्रबन्ध किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिये बच्चो की शिक्षा के लिए अतिरिक्त वेतन न देकर मुफ्त शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है। इसी तरह चिकित्सा व्यवस्था मुफ्त की जा सकती है। परिवार बडा होने पर राज्य की ओर से आय कर मे कटौती की जा सकती है। इन सब उपायो से कर्म-

चारी की आवश्यकतायें भी पूर्ण होगी और अन्य कर्मचारियों को कोई आक्षेप भी नही होगा।

भृत्ति भुगतान की विभिन्न विधियो के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सभी परिस्थितियों मे कोई एक विधि काम नही दे सकती। प्रत्येक विधि के अपने गुण दोष है और समुचित विधि निकालने के लिए इन सभी विधियों के लाभों को लेकर चलना पड़ेगा। जहाँ वृद्धावस्था के लिए सुरक्षा होना जरूरी है और कर्मचारी के बढ़ते हुए परिवार की आवश्यकतायें भी पूरी होनी चाहियें वहा व्यक्तिगत कुशलता और योग्यताओ को भी महत्व दिया जाना चाहिए। प्रत्येक स्थिति मे पारिश्रमिक विधि ऐसी हो कि कर्मचारियो को अधिक से अधिक परिश्रम करने की प्रेरणा मिले, उनमे आपस में वैमनस्य न बढे और किसी को यह अनुभव न हो कि उसके साथ अन्याय हुआ है। प्रेरणा के लिए वृद्धावस्था की सुरक्षा और आर्थिक सुरक्षा आवश्यक है। चीजो के दाम बढने के साथ-साथ वेतन की मात्रा भी बढनी चाहिए।

भृति भुगतान की भिन्न-भिन्न विधियो मे उत्पादन के अनुसार वेतन विधि व्यक्तिगत विभिन्नताओ पर विशेष रूप से ध्यान देती है। इससे कर्मचारी अधिक से अधिक उत्पादन करता है। अस्तु, यदि उत्पादन बढाने की बात है तो वेतन देने की यह विधि सबसे उत्तम है किन्तु यदि दूसरी ओर उत्पादन बढाने की बात नही है तो साधारणतया व्यय किये समय के अनुसार वेतन दिया जाता है। यदि कर्मचारियो मे उत्पादन के अनुसार वेतन देने से बेचैनी उत्पन्न होती है तो कम वेतन प्राप्त करने वाले लोगो को किसी अन्य रूप मे सहायता दी जा सकती है। कही-कही पर अच्छा उत्पादन करने वालो को अतिरिक्त वेतन न देकर जल्दी छुट्टी दे दी जाती है। आधुनिक राज्यो मे जीवन बीमा तथा पेंशन आदि की व्यवस्था के द्वारा वृद्धावस्था मे कर्मचारियो की सुरक्षा का प्रबन्ध किया जाता है। इसी प्रकार आय कर मे कटौती के द्वारा कर्मचारी की आवश्यकताओ का ध्यान रखा जाता है। भृत्ति भुगतान की विधि निश्चित करने मे कुछ तकनीकी बातो को ध्यान मे रखना आवश्यक है। उदाहरण के लिये किस कार्य मे कितने उत्पादन के लिये कितना वेतन दिया जाना चाहिये यह एक तुलनात्मक विषय है और इसके लिए कार्य के विश्लेषण करने की आवश्यकता पडती है। अनुत्पादक कार्यो मे जैसे—इन्जीनियर के कार्य मे यह कठिनाई और भी बढ जाती है। अन्त मे, कर्मचारी का सन्तोष भी सही वेतन विधि की एक कसौटी है। इसलिये मालिको और कर्मचारियो दोनो को परस्पर वाद-विवाद करके वेतन विधि निश्चित करनी चाहिए। इस विषय मे औद्योगिक सघो की राय लेना भी बड़ा जरूरी है। देशकाल के अनुसार वेतन देने की विधि मे परिवर्तन किया जाना चाहिये। सक्षेप मे, किसी भी विधि को सर्वोत्तम नही कहा जा सकता, भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे भिन्न-भिन्न विधियाँ उपयोगी सिद्ध होती है।

प्रेरणा देने की अवित्तीय विधियाँ

उपरोक्त वित्तीय विधियो के अतिरिक्त उद्योग मे प्रेरणा देने के लिए कुछ अवित्तीय विधियों का भी प्रयोग किया जाता है। इनमें, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, ऐसी विधियाँ शामिल हैं जिनमे कर्मचारी को पैसा नही दिया जाता। चूंकि उद्योग में काम कोई खेल नही है और कभी न कभी उसमे उक्ताहट आ सकती है इसलिए ऐसे काम मे लगाये रखने के लिए प्रेरणा देने की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु इससे यह नही समझा जाना चाहिये कि यह प्रेरणा केवल पैसे से ही मिलती है। यदि कार्य को सुखप्रद बनाया जाये तो बहुत से लोग उसमे बराबर लगे रह सकते हैं। अस्तु, कार्य मे प्रेरणा देने के लिये अनेक विधियाँ इस्तेमाल की जाती हैं जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं —

(१) **कार्य को सुखदायक बनाना (Making Work Pleasant)** खेल मे मनुष्य क्यो लगे रहते हैं और काम से क्यों ऊब जाते हैं, इसका कारण खेल का सुखदायकहोना है। सुखदायक का अर्थ आरामदायक नही है। इससे तात्पर्य स्वाभाविक प्रवृत्तियों को निकालने का अवसर मिलना है। यह काम में भी सम्भव है। अस्तु, यदि उद्योग मे काम को इस प्रकार का बनाया जाए कि उससे कर्मचारियो की स्वाभाविक प्रवृत्तियो को अधिक से अधिक अभिव्यक्ति मिले तो वह काम भी उनके लिए सुखदायक हो जायेगा।

(२) **प्रशसा का प्रयोग (Use of Praise)**—बालको से काम कराने के लिए प्रशसा से काम लिया जाता है किन्तु यह प्रवृत्ति केवल बालको मे नही होती। मनुष्य स्वभावतया प्रशसा पाने वाले कामो को करना चाहता है और प्रशसा से उस को और भी अधिक मनोयोग से काम करने की प्रेरणा मिलती है। कुछ मालिक लोग कर्मचारी के अच्छे काम की कोई प्रशसा नही करते और बुरे काम की आलोचना अवश्य करते हैं, यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त नही है। अनेक अध्ययनो से यह मालूम हुआ है कि आलोचना की तुलना मे प्रशसा अधिक अच्छा उत्प्रेरक है। निजी तौर पर या सार्वजनिक रूप से आलोचना करना, बुरा भला कहना, खरी खोटी सुनाना आदि कुछ न कुछ परिणाम जरूर दिखलाते हैं। किन्तु सार्वजनिक रूप से प्रशसा करने का सबसे अच्छा असर पड़ता है। इसके बाद केवल निजी रूप से आलोचना करने का ही कुछ परिणाम दिखलाई पड़ता है। आलोचना का बुरा प्रभाव इसलिए होता है क्योंकि उससे कर्मचारी के अहकार को चोट लगती है। खरी खोटी सुनाने से या बुरा भला कहने से भी यही हानि होती है। इसमे भी निजी तौर पर कहे जाने के मुकाबले मे सार्वजनिक रूप से कहने से कर्मचारी को अधिक अपमान अनुभव होता है। अस्तु, सार्वजनिक रूप से खरी खोटी सुनाना सबसे गलत तरीका है। सक्षेप मे, यदि कर्मचारी के अच्छे काम की प्रशसा की जाएगी तो उसे अधिक काम करने का उत्साह मिलेगा और सार्वजनिक रूप मे प्रशसा करने से अन्य कर्मचारियों को भी उसका अनुकरण करने की प्रेरणा मिलेगी।

(३) परिणामों का ज्ञान (Knowledge of Results) परिणामों के ज्ञान से तात्पर्य कर्मचारियो को बराबर यह पता चलते रहना है कि उन्होने कहा तक काम कर लिया है और कितना करना बाकी है अथवा उनके क्या करने से क्या परिणाम हो रहा है। रुचि और प्रेरणा दोनो ही परिणामो के ज्ञान से प्रभावित होते है। कोई भी व्यक्ति अधेरे मे खेलना पसन्द नही करता क्योकि उसे खेल के परिणाम पता नही चलते। परिणामो के प्रभाव का महत्व प्रयोगो से भी सिद्ध हो चुका है। एस० जे० मैकफर्सन (S. J Macpherson), वी० डीस (V Dees) और जी० सी० ग्रिण्डले (G. C Grindley) के प्रयोगो से यह मालूम हुआ है कि परिणामों के ज्ञान मे लगभग २५ प्रतिशत प्रगति दिखलाई पडती है और कर्मचारी की रुचि बढ जाती है।[2] डी० बी० लिन्सले (D B Lindsley) ने अपने अध्ययनो से यह दिखलाया है कि जब गल्तियो और प्रगति के बारे मे कोई रिपोर्ट नही मिलती तो पहले से प्राप्त कौशल मे कमी हो जाती है।[3] डब्लू० एफ० बुक (W. F Book) और एल० नोर्वले (L Norvelle)[4] के प्रयोगो मे विद्यार्थियो के दो समूहों को यथार्थता और गति के प्रयोग वाले मानसिक कार्य दिये गये। एक समूह को अधिक से अधिक प्रयास करने के लिए कहा गया और दूसरे समूह को कार्य के परिणाम बतलाते हुए परिणामो को बेहतर बनाने के लिए कहा गया। इन दोनो समूहो पर कुल मिला कर १२० परीक्षण किये गये। अन्त मे यह ज्ञात हुआ कि परिणामो के ज्ञान वाला समूह दूसरे समूह की तुलना मे १६.५ प्रतिशत अधिक अच्छा काम कर सका। जी० एफ० आर्प्स (G. F Arps) के एक प्रयोग मे विद्यार्थियो को उगलियो से एक वजन उठाना था और वे तब तक ऐसा करते रहे जब तक कि उगली थक नही गयी। ४८ घण्टो के मध्यान्तर से इस प्रकार के ११ परीक्षण किये गये। जब इन लोगो को अपने प्रयत्नो के परिणाम पता चलते रहे तो वे उस स्थिति से अधिक अच्छा काम कर सके जिसमे उन्हे परिणामो का कुछ भी पता नही था। इस प्रयोग मे आत्म प्रतियोगिता दिखलाई पडती है क्योकि प्रत्येक विद्यार्थी अपने पिछले प्राप्ताक से अधिक प्राप्ताक प्राप्त करना चाहता था। कार्य के परिणाम पता लगने से जहां एक ओर कार्य विधि को बेहतर बनाने मे सहायता मिलती है वहां अधिक परिश्रम करने की भी प्रेरणा मिलती है। सीखने मे कार्य के परिणामो के ज्ञान का महत्व सिद्ध हो चुका है। एन० आर० एफ० मायर (N. R F Maier)[6] ने प्रेरणा पर

2. S J. Macpherson, V. Dees and G C Grindley, the effect of Knowledge of Results on learning and Performance, *Quart Jour. Exp Psychol.*, (1948), pp 68-78

3. D B. Lindsley, Radar operator Training: *Results of Study of SCR* 270-271, Operators at Drew Field.

4 W. F Book and L. Norvelle, An Experimental Study of Learning Incentives. *Red Sem*, (1922), 29 pp 305-362

5. G. F Arps, Work with knowledge of Results versus Work without knowledge of Results, *Psychol. Monog.* (1920) 28 pp 1-41.

6. N. R. F. Maier, *Principles of Human Relations*, pp. 225-228.

कार्य के परिणामो के ज्ञान के प्रभाव का एक उदाहरण दिया है। एक टेलीफोन उद्योग मे टेलीफोन ठीक करने वाले मिस्त्रियो ने यह आग्रह किया कि उद्योग मे जो काम वे ठीक कर चुके है उस काम पर शिकायत आने पर फिर से उन्ही को भेजा जाना चाहिये क्योकि इससे उन्हे यह पता चलेगा कि उनका पिछला काम कहाँ तक ठीक हुआ है और वे अपने काम मे सुधार कर सकेंगे। उन्होने यह तर्क किया कि प्रत्येक डाक्टर यह जानना चाहता है कि उसकी दवा से मरीज अच्छा हुआ है या नही, इसी तरह जो आदमी पिछली बार टेलीफोन ठीक करके आया है उसी को दोबारा भेजा जाना चाहिए। इसके पहले कम्पनी कभी भी ऐसा नही करती थी। मिस्त्रियो का यह कहना मान लिया गया और इसका प्रमुख परिणाम यह हुआ कि शिकायतो के दोहराये जाने के मामले सत्तरह प्रतिशत से गिरकर केवल चार प्रतिशत रह गये।

(४) प्रतियोगिता (Competition)—प्रेरणा देने का एक अन्य अवित्तीय उपाय प्रतियोगिता है। यह प्रतियोगिता विभिन्न व्यक्तियों और विभिन्न समूहो मे हो सकती है। कभी-कभी कोई व्यक्ति स्वय अपने पिछले प्राप्तांक से आगे बढने का भी प्रयास कर सकता है। यह आत्म-प्रतियोगिता का उदाहरण है। प्रतियोगिता मे जीतने से यदि कोई आर्थिक लाभ नही होता तो उससे केवल आत्म सतोष प्राप्त होता है। अस्तु, प्रतियोगिता बढाने के लिये उससे कोई न कोई लाभ अवश्य होना चाहिये जैसे सामाजिक सम्मान बढना, दूसरो की प्रशसा प्राप्त करना, अन्य लोगों से आगे दिखलाई पडना इत्यादि। किन्तु कर्मचारियो मे प्रतियोगिता उत्पन्न करने मे प्रतियोगिता में हारने वालो का भी ध्यान रक्खा जाना चाहिये क्योकि हारने वाले लोगो को हताशा होती है और कभी-कभी उन्हे अपमान भी झेलना पडता है। अस्तु, प्रतियोगिता ऐसी नही होनी चाहिये कि उससे सहयोग समाप्त हो जाय और नीतिमत्ता को हानि पहुचे। लेखो मे प्रतियोगिता साधारणतया स्वस्थ प्रतियोगिता होती है क्योकि उनमे हार जीत मे मानापमान का प्रश्न ले आना अनुचित समझा जाता है। यदि यही बात उद्योगो मे लाई जा सके तो प्रतियोगिता का लाभ उठाया जा सकता है। कभी-कभी प्रतियोगिता के अवसर बढाने के लिए प्रतियोगिता के क्षेत्र बाँट दिये जाते हैं। प्रतियोगिता मे पुरस्कार का बडा महत्व है और यह पुरस्कार स्पष्ट होना चाहिये। विक्रय बढाने मे बहुधा अच्छे विक्रेताओ को इनाम दिये जाते है और अच्छे विक्रेता के चुनाव के लिये प्रतियोगितायें रक्खी जाती हैं। कही-कही पर दुर्घटना कम करने मे भी प्रतियोगिता का प्रयोग किया गया है। इसमे यह प्रतियोगिता रक्खी जाती है कि विभिन्न समूहो मे किसमे कम दुर्घटनायें होती हैं। इससे लोग एक दूसरे को दुर्घटनायें करने से रोकते भी है और स्वय भी दुर्घटना नही करते किन्तु यदि इसका परिणाम यह होता है कि दुर्घटनायें छिपा ली जाती हैं या चोट खाने के बावजूद भी कर्मचारी काम करता जाता है तो यह प्रतियोगिता का अनुचित परिणाम है।

प्रेरणा देने की प्रतियोगिता विधि के विरुद्ध कुछ औद्योगिक सघो ने आक्षेप

उपस्थित किये है। उनका कहना है कि यह मालिकों द्वारा शोषण की एक तरकीब है और इससे मालिक कर्मचारियों मे "बाटो और राज्य करो" की विधि अपनाते हैं। अस्तु, प्रतियोगिता बढाने मे यह ध्यान रखना चाहिये कि कर्मचारी उसके लिए सहमत हो और उसके सही उद्देश्य को समझ लें। प्रतियोगिता सदैव कृत्रिम रूप से उत्पन्न नही की जाती। कर्मचारियों मे स्वभावतया प्रतियोगिता होने लगती है भले ही यह प्रतियोगिता अधिक और अच्छा काम करने की हो या काम न करने की हो। इसमे समूह के निर्णय का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। हाजिरी, ठीक समय पर आना, कार्य का गुण और मात्रा, सुरक्षा तथा बर्बादी कम करना इत्यादि ऐसी बातें हैं जिनमे प्रतियोगिता उत्पन्न करके परिणाम मापे जा सकते है किन्तु प्रतियोगिता कभी भी इतनी नही बढानी चाहिये कि वह बोझ बन जाये क्योंकि तब वह सुखदायक न होकर हताशा बढाने वाली होगी।

अनेक अध्ययनो मे यह ज्ञात हुआ है कि समूहो में प्रतियोगिता की तुलना मे व्यक्तियो मे प्रतियोगिता अधिक प्रभावशाली होती है क्योंकि सामूहिक उत्तरदायित्व होने पर व्यक्ति के अह को अधिक सन्तोष नही मिलता। वी० एम० सिम्स (V. M. Sims)[7] के प्रयोगो से यह बात सिद्ध हुई है। इनके एक प्रयोग मे कालिज के विद्यार्थियो को पढने का परीक्षण दिया गया। परीक्षण लेने के बाद ४५ विद्यार्थियो को ऐसे तीन समूहो मे बाँट दिया गया जिनकी योग्यता बराबर थी। अब इनका फिर से परीक्षण लिया गया। एक समूह मे प्रतियोगिता नही दी गई और इसने पहले परीक्षण की तुलना मे दूसरे परीक्षण मे ८.७ प्रतिशत प्रगति दिखलाई। यह अभ्यास का प्रभाव था। दूसरे समूह को दो बराबर भागो मे बाँटकर उनमे प्रतियोगिता कराई गयी जिसका परिणाम यह हुआ कि १४.५ प्रतिशत प्रगति हुई। कहना न होगा कि इसमे ८.७ प्रतिशत प्रगति तो केवल अभ्यास का परिणाम थी और बाकी ५.८ प्रतिशत प्रगति प्रतियोगिता के कारण थी। तीसरे समूह मे सदस्यो को व्यक्तिगत रूप से समूह के अन्य व्यक्तियो से अच्छा रिकार्ड बतलाने के लिये प्रेरित किया गया। इस समूह मे ३४.७ प्रतिशत प्रगति दिखलाई पडी जिसमे २८ प्रतिशत केवल प्रतियोगिता के कारण थी। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि सामूहिक प्रतियोगिता की तुलना मे व्यक्तिगत प्रतियोगिता से अधिक लाभ होता है किन्तु फिर यदि समूहो मे टीम स्प्रिट काफी बढाई जा सके तो शायद सामूहिक प्रतियोगिता के परिणाम भी व्यक्तिगत प्रतियोगिता से किसी प्रकार पीछे न रहे क्योंकि टीम स्प्रिट से सामाजिक दबाव बढता है और प्रत्येक सदस्य अपने को अधिक जिम्मेदार महसूस करता है।

(५) प्रगति का अनुभव (Experience of Progress)—तरह-तरह के खेलों मे बराबर प्रगति का पता लगाया जाता रहता है। उदाहरण के लिये फुटबाल के खेल मे कौन सी टीम कितने गोल करती है इसमे उसकी प्रगति मालूम पडती है।

---

7 V M Sims The Relative Influence of two Types of Motivation on Improvement *Jour. Educ. Psychol.* (1928) 19 pp 480-484

दूसरी ओर ताश के खेल मे प्रत्येक खिलाडी के प्राप्तांक उसकी प्रगति दिखलाते हैं। किसी किसी खेल में अनेक बातो से प्रगति मापी जाती है। उद्योग की परिस्थितियो मे भी यदि कर्मचारियों को प्रगति का अनुभव होता रहे तो इससे उनकी प्रेरणा बढती है और वे अधिक अच्छा काम करते हैं किन्तु सबसे बडी कठिनाई यह है कि प्रगति को कैसे मापा जाय। अलग-अलग उद्योगो मे यह काम अलग-अलग तरीके से किया जाता है, कही पर उत्पादन की मात्रा, कही पर गुण, कही पर ग्राहकों का सन्तोष इत्यादि से कर्मचारी के काम का मूल्यांकन किया जाता है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, प्रत्येक व्यक्ति और समूह यह पता लगाना चाहता है कि उसने कहाँ तक प्रगति की है। वास्तव मे प्रगति स्वय काम का पुरस्कार है। उससे यह मालूम पडता है कि कर्मचारी की कुशलता बढ रही है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति प्रगति का अनुभव करना चाहता है। किन्तु ज्यो ज्यो काम में कुशलता बढती जाती है त्यों त्यों प्रगति स्पष्ट नही दिखलाई पडती। उदाहरण के लिये सावधानी अत्यधिक बढा देने पर भी दुर्घटनाओ की सख्या मे एक सीमा तक ही कमी की जा सकती है। इसी तरह उत्पादन की मात्रा और किस्म एक सीमा से अधिक नही बढाई जा सकती। वाइटल्स (Viteles) ने प्रगति के अनुभव के सम्बन्ध में प्रयोगो का वर्णन करते हुए कहा है कि परिणामो के ज्ञान और प्रगति के अनुभवो से प्रेरणा बढती है और इसलिये समय-समय पर कर्मचारियो को उनकी प्रगति के विषय मे बतलाते रहना चाहिये इसका एक अच्छा उपाय साक्षात्कार है जिसमें कर्मचारियो की साप्ताहिक या पाक्षिक रिपोर्ट का विवेचन किया जा सकता है। कभी-कभी रोजाना के काम की सीमा निश्चित करने से भी कर्मचारी को अपनी प्रगति का पता चलता है क्योकि यदि उसने सप्ताह का काम आज ही पूरा कर लिया है तो उसे यह सन्तोष होता है कि वह लक्ष्य की ओर बराबर आगे बढ रहा है।

(६) सामाजिक प्रेरणायें (Social Motives)—अवित्तीय उत्प्रेरकों के उपरोक्त प्रकारो के अतिरिक्त कुछ सामाजिक कारक ऐसे हैं जो प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। इनमें सामाजिक सुगमता (Social Facilitation) बढाने वाले कारक मुख्य हैं। सामाजिक सुगमता से तात्पर्य परस्पर सहयोग और समूह की भावना बढना है। इसमें टीमस्प्रिट का विशेष महत्व है। उद्योग मे कर्मचारी को यह अनुभव होना चाहिए कि वह समूह के एक सदस्य के रूप में सामूहिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इसमे सामूहिक निर्णय का भी विशेष महत्व होता है। जिन प्रेरणाओ से प्रगति मे बाधा पडती है उनको बराबर दूर किया जाना चाहिये जैसे परस्पर वैर भाव, सघर्ष, अस्वस्थ प्रतियोगिता इत्यादि। प्रेरणा प्राप्त करने के लिये विशिष्ट और वांछनीय लक्ष्य स्पष्ट कर दिया जाना चाहिये और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समूह मत निर्माण किया जाना चाहिये। एक बार मत लक्ष्य के पक्ष में बन जाने पर फिर काम आसान हो जाता है क्योंकि कोई भी व्यक्ति पीछे रहकर समूह में अपनी हसी नही कराना चाहता और कुछ लोग दूसरो

से अधिक काम करके समूह मे ऊचा और नेतृत्व का स्थान प्राप्त करना चाहते है। कर्मचारियो को कार्य से सम्बन्धित बातो के विवेचन मे स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। ऐसा करने से उनमे उत्तरदायित्व की भावना बढती है और उन्हे आत्म सन्तोष प्राप्त होता है। इसके लिए ऐसी समितिया बनाई जा सकती है जिनकी बैठको मे कार्य बढाने की विधियो के विषय मे वाद विवाद हो सके और उसके नये नये तरीके निकाले जा सकें।

(७) कार्य में रुचि बढ़ाना (Increasing Interest in work)—रुचि बढने से प्रेरणा बढती है। अस्तु, प्रेरणा बढाने के लिए कार्य मे रुचि बढाने का प्रयास किया जाना चाहिये। खेल मे मनुष्य स्वभावतया रुचि लेते हैं क्योकि वे उसे स्वय चुनते है और वह उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियो को अभिव्यक्त करता है। यदि कार्य भी ऐसा ही हो कि वह कर्मचारी ने स्वय चुना हो और उसमे उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियो और योग्यताओ की अभिव्यक्ति का अवसर हो तो वह उसमे रुचि लेगा। कभी-कभी कार्य का चुनाव करने में कार्य की स्थिति, विभिन्न कार्यो मे वेतन दर, कर्मचारी की शैक्षिक योग्यता इत्यादि के कारण उसे मनचाहा कार्य नही मिल पाता। इसलिए उसमे कार्य मे प्रेरणा उत्पन्न नही हो पाती।

कार्य में रुचि उत्पन्न करने के लिये कर्मचारी को कार्य का महत्व समझाया जाना चाहिये। यदि कर्मचारी यह अनुभव करेगा कि वह कम्पनी मे या कारखाने मे एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है तो वह अपने काम की ओर अधिक ध्यान देगा। जैसा कि एफ० आर० विकर्ट (F R Wickert)[8] ने दिखलाया है, यदि कर्मचारी यह नही जानता कि वह क्यो कोई काम कर रहा है अथवा पूर्ण काम मे उसके काम का क्या महत्व है तो उसकी प्रेरणा बहुत कम हो जाती है। अस्तु, कर्मचारी को कम्पनी मे विभिन्न कामो के विषय मे बतलाकर यह बतलाना चाहिये कि कम्पनी की सफलता मे उसका कहाँ तक हाथ है। इसके लिए फिल्मो और सभाओ की सहायता ली जा सकती है। इससे कर्मचारी मे आत्म सम्मान की भावना बढती है। आपद्काल मे प्रेरणा और भी बढ जाती है क्योकि उसमे कर्मचारी संकट से निकलने मे अपना महत्व अनुभव करने लगता है। देखा गया है कि देश पर आपत्ति आने के समय कर्मचारियों मे काम करने की प्रेरणा बढ जाती है।

काम मे रुचि बढाने का एक तरीका उकताहट (Monotony) कम करना है। इसके लिये वे सब मनोवैज्ञानिक उपाय अपनाये जाने चाहिये जिनसे काम मे ऊब और उकताहट दूर होती है। उकताहट स्वय निम्न प्रेरणा का लक्षण है, इसलिये उसे दूर करने से प्रेरणा बढती है। कार्य पूर्ति के अनुभव और काम मे विविधता प्रदान करने से उकताहट दूर होती है।

---

8. F. R. Wickert, Turnover and Employee's Feelings of Ego Involvement in the Day to Day operation of a Company, *Person Psychol*, (1951), 4, pp 1-14

(८) **औद्योगिक संघों की मांगों पर विचार** (Consideration of the demands of Industrial unions)—आजकल किसी भी उद्योग में औद्योगिक संघों की अवहेलना करके काम नहीं किया जा सकता। औद्योगिक संघ कर्मचारियों की मांगों को उपस्थित करते हैं। इन मांगों को ध्यान में रखते हुए प्रेरणा बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिये। यह ठीक है कि अनेक बार औद्योगिक संघों की मांगें ऐसी होती हैं जो कम्पनी के हित के विरुद्ध होती हैं क्योंकि राजनैतिक दलों के हस्तक्षेप के कारण ये वर्गवाद फैलाते हैं। फिर भी औद्योगिक संघ मजदूरों के असन्तोष के प्रतिनिधि हैं और उनकी मांगों पर विचार किया जाना चाहिये। यदि उन्हें संतुष्ट किया जा सके तो कर्मचारियों में प्रेरणा स्वभावतया बढ़ जाती है।

(९) **कर्मचारियों की मांगों का अध्ययन** (Study of Worker's needs)—अन्त में प्रेरणा बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि कर्मचारियों की मांगों का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाये। इसके साथ ही यह पता लगाया जाना चाहिये कि यदि उसे अनेक चीजों में चुनाव का अवसर दिया जाये तो वह उन्हें किस क्रम से चुनेगा। इस प्रकार के अध्ययनों से यह पता चलता है कि कौन सी बात उत्पन्न करने से प्रेरणा अधिक बढ़ेगी। उदाहरण के लिये यदि कर्मचारी सुरक्षा को सबसे अधिक महत्व देता है तो नौकरी की सुरक्षा बढ़ने से उसकी प्रेरणा बढ़ती है। इसी प्रकार यदि कर्मचारी सामाजिक सम्मान को सबसे अधिक महत्व देता है तो उद्योग में सामाजिक सम्मान बढ़ने से उसकी प्रेरणा बढ़ेगी। कुछ उद्योगों में वेतन अथवा बोनस को मांगों की सूची में सबसे ऊपर रक्खा जाता है ऐसी स्थिति में इनको बढ़ाने का विचार किया जाना चाहिये। अस्तु, आजकल अनेक मनोवैज्ञानिकों ने मांगों का विशेष अध्ययन किया है।

प्रेरणा बढ़ाने के वित्तीय और अवित्तीय उपायों के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि उद्योग में इन दोनों ही प्रकार के उपायों का प्रयोग किया जाना चाहिये। इसमें मालिक, कर्मचारी और सरकार तथा औद्योगिक संघ सभी का सहयोग आवश्यक है।

सारांश

प्रेरणा— प्रेरणा व्यक्ति की एक दशा अथवा विन्यास है जो कि उसे कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये कुछ व्यवहार करने को प्रेरित करती है। उद्योग में प्रेरणा का बड़ा महत्व है। प्रेरणा का आकांक्षा स्तर और बाहरी परिस्थितियों से सम्बन्ध होता है।

उत्प्रेरक—उत्प्रेरक वे लक्ष्य हैं जो किसी आवश्यकता को सन्तुष्ट करते हैं। उत्प्रेरक विधायक, निषेधात्मक अथवा स्थानापन्न हो सकते हैं। कभी कभी विभिन्न

उत्प्रेरकों में संघर्ष भी होता है। निषेधात्मक उत्प्रेरक से मुख्य हानियां हैं—१. हताशा और विरोधी प्रवृत्ति २. धोखा धड़ी बढ़ना ३. निषेधात्मक सुझाव ४. विध्वसक प्रशिक्षण ५. प्रतिकूल अभिवृत्ति ६. भय की उत्पत्ति। औद्योगिक परिस्थितियों में दो प्रकार के उत्प्रेरक काम करते हैं—वित्तीय उत्प्रेरक और अवित्तीय उत्प्रेरक।

भृत्ति भुगतान की विधियां—१. उत्पादन के अनुसार वेतन २. समय व्यय के अनुसार वेतन ३. वरिष्ठता वेतन विधि ४. आवश्यकताओं के अनुसार वेतन।

प्रेरणा देने की अवित्तीय विधियां—१. कार्य को सुखदायक बनाना २. प्रशंसा का प्रयोग ३. परिणामों का ज्ञान ४. प्रतियोगिता ५. प्रगति का अनुभव ६. सामाजिक प्रेरणायें ७. कार्य में रूचि बढ़ाना ८. औद्योगिक संघों की मांगों पर विचार ९. कर्मचारियों की मांगो का अध्ययन।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. अभिप्रेरणा की परिभाषा दीजिये और उद्योग में कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने की अवित्तीय विधियों की संक्षेप में चर्चा कीजिए।

Define motivation and discuss briefly the non-financial methods of motivating workers in industry. (Vikram 1968)

प्रश्न २. व्यवसाय के क्षेत्र में वित्तीय तथा अवित्तीय प्रेरणाओं के सापेक्ष महत्त्व का विवेचन कीजिये तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन कीजिये।

Discuss the relative importance of financial and non-financial incentives in industry, giving appropriate examples. (Agra 1967)

प्रश्न ३. उद्योग में आर्थिक तथा अन्य प्रेरणाओं के सापेक्षिक महत्व की समुचित उदाहरण देते हुए, विवेचना कीजिये।

Discuss the relative importance of financial and non-financial motives in industry, giving suitable illustrations.

(Agra 1966, 1965)

प्रश्न ४. उद्योग में साधारणतया किस प्रकार के उत्प्रेरक अपेक्षा किये जाते हैं? उनके लाभों और सीमाओं का विवेचन कीजिए।

What type of incentives are generally used in industry? Discuss their merits and limitations. (Karnatak 1968)

प्रश्न ५. कर्मचारियों को अच्छे काम के लिये प्रेरित करने के लिये क्या साधन अपनाये जा सकते हैं? उनकी विवेचना कीजिये।

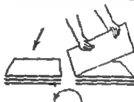
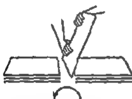
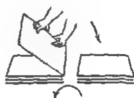
Discuss the measures that can be adopted to motivate the workers for better work. (Agra 1964)

प्रश्न ६. पारिश्रमिक विधियों के गुण दोषों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।

Critically examine the merits and demerits of different wage payment plans. (Vikram 1967)

प्रश्न ७. टिप्पणी लिखिये—भृत्ति भुगतान की विधियां तथा मनोवैज्ञानिक परिणाम।

Write short note on—Methods of payment of wages and their psychological effects. (Agra 1967)

स्वाभाविक किन्तु ग़लत तरीक़ा	आर्जित किन्तु सही तरीक़ा
	
	
	
	
	

टिन प्लेटों का निरीक्षण करने की दो विधियां—अर्द्ध चन्द्राकार वाण प्लेटों को लौटने का तरीका और सीधे वाण नेत्रों के निर्देशन की दिशा दिखलाते हैं (जोसेफ टिफिन, इन्डस्ट्रियल साइकालाजी, प्रन्टिस हाल, न्यूयार्क १९५२, पर आधारित)।



खटाऊ साड़ियों का एक प्रसिद्ध विज्ञापन
(निर्माताओं के सौजन्य से)

२१

विज्ञापन
(Advertisement)

रेडियो सुनने वाले किसी भी व्यक्ति से पूछिये कि सिर दर्द की दवा क्या है, तो वह ऐस्प्रो का नाम लेगा चाहे वह स्वय उसका इस्तेमाल न भी करता हो क्योकि वह नाम उसने इतनी बार सुना है कि वह अनायास ही उसके मस्तिष्क मे आ जाता है। भारत मे डालडा इस्तेमाल करने वाले अधिक नही हैं, परन्तु कितने लोग ऐसे है जो डालडा के नाम से अपरिचित हो ? आजकल पढा लिखा आदमी जब बाजार मे कपडा लेने जाता है तो उस पर 'सैनफोराइज्ड' का निशान देख लेता है। यह उसको कैसे मालूम हुआ कि इस निशान वाले कपडे धुलने के बाद सिकुडते नही ? उपरोक्त बातो के मूल मे मुख्य तत्व है विज्ञापन। विज्ञापन लोगों को वस्तु से परिचित कराता है। विज्ञापन जनता को विशेष वस्तु की विशेषतायें बतलाता है। विज्ञापन वस्तु की ओर जनता का ध्यान आकर्षित कराता है। हस्बैंड के शब्दों मे, "विज्ञापन की परिभाषा प्रचार के रूप में की जा सकती है जो कुछ चीजो अथवा सेवाओं के अस्तित्व और गुणों की ओर आकर्षित करता है।"[1]

विज्ञापन क्या है ?

आज के आर्थिक क्षेत्र मे भारी प्रतियोगिता है। वस्तु को बना लेने मात्र से उसको बेचने की समस्या हल नही हो जाती। उदाहरण के लिये किसी अच्छे साबुन की ही बात लीजिए। मान लीजिए कि किसी फर्म ने कोई बहुत अच्छा साबुन बनाया। अब जब तक लोगो को यह पता न चले कि अमुक नाम का साबुन भी बाजार मे उपलब्ध है तब तक वे उसको कैसे खरीदें। यदि लोगो को यह मालूम हो भी जाये कि अमुक नाम का साबुन बाजार मे है तो भी उसके होने मात्र से उसकी बिक्री शुरू नही हो सकती। लोगो को उसके गुण मालूम होने चाहियें। परन्तु समस्या यही पर हल नही हो जाती। साबुन के गुण यदि खरीदार को बतलाये भी जाये तो क्या जरूरी

विज्ञापन का महत्व

1. "Advertisement may be defined as publicity which calls attention to the existence and merits of certain goods and services" —Husband, R W. *Applied Psychology*, (Revised Edition), Harper & Bros New York, (1949), p. 467.

है कि वह उस पर यकीन करले। फिर, मान लीजिये कि उसने यकीन कर भी लिया तो जब तक उसमें उस साबुन को खरीदने की इच्छा उत्पन्न नहीं हो जाती तब तक वह उसे नहीं खरीदेगा। उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि विज्ञापन का कितना महत्व है। विज्ञापन आज एक विज्ञान और उससे अधिक एक कला बन गया है। प्रगतिशील व्यापारिक देशों में विज्ञापन के क्षेत्र में बराबर नई-नई खोजें होती रहती हैं। विज्ञापन करने के बाद उनके परिणामों का बराबर पता लगाया जाता है और इस प्रकार यह जानने की कोशिश की जाती है कि किस प्रकार के विज्ञापन से खरीदने वालों पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है। इस अनुसन्धान से बड़ी मनोरंजक बातें मालूम हुई हैं। उदाहरण के लिये यह पता लगाया गया है कि गतिहीन वस्तु से गतिशील वस्तु द्वारा, चीजों की अपेक्षा जीवों द्वारा और पशुओं की अपेक्षा मनुष्यों द्वारा दिए गए विज्ञापन अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं। वास्तव में किसी भी वस्तु को बेचने में सफलता बहुत कुछ उसके विज्ञापन पर निर्भर है।

विज्ञापन के उपरोक्त उदाहरण से उसके निम्नलिखित उद्देश्य अथवा कार्य स्पष्ट होते हैं.—

विज्ञापन के उद्देश्य

(१) ध्यान आकर्षित करना—विज्ञापन का सबसे पहला उद्देश्य विशिष्ट वस्तु अथवा सेवा की ओर व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करना है। शहरों में बड़े-बड़े रेलवे जक्शनों पर तथा व्यस्त चौराहों पर आपने रात में बड़े-बड़े अक्षरों में विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं के नामों का विज्ञापन देखा होगा। कहीं लाल बल्बों से लिखा हुआ है "ऊषा" (USHA), कहीं गतिशील बिजली के बल्बों से लिखा हुआ है "टाटा" (TATA)। इसी प्रकार कुछ बड़े-बड़े साइनबोर्डों पर आपको केवल नाम भर दिखाई पड़ेंगे। ये विज्ञापन वस्तुओं की विशेषताओं का वर्णन नहीं करते, केवल देखने वालों को उनसे परिचित कराते हैं। विज्ञापन में बिजली के बल्ब क्यों इस्तेमाल किये जाते हैं ? जिससे कि देखने वालों का ध्यान आसानी से खिंच आये। बड़े-बड़े 'साइनबोर्ड' क्यों इस्तेमाल किए जाते हैं ? जिससे कि वे शीघ्र ध्यान आकर्षित करलें। चित्रों, रंगों, शीर्षकों, आकार, प्रकाश आदि विभिन्न उपकरणों के द्वारा विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य लोगों का ध्यान आकर्षित करना होता है।

(२) रुचि उत्पन्न करना—आमतौर से वही वस्तु ध्यान आकर्षित करती है जो रुचिकर हो। लक्स साबुन का विज्ञापन करने में फिल्म अभिनेत्रियों के चित्र क्यों दिये जाते हैं ? बीड़ी आदि के कैलेण्डरों तथा पोस्टरों पर स्त्रियों के चित्र क्यों बनाये जाते हैं ? क्या आपने कभी रैक्सोना का 'दिन-ब-दिन-ब-दिन' देखा है ? विज्ञापन की सफलता किस बात में है ? दूसरों का ध्यान आकर्षित करने में। रैक्सोना, लक्स, बीड़ी आदि के विज्ञापन में स्त्रियों के चित्र बनाने का उद्देश्य लोगों का ध्यान आकर्षित करना है। ध्यान आकर्षित करने के लिये स्त्रियों के ही चित्र इसलिये बनाये गये क्योंकि सुन्दर स्त्री के चित्र में सभी रुचि लेते हैं। सफल विज्ञापन का रहस्य लोगों की

रुचि को पहचानना है क्योंकि रुचि में और ध्यान में बड़ा निकट सम्बन्ध है। स्टैंगनर लिखता है "एक सुन्दर स्त्री का चित्र रुचि मूल्य रखता है। वह स्त्री पुरुष दोनों की स्थाई प्रेरणाओं को अपील करता है।"

(३) विश्वास उत्पन्न करना—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, केवल वस्तु अथवा सेवा के अस्तित्व का ज्ञान या उसके गुणों का परिचय ही इस बात के लिये काफी नहीं है कि वह खरीदी जाये। मुख्य प्रश्न यह है कि यह विश्वास कैसे हो कि अमुक वस्तु में अमुक-अमुक गुण हैं। विज्ञापन का एक मुख्य उद्देश्य लोगों में इस विषय में विश्वास उत्पन्न करना भी है। यह विश्वास अनेक प्रकार से उत्पन्न किया जा सकता है। इसके लिये बहुधा नेताओं, फिल्म अभिनेताओं और अभिनेत्रियों आदि की सिफारिशें ली जाती हैं। औषधियों के विज्ञापन में प्रसिद्ध डाक्टरों का प्रमाण-पत्र सहायक होता है। कभी-कभी विश्वास उत्पन्न कराने के लिये विशेष वस्तु की बिक्री की संख्या का ही विज्ञापन किया जाता है; जैसे अमुक पुस्तक की पचास हजार प्रतियां बिक चुकी हैं अथवा अमुक साइकिलें एक लाख की संख्या में सड़कों पर चल रही हैं इत्यादि।

(४) याद करना—विज्ञापन का स्मृति पर भी प्रभाव पड़ना चाहिये क्योंकि बहुधा जब व्यक्ति विज्ञापन देखता है तभी उसको वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती। विज्ञापन ऐसा होना चाहिये कि उस वस्तु की आवश्यकता पड़ने पर व्यक्ति को वह विशेष नाम और उसको बनाने वाली फर्म का पता आदि याद आ जाये।

(५) क्रय की इच्छा उत्पन्न करना—अन्त में विज्ञापन का मूल उद्देश्य यह होता है कि लोग उस वस्तु को खरीदें या उस सेवा का उपयोग करें। इसलिये विज्ञापन की वैज्ञानिक पद्धतियों में विज्ञापन देने के बाद इस बात का पता लगाया जाता है कि उससे वस्तु की बिक्री पर कितना असर पड़ा। जिस विज्ञापन से वस्तु की बिक्री पर जितना ही अधिक असर पड़ता है वह विज्ञापन उतना ही सफल माना जाता है। विज्ञापन आकर्षक, रुचिकर और मनोरंजक तो होना ही चाहिये परन्तु उसका उद्देश्य इनमें से कोई भी नहीं है। उसका मूल उद्देश्य है वस्तु को अधिक से अधिक मात्रा में बेचना। अन्य सब बातें इस उद्देश्य के साधन मात्र हैं।

विज्ञापन की अपील के मनोवैज्ञानिक आधार

(Psychological Bases of the Appeal of Advertisement)

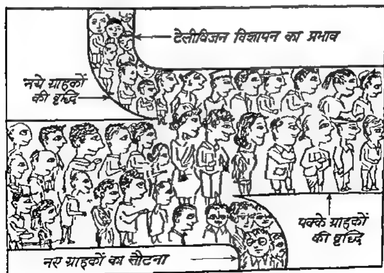
ब्लम ने लिखा है : "समस्त विज्ञापन का केन्द्र संकेत है।"[1] विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य लोगों को उस वस्तु को खरीदने का संकेत देना है। वह संकेत जितना ही अधिक मनोवैज्ञानिक होगा उतना ही प्रभावशाली होगा। इसलिये विज्ञापन में प्रेरणा, ध्यान, रुचि, अभिवृत्ति, स्मृति आदि मनोवैज्ञानिक तत्वों का विशेष ध्यान रखना

1. "The core of all advertising is suggestion." —Blum, M. L., *Industrial Psychology and Its Social Foundations*, Harper & Bros New York (1949), p 447.

पड़ता है। यें ही विज्ञापन का मनोवैज्ञानिक आधार हैं। विज्ञापन का इन पर जितना अधिक प्रभाव पड़ेगा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह उतना ही अधिक सफल होगा। अतः विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक आधार की विवेचना करते के लिये उन तत्वों से विज्ञापन के सम्बन्ध की विवेचना आवश्यक है।

विज्ञापन और प्रेरणा

मनुष्य के हर काम के पीछे कुछ न कुछ प्रेरणा होती है। जिस काम को करने के लिये उसमे कोई प्रेरणा न हो उसको वह नही करता। विज्ञापन का उद्देश्य व्यक्ति को किसी वस्तु को खरीदने के लिये प्रेरित करना है। अतः यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति मे उस वस्तु को खरीदने की प्रेरणा उत्पन्न करे। किसी न किसी प्रेरणा के उत्तेजित होने पर व्यक्ति स्वभावतया ही उस वस्तु को खरीदना चाहता है। कुछ लोग तो ऐसे होते है जिन्हे किसी वस्तु की आवश्यकता होती है और वे अच्छी तरह जानते हैं कि उन्हे कैसी वस्तु चाहिये। ऐसे लोगो को किसी विशेष प्रेरणा की आवश्यकता नही है। परन्तु कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हे जरूरत तो है, परन्तु यह निश्चय नही है कि किस चीज से उनकी जरूरत पूरी होगी। ऐसे लोगो को विशेष वस्तु को खरीदने की प्रेरणा दी जा सकती है। कुछ अन्य लोग ऐसे हैं जिनकी आवश्यकतायें भी निश्चित नही है। ऐसे लोगों की विशेष आवश्यकताओं को उत्तेजित करके उनको विशेष वस्तु खरीदने की प्रेरणा दी जा सकती है। कुछ लोग ऐसे है जो पैसा होते हुये भी पैसा खर्च नही करना चाहते। विज्ञापन की सफलता ऐसे लोगो में प्रेरणा उत्पन्न करके उनसे पैसा खर्च करा लेने मे है।



चित्र स० २५—टेलीविजन का विज्ञापन पर प्रभाव

मनुष्य के प्रेरक कारकों मे अनेक प्रकार के कारक होते हैं। उदाहरण के लिये उसकी कुछ विशिष्ट आवश्यकतायें है; जैसे—नींद, भूख, प्यास आदि, कुछ कम विशिष्ट आवश्यकतायें है; जैसे—काम प्रवृत्ति, मातृक व्यवहार आदि। कुछ सामान्य आवश्यकताये है जैसे—काम, पलायन, युयुत्सा, प्रभुत्व आदि। इनके अलावा उसमें जिज्ञासा, खेल, हास्य विनोद आदि की प्रवृत्ति होती है। इन प्रेरको के अलावा कुछ अर्जित प्रेरक भी होते हैं जैसे प्रशसा पाने की प्रवृत्ति, निन्दा से बचने की प्रवृत्ति, दूसरो पर प्रभुत्व जमाने की प्रवृत्ति, अनुकरण करने की प्रवृत्ति, सहानुभूति की प्रवृत्ति, इत्यादि। विज्ञापन इनमे से किसी भी आवश्यकता अथवा प्रवृत्ति को उत्तेजित कर सकता है। प्राथमिक (Primary) आवश्यकतायें अधिक महत्वपूर्ण होती है। अत उनको उत्तेजित करने वाले विज्ञापन अधिक प्रभावशाली होते है। गौण (Secondary) आवश्यकतायें उतनी महत्वपूर्ण नही होती। प्राथमिक और गौण आवश्यकताओ को समझने के लिये सी० एन० ऐलन द्वारा बनाई गई निम्नलिखित सूची उपयोगी सिद्ध होगी[3]—

मनुष्य की आवश्यकतायें

(१) प्राथमिक आवश्यकतायें—(१) स्वादिष्ट भोजन, (२) स्वादिष्ट पेय, (३) सुखमय वातावरण, (४) कष्ट और खतरे से रक्षा, (५) काम वासना की तृप्ति, (६) प्रिय जनो का कल्याण, (७) सामाजिक मान्यता, (८) अन्य लोगो से आगे बढने की भावना, (९) कठिनाइयो पर विजय, (१०) खेल।

(२) गौण आवश्यकतायें—(१) सामान्यता, (२) स्वास्थ्य, (३) कार्य-कुशलता, (४) सुविधा, (५) टिकाऊपन तथा विशिष्टता, (६) आर्थिक लाभ, (७) शैली तथा सौंदर्य, (८) स्वच्छता, (९) जिज्ञासा, (१०) सूचना तथा शिक्षा।

आवश्यकताओं की प्रेरणा

इन आवश्यकताओ से सम्बन्धित वस्तुओ के विज्ञापन इन आवश्यकताओ की अपील करते है। उदाहरण के लिये मुरब्बे आदि के विज्ञापन उनके स्वादिष्ट होने, पौष्टिक होने, ताजे होने आदि के विषय में बतलाते हैं। एक स्वादिष्ट पेय के रूप मे कोका-कोला का विज्ञापन किया जाता है। एयर कन्डीशनर के विज्ञापन में सुखमय वातावरण की अपील की जाती है। बीमा कम्पनियाँ प्रियजनो के कल्याण की आवश्यकता की अपील करती है। तरह-तरह के फैशनेबिल कपडो के विज्ञापन मे सामाजिक मान्यता और दूसरो से आगे बढने की भावना की अपील की जाती है। आपने दुकानदारो को अक्सर यह कहते सुना होगा, अमुक वस्तु 'लेटैस्ट फैशन' है अथवा अमुक वस्तु बहुत चलती है इत्यादि। विज्ञापन मे काम प्रवृत्ति का प्रयोग परोक्ष रूप से किया जाता है क्योंकि समाज मे काम प्रवृत्ति को प्रत्यक्ष रूप से उत्तेजित करना अच्छा नही समझा जाता। इस प्रकार पुरुषो मे इस्तेमाल की वस्तुयें जैसे बालो मे लगाने की क्रीम, टाई, बुशर्ट आदि की प्रशसा स्त्रियो से कराई जाती

---

3. Allen, C. N., *A Psychology of Motivation for Advertisers.* —Jr. of Appl. Psychol., (1941), 25, pp. 378-390.

है। यह दिखलाया जाता है कि अमुक वस्तु का इस्तेमाल करने से पुरुष पर अधिक से अधिक स्त्रियों की निगाहे पडेगी। इसी प्रकार स्त्रियो के काम की चीजों के विज्ञापनों मे यह समझाने की चेष्टा की जाती है कि अमुक वस्तु का इस्तेमाल करने से अधिक से अधिक पुरुष आकर्षित होते है। यह आवश्यक नही है कि बिकने के लिये वस्तु किसी प्राथमिक आवश्यकता से ही सम्बन्धित हो। नई-नई चीजों के बाजार मे आने के साथ-साथ लोगो मे नई-नई आवश्यकतायें उत्पन्न होती रहती है और इस प्रकार बहुत-सी गौण आवश्यकताओ से सम्बन्धित वस्तुये भी बाजार मे अपना स्थान बना लेती हैं।

विज्ञापन की सफलता के लिये सबसे पहली शर्त यह है कि वह ध्यान आकर्षित करे। ध्यान एक चयनात्मक क्रिया है। कुछ वस्तुयें अन्य वस्तुओ की अपेक्षा अधिक ध्यान आकर्षित करती हैं। ध्यान मे सहायक बाहरी और आन्तरिक कारको की खोज से विज्ञापन की कला मे भारी उन्नति हुई है। वास्तव मे विज्ञापन ध्यान आकर्षित करने का विज्ञान है। विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक आधार के रूप मे ध्यान का महत्व समझने के लिये ध्यान मे सहायक बाहरी और आन्तरिक दोनो ही तरह की दशाओ का सक्षिप्त विवेचन प्रासगिक होगा।

विज्ञापन और ध्यान

ध्यान मे सहायक बाहरी दशायें निम्नलिखित है—

(१) उत्तेजना की तीव्रता (Intensity of the Stimulus)—उत्तेजना जितनी ही तीव्र होगी विज्ञापन उतना ही अधिक ध्यान आकर्षित करेगा। इसलिये विज्ञापन के लिये रात मे बहुधा तेज रोशनी के बल्बो का प्रयोग किया जाता है।

ध्यान में सहायक बाहरी दशायें

(२) उत्तेजना की प्रकृति (Nature of the stimulus)—उत्तेजना की प्रकृति का अर्थ उसके प्रकार से है अर्थात् यह कि वह दृष्टि, स्वाद, स्पर्श किसकी उत्तेजना है। प्रयोगों से मालूम हुआ है कि अन्य सवेदनाओ की अपेक्षा रूप, रग तथा आवाज अधिक ध्यान आकर्षित करते है। विज्ञापन मे इनका खूब प्रयोग किया जाता है। आजकल रेडियो विज्ञापन का एक मुख्य माध्यम है। प्रयोगों से मालूम हुआ है कि केवल शब्द मात्र की अपेक्षा सगीत-मय शब्द मनुष्यो का ध्यान अधिक आकर्षित करते है। इसलिये रेडियो से आने वाले अधिकतर विज्ञापन आपको सगीतमय रूप मे दिखाई पडते हैं, जैसे "हमाम से हमारे घराने को प्यार।" शब्दो से भी अधिक ध्यान चित्र आकर्षित करते हैं। चित्रो मे भी वस्तुओं से पशुओं के और पशुओं से मनुष्यो के चित्र अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं। मनुष्यो मे भी सुन्दर स्त्रियों के चित्र सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं। किसी पत्रिका अथवा समाचार-पत्र के विज्ञापनों पर एक नजर डालिये तो आपको ज्ञात होगा कि विज्ञापन मे इस तथ्य का कितना अधिक प्रयोग किया जाता है। रग-हीन चित्रो की अपेक्षा रगीन चित्र अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं। सिनेमा की रीलो द्वारा दिखाये जाने वाले विज्ञापन अधिकतर रगीन होते हैं।

(३) उत्तेजना का आकार (Size of the stimulus)—दृष्टि उत्तेजना में उत्तेजना का आकार भी सहायक होता है। इसलिये बहुधा बड़े-बड़े साइन बोर्डो पर बड़े-बड़े अक्षरों द्वारा विज्ञापन दिये जाते हैं, परन्तु वास्तव में विज्ञापन के आकार से अधिक उसकी पृष्ठ-भूमि से उसके अनुपात का महत्व है। प्रयोगों से यह देखा गया है कि आर्कषित करने के लिये विज्ञापन में काफी जगह खाली छोड़ी जानी चाहिये। सामान्य रूप से बड़े आकार ध्यान को अधिक आर्कषित करते हैं परन्तु एक बड़े खाली पृष्ठ पर एक बहुत ही छोटा विज्ञापन भी हमारा ध्यान आर्कषित कर सकता है। कुछ प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि वस्तु के आर्कषित करने की क्षमता उसके आकार के वर्गमूल के बराबर होती है। इस प्रकार वर्गमूल के बढ़ने के साथ-साथ वस्तु का ध्यान आर्कषित करने की शक्ति भी बढ़ती है।

(४) उत्तेजना का विरोध (Contrast of the stimulus)—कभी-कभी ध्यान पर आकार से अधिक उत्तेजना के विरोध का प्रभाव पड़ता है। रात के अन्धेरे में बिजली के बल्बों द्वारा दिये गये विज्ञापन इसीलिए अधिक ध्यान आर्कषित करते हैं।

(५) उत्तेजना की स्थिति (Position of the stimulus)—उत्तेजना की स्थिति भी ध्यान में एक महत्वपूर्ण सहायक अवस्था है। विज्ञापनबाजी में पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न स्थितियों का विचार रखा जाता है। इस सम्बन्ध में अमेरिका के डब्लू० डी० स्टॉक ने एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया। उसने हर एक पृष्ठ पर विभिन्न लम्बाई-चौड़ाई के विज्ञापन देकर सौ पन्नों की एक किताब बनाई। इस किताब को पचास व्यक्तियों को देखने के लिये दिया गया। हर एक व्यक्ति को पुस्तक को दस मिनट तक उलट-पुलट कर यह लिखना था कि उसने क्या देखा। प्रयोग के अन्त में यह निष्कर्ष निकला कि पूरे पृष्ठ पर दिये गए विज्ञापन सबसे अधिक ध्यान आर्कषित करते हैं, आधे पृष्ठ पर दिए गए विज्ञापन कम ध्यान आर्कषित करते है और चौथाई पृष्ठ पर दिये गए विज्ञापन सबसे कम ध्यान आर्कषित करते हैं। इसी प्रकार प्रयोग से यह मालूम हुआ कि अन्य पृष्ठों की तुलना मे पहले पृष्ठ पर और कवर पृष्ठ पर दिये गये विज्ञापन अधिक ध्यान आर्कषित करते हैं। प्रयोगों से यह भी मालूम हुआ है कि पृष्ठ के नीचे के आधे भाग की अपेक्षा ऊपर के आधे भाग पर दिए हुए विज्ञापन अधिक ध्यान आर्कषित करते है।

(६) उत्तेजना की एकांतता (Isolation of the stimulus)—ध्यान एक चयनात्मक क्रिया है। इसलिये जो विज्ञापन आस-पास की वस्तुओं से जितना ही अधिक अलग दिखाई पड़ेगा उसकी ओर उतना ही अधिक ध्यान आर्कषित होगा। विज्ञापनों पर प्रयोग करने से मालूम हुआ है कि केवल एकांतता के कारण विज्ञापन तीस प्रतिशत से अधिक ध्यान आर्कषित करता है।

(७) उत्तेजना का परिवर्तन (Change of the stimulus)—उत्तेजना में परिवर्तन से ध्यान पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। कितना भी अच्छा विज्ञापन होने

पर भी यदि उसमें कभी भी कोई परिवर्तन न किया जाए तो लोग उससे ऊब जाते हैं और उसकी ओर ध्यान नहीं देते। इसलिये विज्ञापन करने वाले समय-समय पर अपने विज्ञापन में परिवर्तन करते रहते हैं अन्यथा कोई उनकी ओर ध्यान न दे। हमाम, एस्प्रो तथा अन्य वस्तुओं के विविधभारती से आने वाले विज्ञापनों में बराबर परिवर्तन देखा जा सकता है। परिवर्तन के साथ-साथ परिवर्तन की रीति भी महत्वपूर्ण है। वर्तमान उत्तेजना के बिल्कुल विरुद्ध परिवर्तन होने पर उसकी ओर अधिक ध्यान आकर्षित होता है।

(८) उत्तेजना का सत्ताकाल और पुनरावृत्ति (Duration and Repetition of the stimulus)—जो विज्ञापन जितने ही अधिक समय किया जाएगा आमतौर से उसका उतना ही अधिक लाभ होगा। कभी-कभी एक पूरे पृष्ठ पर एक बार विज्ञापन देने की अपेक्षा चौथाई पृष्ठ पर चार बार विज्ञापन देना अधिक लाभदायक होता है। सत्ताकाल के साथ-साथ पुनरावृत्ति का भी महत्व है। एस्प्रो के विज्ञापन की पुनरावृत्ति से चाहे आपके सर में दर्द ही क्यों न होने लगे परन्तु रेडियो में विविधभारती स्टेशन से उसकी इतनी अधिक पुनरावृत्ति होती है कि आप उसको ध्यान देने को मजबूर हो जाते हैं। सरदर्द के साथ एस्प्रो का नाम जुड सा जाता है और सरदर्द होने पर उसका नाम फौरन याद आता है चाहे आप उसको इस्तेमाल करने के पक्ष में न भी हों।

(६) उत्तेजना में गति (Motion in the Stimulus)—प्रयोगों से यह देखा गया है कि गतिशील विद्युत प्रकाश द्वारा किये गये विज्ञापन बड़े प्रभावशाली होते है। इसलिये बड़ी-बड़ी फर्में बहुधा विज्ञापन के लिये गतिशील विद्युत प्रकाश को इस्तेमाल करते है। गतिशील वस्तु अधिक ध्यान आकर्षित करती है। इसलिये नुमाइशों तथा बड़े-बड़े बाजारों में गतिशील खिलौनों या वस्तुओं के द्वारा विज्ञापन किया जाता है। नुमाइशों में साइकिल की दुकानों पर घूमती हुई साइकिल पर बैठी हुई एक आदमी की मूर्ति के द्वारा बहुधा विज्ञापन किया जाता है। खिलौनों की दुकानों पर अक्सर बिजली से चलने वाला कोई खिलौना गतिशील रह कर दर्शकों का ध्यान खींचता रहता है।

ध्यान की उपरोक्त बाहरी दशाओं के अलावा कुछ आन्तरिक दशायें भी ध्यान में सहायक होती है। विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक आधार के रूप में इनका भी ध्यान रखना आवश्यक हैं। विज्ञापनों में स्त्रियों के अंगों का निर्वस्त्र प्रदर्शन करने वाले विज्ञापन सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं। यह ध्यान में सहायक आन्तरिक दशा का एक उदाहरण है। ध्यान में सहायक मुख्य आन्तरिक दशायें निम्नलिखित हैं—

ध्यान की आन्तरिक दशायें

(१) रुचि (Interest)—विज्ञापन में रुचि का अत्यधिक मूल्य है। विशेष रुचि के लोग विशेष प्रकार के विज्ञापन पर अधिक ध्यान देते हैं। इस बात को

ध्यान में रखते हुए विशेष प्रकार की पत्रिकाओं में तद्‌विषयक वस्तुओं के विज्ञापन दिये जाते हैं। खेल सम्बन्धी पत्रिकाओं में खेल के, साहित्यिक पत्रिकाओं मे पुस्तकों के, औद्योगिक पत्रिकाओं मे उद्योग सम्बन्धी और व्यापारिक पत्रिकाओं मे व्यापारिक विज्ञापन अधिक दिखाई पडेगे क्योकि इनको माँगने वाले व्यक्ति इनमे अवश्य रुचि रखते हैं। इसके अलावा मनुष्य मात्र की कुछ सामान्य रुचियाँ भी होती हैं। उदाहरण के लिए आमतौर से हर एक व्यक्ति को सुन्दर स्त्री का चित्र रुचिकर लगता है। इसलिए विज्ञापन मे इसका सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाता है।

(२) मानसिक तत्परता (Mental Set)—मानसिक तत्परता का भी ध्यान पर बडा प्रभाव पडता है। मानसिक तत्परता का अर्थ है मन का झुकाव। जिस समय जिस व्यक्ति की मानसिक तत्परता जिस ओर अधिक होगी उस समय उसी की ओर अधिक ध्यान आकर्षित होगा। उदाहरण के लिये परीक्षा के दिनो मे परीक्षा सम्बन्धी नोट्स आदि के विज्ञापन का परीक्षार्थियों पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

(३) मौलिक ईहायें (Basic Drives)—जैसाकि पहले बतलाया जा चुका है, ध्यान को आकर्षित करने मे मौलिक ईहाओं अथवा मूल प्रवृत्तियों का बडा प्रभाव पडता है। जिज्ञासा जागृत होने पर विज्ञापन की ओर अधिक ध्यान जाता है। इसीलिये कुछ लोग वस्तु का नाम प्रगट करने से पहले तीन-चार बार तो जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिये ही विज्ञापन देते हैं। बर्मा शैल (Burma Shell) ने कुछ वर्ष पहले हिन्दुस्तान टाइम्स नामक समाचार-पत्र में काफी दिनों तक बगैर नाम दिये केवल एक बडी सी बून्द बनाकर विज्ञापन दिया था। इस तरह का विज्ञापन कई बार निकलने पर लोगो मे काफी जिज्ञासा हो गई कि आखिर इसका मतलब क्या है तब कही जाकर बर्मा शैल ने नाम पेश किया। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, ध्यान मे काम ईहा अथवा यौन प्रवृत्ति के प्रभाव का विज्ञापन में खूब प्रयोग किया जाता है। सिनेमा के विज्ञापन तो सभी यौन प्रवृत्ति को ही उत्तेजित करते हैं, और यह बतलाने की बात नही है कि सिनेमा के विज्ञापन कितने अधिक आकर्षक सिद्ध होते हैं।

(४) अर्थ (Meaning)—निरर्थक बात की ओर लोग ध्यान नही देते। ध्यान आकर्षित करने के लिये विज्ञापन का सार्थक होना भी जरूरी है अर्थात् उसमें बात साफ-साफ और स्पष्ट कही जानी चाहिये।

(५) लक्ष्य (Goal)—प्रत्येक व्यक्ति के कुछ तात्कालिक और अन्तिम लक्ष्य होते हैं। इन लक्ष्यों से सम्बन्धित वस्तु की ओर उसका तत्काल ध्यान जाता है। उदाहरण के लिये हर एक व्यक्ति जीवन मे सफलता चाहता है। अत. बहुत से व्यापारी जीवन मे सफलता दिलाने का वायदा करके अपनी वस्तुओं का विज्ञापन करते हैं। कपडो, ब्लेडों, बूट पालिश आदि अनेक वस्तुओं के विज्ञापन में यह कहा जाता है कि इनके इस्तेमाल करने से अमुक व्यक्ति की प्रगति हुई, अमुक को ऊंचा पद प्राप्त हुआ इत्यादि।

उपरोक्त आन्तरिक दशाओं के अलावा ध्यान की अन्य दशायें भी हैं; जैसे—

आदत, स्वभाव, संवेग आदि। इन सबका भी विज्ञापन की ओर ध्यान आकर्षित करने में कुछ न कुछ लाभ उठाया जा सकता है।

विज्ञापन और स्मृति

विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक आधार में स्मृति का भी बड़ा महत्व है। विज्ञापन ऐसा होना चाहिये कि सुनने या पढ़ने वाले अथवा देखने वाले उसको याद रखें। तभी जरूरत पड़ने पर वे वस्तु खरीदेंगे। इसके लिए वस्तु के ऐसे नाम रखना लाभदायक है जो कि उसके काम से भी सम्बन्धित हों। इससे काम के साथ नाम का साहचर्य हो जाता है और काम पड़ते ही नाम याद आता है। इस तरह के कुछ नामों के उदाहरण हैं—नहान साबुन, सीना मशीन, सुलेखा स्याही इत्यादि। जिन वस्तुओं के नाम ऐसे हैं जो आसानी से याद नहीं किये जा सकते उनका विज्ञापनों करने में निश्चय ही बड़ी कठिनाई होगी। विज्ञापन से स्मृति के इस सम्बन्ध का बहुधा गलत उपयोग भी किया जाता है। उदाहरण के लिये कोई एक ट्रेड मार्क (Trade Mark) मशहूर हो जाने पर जब उसका नाम परिचित हो जाता है तो बहुत से लोग अपनी वस्तुओं को प्रसिद्ध कराने के लिये उससे मिलता-जुलता नाम रख देते हैं। कोका-कोला के मशहूर होने के बाद पेप्सी कोला, डिक्सी कोला आदि निकाले गये। केवल इतना ही नहीं कुछ लोग नाम में अन्तर करके नकली सामान बेचते हैं। इस तरह सनलाइट और लाइफबॉय साबुन की अंग्रेजी की स्पेलिंग में एक आधा अक्षर का अन्तर करके साबुन के नाम रख लिये जाते हैं जिससे लोग उन्हें सनलाइट या लाइफबॉय समझकर खरीद लें।

विज्ञापन और संकेत

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है विज्ञापन का मुख्य मनोवैज्ञानिक आधार है संकेत (Suggestions)। संकेत का अर्थ किसी व्यक्ति को किसी विशेष काम के करने के लिये प्रेरित करना है। कुछ विज्ञापनों में तो सीधा-सीधा वस्तु को खरीदने के लिये कहा जाता है, जैसे—दर्द और बुखार से छुटकारा पाने के लिये एस्प्रो लीजिये। कुछ अन्य विज्ञापनों में संकेत देने के लिये सिनेमा के अभिनेताओं और अभिनेत्रियों द्वारा निर्देशन का प्रयोग किया जाता है। लक्स साबुन के विज्ञापन में आपने बहुत-सी प्रसिद्ध फिल्म अभिनेत्रियों की सिफारिशें देखी होंगी। इस प्रकार के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के निर्देशन लिये हुये विज्ञापन में प्रतिष्ठा संकेत (Prestige Suggestion) रहता है। वनस्पति घी का विज्ञापन करने वाले बहुधा उसके अहानिकारक होने के प्रमाणपत्र उपस्थित करते हैं। इस प्रकार कुछ विज्ञापन अप्रत्यक्ष रूप से विशिष्ट वस्तुओं को खरीदने का संकेत देते हैं।

विज्ञापन और अभिवृत्ति

विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक आधारों में अभिवृत्ति (Attitude) का भी महत्व है। अभिवृत्ति व्यक्ति के चारों ओर की वस्तुओं की ओर उसकी प्रेरणात्मक, संवेगात्मक, प्रत्यक्षात्मक और ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का स्थाई संगठन है। अभिवृत्ति के विरुद्ध होने पर विज्ञापन प्रभावशाली नहीं होता। उदाहरण के लिये प्रत्येक स्वतन्त्र

देश मे आमतौर से लोगों मे राष्ट्रीयता की अभिवृत्ति पाई जाती है। अतः स्वदेशी के नाम पर वस्तुओं का विज्ञापन सफलता के साथ किया जा सकता है।

विज्ञापन के विभिन्न अंगों की मनोवैज्ञानिक अपील

विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक आधार का विवेचन समाप्त करने से पूर्व उसके विभिन्न अंगों की मनोवैज्ञानिक अपील का विश्लेषण करना भी प्रासंगिक होगा। जैसा कि पीछे दिये हुये विवरण से स्पष्ट है, विज्ञापन मे अनेक बातें होनी हैं जैसे चित्र, रग, विज्ञापन का शीर्षक, विज्ञापन की लिखित वस्तु, फर्म की व्यवसाय छाप या व्यवसाय नाम और विज्ञापन का विन्यास अथवा व्यवस्था इत्यादि। विज्ञापन को प्रभावशाली बनाने केलिये उसके इन सभी अगो मे मनोवैज्ञानिक अपील होनी चाहिये। यहाँ इस सम्बन्ध मे कुछ महत्वपूर्ण बातो का उल्लेख किया जायेगा।

(१) चित्र (Illustration)—मनोवैज्ञानिक अपील के लिये विज्ञापन मे दिये गये चित्र यथार्थ के साथ-साथ रुचिकर भी होने चाहियें। न तो उनका केवल यथार्थ होना काफी है और न केवल रुचिकर होना। केवल यथार्थ होने पर वे कम ध्यान आकर्षित करेंगे। केवल रुचिकर होने पर उनमे वस्तु को खरीदने की प्रेरणा देने की सामर्थ्य नही होगी।

(२) रग (Colour)—विज्ञापन मे रग का बडा प्रभाव पडता है। परन्तु किस तरह के विज्ञापन मे कौन-से रग प्रयोग किये जायें यह एक महत्वपूर्ण बात है। भिन्न-भिन्न मौसमो मे भिन्न-भिन्न रग रुचिकर होते हैं। इसी प्रकार आयु तथा लिंग के भेद से भी रगो के प्रभाव मे अन्तर पडता है। आमतौर से पुरुषो के लिए विज्ञापन मे नीला रंग और स्त्रियों के लिये विज्ञापन में लाल रग अधिक प्रभावशाली होगा। कम आयु के लोगो के लिये विज्ञापन मे गहरा रग और अधिक आयु के लोगो के लिये हल्का रग अधिक उपयुक्त होगा। इसी प्रकार गर्मियो मे नीले और हरे रगो द्वारा तथा जाडो मे लाल और काले रगों द्वारा विज्ञापन अधिक रुचिकर होंगे।

(३) शीर्षक (Headline)—बहुधा विज्ञापनो मे एक शीर्षक दिया जाता है। शीर्षक के दो उद्देश्य होते हैं—एक तो वह विज्ञापन मे रुचि उत्पन्न करता है दूसरे, वह व्यक्ति को वस्तु खरीदने की प्रेरणा देता है। प्रथम, शीर्षक ऐसा होना चाहिये जो आसानी से और अधिक समय तक याद रह सके। दूसरे, शीर्षक ऐसा होना चाहिए कि उसको पढकर ही पूरे विज्ञापन को पढ जाने की इच्छा हो। तीसरे, शीर्षक सक्षिप्त और आकर्षक होना चाहिए। भारतीय लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन (L. I. C.) ने अपने विज्ञापनो मे बहुत ही मनोरजक शीर्षक दिए हैं। पैरी की मिठाइयों के विज्ञापनों मे ऐसे मनोरंजक शीर्षक मिलते हैं कि जिनको पढकर पूरा विज्ञापन पढने की इच्छा होती है।

(४) लिखित वस्तु (Text or Copy)—शीर्षक के बाद सूचना देने के लिए अथवा वस्तु की उपयोगिता के विषय मे समझाने के लिए कुछ लिखित वस्तु भी दी जाती है। इसमे बडी सावधानी की आवश्यकता है। आमतौर से अप्रत्यक्ष लिखित वस्तु अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। बहुधा कपडे बनाने वाले कपास की, रबड की

वस्तुयें बनाने वाले रबड की और कागज बनाने वाले कागज की तथा सिगरेट बनाने वाले तम्बाकू की कहानी पेश करते हैं। यह रोचक भी होती है और अप्रत्यक्ष रूप में इससे वस्तु का विज्ञापन भी हो जाता है। लिखित वस्तु संक्षिप्त होनी चाहिए। उसमें ऐसी बात कही जानी चाहिए जो सच्ची मालूम पड़े, जिसमें विश्वास उत्पन्न हो और जिससे उस वस्तु को खरीदने की प्रेरणा हो।

(५) व्यवसाय छाप (Trade Mark) या व्यवसाय नाम (Trade Name)—साधारणतया हर एक कम्पनी एक व्यवसाय छाप या व्यवसाय नाम रखती है, जैसे टाटा, बाटा, लिपटन, बुकबाण्ड, कोडक इत्यादि। क्रमश: ये व्यवसाय छाप इतने प्रसिद्ध हो जाते हैं कि केवल उनको देखकर ही लोग चीजें खरीदते हैं। परन्तु कभी-कभी कोई व्यवसाय नाम इतना प्रसिद्ध हो जाता है कि वह केवल किसी विशिष्ट कम्पनी के द्वारा बनाई गई वस्तु के लिये नहीं बल्कि उस तरह की हर एक वस्तु के लिये चलने लगता है। उदाहरण के लिये अमरीका में कैमरे के लिये कोडक व्यवसाय नाम हर एक कैमरे के लिये इस्तेमाल होने लगा। कुछ लोग तो विज्ञापन देने में केवल अपने व्यवसाय छाप या व्यवसाय नाम को लेकर ही विज्ञापन देते हैं। आपने बहुधा ऐसे विज्ञापन देखे होंगे जिनमें यह लिखा रहता है कि अमुक व्यवसाय छाप या व्यवसाय नाम अमुक कम्पनी का है, उसको ग्रहण करने वाली दूसरी कोई भी कम्पनी गैर कानूनी काम करती है और उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जायेगी।

(६) विन्यास (Lay Out)—अन्त में विज्ञापन की सफलता के लिये उसके उपरोक्त पाँचों अंगों की एक ऐसी व्यवस्था (Arrangement) अथवा विन्यास होना चाहिए कि वह कुल मिलाकर प्रभावशाली सिद्ध हो। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है विज्ञापन के विन्यास में काफी स्थान खाली छोड़ देना चाहिये। जिस चित्र पर जोर देना है वह अधिक स्पष्ट होना चाहिए। पूरे पृष्ठ पर विज्ञापन होने पर उसका किनारा देना जरूरी नहीं है। एक पृष्ठ से कम विज्ञापन होने पर हल्का किनारा अच्छा रहता है। विज्ञापन में चित्र और पृष्ठभूमि तथा रंगों में अच्छा मेल होना चाहिए। आमतौर से सादे विज्ञापन अधिक अच्छे रहते हैं। विज्ञापन में एक ही साथ बहुत सी चीजें दिखाने पर दर्शक उनमें से किसी को भी आसानी से याद नहीं रख पाता।

विज्ञापन में वर्ग का विचार

अन्त में मनोवैज्ञानिक प्रभाव के लिये हर एक विज्ञापन में यह ध्यान रखने की जरूरत है कि वह किस लिंग, वर्ग, आयु, शिक्षा अथवा आर्थिक स्तर के लोगों के लिये दिया जा रहा है क्योंकि इन सबके अन्तर से लोगों के रुचि, मानसिक झुकाव, प्रेरणा, ध्यान आदि में कुछ न कुछ अन्तर पड़ता ही है। उदाहरण के लिये निर्धन और मध्यम श्रेणी के लोगों को कम खर्च में अधिक अच्छी वस्तु का वायदा करने वाले विज्ञापन अधिक आकर्षित कर सकते हैं जबकि धनिक वर्ग के लिये ऐसे विज्ञापन अधिक अपील नहीं करेंगे क्योंकि उनको पैसे का उतना ख्याल नहीं होता जितना कि

वस्तु के गुण और नवीनता का होता है। इसी तरह शिक्षित व्यक्तियों के काम की चीजों में लिखित वस्तु में कुछ तर्क भी दिये जा सकते हैं, परन्तु अशिक्षित लोगों के लिए तर्क करना बेकार है। अल्प आयु के लोगों के लिए विज्ञापन ऐसे होने चाहियें जो रुचिकर हों। स्त्रियों पर तर्क का कम और सुझाव का अधिक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार विज्ञापन की प्रभावोत्पादकता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि वह विशेष वर्ग के लोगों के मनोविज्ञान को कहाँ तक अपील कर सकता है। वास्तव में इस सम्बन्ध में केवल स्थूल संकेत मात्र ही दिये जा सकते हैं। विज्ञापन की व्यावहारिक सफलता तो बहुत कुछ विज्ञापन करने वाले की मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि तथा सूझ-बूझ पर निर्भर है।

सारांश

विज्ञापन क्या है ?—विज्ञापन की परिभाषा प्रचार के रूप में की जा सकती है जो कि कुछ चीजों अथवा सेवाओं के अस्तित्व और गुणों की ओर आकर्षित करता है।

विज्ञापन के उद्देश्य—(१) ध्यान आकर्षित करना, (२) रुचि उत्पन्न करना, (३) विश्वास उत्पन्न करना, (४) याद करना, (५) क्रय की इच्छा उत्पन्न करना।

विज्ञापन की अपील के मनोवैज्ञानिक आधार—(१) प्रेरणा, (२) मनुष्य की आवश्यकतायें, (अ) प्राथमिक, (ग) गौण, (३) ध्यान, (४) स्मृति, (५) सुझाव, (६) अभिवृत्ति।

ध्यान में सहायक बाहरी दशायें—(१) उत्तेजना की तीव्रता, (२) उत्तेजना की प्रकृति, (३) उत्तेजना का आकार, (४) उत्तेजना का विरोध, (५) उत्तेजना की स्थिति, (६) उत्तेजना की एकांतता, (७) उत्तेजना का परिवर्तन, (८) उत्तेजना का सत्ताकाल और पुनरावृत्ति, (९) उत्तेजना में गति।

ध्यान की आन्तरिक दशायें—(१) रुचि, (२) मानसिक तत्परता, (३) मौलिक ईहायें, (४) अर्थ, (५) लक्ष्य।

विज्ञापन के विभिन्न अंगों की मनोवैज्ञानिक अपील—(१) चित्र, (२) रंग, (३) शीर्षक, (४) लिखित वस्तु, (५) व्यवसाय छाप या व्यवसाय नाम, (६) विन्यास।

विज्ञान को प्रभावशाली बनाने के लिये उसमें यह ध्यान रखने की जरूरत है कि वह किस लिंग, वर्ग, आयु, शिक्षा अथवा आर्थिक स्तर के लोगों के लिये किया जा रहा है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. हम विज्ञापन क्यों देते हैं ? विज्ञापन देने की कुछ प्रमुख विधियाँ बतलाइये तथा उनके मनोवैज्ञानिक महत्व की व्याख्या कीजिये।

Why do we advertise ? Point out some important methods of advertising and explain their psychological significance.

(Agra 1965)

प्रश्न २. विज्ञापन किन प्रभावों को उत्पन्न करने के उद्देश्य से किये जाते हैं ? इन प्रयोजनों की सिद्धि करने के लिये कुछ महत्वपूर्ण साधनों का वर्णन कीजिये।

What effects are intended to be produced by advertisements ? Mention some important methods used for the purpose.

(Agra 1969, 1964)

प्रश्न ३. विज्ञापन की अपील के मनोवैज्ञानिक आधार की विवेचना कीजिये।

Discuss the psychological bases of the appeal of advertisement.

प्रश्न ४. विज्ञापन के कार्य में लैंगिक आकर्षण, प्रतिष्ठा सुझाव तथा बैण्ड वैगन के मनोवैज्ञानिक महत्व को स्पष्टतया समझाइये।

Explain clearly the psychological value of sex appeal, prestige suggestion and Band Wagon in advertising. (Vikram 1968)



२२

विक्रय और क्रय का मनोविज्ञान

(Psychology of Selling and Buying)

विक्रय का मनोविज्ञान

आधुनिक काल मे क्रय-विक्रय के क्षेत्र मे मनोविज्ञान का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है क्योकि यह सिद्ध हो चुका है कि "क्रय तथा विक्रय आर्थिक तथ्यो की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक तथ्यो पर अधिक आश्रित हैं।" क्रय विक्रय दोनो ही व्यवहारो के प्रकार है। व्यवहार के सब कही कुछ न कुछ नियम होते है। इन नियमों का पता लगाकर क्रय विक्रय को नियन्त्रित किया जा सकता है। मनुष्य होने के नाते खरीदार मनोवैज्ञानिक नियमो से प्रभावित होता है। अस्तु, यदि विक्रेता को यह पता हो कि ग्राहक से कौन सी प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए उसे क्या करना चाहिये तो वह अपने काम को सफलतापूर्वक कर सकता है। क्रय विक्रय की परिस्थिति मे एक ओर विक्रेता, दूसरी ओर ग्राहक और तीसरा तत्व बिक्री का माल होता है। जहा विक्रेता का व्यवहार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सही होना चाहिये वहां खरीदार की आवश्यकताओं के अनुकूल वस्तुयें आसानी से बेची जा सकती हैं। इसलिये माल इस तरह का बनाया जाना चाहिये जो आवश्यकताओं की पूर्ति करता हो। मनुष्यो मे शारीरिक और मनोवैज्ञानिक अनेक प्रकार की आवश्यकतायें होती हैं। शारीरिक आवश्यकताओं में भूख, प्यास, तापक्रम बनाये रखने की आवश्यकता निद्रा, यौन प्रवृत्ति इत्यादि सम्मिलित है। मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओ मे आकाक्षा, यौन प्रेरणा आदि व्यक्तिगत आवश्यकताओ के साथ-साथ सामाजिक सम्मान प्राप्त करने या दूसरो को आकर्षित करने की सामाजिक आवश्यकतायें शामिल हैं। आजकल विभिन्न वस्तुओ के निर्माता सम्भाव्य ग्राहको की इन आवश्यकताओ का ध्यान रखता जाता है। यदि वस्तुयें आवश्यकताओ के अनुरूप होती हैं तो उन्हे बेचने मे विशेष कठिनाई नही होती।

विक्रय के सोपान

किन्तु केवल कारखानों में माल बना देना ही काफी नही है जब तक कि खरीदार को यह पता न चले कि उसकी किन आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए कहां पर कौन सी वस्तु बनायी गयी है। फिर, केवल जानकारी मात्र से सभी वस्तुये नही

खरीदी जाती क्योंकि बाजार मे एक ही तरह की बहुत सी चीजें आती हैं। किसी की ओर व्यक्ति आकर्षित होता है और किसी की ओर नही। इसका कारण विज्ञापन है। विज्ञापन ध्यान आकर्षित करने का विज्ञान है, उससे उपभोक्ता को यह पता चलता है कि उसके उपभोग की कौन-कौन सी वस्तुयें उपलब्ध है और उनमें क्या-क्या विशेष गुण है। यह विक्रय की प्रथम अवस्था है। विक्रय की द्वितीय अवस्था मे ग्राहक मे रुचि उत्पन्न की जाती है। इसके बिना वह वस्तु नही खरीदता रुचि उत्पन्न होने से वह वस्तु की जाच करता है। रुचि के पश्चात् इच्छा की स्थिति आती है और ग्राहक वस्तु खरीदने के लिये तैयार हो जाता है। किन्तु वस्तु तभी खरीदी जाएगी जब कि उस पर भरोसा हो। यह काम विक्रेता की साख, वाक्पटुता अथवा विज्ञापन के द्वारा किया जाता है। यदि वस्तु भरोसे की है तो उपभोक्ता उसे खरीदने का निश्चय कर लेता है। विक्रेता की वातो से उसका संशय दूर हो जाता है और वह अपनी इच्छा को सकल्प का क्रियात्मक रूप दे देता है। अब माल खरीदने के बाद यदि उसे इस्तेमाल करके सन्तोष होता है तो वह दूसरो से बतलाता है और स्वय भी आवश्यकता पडने पर दुबारा वह वस्तु खरीदने आता है। यह मानसिक सन्तोष की स्थिति विक्रय मे छठा सोपान है।

विक्रय संवार्ता की विधियाँ

विक्रय के उपरोक्त छः सोपानों मे एक से पाँच तक ले जाने का कार्य मनोवैज्ञानिक नियमों से उत्पन्न होता है। जो लोग मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो का अनुगमन करते हैं वे अपने माल को सफलतापूर्वक बेच पाते हैं। अन्य लोगों को उतनी सफलता नही मिलती। इन पाँचो स्थितियो पर क्रमशः ले जाने के लिए विक्रेता को ग्राहक से बातचीत करनी पडती है। इस विक्रय सवार्ता की विधि माल, ग्राहक और स्वय विक्रेता के अनुसार बदलती रहती है। इसीलिए केवल किताबे पढने मात्र से सफल विक्रेता नही बना जा सकता। फिर भी विभिन्न परिस्थितियो के लिये विक्रय सवार्ता का प्रामाणिक रूप निर्धारित किया जा सकता है और आधुनिक काल मे मनोवैज्ञानिको ने सफलतापूर्वक यह काम किया है। प्रयोगशालाओ मे विक्रय संवार्ता की प्रचलित विधियो की प्रामाणिकता की जाँच के लिए प्रयोग किये गये है। विक्रय सवार्ता की मुख्य विधियों में उपयोग प्रदर्शन, मौखिक बखान, ब्योरेदार क्रय याचना और सक्षिप्त क्रय याचना, गम्भीर वार्ता और उद्धत तथा मित्रवत् वार्ता इत्यादि सम्मिलित है। इनका विवरण निम्नलिखित है—

(१) **उपयोग प्रदर्शन**—आपने देखा होगा कि दुकान पर नयी चीज आने पर दुकानदार उसके उपयोग का प्रदर्शन करता है। कोई भी कम्पनी कोई नयी चीज बनाने के बाद प्रदर्शिनियों मे या बाजारों मे उसका उपयोग प्रदर्शन करवाती है। उपयोग प्रदर्शन से ग्राहक वस्तु की उपयोगिता के विषय मे सतुष्ट हो जाता है। किन्तु यह विधि सभी चीजो मे काम नही दे सकती। उदाहरण के लिए दवा, खाने पीने

की वस्तुयें या अनुभूति से सम्बन्धित चीजे प्रदर्शन से नही जानी जा सकती। अस्तु, उनके विषय मे अन्य विधियो का उपयोग किया जाता है।

(२) मौखिक बयान—जिन वस्तुओं का उपयोग प्रदर्शन नही किया जा सकता या जब दुकानदार को ऐसा करने की सुविधा नही होती तो वह मौखिक बखान की विधि अपनाता है। इसमे तरह-तरह से विक्रय की वस्तु का बखान किया जाता है जिससे वह ग्राहक की समझ मे आ जाए। बखान का कार्य मनोवैज्ञानिक रीति से किया जाना चाहिये। यदि उसमे झूठ का भी कुछ अश हो तो वह इस तरह होना चाहिये कि ग्राहक को उसका पता न लगे।

(३) तथ्य व्याख्या द्वारा क्रय याचना—विक्रय की एक विधि वस्तु के विषय मे तथ्यो का वर्णन करके फिर ग्राहक से उसे खरीदने की याचना के रूप मे [illegible] है। यह क्रय याचना अनेक प्रकार से की जाती है। कुछ लोग बड़े उत्साहपूर्वक और गम्भीर ढग से बात करते है कुछ विक्रेता उद्धत तरीके से पेश आते हैं। अन्य कुछ मित्रवत् व्यवहार करते हैं जिससे ग्राहक का विश्वास जमता है। ऐसे दुकानदार सभी ग्राहको को यह दिखलाते हैं कि वे उनके परम शुभ चिन्तक हैं और उनका लक्ष्य अपना मुनाफा कमाना नही वल्कि ग्राहक की आवश्यकताओ की पूर्ति करना है। विक्रय मे उनका उद्देश्य ग्राहकों को सन्तोष प्रदान करना है।

उपरोक्त विभिन्न सवार्ता विधियो की तुलना से उनके लाभ हानि का पता लगता है। एक अनुभव प्राप्त विक्रेता ने चालिस विद्यार्थियो को विभिन्न विक्रय सवार्ताओ का मूल्याकन कराया। इसमे कुछ मनोरजक निष्कर्ष निकले। यह देखा गया कि मौखिक बखान से उपयोग प्रदर्शन श्रेष्ठ विधि है। संक्षिप्त क्रय योजना से अर्थात् केवल खरीदने के लिये कहने मात्र से तथ्यात्मक वार्ता अधिक उपयुक्त है। तथ्यात्मक वार्ताओ मे उद्धत वार्ता से मित्रवत् वार्ता अधिक श्रेष्ठ प्रतीत हुई। उत्साह पूर्ण और गम्भीर वार्तायें समान रूप से प्रभावशाली प्रतीत हुयी।

क्रय विक्रय मे मनोवैज्ञानिक कारक

क्रय-विक्रय के क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उत्प्रेरणा, अनुसन्धान, धारणा विश्लेषण, उपभोक्ता, न्यादर्शन की विधियो का विकास, प्रश्न सुधार, शाब्दिक प्रतिक्रियाओं का मूल्याकन, उपयोग-अपरोक्ष प्रमाणो का उपयोग, विज्ञापन तथा उसके प्रभावो का मापन, सामूहिक ससूचन इत्यादि विषयो का महत्व ज्ञात हुआ है और अनुसन्धानों से यह पता लगाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार के व्यापार से उपभोक्ताओ पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध मे डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावली से भी महत्वपूर्ण बाते पता लगाई गयी है। प्रश्नावली विधि से भी व्यापक अनुसन्धान किए गए है। किन्तु प्रश्नावलियो के उत्तर उन्ही उपभोक्ताओ से प्राप्त होते हैं जो वस्तु मे विशेष रूचि लेते हैं। इसके लिये उत्प्रेरको का भी प्रयोग किया जा सकता है। कई बार समालाप और टेलीफोन द्वारा बातचीत करके भी

उपभोक्ताओ के विचारो का पता लगाया गया है। इसमे यह ध्यान रखना चाहिये कि उपभोक्ता सदैव ठीक ही बात नही बतलाता क्योकि सभी व्यक्तियो मे किसी वस्तु का मूल्यांकन करने की एक सी शक्ति नही होती। कुछ लोग अन्य लोगो की तुलना मे अधिक सही मूल्याकन कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त स्मरण शक्ति का भी अपना महत्व है। कुछ लोग कुछ बातों को सुनकर बहुत दिन याद रखते है जबकि अन्य लोग भूल जाते हैं। सुनी हुई बात से देखी हुई बात अधिक याद रहती है। इसलिये मौखिक बखान से प्रदर्शन विधि कही कही अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। सुझाव का विक्रय मे व्यापक उपयोग किया जाता है।

सुझाव की शक्ति फैशन मे भी काम करती है। कुछ वस्तुयें केवल फैशन मे होने के कारण बिकती है। यह फैशन कृत्रिम रूप से भी उत्पन्न किया जाता है। कभी कभी फैशन की शक्ति इतनी अधिक बढ जाती है कि लोग विशिष्ट वस्तु को सामाजिक स्तर का प्रतीक मान लेते है और उसे प्राप्त करने के लिये बड़ी से बड़ी कीमत चुकाने को तैयार हो जाते हैं। विज्ञापनबाजी मे यौन प्रवृत्ति का व्यापक प्रयोग किया जाता है। स्त्रियो और पुरुषो सभी के उपयोग की वस्तुओ के विज्ञापन मे सुन्दर स्त्रियों के निर्वस्त्र शरीर का अधिक से अधिक प्रदर्शन किया जाता है। विक्रेता की सवार्ता के अतिरिक्त विक्रय के लिये वस्तु का उपयोगी और आकर्षक होना आवश्यक है। बहुत दिन टिकने के लिये वस्तु मे गुण होना आवश्यक है किन्तु पहली बार खरीदे जाने के लिये उसमें बाहरी आकर्षण भी होना चाहिये। इसीलिये आजकल वस्तुओ के पैकिंग की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। पैकिंग इतना आकर्षक होना चाहिये कि व्यक्ति दुकान मे रक्खी हुई वस्तु को देखकर ही उसकी ओर खिच जाये और उसे हाथ मे लेना चाहे। इसके लिये तरह तरह के आकारो की बोतलो और आकर्षक रगो के डिब्बो का प्रयोग किया जाता है। बोतलो पर लगे लेबिलो मे और [illegible]ब्बों के ऊपर वस्तु के परिचय के रूप मे क्या लिखा जाना चाहिये यह भी एक महत्वपूर्ण बात है। इसमे सक्षेप मे वस्तु के सभी गुण आ जाने चाहियें और साथ ही साथ ग्राहक को वस्तु खरीदने के लिये सुझाव भी दिया जाना चाहिये। आजकल वस्तु खरीदने के लिये प्रेरित करने का एक प्रचलित तरीका साबुन या ऐसी ही चीजो के साथ इनाम के रूप मे दै[illegible]निक आवश्यकता की चीजे देना है। सफल कम्पनियाँ विक्रय विज्ञान के विषय मे नये [illegible] नये अनुसन्धानों से बराबर यह पता लगाती रहती हैं कि अन्य कम्पनियों के माल के मुकाबले [illegible]ने मे वे अपने माल को किस तरह अधिक से अधिक सफलता के साथ बेच सकती हैं। [illegible] पर नय[illegible] कोई नयी [illegible] है।

सफल विक्रय के साधन

यदि कोई व्यक्ति दुकान पर कोई चीज मागने आता है तो यदि वह दुकान पर है तो दुकानदार को उसे उठाकर ग्राहक को दे देना भर होता है किन्तु विक्रय के सभी मामलो में इतनी आसानी से काम नही हो जाता। अनेक चीजें ऐसी हैं जिनकी माग पैदा करनी पडती है, अनेक ग्राहक ऐसे होते है जिन्हें पकडना पडता है। इस

प्रकार की जटिल विक्रय प्रक्रिया मे विक्रेता को बडी समझदारी से काम लेना पडता है। मनोवैज्ञानिक ब्लम के अनुसार सफल विक्रय मे निम्नलिखित सोपान होते हैं.—

(१) विक्रय का प्रारम्भ (Starting a Sale)—विक्रय का प्रारम्भ बहुधा विक्रेता की ओर से होता है। जैसे ही कोई व्यक्ति दुकान मे घुसता है विक्रेता उसका स्वागत करता है। अनेक बडी-बडी दुकानो मे विक्रेता आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का स्वागत करते हुए उससे पूछते है "कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हू।" अब आने वाला व्यक्ति इसके उत्तर मे कुछ कहता है और बातचीत शुरू हो जाती है। कभी-कभी दुकान मे किसी व्यक्ति के घुसते ही 'नमस्कार' या 'आदाब अर्ज' कहना ही पर्याप्त होता है और इसके बाद ग्राहक तुरन्त अपना प्रयोजन स्पष्ट करता है। सबसे पहली भेंट मे यह आवश्यक है कि विक्रेता अधिक से अधिक शिष्टाचार और मैत्री का व्यवहार दिखलाए। उसे ग्राहक की प्रतिक्रियाओ पर ध्यान रखना चाहिए और अपनी बातचीत को उसके अनुसार बदल देना चाहिए। कुछ विक्रेता ग्राहक की प्रतिक्रियाओ की परवाह किए बगैर बोले चले जाते है जिसका परिणाम यह होता है कि उनके व्यर्थ बकवाद से ऊबकर ग्राहक दुकान से निकल जाता है। कुछ लोग विक्रेता के बहुत बोलने से खरीद सकते है किन्तु दूसरे लोग केवल तभी खरीदेगें जब कि वह उतना ही बोले जितना कि पूछा जाय। ग्राहक के बिना पूछे ही बातचीत की झडी लगा देना नितान्त अनुचित है। इसमे कुछ ग्राहको का विक्रेता पर से विश्वास उठ जाता है और वे समझते है कि वह उन्हे व्यर्थ ही फाँसना चाहता है।

(२) ग्राहक को मापना (Sizing up the Customer)–ग्राहक को मापने के लिए मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है। जो व्यक्ति जिस चीज को मागता हुआ आया है उसे दे देने मे विक्रेता की कोई योग्यता नही मालूम पडती किन्तु उसके हाव-भाव, वेश-भूषा आदि को देखकर उसके हाथ कुछ बेच देना बुद्धिमानी का कार्य है। बहुधा सफल दुकानदार ग्राहक की वेश-भूषा को देखकर यह अनुमान लगा लेते हैं कि वह किस प्रकार की चीजें खरीदेगा और वैसी ही चीजे उसे तत्काल दिखाना शुरू करते हैं। पुराने ग्राहकों के विषय मे दुकानदार को यह पता रहता है कि कौन सा ग्राहक फैशन की नयी से नयी चीजो की तलाश मे रहता है, कौन सा कम से कम कीमत की चीज चाहता है और कौन सा वही चीज लेता है जिसके साथ मे इनाम लगा होता है इत्यादि। अपने इस ज्ञान के आधार पर पुराने ग्राहक के दुकान मे आते ही सफल विक्रेता उसे दर्जनों चीजें दिखलाने लगता है। उदाहरण के लिए जो व्यक्ति सस्ती से सस्ती चीज लेना पसन्द करता है उसे वह सस्ती से सस्ती चीज दिखलायेगा और दूसरी ओर जो व्यक्ति फैशन की हर नयी चीज की तलाश में रहता है उसे वह कोई भी नयी चीज आने पर तुरन्त दिखलायेगा। साडियो की दुकान पर अथवा स्त्रियों से सम्बन्धित प्रसाधन की सामग्रियो, ऊन, स्वेटर, कोट या ऐसी ही अन्य वस्तुओं की दुकानो पर विक्रेता मानव मनोविज्ञान मे गहरी अन्तर्दृष्टि दिखलाते

1. Blum, M L., *Industrial Psychology and Its Social Foundations*, Harper and Row (New York, 1956) pp 551-552

हैं। वे किसी भी साडी को ग्राहिका के हाथ मे देखकर कहते हैं "बहन जी, यह साडी सिर्फ आप ही के लिए बनी है। देखिये यह आप पर कितनी अच्छी लगेगी" अथवा कि "अमुक महिला आज ही ऐसी साडी ले गयी है" या "यह साडी बडी कठिनाई से बम्बई से केवल तीन पीस मिल सके हैं" इत्यादि। साधारणतया पति-पत्नि के एक साथ दुकान पर आने पर विक्रय की अधिक सम्भावना बन जाती है और चतुर विक्रेता इसका पूरा लाभ उठाता है। वह शीघ्र ही भाप लेता है कि उन दोनों मे किसकी ज्यादा चलती है। बहुधा स्त्रियो को आसानी से समझाया (बहकाया ?) जा सकता है और इसलिए वह बीवी जी के सिर हो जाता है और उनको समझाने के बाद उसका काम आधे से अधिक पूरा हो जाता है। अब चाहे मिया जी की जेब पर कुछ ज्यादा जोर भी पड रहा हो तो भी उन्हे अपनी इज्जत रखने के लिए वस्तुयें खरीदनी ही पडती हैं। कुछ लोग चीजो को बेचने मे ग्राहकों को तरह-तरह से उकसाते हैं और शुरू-शुरू मे ग्राहक की इच्छा न होते हुए भी अनेक वस्तुयें उसे बेच देते हैं। उदाहरण के लिए यह एक सामान्य तरीका है कि दुकानदार ग्राहक से यह कहता है कि "आप भले ही चीजें न ले किन्तु देखें जरूर।" "मेरे पास आज ही अमुक कम्पनी की नयी कमीजें या नयी साडियाँ आई हैं। देखने मे क्या हर्ज है, शौक से न लीजिये, फिर ले लीजियेगा, दाग न हो तो फिर दे दीजियेगा।" इत्यादि।

(३) **वस्तु के पक्ष में तर्क देना** (Presenting Arguments)—अनेक चीजें ऐसी होती हैं जिनकी उपयोगिता तथा विशेषता ग्राहक को समझानी होती है। उदाहरण के लिये नए प्रकार की मशीनों, यन्त्रो, सेवाओ और वस्तुओ को बेचने के लिये उनके पक्ष मे तर्क देने होते हैं। ये तर्क ऐसे होने चाहिए जिनसे ग्राहक मे विश्वास पैदा हो। विक्रेताओ की यह आदत होती है कि जिस चीज पर भी ग्राहक ने हाथ रख दिया वे उसी को लेटेस्ट फैशन की बतलाने लगते हैं, जिस साडी को महिला ने हाथ में लिया उसकी तारीफ मे जुट जाते है, हर चीज की मजबूती की गारन्टी देने लगते हैं, इस तरह के विक्रेताओ का ग्राहक को विश्वास नही रहता। दूसरी ओर कुछ विक्रेता पुराने ग्राहकों से बिना पूछे ही यह कह देते है कि अमुक वस्तु आपके काम की नही है या अमुक वस्तु आपके काम की है या यह वस्तु मे आपको नही दूंगा, आपको आपके मतलब की चीज अलग से दिखाऊंगा। कुछ लोग चुपके से अन्दर से चीज निकालकर लाते है और ग्राहक के हाथ मे देकर धीमे से कहते हैं "सिर्फ आपके लिए बडी मुश्किल से एक पीस लाया हूं या आपके लिये एक पीस बचाकर रक्खा है।" इन सब बातो का ग्राहको पर बडा अच्छा प्रभाव पडता है क्योकि उन्हे लगता है कि दूकानदार उनका शुभचिन्तक है, उन्हे घर का सा आदमी समझता है और उनका विशेष ख्याल रखता है। कुछ चीजें बेचने के लिये प्राविधिक ज्ञान की आवश्यकता होती है, कम से कम इससे उनके विक्रय मे सहायता अवश्य मिलती है। उदाहरण के लिये फर्नीचर के विक्रेता को फर्नीचर के फैशनो, लकडी के प्रकारों और गुणो आदि के बारे मे व्यापक जानकारी होनी चाहिये। इससे वह ग्राहक को सही राय दे सकता है और ग्राहक भी उसकी राय पर विश्वास कर सकता है। कहीं-कहीं रंग-रोगन, इमारती सामान या

घर की सजावट की चीजे बेचने वाली कम्पनियां इनके इस्तेमाल के विषय मे मुफ्त परामर्श देती है और उनके विशेषज्ञ मकानो पर जाकर ग्राहको को यह बतलाते है कि कहां पर कौन सा रंग रोगन, इमारती सामान या सजावट की चीजें प्रयोग की जानी चाहियें। विशेषज्ञ की राय से ग्राहक का विश्वास जमता है और फिर वह उसी कम्पनी से सामान खरीदता है जहाँ से विशेषज्ञ आया है। इसीलिये आजकल अनेक कम्पनियाँ, बढई, रग साज, पेण्टर, मिस्त्री आदि को कुछ न कुछ कमीशन देकर मिलाये रहती हैं कि वे जगह-जगह उनके सामान की तारीफ करें और ग्राहको को यह बतलाये कि केवल उन्ही की दुकान पर सही सामान मिलता है। नये-नये यन्त्रो और मशीनो को बाजार मे लाने के लिये विक्रेता को उनके पक्ष मे तरह-तरह के तर्क देकर यह सिद्ध करना होता है कि पुराने ढग की मशीनो से या यन्त्रो से ये कहाँ तक अच्छे हैं। किन्तु किसी वस्तु के पक्ष में उसी हद तक तर्क दिये जाने चाहिये जब तक कि वह वाद-विवाद न बन जाये। ग्राहक से वाद-विवाद करना कभी भी अच्छा नही है भले ही दुकानदार का पक्ष सही हो क्योंकि इससे कटुता बढती है और ग्राहक की वस्तु खरीदने की इच्छा नही होती। विक्रय वार्ता का एकमात्र प्रयोजन यह है कि ग्राहक वस्तु को खरीद ले, विक्रेता बातचीत मे जीत जाए यह उसका प्रयोजन कदापि नही है और यदि विक्रेता की जीत की कीमत इस बात में चुकानी पडे कि ग्राहक वस्तु न खरीदे तो विक्रेता की हार ही है।

(४) **ग्राहकों के आक्षेपों का उत्तर देना** (Meeting objections)—अनेक ग्राहक चाहे जिस चीज के बारे मे चाहे जो राय कायम कर लेते है और सुनी सुनाई बातों के आधार पर उसे बुरा भला कहने लगते है। कोई महिला किसी भी कपड़े के विषय मे दुकानदार से तुरन्त कहने लगती है कि यह तो बिल्कुल बेकार कपड़ा है, उसकी अमुक सहेली अमुक दुकान से वह कपडा ले गई थी और वह कुछ भी दिन नही चला। इस प्रकार की बातचीत का दुकानदार को कभी बुरा नही मानना चाहिये। उसे सदैव शान्त और नम्र रहना चाहिये तथा कभी भी उत्तेजित नही होना चाहिये। कुछ लोग डीग हाकने के आदी होते हैं। वे सदैव ग्राहको से कहते है "जितने में मैं चीज बेच दूगा उतने मे कोई क्या खाकर बेचेगा, जो बात मेरी दुकान पर है वह आपको शहर मे किसी दुकान पर नही मिल सकती," इत्यादि। इस प्रकार की डींगों का ग्राहक पर अच्छा प्रभाव नही पड़ता। किसी भी वस्तु के बारे में ग्राहक जो आक्षेप उठाता है या उसे जो शका होती है उसका समाधान बडी सावधानी से किया जाना चाहिये। अपनी वस्तु के गुण बतलाते समय दूसरे की वस्तु के अवगुणो का बखान करना अच्छी रुचि का परिचायक नही है क्योंकि इससे ग्राहक पर अच्छा प्रभाव नही पडता। विक्रेता को बातचीत करते समय बराबर यह ध्यान रखना चाहिये कि विशिष्ट ग्राहक किस तरह की बात सुनना चाहता है, वैसा ही तर्क दिये जाने पर वह सन्तुष्ट होगा।

(५) **वार्तालाप के क्षेत्र को विशेष वस्तु तक सीमित करना** (Narrowing the field to one item)—सफल विक्रेता को व्यर्थ की बातचीत में समय खराब नही

करना चाहिये क्योकि इससे वह सब ग्राहकों की सेवा नहीं कर सकेगा और उसकी विक्रय वार्ता का कोई परिणाम भी नहीं निकलेगा। अस्तु, उसे क्रमशः अपनी बातचीत के क्षेत्र को सीमित करके विशेष वस्तु तक ही ले आना चाहिये इससे ग्राहक को अपना इरादा बनाने में आसानी होती है। कुछ दुकानों पर तो इसीलिये ग्राहक को एक समय में केवल एक ही प्रकार की वस्तु दिखलाते हैं क्योंकि यदि एक ही प्रकार की इतनी अधिक चीजों का ढेर ग्राहक के सामने लगा दिया जाये कि वह चुनाव ही न कर सके तो वह बड़ी कठिनाई में पड़ जाता है। उदाहरण के लिये साड़ियां दर्जनों प्रकार के कपड़े की बनती हैं और उनमें सैकड़ों डिजाइन होते हैं। यह ठीक है कि एक से एक नया डिजाइन और नया कपड़ा ग्राहक के सामने उपस्थित करके थोड़ी देर के लिये आप उसे चकाचौंध कर देंगे किन्तु जब तक क्रमशः वार्ता का क्षेत्र सीमित करके किसी एक ही प्रकार की साड़ी पर नहीं लाया जायेगा तब तक ग्राहक खरीदने का निश्चय नहीं कर सकता। अनेक दुकानों पर चीजें दिखाने से पहले ही ग्राहक से उसके प्रकार बतलाकर यह पूछ लिया जाता है कि उसे कैसी वस्तु चाहिये। इससे ग्राहक और दुकानदार दोनों की बहुत सी परेशानी बच जाती है, ग्राहक भी सन्तुष्ट होता है और बिक्री भी होती है।

(६) विक्रय वार्ता की समाप्ति (Closing the Sale)—विक्रय वार्ता के दौरान में एक विशेष क्षण ऐसा आता है जबकि ग्राहक किसी वस्तु को खरीदने के लिये सबसे अधिक तैयार होता है। यदि इस क्षण में विक्रय वार्ता को समाप्त नहीं किया गया तो फिर विक्रय नहीं होता। इसलिए सफल विक्रेता बराबर विक्रय वार्ता को सही क्षण पर बन्द करने पर नजर रखते हैं। इसके बहुत से तरीके हैं। कुछ लोग कहते हैं "तो, साड़ी आपकी कोठी पर पहुंचवा दूं" "कहिये तो बंधवा दूं" "आप इसे कहाँ भेजना चाहते हैं" इत्यादि। कुछ लोग आर्डर फार्म पर वस्तु को लिखने लगते हैं और यदि ग्राहक उन्हें नहीं रोकता तो इसी से विक्रय वार्ता समाप्त हो जाती है। कुछ लोग वस्तु को बांधने लगते हैं और यदि ग्राहक चुप रहता है तो उससे वार्ता समाप्त हो जाती है। कुछ लोग उससे अगली वस्तु की विक्रय वार्ता प्रारम्भ कर देते हैं। उदाहरण के लिये साड़ी के सम्बन्ध में विक्रय वार्ता समाप्त करने के लिये सफल दुकानदार ग्राहक के साड़ी खरीदने का मन्तव्य स्पष्ट करने से पहले ही अपने सेल्समैन को आवाज लगाता है कि जरा इस साड़ी के मैच का ब्लाउज का कपड़ा निकालना और यदि इस पर ग्राहक कुछ नहीं कहता और ब्लाउज का कपड़ा देखने लगता है तो उसके यह कहे बगैर ही कि वह साड़ी खरीदेगा यह निश्चित् हो जाता है कि उसने साड़ी खरीद ली है क्योंकि साड़ी खरीदने से पहले उसके मैच का ब्लाउज का कपड़ा कोई नहीं लेता। यदि ग्राहक को वस्तु नहीं खरीदनी है तो विक्रय वार्ता बन्द करने के इन प्रयासों में वह तुरन्त कहता है कि नहीं मुझे यह चीज नहीं लेनी या जल्दी मत कीजिये या अभी मुझे सोचने दीजिये या मैं फिर आऊंगा इत्यादि। स्मरण रहे कि अनेक ग्राहक विक्रय वार्ता की समाप्ति में यह सब नहीं कह सकते। वे ब्लाउज का कपड़ा निकाले जाने की बात सुनकर भी अपना इरादा बना नहीं पाते और ब्लाउज

का कपड़ा फट जाने पर सोचते हैं कि अब साड़ी भी ले ही लेनी चाहिए। अस्तु, दुकानदार के चतुरता से विक्रय वार्ता समाप्त करने का अत्यधिक महत्व है।

विक्रय के सूत्रों का महत्व

कुछ लोग यह समझते हैं कि सफल विक्रय के कुछ सूत्र हैं और उन पर आँख बन्द करके अमल किये जाते हैं। किन्तु विभिन्न परिस्थितियों में सूत्रों का प्रयोग करने से यह पता चलता है कि उनका अकलमन्दी से प्रयोग किया जाना चाहिये। उदाहरण के लिये साड़ियाँ पहनने से अधिक जँचती है, यह एक सामान्य सूत्र है किन्तु यदि कोई दुकानदार अपने कुरूप और भौण्डे नौकर को साड़ी पहनाकर दिखलाता है तो खरीदने वाली महिलाओं का इसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि उस साड़ी पर उनका मन जमने की जगह हट जाता है क्योंकि उस व्यक्ति के द्वारा पहनी जाकर वह साड़ी तनिक भी अच्छी नहीं लगती। दूसरी ओर यदि कोई सुन्दर लड़की वह साड़ी पहन कर दिखलाये तो एक बार साड़ी अच्छी न होने पर भी वह ग्राहक के मन में जम जायेगी और वह उसे खरीदना चाहेगा। इसीलिये आजकल वस्त्रों की निर्माता कम्पनियों की ओर से समय-समय पर सुन्दर लड़कियों के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों का प्रदर्शन किया जाता है। अमरीका में विक्रय के विषय में एक फार्मूला प्रचलित था AIDAS इस सूत्र से तात्पर्य है अवधान, रुचि, इच्छा, क्रिया और सन्तोष। सूत्र से यह समझा जाता है कि सबसे पहले विक्रेता को ग्राहक का ध्यान आकर्षित करना चाहिये, फिर वस्तु में रुचि दिखानी चाहिए, फिर उसमें खरीदने की इच्छा उत्पन्न करनी चाहिए, तब ग्राहक वस्तु को खरीदे और अन्त में उसे इस्तेमाल करके उसे सन्तोष हो तो विक्रय की प्रक्रिया पूरी होती है क्योंकि इससे वह दोबारा उस वस्तु को खरीदने आयेगा किन्तु विक्रेता के मस्तिष्क में इन सब प्रक्रियाओं का इसी क्रम से होना आवश्यक नहीं है। अनेक बार इनमें से एक या अधिक प्रक्रियाएं नहीं होती। वास्तव में विक्रय एक व्यावहारिक बात है और उसे सूत्र पर आधारित न करते हुए प्रत्येक नये ग्राहक की रूपरेखा, वस्त्र विन्यास, हाव-भाव, सामाजिक आर्थिक स्तर आदि पर नजर रखते हुए विक्रय वार्ता की जानी चाहिए। विक्रय के विषय में अमरीका में प्रचलित एक अन्य सूत्र था जिसमें पहले कमी (Want) फिर उसका सुझाव (Solution) फिर क्रिया (Action) और अन्त में सन्तोष (Satisfaction) आते थे तात्पर्य यह है कि विक्रेता को पहले किसी वस्तु की कमी या माँग पैदा करनी चाहिए फिर उस कमी को दूर करने का हल उपस्थित करना चाहिए और तब खरीदने की क्रिया होती है जिससे खरीदार को सन्तोष मिलता है परन्तु विक्रय की प्रक्रिया इतनी सरल नहीं है। विक्रेता और ग्राहक दोनों ही जटिल व्यक्ति हैं। उनकी अनेक आवश्यकतायें, इच्छायें और प्रेरणायें होती हैं। इनमें से किस के उत्तेजित होने से वह कोई वस्तु खरीद लेगा यह पहले से निश्चित् नहीं किया जा सकता। अस्तु, आँख बन्द करके विक्रय के सूत्रों पर अमल करने के स्थान पर ग्राहकों से आँख और कान खोल कर तथा बुद्धि को जागृत रखकर व्यवहार किया जाना चाहिए।

क्रय से बचने के उपाय

(Methods to Avoid Purchase)

अब तक हमने जो कुछ भी कहा वह विक्रेता के हित के लिये था किन्तु मनोविज्ञान केवल विक्रेता के हित के लिये ही नही बनाया गया, उसका ग्राहक के हित मे भी प्रयोग किया जाता है और अधिकतर लोग वस्तुओ के ग्राहक ही होते हैं जबकि विक्रेता कम होते है। इसलिये विक्रय के क्षेत्र मे मनोविज्ञान का लाभ उठाने के लिये जहा यह जानना जरूरी है कि किसी वस्तु को कैसे बेचा जाए उससे अधिक यह जानना जरूरी है कि क्या न खरीदें और खरीदने से कैसे बचें। यह बात दुकानदारो के लिये भी लाभदायक है क्योकि छोटे दुकानदार बडे दुकानदारो से और थोक व्यापारी मिलो से सामान खरीदते है और मिलें थोक व्यापारियो को तथा थोक व्यापारी खुदरा व्यापारियो को चाहे जैसा सामान भेजने की कोशिश मे रहते है। अस्तु, खरीदने से कैसे बचें इसके नियम सभी के लिये लाभदायक है। यू तो इसके बारे मे अन्तिम नियम नही बनाए जा सकते, क्योकि जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, विक्रय एक जटिल व्यवहार है जिसमे विक्रेता और ग्राहक दो महत्वपूर्ण जटिल अग है। इनकी परस्पर अन्तक्रिया का क्या परिणाम होगा यह बतलाना कठिन है। फिर भी, निम्नलिखित सिद्धान्तो पर अमल करने से ग्राहक उल्टी सीधी चीजो को खरीदने से बच सकता है। जरा सोचिये, कि आज के महगाई के जमाने मे आप बाजार मे कुछ रुपये जेब मे डालकर निकलते है और कोई दुकानदार आपको अपनी बात मे फसाकर आपके रुपये जेब से निकलवा लेता है तथा कोई ऐसी चीज आपके सिर मढ देता है जिसकी आपको तुरन्त कोई आवश्यकता नही है तो इससे आपको कितनी असुविधा होती है, आपके कितने जरूरी खर्च पडे रह जाते हैं। यदि पत्नि महीने के पहले सप्ताह मे पति का पूरा वेतन लेकर बाजार जाये और चतुर वस्त्र विक्रेता वह सारा वेतन साडियो के बदले झाड ले तथा सारे परिवार को बाकी तीन हफ्ता उधार पर गुजारा करना पडे तो इससे अधिक अनुचित बात क्या हो सकती है? परन्तु कितने ग्राहको मे वह साहस है कि वे दुकानदार के साड़ियो के ढेर लगा देने के बावजूद, हर तरह से ग्राहक के पीछे पड जाने पर भी, और कोका कोला पिलाने पर भी यह कह दे कि उन्हे वस्तु नही लेनी या दुकान से चुपचाप उठकर चल दें। यह बात महिलाओ के लिये और भी कठिन होती है, क्योकि उन्हे लिहाज ज्यादा होता है। वे सोचती है कि जब दुकानदार से उन से बातचीत करने मे इतना समय लगाया है और 'बेचारे' ने इतनी साडियाँ यूं ही खोल डाली है तो उससे कुछ न कुछ तो लिया ही जाना चाहिये। किन्तु उन्हे यह नही पता कि दुकानदार ने यही बोझ रखने के लिये ही तो इतनी साडियाँ खोली थी, इतनी बातें बनाई थी और आते ही ठडा पानी या कोका कोला पेश किया था। कुछ दुकानदार ग्राहको से इतने घनिष्ठ बन जाते है कि ग्राहको को उनसे मना करने की हिम्मत ही नही होती। अस्तु, हमे सदैव यह ध्यान रखना चाहिये कि विक्रय के क्षेत्र की वस्तु स्थिति क्या है और

हम उसमें गलत तरीके से फस जाने से कैसे बच सकते हैं। इस सम्बन्ध में स्थूल रूप से निम्नलिखित व्यावहारिक सिद्धान्त काम दे सकते हैः—

(१) संकोच न करना—यदि साडी बेचने वाले ने आप के सामने साडियो का ढेर लगा दिया तो इसमें उसका अहसान मानने की कोई बात नही है, उसका सुबह से शाम तक यही काम है और वह इसी काम के लिए वहा बैठा है। आप नही लेंगे और उसे साड़ियों को फिर से तह करना पडेगा इससे आप कोई सकोच न करें, जब उसने खोली थी तो वही फिर से तह करके रक्खेगा। इसी तरह यदि कोई दुकानदार आपके बैठते ही बातो की झडी लगा देता हैं, दुकान की बीसों चीजें आपके सामने डाल देता है और आपके सिर हो जाता है तो इस पर आपको कोई ध्यान न देकर अपने मस्तिष्क मे बराबर यह बात स्पष्ट रखनी है कि आप क्या चीज खरीदने आये थे। कुछ लोग एक लम्बी सूची बनाकर और कुछ रुपये बाँध कर बाजार चल पडते हैं किन्तु बाजार में जाकर जब वे किसी दुकान पर पहुँचते है तो चतुर विक्रेता बातें बनाकर नाना प्रकार की अनावश्यक चीजें उनके सर मढ देते हैं और दुकान से उठ आने पर उन्हे पता चलता है कि वे जो चीजें खरीदने घर से निकले थे उन्हे खरीदने के लिये अब उनके पास पैसे नही बचे और जो कुछ खरीदने वे नही आए थे वह खरीदकर ले जा रहे हैं।

(२) विक्रेता की बातचीत में व्यवधान—जो लोग विक्रेता की बातचीत मे व्यवधान नही डाल सकते और उसे चुपचाप सुने जाते है उनके सामने विक्रेता तर्कों की ऐसी झडी लगा देते है कि कुछ समय बाद उन्हे यह याद नही रहता कि उन्हे वह वस्तु नही खरीदनी थी और वे विक्रेता के कहने में आ जाते हैं। अस्तु, विक्रेता को बिना किसी रोक-टोक के बोलते जाने का अवसर देना उसे अपने पर हावी हो जाने का अवसर देना है। इसलिए ग्राहक को विक्रेता को टोकना चाहिए और यह बतलाना चाहिए कि मैं अमुक वस्तु नही चाहता और अमुक वस्तु चाहता हूँ तथा मुझे अमुक वस्तु के विषय में तर्क नही सुनने। उसे यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि वह विक्रेता की बातचीत से सहमत नही है। कुछ लोग विक्रय वार्ता के प्रारम्भ मे ही यह स्पष्ट कर देते है कि वे कुछ खरीदने नही आए हैं बल्कि कुछ वस्तुओ के विषय मे जानकारी मात्र एकत्रित करने आए है ताकि वार्ता के बाद विक्रेता यह आशा न करने लगे कि अब वे वस्तु खरीदेगें। पीछे बतलाया गया है कि विक्रय वार्ता की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि विक्रेता किसी एक वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करे। विक्रेता के दृष्टिकोण से, यदि उसे वह वस्तु नही खरीदनी है तो यह आवश्यक है कि वह विक्रेता को ऐसा न करने दे। कभी-कभी कुछ दुकानदार ग्राहक से यह कहते हैं कि यदि वह विशिष्ट वस्तु को तुरन्त नही खरीद लेता तो उसे कोई अन्य ले जाएगा या उसकी कीमत बढ जाएगी इत्यादि। इससे प्रभावित होकर कुछ ग्राहक वस्तु खरीद लेते हैं किन्तु यदि आपको वस्तु नही खरीदनी तो आप तुरन्त विक्रेता से कह सकते हैं "बिक जाती है तो बिक जाने दो" "मुझे कीमत बढ जाने की कोई चिन्ता नही है।" इस प्रकार का व्यक्ति वस्तु न खरीदने मे सफल होता है।

विक्रेताओ की बातचीत मे न आने के उपरोक्त सिद्धान्तो के अलावा और भी बहुत से तरीके हो सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में हजारों लाखो बार विभिन्न दुकानो का ग्राहक बनना पड़ता है, उसे हजारों चीजें खरीदनी पड़ती है। इन चीजो में बहुत सी जरूरत की चीजें हैं जिन्हे खरीदे बिना उसका काम नही चल सकता किन्तु अन्य बहुत सी चीजें ऐसी हैं जिनको वह न खरीदे तो भी उसका काम चल सकता है और फिर कुछ वस्तुयें ऐसी होती हैं जिनको खरीदने से उसे कोई लाभ नही हुआ और पैसा व्यर्थ बर्बाद हुआ। अस्तु, ग्राहक को विक्रेता के दांव पेंचो से सावधान रहना चाहिए। अक्सर अस्थायी रूप से आने वाली दुकानो मे या मेलों के अवसर पर विक्रेता उल्टी-सीधी चीजें ग्राहकों के सिर मढ जाते हैं क्योंकि कुछ दिनों बाद उनकी दुकान चली जाती है और फिर वस्तु के वापिस लौटने का या ग्राहक से झगडा होने का कोई प्रश्न ही नही उठता। अस्तु, इस तरह के धोखे से बचने का एक उपाय सदैव जान पहचान की और अच्छी साख वाली दुकान मे वस्तुयें खरीदना है। यहा पर यह नही समझना चाहिये कि ग्राहक और विक्रेता के हित परस्पर विरुद्ध है और उनमें बराबर सघर्ष होता रहता है। वास्तव मे सघर्ष का क्षेत्र केवल उन्ही वस्तुओ के विक्रय तक सीमित है जिनकी ग्राहक को आवश्यकता नही है किन्तु जिन्हे विक्रेता ग्राहक के सिर मढना चाहता है। ऐसी परिस्थिति मे ग्राहक और विक्रेता मे से कौन जीत जायेगा, अर्थात् वस्तु बिकेगी या नही यह विक्रय वार्ता की सफलता अथवा असफलता पर निर्भर है।

विक्रेताओं का चुनाव

विक्रय के क्षेत्र मे मनोविज्ञान का एक अन्य महत्वपूर्ण योगदान विक्रेताओ के चुनाव मे होता है। आजकल बडे-बडे डिपार्टमैण्टल स्टोरो मे लाखो रुपये का माल जमा रहता है और दर्जनो विक्रेता विक्रय कार्य के लिये नियुक्त किए जाते है। इन विक्रेताओं के चुनाव मे मनोवैज्ञानिक से बडी सहायता मिलती है। विक्रेताओ के चुनाव के अनेक तरीके हैं। सबसे अधिक प्रचलित विधि मूल्याकन मापदण्ड से परीक्षण करना है। इस प्रकार के परीक्षण के लिये पचसूत्री मापदण्ड बनाया जा सकता है जिसमे अधिकतम और न्यूनतम गुण की मात्रा का मापदण्ड बनाकर प्रार्थी का मूल्याकन किया जा सकता है। विक्रेताओ के चुनाव का एक अन्य उपाय उनकी बुद्धि, तर्क शक्ति, व्यक्तित्व, सवेगात्मकता आदि का मनोवैज्ञानिक परीक्षण करना है। अनेक कम्पनियां विक्रेताओं के चुनाव के लिए छपे हुये आवेदन रिक्त पत्र (Application Blanks) उन्हे भरने के लिये देती है जिनमे ऐसी सब बातो का विवरण होता है जिनका विक्रय कार्य मे सफलता से महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। उदाहरण के लिये आयु, ऊचाई, शारीरिक आकार-प्रकार, वैवाहिक स्थिति, आश्रितो की संख्या, शिक्षा, पिछली नौकरियो का अनुभव तथा उन पर काम करने का कार्य काल, अब तक मिलने वेतन और पिछली नौकरी छोडने का कारण तथा वर्तमान नौकरी के लिये प्रार्थना पत्र देने का कारण इत्यादि दिए रहते हैं। प्रार्थियो को इन आवेदन रिक्त पत्रो को भर कर कम्पनियो के पास भेजना होता है और कम्पनिया अपने-अपने मतलब से जिस

बात पर विशेष जोर देना चाहती हैं उसको नजर मे रखते हुये उपयुक्त प्रार्थियो का चुनाव करके उन्हे साक्षात्कार के लिए बुला भेजती है। अन्तिम चुनाव साक्षात्कार के द्वारा होता है। साक्षात्कार मे प्रार्थी का मूल्यांकन करने के लिये अनेक चार्ट बनाए गये है। कही कही पर साक्षात्कार के साथ-साथ प्रार्थी व्यक्ति की रुचि, व्यक्तित्व और बुद्धि आदि का भी परीक्षण किया जाता है। अनेक सेवाओ मे विक्रेताओ के चुनाव के लिये इन परीक्षणो का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। इनमे एक उल्लेखनीय सेवा बीमा कम्पनियों की है। बीमा के एजेन्ट को अपने कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिये व्यक्तित्व, तर्क शक्ति और बुद्धि के अनेक गुणो की आवश्यकता होती है। इन सब गुणो की परीक्षा करने के लिये परीक्षण बनाये जाते है। कुछ कम्पनिया परीक्षण के रिक्त पत्र भी प्रार्थियो को डाक द्वारा भेज देती हैं और वे उन्हे भर कर कम्पनियो को भेज देते है। विक्रेताओ के चुनाव मे किन किन परीक्षणो मे कितनी विश्वसनीयता है, यह जानने के लिये बहुत से अनुसन्धान होने के बावजूद अभी इस क्षेत्र मे अधिक निश्चित् सामग्री का अभाव है। सबसे पहले तो यही निश्चित करना कठिन है कि विशेष प्रकार की सेवाओ अथवा वस्तुओ का विक्रय करने वाले व्यक्ति में कौन कौन से गुण होना आवश्यक है। दूसरे, यह निश्चित् होना चाहिये। कि किस प्रकार की विक्रय वार्ता से विक्रय मे सफलता मिलती है। इसके अतिरिक्त विक्रय विधियो के सम्बन्ध मे अनुसन्धान करने की आवश्यकता है ताकि उनको सफल रूप से प्रयोग करने वाले विक्रेता का चुनाव किया जा सके।

उपरोक्त सभी क्षेत्रो मे अनुसन्धान करने के लिये मनोविज्ञान की आवश्यकता है। यह ठीक कहते हैं कि विक्रय के क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त अभी प्रयोगों द्वारा निश्चित् रूप से स्थापित नही किए जा सके है और अधिकतर निष्कर्ष व्यापारियो और विक्रेताओ के लम्बे अनुभव पर ही आधारित हैं किन्तु चूकि विक्रय व्यवहार का एक क्षेत्र है इसलिये निश्चय ही उसमे अनुसन्धान करके ऐसे सिद्धान्त निकाले जा सकते हैं जिन पर चलकर सफलता की अधिक आशा की जा सकती है। पिछले पचास वर्षों मे इस दिशा मे जो अध्ययन किये गये हैं उनसे इस विश्वास की पुष्टि होती है। अमरीका जैसे प्रगतिशील देशो मे विक्रय के कार्य को वैज्ञानिक रूप से करने का प्रयास किया जाता है। खेद है कि भारतवर्ष मे अभी भी विक्रय कार्य पुराने ही तरीको से किया जाता है और इस सम्बन्ध मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास नही किया जा रहा है। इसका एक बडा कारण यह है कि यहां पर अधिकतर मालिक स्वयं ही विक्रेता होता है और अपनी विक्रय योग्यता की परीक्षा करने की आवश्यकता नही समझता। दूसरे, विक्रय की ओर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव है। नयी पीढी के विक्रेताओ मे इस ओर ध्यान अवश्य है, किन्तु वे भी ठेठ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से शायद ही कभी अपने कार्य की परीक्षा करते हो। फिर भी देश मे बहुमुखी आर्थिक विकास के साथ-साथ विक्रय के क्षेत्र मे मनोविज्ञान का प्रवेश बढने की आशा है।

सारांश

क्रय तथा विक्रय आर्थिक तथ्यों की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर अधिक आश्रित है। विक्रय की सफलता विक्रय संवार्ता की विधि की सफलता पर निर्भर है। विक्रय संवार्ता की मुख्य विधियां हैं—उपयोग प्रदर्शन, मौखिक बखान, तथ्य व्याख्या द्वारा क्रय याचना इत्यादि। क्रय-विक्रय में उत्प्रेरणा, रुचि, संसूचन आदि अनेक मनोवैज्ञानिक कारक काम करते हैं। सफल विक्रय के मुख्य सोपान हैं विक्रय का प्रारम्भ, ग्राहक को भापना, वस्तु के पक्ष में तर्क देना, ग्राहकों के आक्षेपों का उत्तर और वार्तालाप के क्षेत्र को विशेष वस्तु तक सीमित करना तथा अन्त में विक्रय वार्ता की समाप्ति। विक्रय की प्रक्रिया में विक्रय के सूत्रों का विशेष महत्व नहीं है। इसमें तो विक्रेता की अपनी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि और व्यवहार कुशलता का सबसे अधिक महत्व है क्योंकि इनमें ग्राहक की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ध्यान रखा जाता है।

क्रय से बचने के उपाय—विक्रय के क्षेत्र में मनोविज्ञान के प्रयोग का एक अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण क्रय से बचने के उपाय हैं क्योंकि आवश्यक वस्तुओं को खरीदने से बचना भी एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसके लिये सकोच न करना, विक्रेता की बातचीत में ध्यान देना और विक्रेता को अपने पर हावी न होने देना आदि कुछ महत्वपूर्ण बातें हैं।

विक्रेताओं का चुनाव—आजकल बड़ी-बड़ी कम्पनियों में सफल विक्रेताओं के चुनाव के लिये मूल्यांकन मापदण्ड, तर्क शक्ति, बुद्धि, व्यक्तिगत रुचि आदि का प्रशिक्षण और साक्षात्कार तथा आवेदन रिक्त पत्र भरवाने की विधियों का प्रयोग किया जाता है। इस क्षेत्र में अभी और भी अनुसन्धान किए जाने की आवश्यकता है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १ "क्रय तथा विक्रय आर्थिक तथ्यों की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर अधिक आश्रित है।" विवेचना कीजिये।

"Buying and selling are based more on psychological than on economic factors". Discuss. (Agra 1962)

प्रश्न २ सफल विक्रय के विभिन्न सोपान बताइये। क्रय करने से कैसे बचा जा सकता है?

Point out steps of successful selling. How can you avoid buying ?

सहायक पुस्तकों की सूची

(Bibliography)

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने मे निम्नलिखित पुस्तकों की सहायता ली गई है —

1. *Anastasi, A.* · Psychological Testing (1954) Macmillan
2. *Bell, J· E.* : Projective Testing, (1948) Longmans Green.
3. *Bellak, L.* : The T. A T and C. A. T. in Clinical use, New York Grune and Stratton, (1954) ·
4. *Bhatia, C M.* : Mental Testing and National Reconstruction, (1949) Hind Kitabs.
5. *Blum, M L.* : Industrial Psychology and its Social Foundations. New York, Harper & Bros (1942)
6. *Blum and Balansky* . Counselling and Psychology, (1951) Prentice Hall
7. *Bureau of Psy U P* : Procedure for Voc Guidance, Pub No. 4 1950)
8. *Ferguson*, L W · Personality Measurement, (1952) McGraw Hill, Book Co. New York
9. *Gardner B. B* · Human Relations in Industry, (1946) Richard D Irwin
10. *Gray, J S* : Psy Applied to Human Affairs, (1954) McGraw Hill.
11. *Ghiselli, E E and C W Brown* Personnel and Industrial Psychology, Tokyo, 1955
12. *Harrell, T W.* · Industrial Psychology, Cal 1964
13. *Heron, A. R* : Why Man Work (1948) Stanford University Press
14. *Humphreys, J A* Choosing Your Career, S R A Better Living Booklets, Chicago, 1854.
15. *Jones, A. J* : Principles of Guidance, (1951) McGraw Hill.
16. *Link, N C* : Employment Psychology, 1919
17. *Maier, N. R. F* : Psychology in Industry, (1955) Houghton Mifflin.
18. *Moore, B V. and Hartmann, G. W* : Readings in Industrial Psychology, 1931.
19. *Myres, C S* Industrial Psychology, 1929.
20. *Ministry of Edu India* . Workshop on Voc Guidance, (1955) Pub No 83

21. *Ministry of Edu, India* Workship on Voc. Guidance (1956) Publication No. 300.

22. *Mundel, H. F.* : Motion & Time Study, (1950) Prentice Hall.

23. *Mursell, J. L.* : Psychological Testing, (1950), Longman's Green 1950.

24. *Shafer & Shoben* : The Psychology of Adjustment, (1956), Houghton Mifflin.

25. *Super, D. E.* : Appraising Voc. Fitness (1949) Harper and Bros.

26. *Smith, M.* : Introduction to Industrial Psychology, Newyork (1948).

27 *Tiffin, J.* · Industrial Psychology, Prentice Hall, 1944.

28. *Vernon H. M.* : Industrial Fatigue and Efficiency, Dutton, 1921.

29 *Vernon, P E* : Recent Trends in Mental Measurement & Statistical Analysis, (1956), Published in 'Studies in Education,' University of London Prees

30. *Viteles M S* : Motivation and Morale in Industry, (1954) Staples Press.

31. *Viteles, M S* , . Industrial Psychology, Norton, 1932